बौद्धभारतीग्रन्थमाला - ३५
Bauddha Bharati Series-35

सुत्तपिटक

दीघनिकायपालि

(२. महावग्ग)

[हिन्दीअनुवादसहित]

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३५

Baudha Bharati Series-35

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(२. महावग्गो)

[हिन्दीअनुवादसहितो]

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-35

The
DĪGHANIKĀYAPĀLI
(2. Mahā Vagga)

With

[Hindi Translation]

Edited & Translated By
Swāmī Dwārikādās Shāstrī

BAUDDHA BHARATI
VARANASI
1996

2539 B.] [V. 2052

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३५

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(२. महावग्गो)

[हिन्दीरूपान्तरसहितो]

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५३९] १९९६ ई० [वि०२०५२

पो० बॉ० नं० १०४९
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

P. B. No. 1049
VARANASI-221 001 [India]

सहसम्पादक :
धर्मकीर्त्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण-१९९६

First Edition-1996

मुद्रक :
साधना प्रेस
काटन मिल कालोनी
वाराणसी-२२१ ००२
फोन :- (0542) 333094

Printed By :
SADHANA PRESS
Cotton Mill Colony
VARANASI- 221 002
Ph. (0542) 333094

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति

— विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

बौद्धभारती के स्थापनाकाल (सन् १९६८ ई०) से हमारा यह सङ्कल्प था कि समग्र त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ पुनः प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि बौद्धभारती जैसा अल्पसाधन वाला प्रतिष्ठान एकाकी इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह बर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षा विभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्य हेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, बौद्धभारती के अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का मज्झिमनिकाय (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया। जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

उसी क्रम में, अब हम सुत्तपिटक का दीघनिकाय (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित कर रहे हैं।

'मज्झिमनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में 'पालि त्रिपिटिक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे लाभान्वित होंगे।

हमने हिन्दी-अनुवाद, आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी-अनुवाद को प्रमाण मान कर सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठक को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय—वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फंस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों

(जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '....पे०....' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '....पे०....' का अनुवाद हमने '....पूर्ववत्....' करके दिया है, या प्रायः '....' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने, इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

वसन्तपञ्चमी, २०५२ वि०
वाराणसी

अध्यक्ष
बौद्धभारतीपरिषद्

निदानकथा

आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व लोक शास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोक-भाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटिक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्ध-मागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्ध-वचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक ही भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्ठकथायें और इन अट्ठकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय-समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्ठकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। इसी से समझा जा सकता है कि यह कितना विस्तृत साहित्य है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये-नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिङ्गत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर उनके प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध-वचनों की सुरक्षा की दृष्टि से उनका तीन भागों में संग्रह किया। वे तीन भाग पिटारियों की भाँति हैं, अत: उन्हें 'त्रिपिटक' कहा जाता है। विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक—ये तीन पिटक हैं। जिस पिटक में भिक्षु और भिक्षुणियों से सम्बद्ध पालनीय धर्मों के उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'विनय-पिटक' और जिसमें विद्वानोंश्च साधारण समाज के लिये उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' कहते हैं। तथा जिसमें विद्वानों द्वारा समझने योग्य गम्भीर और दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' कहते हैं। ये तीनों पिटक भी आगे चलकर अनेक उपविभागों में बाँटे गये।

'तिपिटक' के ग्रन्थों का विभाजन

तिपिटक

विनयपिटक

१. महावग्ग
२. चुल्लवग्ग
३. पाराजिक
४. पाचित्तिय
५. परिवार

सुत्तपिटक

१. दीघनिकाय
२. मज्झिमनिकाय
३. संयुत्तनिकाय
४. अङ्गुत्तरनिकाय
५. खुद्दकनिकाय

(१) खुद्दकपाठ
(२) धम्मपद
(३) उदान
(४) इतिवुत्तक
(५) सुत्तनिपात
(६) विमानवत्थु
(७) पेतवत्थु
(८) थेरगाथा
(९) थेरीगाथा
(१०) जातक
(११) निद्देस
(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(१३) अपदान
(१४) बुद्धवंस
(१५) चरियापिटक

अभिधम्मपिटक

१. धम्मसङ्गणि
२. विभङ्ग
३. धातुकथा
४. पुग्गलपञ्ञत्ति
५. कथावत्थु
६. यमक
७. पट्ठान

प्रस्तुत ग्रन्थ का तिपिटक में स्थान

बुद्ध-वचन के जो तीन मुख्य भाग हैं, उन्हीं को 'तिपिटक' (तीन पिटारी) कहते हैं। उनके विषय और शैली एक दूसरे से भिन्न हैं।

भिक्षु-सङ्घ के निर्माणसम्बन्धी विवरण तथा अनुशासनसम्बन्धी नियम 'विनयपिटक' में संगृहीत हैं। बुद्ध द्वारा भिन्न-भिन्न स्तर के लागों को दिये गये उपदेशों का सङ्कलन 'सुत्तपिटक' में है और पारिभाषिक शब्दों में उपदिष्ट गम्भीर धर्मदर्शन का विवेचन 'अभिधम्मपिटक' में है।

इस **दीघनिकाय** में ३४ लम्बे-लम्बे 'सुत्त' हैं, जो तीन खण्डों में विभक्त हैं— सीलक्खन्धवग्ग, महावग्ग और पाथिकवग्ग।

प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दूसरे खण्ड 'महावग्ग' का देवनागरी-संस्करण है। इस नाम से 'विनयपिटक' के इसी नाम वाले पहले ग्रन्थ का प्रायः भ्रम हो जाता है। अतः इस भ्रम के निवारणार्थ प्रस्तुत ग्रन्थ को 'दीघनिकाये महावग्गो' और दूसरे को 'विनयपिटके महावग्गो' कहा जा सकता है।

प्रस्तुत खण्ड के दस 'सुत्तों' में से सात 'सुत्तों' के नाम के पहले 'महा' शब्द लगा है। इसलिये इस खण्ड को 'महावग्ग' की संज्ञा प्रदान की गयी है।

'महापरिनिब्बान-सुत्त' नामक तीसरा 'सुत्त' बुद्ध के अन्तिम दिनों और समय का अत्यन्त मार्मिक एवं प्रेरणादायक विवरण उपस्थित करता है। इसीलिये बौद्ध देशों में अध्ययन एवं नित्य-पाठ की दृष्टि से इसका पृथक् से,एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में भी,प्रकाशन होता रहता है। स्थविरवाद तथा महायान परम्पराओं में इस 'सुत्त' के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं।

इस खण्ड का नवम 'सुत्त' 'महासतिपट्ठान-सुत्त' है, जिसमें आत्म-संयम की सम्पूर्ण विधियों का विधान है। समाधि-भावना तथा नित्य-पाठ के लिये सम्पूर्ण बुद्ध-वचन में इसका अपना एक स्वतन्त्र महत्त्व है। अतः श्रद्धालु शिष्यों ने इस 'सुत्त' के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिये इसे बहुमूल्य रत्नजटित स्वर्ण-पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण कराकर स्तूपों में भी रख छोड़ा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सूत्रों का महत्त्व

इस ग्रन्थ के दसों 'सुत्तों' पर दृष्टिपात करने मात्र से ही यह ज्ञात हो जाता है कि इसका महत्त्व इसके पूर्व-खण्ड से भिन्न है।

इस ग्रन्थ का अधिकांश देवता, यक्ष तथा पौराणिक आख्यानों के वर्णन से सम्बद्ध है। तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन में यह निश्चय ही कुछ अंशों तक सहायक है।

'महापदान-सुत्त' नामक प्रथम 'सुत्त' ऐतिहासिक सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के पहले छह बुद्धों का विस्तृत जीवन-वृत्त उपस्थित करता है। बौद्ध-साहित्य के विशेषज्ञ श्री रीज डेविड्स ने ठीक ही कहा है— "इन आख्यानों में इतनी समानरूपता है कि इनमें के किसी भी विवरण को न छोड़ने पर इन्हें समानान्तर तालिकाओं में रखा जा सकता है।" ये विवरण बौद्धधर्म के इस आधारभूत सिद्धान्त को कि सांसारिक क्रम में 'धम्म' का कार्य-व्यापार अनादि काल से चला आ रहा है— प्रतिपादित करने में सहायक हैं। साथ ही यह उस सामान्य भारतीय धारणा की ओर संकेत करता है, जिससे किसी वस्तु को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करने के लिये उसे अत्यन्त प्राचीन सिद्ध किया जाता है।

'महासुदस्सन' नामक चौथा 'सुत्त' बौद्ध-पौराणिक कल्पना का विवरण उपस्थित करने के ही कारण महत्त्वपूर्ण नहीं है, प्रत्युत यह इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि 'सुत्त' की उत्पत्ति सम्भवत: अत्यधिक प्राचीन है। वास्तव में पहले आये हुए 'महापरिनिब्बान-सुत्त' के इस सम्बन्ध में संकेत का ही यह विस्तार है। यही कथा 'महासुदस्सन-जातक' (फुसबोल संस्करण; जातक संख्या ९५) में भी आयी है। यद्यपि उसके कुछ प्रमुख विवरण इससे भिन्न हैं। इससे कुछ विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सम्भवत: ये दोनों रूप किसी एक ही प्राचीन रूप से नि:सृत हुये हैं। 'महासुदस्सन' के ऐश्वर्य एवं वैभव का लम्बा वर्णन सूर्य-कथा में आये वर्णनों से बहुत साम्य रखता है। जिसके आधार पर श्री रीज डेविड्स ने कहा है— "चाहे यह सम्पूर्ण कथा सूर्य-कथा पर आधृत हो या नहीं, अथवा इसके कुछ भाग या विवरण उन वस्तुओं से लिये गये हों, जिनकी चर्चा पहले सूर्य से ही सम्बद्ध है, अथवा नहीं; पर इतने पर भी यह तथ्य शीघ्र ही स्वीकार करना चाहिये कि यह कथा निश्चित रूप से बौद्ध है। इस कहानी के विषय के प्रतिपाद्य में अधिकांश का सूर्य-पूजा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और जो कुछ भी सम्बन्ध परिलक्षित होता है, वह इस पुस्तक को एक स्वरूप प्रदान करते समय सम्पादकों के मस्तिष्क में विद्यमान नहीं था। यह कहानी सूर्य-कथा की ऋणी हो अथवा न हो, पर निश्चय ही यह उन लोगों के साधारण धार्मिक विश्वासों तथा मान्यताओं की प्रतीक है, जिनमें यह प्रचलित थी...."।

यह विचारणीय है कि आजकल मगध, गया तथा पटना, जो बौद्धधर्म के मूल केन्द्र थे और जहाँ के लोगों ने यद्यपि आज बौद्ध धर्म छोड़ दिया है, फिर भी उनके धार्मिक जीवन से सूर्य-पूजा का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इस प्रकार यह मत इस तथ्य से भी मेल खाता है। किन्तु इसका महत्त्व तब और भी प्रकट हो जाता है जब हम इस प्रान्त की सीमाओं को पार कर यह देखते हैं कि सूर्य-पूजा वहाँ अज्ञात-सी प्रतीत होती है।

यद्यपि इस 'सुत्त' में दिये गये विवरण आख्यानात्मक हैं तथापि वे यह निर्णय करने में सहायक हैं कि उस समय शक्तिशाली तथा धार्मिक राजाओं के वैभव-विलास की क्या कल्पना थी।

पाँचवा, छठा, सातवाँ तथा आठवाँ सुत्त— 'महागोविन्द', 'महासमय', 'सक्कपञ्ह', तथा 'जनवसभ'— इन्द्र, ब्रह्मा तथा अन्य दूसरे देवता, अप्सराएँ तथा यक्षादि विभिन्न प्रकार के शक्ति के स्रोतों की बौद्ध कल्पना के अध्ययन में प्रमुख रूप से सहायक हैं।

'महापरिनिब्बान-सुत्त' का प्रारम्भ सैद्धान्तिक मतभेद रखनेवाले मगध तथा वैशाली राज्यों के बीच चलने वाले सङ्घर्ष की ओर संकेत करते हुये होता है। यह उन परिस्थितियों का सजीव चित्र उपस्थित करता है, जिनके कारण गङ्गा के तट पर 'पाटलिपुत्र' नामक नगर का निर्माण हुआ था। यह बड़ा 'सुत्त' उस समय की संस्कृति तथा इतिहास के अध्ययन के लिये अपेक्षित तत्वों और तथ्यों की अमूल्य निधि है।

'महानिदान' नामक दूसरा 'सुत्त' बौद्धदर्शन की धुरी 'पटिच्चसमुप्पाद' की व्याख्या करता है।

'महासतिपट्ठान-सुत्त' का यह महत्त्व है कि यह आर्य 'अष्टाङ्गिक मार्ग' के सातवें अङ्ग 'सम्मासति' के अभ्यासार्थ है। पीढ़ियों से यह 'सुत्त' उन स्त्री, पुरुष, भिक्षु तथा उपासकों के लिये, जिन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं को हृदयङ्गम कर अपने को परम लक्ष्य की प्राप्ति में लगा दिया है, प्रेरणादायक तथा दिग्दर्शक रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ
की
विषयवस्तु

(१) महापदानसुत्त

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार की 'करेरी कुटी' में ठहरे हुये थे। वहाँ भिक्षुओं की प्रार्थना पर बुद्ध ने उनको पूर्वजन्म की स्मृति के विषय में उपदेश दिया। उन्होंने पूर्व-प्रादुर्भूत बुद्धों के नाम, कुल, जन्म-स्थान, बोधिवृक्ष तथा उनके दो प्रधान श्रावकों और जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बातें बतायी।

तत्पश्चात् उन्होंने सम्यक्सम्बुद्ध 'विपस्सी' की जन्म से लेकर महापरिनिर्वाण तक की सम्पूर्ण जीवन-कथा सुनाते हुए बतलाया कि सभी बुद्धों के जीवन की विशेष बातें समान होती हैं। बुद्धों के जीवन की यह समानता 'धम्मता' कहलाती है। इस प्रकार जब बोधिसत्त्व माता की कोंख में प्रविष्ट होते हैं, तब इस लोक में देव-तेज से भी अधिक प्रकाशवान् एक अलौकिक दिव्य-आभा प्रकट होती है। बोधिसत्त्व की माता प्रकृति से ही शीलवती तथा सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न होती है। उनके जन्म ग्रहण करने के एक सप्ताह पश्चात् उनकी माता शरीर त्याग कर 'तुषित-देवलोक' में उत्पन्न होती है। जब वे जन्म ग्रहण करते हैं, तब सर्वप्रथम उन्हें देवता लोग हाथों में लेते हैं और तब उनकी उपमा काशी के रेशमी वस्त्र में रक्खे हुये मणि-रत्न से दी जा सकती है। उनके जन्म ग्रहण करने पर आकाश से दो शीत और उष्ण जलधारायें गिरती हैं, जिनसे बोधिसत्त्व और उनकी माता का उदक-कृत्य होता है। वे उत्पन्न होते ही समान पैरों पर खड़े हो उत्तर की ओर मुँह करके सात पद चलते हैं तथा सभी दिशाओं को देखकर इस श्रेष्ठ वचन से घोषणा करते हैं— "इस लोक में मैं श्रेष्ठ हूँ। इस लोक में मैं अग्र हूँ। इस लोक में मैं सबसे ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा"।

'विपस्सी' के जन्म लेने के पश्चात् उनके पिता राजा बन्धुमान् ने ज्यौतिष-शास्त्र में पारङ्गत ब्राह्मणों को बुलाकर कुमार का भविष्य पूछा। उन्होंने राजा बन्धुमान् के पूछने पर बतलाया कि आपका पुत्र बड़ा भाग्यवान् है। कुमार महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त हैं, जिनसे युक्त महापुरुष की दो ही गतियाँ होती हैं— यदि वह घर में रहता है तो धार्मिक शान्ति स्थापित करने वाला सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होता है और यदि गृह त्यागकर प्रव्रजित होता है तो संसार के आवरण को हटाने वाला सम्यक्सम्बुद्ध अर्हत् होता है। राजा ने कुमार के वर्षा, शिशिर और ग्रीष्म निवास के लिये तीन प्रासाद निर्मित कराये। एक दिन कुमार रथ पर चढ़कर नगर-भ्रमण हेतु निकले। मार्ग में उन्होंने एक गत-यौवन वृद्ध को टेढ़े दण्ड का सहारा ले, काँपते हुये जाते देखा। अन्य अवसरों पर उन्होंने एक व्याधि-ग्रस्त मनुष्य को तथा उसके बाद अन्त्येष्टि-क्रिया के लिये अर्थी पर ले जाये जाने वाले मृत व्यक्ति को देखा। इन दृश्यों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता देख राजकुमार जीवन के सम्बन्ध में चिन्तन करने लगे।

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर भ्रमणार्थ जाते हुए राजकुमार ने एक मुण्डित काषाय-वस्त्रधारी प्रव्रजित को देखा, जिसने उन्हें बतलाया कि उसने संसार के कष्टों और दुःखों को देख

शान्ति और निर्वाण प्राप्त करने के लिये प्रव्रज्या ग्रहण की है। तब परम सत्य के अन्वेषण के लिये कुमार 'विपस्सी' ने राज-प्रासाद से अपना महाभिनिष्क्रमण किया और प्रव्रजित हो गये। अपेक्षित प्रयत्न तथा समाधि से उन्हें भव-चक्र के प्रयत्नों में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। उनका अन्धकार सदा के लिये विनष्ट हो गया; 'बोधि' की प्राप्ति हुई और वे सम्यक्सम्बुद्ध हो गये। तब महाब्रह्मा ने उनके सामने प्रकट होकर उनसे इस दुःखी संसार पर कृपा कर अपने 'धम्म' को बतलाने और इस प्रकार संसार के प्राणियों को निर्वाण-मार्ग की ओर प्रवृत्त कराने के लिये कहा।

उनके 'खण्ड' और 'तिस्स' नामक दो अग्र-श्रावक हुये। इसके पश्चात् बन्धुमती नगरी के चौरासी सहस्त्र निवासी भी उनके शिष्य हुए। सुदूर प्रदेश तक भगवान् 'विपस्सी' के धर्म का प्रसार हुआ। उन्होंने सङ्घ में अनुशासन को चिरस्थायी बनाने के लिये 'पातिमोक्ख' तथा तत्सम्बन्धी अन्य विधानों की देशना की।

(२) महानिदानसुत्त

भगवान् बुद्ध कुरु देश के 'कम्मासदम्म' नामक नगर में साधना कर रहे थे। वहाँ उन्होंने आयुष्मान् आनन्द को 'पटिच्चसमुप्पाद' पर उपदेश दिया—

जरा-मरण जाति पर, जाति भव पर, भव उपादान पर, उपादान तृष्णा पर, तृष्णा वेदना पर, वेदना स्पर्श पर, स्पर्श नाम-रूप पर, नाम-रूप विज्ञान पर और विज्ञान नाम-रूप पर आधृत है।

बुद्ध ने इसी शृङ्खला की प्रत्येक कड़ी को और स्पष्ट रूप से समझाते हुये कहा— "यदि जाति न हो तो जरा-मरण न रहे; यदि भव न हो तो जाति न रहे। यदि उपादान न हो तो भव न रहे; यदि तृष्णा न हो तो उपादान न रहे। यदि वेदना न हो तो तृष्णा न रहे; यदि स्पर्श न हो ते वेदना न रहे। यदि नाम-रूप न हो तो स्पर्श न रहे; यदि विज्ञान न हो तो नाम-रूप न रहे और यदि नाम-रूप न हो ता विज्ञान न रहे"।

भगवान् बुद्ध ने नित्य तथा कूटस्थ आत्मा की स्थिति के विषय में प्रचलित विभिन्न मतों के विषय में अपना विचार प्रस्तुत करते हुये यह व्यक्त किया कि इस 'पटिच्चसमुप्पाद' के सिद्धान्त को न जानने से ही इस प्रकार की दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं।

(३) महापरिनिब्बानसुत्त

भगवान् बुद्ध राजगृह के 'गिज्झकूट' पर्वत पर विहार कर रहे थे। मगध-महामात्य वस्सकार ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध के पास जाकर उन्हें बतलाया कि सम्राट् अजातशत्रु वज्जियों को उच्छिन्न करने के लिये उन पर आक्रमण करने जा रहा है। तब बुद्ध ने 'वस्सकार' से कहा कि जब तक वज्जियों में निम्नलिखित सात गुण विद्यमान रहेंगे, तब तक उनका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता— सम्मति के लिये अपनी सभा में एकत्र होना, एक होकर बैठना आदि तथा उत्थान और करणीय कर्त्तव्य करना; अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त न मानना; अपने प्राचीन वज्जि-धर्म का अनुसरण करना; अपने वयोवृद्धों के प्रति श्रद्धा भाव रखना; स्त्री-वर्ग के सम्मान की रक्षा करना; अर्हतों के ठहरने का सुविधाजनक तथा सुरक्षित प्रबन्ध करना; अपने चैत्यों की पूजा करना।

ब्राह्मण 'वस्सकार' के जाने के पश्चात् सब भिक्षुओं को उपस्थानशाला में एकत्र कर बुद्ध ने उन्हें सात अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश किया, जो सङ्घ के उत्थान के लिये परमावश्यक हैं। तत्पश्चात् उन्होंने शील, समाधि और प्रज्ञा के विषय में भी बतलाया। उन्होंने कहा कि शील से

परिभावित समाधि महाफलवती होती है, समाधि से परिभावित प्रज्ञा महाफलवती होती है तथा प्रज्ञा से परिभावित चित्त आस्रवों से विमुक्त हो जाता है।

राजगृह से बुद्ध 'अम्बलट्ठिका' आये और वहाँ 'राजागारिक' में ठहरे। वहाँ उन्होंने अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए यह बतलाया कि सब दुःखों का मूल अविद्या है। अतः निर्वाण के साक्षात्कार के लिये इसका विनाश होना परमावश्यक है। इसके बाद बुद्ध नालन्दा के 'पावारिकाम्रवन' में आये। वहाँ आयुष्मान् 'सारिपुत्त' बुद्ध के पास गये और उन्हें अभिवादन करके उनसे कहा— "भन्ते, मेरा ऐसा विश्वास है कि 'सम्बोधि' में भगवान् से बढ़कर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा और न इस समय है"। 'सारिपुत्त' का यह वक्तव्य धर्म की पूर्णता पर ही आश्रित था और इस पूर्णता में किसी सन्देह की आशङ्का नहीं थी।

नालन्दा से बुद्ध महान् भिक्षु-सङ्घ के साथ 'पाटलिग्राम' को गये। वहाँ उन्होंने अपने उपासकों को सदाचारी जीवन के सुपरिणाम तथा दुराचारी जीवन के दुष्परिणामों से अवगत कराया। उस समय वज्जियों के आक्रमण की रोक-थाम के लिये 'पाटलिग्राम' में 'सुनीध' और 'वस्सकार' नामक मगध के प्रधानामात्य एक नगर बसा रहे थे। उन्होंने बुद्ध और उनके भिक्षु-सङ्घ को अपने निवास-स्थान पर भोजन के लिये आमन्त्रित किया। इसके पश्चात् जब बुद्ध उनके यहाँ से भोजनादि से निवृत्त होकर चलने लगे, तब वे दोनों यह निश्चय कर उनके पीछे चल दिये कि आज भगवान् जिस द्वार से निकलेंगे, उसे 'गोतम-द्वार' कहा जायगा और जिस तीर्थ (घाट) से गङ्गा नदी पार होंगे, वह 'गोतम-तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध होगा।

गङ्गा के उस पार भगवान् 'कोटिग्राम' तथा 'नादिका' में ठहरे। वहाँ उन्होंने चार आर्य सत्यों के विषय में तथा धर्म के आदर्श के सम्बन्ध में एक उपदेश भी दिया। वहाँ से चलकर वे वैशाली पहुँचे और 'अम्बपाली-वन' में ठहरे। वहाँ अम्बपाली गणिका ने सर्वप्रथम पहुँचकर भगवान् बुद्ध को भिक्षुसङ्घ सहित भोजन के लिये आमन्त्रित किया। जब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि भगवान् बुद्ध ने अम्बपाली का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया है, तो उन्हें ग्लानि हुई कि बुद्ध का सम्मान करने में एक गणिका ने उन्हें पराजित कर दिया। लिच्छवियों ने अम्बपाली से कहा कि यदि वह बुद्ध को पहले उनके यहाँ भोजन करने दे तो वे उसे इस बात के लिये शत-सहस्र कार्षापण देंगे; किन्तु अम्बपाली ने किसी भी मूल्य पर इस सम्मान से वञ्चित होना स्वीकार न किया।

'वेलुव-ग्राम' में पहुँचकर भगवान् बुद्ध ने कहा— "आनन्द, भिक्षुसङ्घ मुझसे क्या चाहता है? मैंने धर्म का स्पष्ट रूप से उपदेश कर दिया। तथागत ने धर्म के सम्बन्ध में कोई 'आचार्य-मुष्टि' नहीं छोड़ी। आनन्द, आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण; धर्मदीप, धर्मशरण और अनन्यशरण होकर विहार करो"।

'चापाल-चैत्य' में भगवान् बुद्ध ने आनन्द को सम्बोधित करते हुये कहा— "वैशाली तथा 'उदयन चैत्य', 'गोतमक चैत्य', 'सारन्दद चैत्य' तथा 'चापाल चैत्य' कितने रमणीय हैं। आनन्द, जिसने चार ऋद्धिपाद सिद्ध कर लिये हैं, यदि वह चाहे तो इसी जन्म में वह कल्पभर अथवा कल्प के शेष काल तक ठहर सकता है। तथागत को भी ये चार ऋद्धिपाद सिद्ध हैं। अतएव यदि वे चाहे तो वे भी कल्पभर या कल्प के शेषकाल तक ठहर सकते हैं। बुद्ध के ऐसा कहने पर भी दुष्ट मार द्वारा प्रभावित चित्त वाले आनन्द भगवान् से यह प्रार्थना न कर सके कि तथागत संसार पर अनुकम्पा करने के लिये कल्पभर या कल्प के शेषकाल तक ठहरें।

वैशाली से बुद्ध 'भण्ड-ग्राम', 'हस्ति-ग्राम' तथा 'भोग-ग्राम' गये और वहाँ से वे 'पावा' पहुँचे। पावा में बुद्ध 'चुन्द-कम्मारपुत्त' के आम्रवन में ठहरे। चुन्द ने उन्हें अपने यहाँ भिक्षु-सङ्घ के साथ भोजन के लिये निमन्त्रित किया और इसके लिये उसने बहुत से उत्तम खाद्य-पदार्थों के साथ 'सूकरमद्दव' भी तैयार कराया। 'चुन्द' का भोजन ग्रहण करने के पश्चात् बुद्ध को रक्त-स्राव का भयङ्कर रोग हो गया और मरणान्तक पीड़ा होने लगी। तब भगवान् मार्ग से हट्कर एक वृक्ष के नीचे गये और उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से कहा कि मेरे लिये चार पर्त करके संघाटी बिछा दो। मैं थक गया हूँ और बैठना चाहता हूँ। आनन्द ने वैसा ही किया और भगवान् बिछे आसन पर विश्राम करने के लिये बैठ गये। बैठने के बाद बुद्ध ने आयुष्मान् आनन्द से पासवाली नदी से अपने पीने के लिये जल लाने को कहा। उस समय उस छिछली नदी से होकर पाँच सौ गाड़ियाँ गयी थीं। अतएव उनके चक्कों से मथकर जल गन्दा हो गया था। इसीलिये उनसे आनन्द ने यह कहा कि उस नदी से पानी लाने की अपेक्षा पास की रमणीय 'ककुत्था' नदी से पानी लाना अधिक उपयुक्त और सुन्दर होगा। पर बुद्ध ने उसी छिछली नदी से शीघ्र उन्हें पानी लाने का आदेश दिया। आनन्द ने नदी के पास पहुँचकर देखा कि उस छिछली नदी का जल स्वच्छ तथा निर्मल हो गया है। ऐसा बुद्ध के दिव्य प्रभाव के ही कारण हुआ था। आनन्द पात्र में जल भरकर भगवान् के पास ले गये और उन्होंने उसे ग्रहण किया। इसके पश्चात् 'पुक्कुस मल्लपुत्त' भगवान् से मिलने आया। उसने तथागत को उपहार-स्वरूप एक इंगुर वर्ण वाला चमकता दुशाला अर्पित किया। 'पुक्कुस मल्लपुत्त' के जाने के कुछ समय पश्चात् भगवान् का शरीर अत्यन्त परिशुद्ध तथा पर्यवदात सा होने लगा। उनके शरीर से आलोकमयी रश्मियाँ निकल रही थीं। आनन्द ने इसका विशेष कारण पूछा। बुद्ध ने कहा कि 'सम्बोधि' साक्षात् करने तथा 'निर्वाण' प्राप्त करने के समय तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध तथा पर्यवदात हो जाता है। उन्होंने आनन्द को यह भी बतलाया कि आज रात के पिछले पहर 'कुसीनारा' के 'उपवत्तन' नामक मल्लों के शालवन में यमक शाल-वृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। इसके पश्चात् वे 'ककुत्थ' नदी के तट पर गये और उसमें स्नानादि कर उसके उसपार स्थित आम्रवन में जाकर लेट गये। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा कि सम्भव है कि मेरे परिनिर्वाण के पश्चात् लोग 'चुन्द-कम्मारपुत्त' से जाकर यह कहें कि यह उसका दुर्भाग्य था तथा यह उसके लिये अच्छा नहीं था कि उसी के भोजन को ग्रहण करने के पश्चात् तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। अतएव उन्होंने आनन्द से 'चुन्द-कम्मारपुत्त' को इस बात के लिये उत्साहित करने को कहा कि उसी का भोजन स्वीकार करके ही भगवान् को परिनिर्वाण-लाभ हुआ। साथ ही उन्होंने चुन्द को यह भी समझाने के लिये कहा कि दो समय के ही भोजन अत्यन्त महाफलदायक होते हैं— १. जिस भोजन के पश्चात् 'सम्बोधि' की प्राप्ति होती है, तथा २. जिस भोजन के पश्चात् 'दुःख-कारण-रहित-निर्वाण' की प्राप्ति होती है।

इसके पश्चात् बुद्ध हिरण्यवती नदी के उस पार स्थित 'कुसीनारा' के 'उपवत्तन' नामक मल्लों के शालवन में पहुँचे। वहाँ वे आनन्द से बोले— "आनन्द, यमक शालों के बीच में उत्तर की ओर सिर कर मेरा आसन बिछा दो। मैं थका हूँ, लेटूँगा"। तब भगवान् दाहिनी करवट सिंह-शय्या से लेटे। उस समय अकाल ही में यमक शाल-वृक्ष पुष्पित थे तथा उनसे तथागत के शरीर पर पुष्प गिर रहे थे। उस समय आकाश से दिव्य मन्दारपुष्पों तथा दिव्य चन्दन चूर्ण की भी निरन्तर वृष्टि हो रही थी और उनकी पूजा के लिये गगन में दिव्य वाद्य बज रहे थे।

इन सबके विषय में चर्चा करते हुए तथागत ने आनन्द से कहा कि इन सबसे तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित तथा पूजित नहीं होते; प्रत्युत शास्ता के धर्म-मार्ग पर आरूढ़ होकर जो भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका अपना आचरण कर रहे हैं उन्हीं से तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित तथा पूजित होते हैं। अतएव, आनन्द, इसी से तुम्हें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

बुद्ध ने आनन्द से कहा कि तथागत का जन्म-स्थान **लुम्बिनी**, बोधि प्राप्त करने का स्थान **बोधगया**, धर्मचक्र-प्रवर्त्तन का स्थान **सारनाथ** तथा 'निर्वाण-धातु' प्राप्त करने का स्थान **कुसीनारा** श्रद्धालु कुलपुत्रों के लिये दर्शनीय तथा वैराग्यप्रद हैं।

उस समय आनन्द को अत्यन्त दुःखी सुनकर बुद्ध ने उन्हें अपने पास बुलाया और कहा— "आनन्द, शोक मत करो। मैंने तो पहले ही व्यक्त कर दिया है कि सभी प्रियों से वियोग अवश्यम्भावी है। इसलिए, आनन्द, वह कहाँ मिलने वाला है। जो कुछ जात, भूत तथा संस्कृत है, वह सभी नाशवान् है। ऐसा सम्भव नहीं कि यह नाश न हो। आनन्द, तूने चिरकाल से अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्मों से तथागत की पूर्ण सेवा की है। आनन्द, तू कृतपुण्य है और तू निर्वाण-साधना में लगकर शीघ्र ही बन्धन-मुक्त होगा"। इसके पश्चात् भगवान् ने आनन्द के गुणों का वर्णन किया और उसके साथ ही चक्रवर्ती राजा के भी चार गुण बतलाये।

आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा— "भन्ते, इस क्षुद्र जङ्गली तथा शाखानगरक में आप परिनिर्वाण को प्राप्त न हों। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी आदि प्रमुख नगर हैं। उन्हीं स्थानों में भगवान् को परिनिर्वाण प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वहाँ बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा गृहपति महाशाल तथागत के भक्त हैं। वे तथागत के शरीर की पूजा करेंगे"।

बुद्ध ने आनन्द को ऐसा कहने से रोका तथा उन्हें यह बतलाया कि वह विशेष स्थान 'महासुदस्सन' नामक चक्रवर्ती राजा की विख्यात कुशावती नामक राजधानी था। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'महासुदस्सन' राजा वे ही थे। इसके पश्चात् आनन्द ने बुद्ध के आदेशानुसार 'कुसीनारा' के मल्लों को तथागत के परिनिर्वाण की सूचना दी। इस सूचना के पाते ही वे भगवान् के पास दलबल सहित उनकी वन्दना करने पहुँचे।

उस समय 'कुसीनारा' में 'सुभद्द' नामक एक परिव्राजक रहता था। जब उसने यह सुना कि आज रात को पिछले प्रहर श्रमण गौतम का परिनिर्वाण होगा तो वह आनन्द के पास गया। उसने आनन्द से तथागत के दर्शन करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द तथा 'सुभद्द' परिव्राजक के वार्तालाप को सुन लिया और आनन्द से उसे मना करने को कहकर उसे अपने पास लाने को कहा। बुद्ध ने उसको अपने धर्म का उपदेश किया। इस तरह 'सुभद्द' अन्तिम शिष्य था, जिसे बुद्ध ने स्वयं अपने भिक्षु-सङ्घ में सम्मिलित किया और वह शीघ्र ही अर्हत्पद को प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् बुद्ध ने आनन्द को अपना अन्तिम उपदेश दिया— "आनन्द, मेरे परिनिर्वाण के पश्चात् यह न समझना कि अब हमारा शास्ता नहीं है। मैंने जो धर्म और विनय के उपदेश दिये और प्रज्ञप्त किये हैं— मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्ता होंगे....। इच्छा होने पर सङ्घ मेरे बाद क्षुद्र तथा अनुक्षुद्र शिक्षापदों को छोड़ दे तथा 'छन्न' भिक्षु को 'ब्रह्मदण्ड' दे"। तब आनन्द ने बुद्ध से यह पूछा कि 'ब्रह्मदण्ड' क्या है ? बुद्ध ने उत्तर दिया कि 'छन्न' भिक्षुओं को जो चाहे कहता रहे, पर भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिये और न उसका अनुशासन करना चाहिये। इसके पश्चात् बुद्ध ने

सब भिक्षुओं को आमन्त्रित करके यह पूछा कि यदि उनमें से किसी को भी बुद्ध, धर्म अथवा सङ्घ के सम्बन्ध में कोई शङ्का हो तो वे उनसे उसे पूछें। उनकी यह बात सुनकर सभी भिक्षु मौन रहे। इससे बुद्ध को प्रसन्नता हुई कि उनके भिक्षु-सङ्घ में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे उपयुक्त विषयों के सम्बन्ध में शङ्का न हो।

बुद्ध के अन्तिम वचन ये थे— "सभी संस्कार अनित्य हैं; आत्म-संयम कर जीवन के परम लक्ष्य का सम्पादन करो"।

भगवान् के परिनिर्वाण होने के समय भीषण लोमहर्षक महाभूचाल हुआ तथा देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उस समय जो भिक्षु अवीतराग थे, उनमें से कोई बाँह पकड़कर क्रन्दन कर रहा था, कुछ कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिरते और लोटते थे तथा वे सब यह कहते थे— "भगवान् बहुत शीघ्र परिनिर्वृत्त हो गये, सुगत बहुत शीघ्र परिनिर्वृत्त हो गये; लोकचक्षु शीघ्र ही अन्तर्हित हो गये!" परन्तु उनमें से जो वीतराग अर्हत् भिक्षु थे वे अपने दुःख को सहन करके कह रहे थे— "संस्कार अनित्य है। इसलिये वह कहाँ मिलेगा!" आयुष्मान् अनिरुद्ध तथा आनन्द ने शेष रात्रि धर्मकथा में व्यतीत की।

'कुसीनारा' के मल्लों को भगवान् के परिनिर्वृत्त हो जाने की सूचना जब आयुष्मान् आनन्द से प्राप्त हुई तो वे गन्ध, माला, वाद्य तथा पाँच सहस्र जोड़े वस्त्र लेकर कुसीनारा के अपने 'उपवत्तन' नामक शालवन में पहुँचे, जहाँ बुद्ध का शरीर रखा था। वहाँ जाकर उन्होंने वह दिन भगवान् के शरीर का नृत्य, गीत, वाद्य, माला तथा गन्ध से सत्कार एवं पूजा आदि करने में और कपड़े का वितान तथा मण्डपादि बनाने में व्यतीत किया। वे भगवान् के शरीर को नगर के उत्तर से उत्तर ले जाकर उत्तर द्वार से नगर में प्रविष्ट हो उसे नगर के बीच ले आकर पूर्व द्वार से निकल कर नगर के पूर्व की ओर 'मुकुटबन्धन' नामक प्रसिद्ध चैत्य के स्थान पर ले गये और वहीं भगवान् के शरीर को रख दिया। तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् के शरीर को नवीन वस्त्र में लपेट कर पुनः धुने हुये कपास से उसे लपेटा। इसके बाद उसे पुनः नवीन वस्त्र में लपेटा। इसी प्रकार पाँच सौ जोड़ों में उसे लपेटकर लोहे की तेलवाली कड़ाही में रखकर गन्धकाष्ठ की एक चिता निर्मित की और भगवान् के शरीर को चिता पर रखा।

उस समय आयुष्मान् 'महाकस्सप' पाँच सौ भिक्षुओं के महासङ्घ के साथ 'कुसीनारा' से पावा आ रहे थे। वहीं एक आजीवक ने उन्हें 'कुसीनारा' से लाये हुये मन्दारव पुष्प को दिखाया तथा बुद्ध की अन्त्येष्टि क्रिया सम्बन्धी 'कुसीनारा' में हो रहे महोत्सवों के विषय में सूचना दी। यह सुनकर वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, उनमें से कोई बाँह पकड़ कर क्रन्दन करने लगे और कुछ कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिरते और लोटते-पोटते यह कहने लगे कि भगवान् बहुत शीघ्र ही परिनिर्वृत्त हो गये....। उस समय वहाँ 'सुभद्द' नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उस परिषद् में विद्यमान था। वह भिक्षुओं से कह रहा था—"आवुसो, शोक मत करो; अब हम उस महाश्रमण के कठिन नियन्त्रण से मुक्त हो गये। वे बराबर कहते थे— 'यह करना तुम्हें विहित है और यह नहीं'। अब हम स्वेच्छा से जो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे वह नहीं करेंगे। अतः आप लोग दुःखी न हों"।

आयुष्मान् 'महाकस्सप' तथा उनके अनुगमन करने वाले महाभिक्षुसङ्घ के चिता के पास आते ही तथा उनके द्वारा परम शास्ता के चरणों की वन्दना करते ही चिताग्नि प्रज्वलित हो उठी। जब

वह सम्पूर्णरूप से जल चुकी तो आकाश में मेघ ने प्रादुर्भूत हो चिता को शान्त किया। 'कुसीनारा' के मल्लों ने भी सर्व-गन्ध-मिश्रित जल से भगवान् की चिता को ठण्ढा किया।

इसके पश्चात् मगध के राजा अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुलिय, रामग्राम के कोलिय, वेट्ठ-द्वीप के ब्राह्मण तथा पावा के मल्लों ने भगवान् के धात्ववशेष भाग को प्राप्त करने के लिये अपने अपने अधिकार प्रस्तुत किये। तब द्रोण नामक एक चतुर ब्राह्मण ने उन अवशेषों को आठ समान भागों में सुविभक्त कर उन सब को एक भाग दे दिया। अन्त में उसने स्वयं भी वह तुम्बा ले लिया जिसमें भगवान् के अवशेष सुरक्षित थे। 'पिप्पली-वन' के मौर्य भगवान् के अवशेष बँट जाने के पश्चात् आये। अत: उन्हें चिता के अवशेष कोयला इत्यादि ही प्राप्त हुये। इन सबने भगवान् के अवशेषों को ले जाकर स्तूप बनवाकर उन्हें सुरक्षित किया।

(४) महासुदस्सनसुत्त

भगवान् बुद्ध 'कुसीनारा' में मल्लों के 'उपवत्तन' नामक शालवन में यमक शाल वृक्षों के नीचे अपनी निर्वाणशय्या पर लेटे थे। आयुष्मान् आनन्द ने उस समय उनसे कहा— "भन्ते, इस क्षुद्र तथा शाखानगरक में आप परिनिर्वाण को प्राप्त न होवें। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी आदि प्रमुख नगर हैं, जहाँ बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा गृहपति महाशाल तथागत के भक्त हैं। वे तथागत के शरीर की यथोचित पूजा एवं सत्कार करेंगे। अत: भगवान् को ऐसे ही किसी स्थान पर परिनिर्वाण प्राप्त करना चाहिये।"

बुद्ध ने आनन्द को ऐसा कहने से रोका तथा उन्हें बतलाया कि अतीतकाल में वह विशेष स्थान 'महासुदस्सन' नामक विख्यात चक्रवर्ती राजा की 'कुसावती' नामक राजधानी था। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'महासुदस्सन' राजा वे स्वयं ही थे। बुद्ध ने 'कुसावती' राजधानी के सम्बन्ध में यह बतलाया कि यह सात प्राकार, चार द्वार तथा रत्न-निर्मित सात ताल-पंक्तियों से घिरी थी।

जब एक 'उपोसथ' पूर्णिमा की रात को राजा 'महासुदस्सन' सिर से स्नानकर 'उपोसथ' व्रत रख अपने प्रासाद के सर्वोपरि भाग में विराजमान थे, तो उनके सामने सहस्त्र अरों वाला नाभि नेमि से युक्त सर्वाकारपरिपूर्ण दिव्य चक्ररत्न प्रकट हुआ। इसे देखकर राजा 'महासुदस्सन' ने आसन से उठकर चादर को एक कन्धे पर कर, बायें हाथ में स्वर्ण-झारी लेकर दाहिने हाथ से उस चक्र-रत्न का अभिषेक किया। तब वह चक्र-रत्न पूर्व दिशा की ओर चला। राजा 'महासुदस्सन' ने भी अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ उस चक्ररत्न का अनुगमन किया। पूर्व दिशा के सभी प्रतिद्वन्द्वी राजाओं ने राजा 'महासुदस्सन' के पास आकर कहा— "हे शक्तिशाली महाराज, आपका स्वागत है। हमारा यह सब आपका ही है और हम आपके अधीन हैं। आप हमें आज्ञा दीजिये"।

राजा 'महासुदस्सन' ने उन राजाओं से यह कहा— "तुम्हें जीव-हिंसा नहीं करनी चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, कामभोग में पड़कर दुराचार नहीं करना चाहिये, मिथ्या-भाषण तथा मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये"। इस प्रकार पूर्व दिशा के सभी राजा 'महासुदस्सन' के अनुयुक्तक हुये।

इसी प्रकार वह चक्र-रत्न पूर्व के समुद्र में डुबकी लगाने के पश्चात् निकलकर दक्षिण की ओर चला.... पश्चिम दिशा की ओर....उत्तर दिशा की ओर....उन दिशाओं के सभी राजा 'महासुदस्सन' के अनुयुक्तक हुये।

इसके पश्चात् वह चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को विजित करके 'कुसावती' राजधानी में लौट आया और 'महासुदस्सन' के अन्तःपुर के द्वार के पास आँगन में स्थित हो गया। तो, उनका अन्तःपुर अत्यन्त शोभायमान होने लगा।

आगे चलकर 'महासुदस्सन' के सामने श्वेत हस्ति-रत्न प्रकट हुआ....श्वेत तथा काले सिर वाला अश्वरत्न प्रकट हुआ....शुभ्र तथा अच्छी जाति का मणि-रत्न प्रकट हुआ...अभिरूप दर्शनीय तथा परम सौन्दर्य सम्पन्न स्त्री-रत्न प्राप्त हुआ...। गृहपति-रत्न एवं परिणायक-रत्न प्रकट हुए....। यही उस राजा के सात रत्न थे।

तब देवेन्द्र शक्र ने देवपुत्र विश्वकर्मा को राजा 'महासुदस्सन' के लिये एक योजन लम्बा तथा आधा योजन चौड़ा एक धर्म-प्रासाद निर्मित कराने का आदेश दिया। इसके बाद तथागत ने क्रमशः राजा की ध्यान-भावना, ऐश्वर्य तथा मृत्यु आदि के विषय में विस्तार से प्रकाश डाला।

इस प्रकार बुद्ध ने आयुष्मान् आनन्द को 'महासुदस्सन' के वैभवादि की कथा के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए कहा— "आनन्द, देखो वे सभी संस्कार क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत हो गये। आनन्द, इसी तरह सभी संस्कार अनित्य हैं, अध्रुव हैं, अविश्वसनीय हैं। इनमें राग करना और आसक्त होना व्यर्थ है"।

(५) जनवसभसुत्त

बुद्ध 'नातिका' में विहार कर रहे थे। उस समय वे 'काशी', 'कोसल', 'वज्जि', 'मल्ल', 'चेदि', 'वत्स', 'कुरु', 'पाञ्चाल', 'मत्स्य' और 'शूरसेन' प्रदेशों में चारों ओर घूमकर बुद्ध, धर्म और सङ्घ की सेवा करने वाले अतीत काल में मृतलोगों की परलोक-गति का व्याकरण कर रहे थे कि अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ और अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ, इत्यादि।

इसके पश्चात् लोगों ने बुद्ध से यह निवेदन किया कि वे मगध के 'परिचारकों' की परलोक-गति के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार के अपने विचार व्यक्त करें। इस सम्बन्ध में भगवान् ने अपनी समाधि लगायी और उन्हें मगध के 'परिचारकों' द्वारा प्राप्त परलोक-गति का पता चल गया। इसके पश्चात् भगवान् सन्ध्या समय ध्यान से उठकर बाहर आये और विहार के पीछे छाया में बिछे आसन पर बैठ गये। उन्होंने आनन्द से वह पूरा विवरण कह सुनाया, जिसमें 'जनवसभ' नामक एक अदृश्य यक्ष (देवता)ने उनसे यह कहा था कि भगवान् मैं 'जनवसभ' हूँ। यह यक्ष राजा 'बिम्बिसार' के अतिरिक्त और कोई नहीं था। उस यक्ष ने यह भी बताया कि वह 'सोतापन्न' हो चुका है तथा 'सकदागामी' पद प्राप्त करने जा रहा है। उस यक्ष ने 'तावतिंस-देवलोक' में ब्रह्मा 'सनङ्कुमार' के प्रकट होने की बात बतायी और यह भी कहा कि उन्होंने अन्तरिक्ष में जा पद्मासन लगा, आसन ग्रहण करके तथागत तथा धर्म की प्रशंसा भी की। इसके पश्चात् उस यक्ष ने मगध के कई लक्ष 'परिचारकों' की मृत्यु के पश्चात् परलोक-गति के विषय में अपना विवरण उपस्थित करते हुए यह कहा कि उनकी उत्पत्ति उच्च लोकों में हुई है और उन्होंने उच्चपदों की भी प्राप्ति की है।

आयुष्मान् आनन्द ने बुद्ध से यह सब सुनकर इसे सभी भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओं को अवगत कराया।

(६) महागोविन्दसुत्त

बुद्ध राजगृह के 'गिज्झकूट' पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय 'पञ्चसिख' नामक

गन्धर्व-पुत्र रात में उनके पास आया और उन्हें प्रणाम कर उनकी आज्ञा से 'तावतिंस देवों' की सभा का अपना अनुभव सुनाया कि एक समय 'तावतिंस देव' सुधर्मा सभा में बैठे थे। महती देव-परिषद् उनके चारों ओर विद्यमान थी। वहाँ पूर्व के अधिपति 'धतरट्ठ' दक्षिण के अधिपति 'विरूळ्हक' पश्चिम के अधिपति 'विरूपक्ख' तथा उत्तर के अधिपति 'वेस्सवण' नामक चारों दिशाओं के महाराज विराजमान थे। बुद्ध के शासन में धर्म-लाभ कर जिन देवों ने उस समय 'तावतिंस देवलोक' में जन्म ग्रहण किया था, वे अन्य देवों की अपेक्षा वर्ण और यश में कहीं अधिक श्रेष्ठ थे। उस समय देवेन्द्र शक्र ने देवताओं से तथागत के आठ अपूर्व गुणों का वर्णन किया। कुछ देवों ने यह कहा कि यदि लोक में और भी अधिक तथागत उत्पन्न हुए होते तो यह और भी अच्छा हुआ होता। शक्र ने उन्हें बतलाया कि एक काल में एक से अधिक बुद्ध नहीं उत्पन्न होते।

उस समय उत्तर दिशा में दिव्यालोक उत्पन्न हुआ। तब शक्र ने देवों को सम्बोधित करते हुए कहा कि जिस प्रकार का निमित्त दिखलायी पड़ रहा है तथा जिस प्रकार का आलोक और आभा प्रकट हो रही है, उससे यही ज्ञात होता है कि ये ब्रह्मा के प्रकट होने के लक्षण हैं। अतः वे सभी देव शान्तिपूर्वक हाथ जोड़कर तथा आसन मार कर ब्रह्मा के प्रकट होने की प्रतीक्षा करने लगे। शीघ्र ही ब्रह्मा उस सभा के पास आये और अदृश्य रहते हुये ही उन्होंने तथागत की प्रशंसा में गाथाएँ सुनायी। इसके पश्चात् आकाश में आसनासीन ब्रह्मा उनके सामने प्रकट हुये और 'महागोविन्द' नामक पण्डित ब्राह्मण की यह कहानी सुनायी— "अतीतकाल में 'दिसम्पति' नामक एक राजा था। उसका 'गोविन्द' नामक एक ब्राह्मण मन्त्री था। राजा के 'रेणु' नामक एक कुमार तथा मन्त्री के 'जोतिपाल' नामक एक पुत्र था। राजकुमार, मन्त्री-पुत्र तथा छह युवक परस्पर घनिष्ठ मित्र थे।

मन्त्री गोविन्द की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र 'जोतिपाल' उस पद पर नियुक्त किया गया और राजा 'दिसम्पति' की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र 'रेणु' राजसिंहासन पर आसीन हुआ। 'रेणु' ने अपने राज्य को अपने सम्पूर्ण मित्रों में समान भागों में विभाजित कर दिया।

"आगे चलकर 'जोतिपाल' ने राजकीय कार्यों से छुट्टी ले अपने को 'ब्रह्म-विहार' की साधना में लगाया। वह गृह त्यागकर प्रव्रजित हो गया। उसके साथ उसकी एक बहुत बड़ी श्रावक-मण्डली भी थी। वे सब मृत्यु के पश्चात् अपनी अपनी साधना के अनुसार देवलोक के विभिन्न स्तरों में उत्पन्न हुए। जिन्होंने सबसे हीन शरीर पाया वे भी गन्धर्व-लोक में उत्पन्न हुये। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रों की प्रव्रज्या सफल, सार्थक तथा उन्नत हुई।

तब 'पञ्चसिख' ने भगवान् से यह पूछा कि क्या उन्हें इसका स्मरण है ? बुद्ध ने इसका उत्तर दिया कि उन्हें इन सबका पूर्ण स्मरण है; क्योंकि वे स्वयं ही 'महागोविन्द' ब्राह्मण थे।

(७) महासमयसुत्त

बुद्ध शाक्य देश के कपिलवस्तु के महावन में पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं के महासङ्घ के साथ साधना कर रहे थे। उस समय दस सहस्र 'लोक-धातुओं' के बहुत से देवता भगवान् और भिक्षु-सङ्घ के दर्शन के निमित्त एकत्र हुए। 'शुद्धावास' देवलोक के चार देवता उस स्थान पर उपस्थित हुए और उनमें से प्रत्येक ने उनके सामने एक-एक गाथा कही।

बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश दिया तथा उन्हें उन देवताओं का नाम बतलाया, जो उस अवसर पर वहाँ एकत्र हुए थे। ये देवता 'यक्ख, 'वेस्सामित्त', 'कुम्भेर', राजा 'धतरट्ठ', 'गन्धब्ब',

'विरूळ्ह', 'कुम्भण्ड', 'विरूपक्ख', 'नाग', 'कुबेर', 'माया', 'कुटेण्डु', 'वटेण्डु', 'विटु', 'विटुच्च', 'चन्दन', 'रामसेट्ठ', 'किन्नुघण्डु', 'निघण्डु', 'पनाद', 'मातलि' तथा 'चित्तसेन' आदि थे।

(८) सक्कपञ्हसुत्त

बुद्ध मगध के राजगृह से पूर्व स्थित 'अम्बसण्डा' नामक ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर 'वेदियक' पर्वत पर स्थित 'इन्दसाल-गुहा' में साधना कर रहे थे।

उस समय देवेन्द्र शक्र 'तावतिंस-देवों' से मण्डलित तथा 'पञ्चसिख' गन्धर्व-पुत्र द्वारा परिचारित होते हुये सम्पूर्ण दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए 'वेदियक' पर्वत पर आये। 'पञ्चसिख' ने अपनी 'वेलुवपण्डु' नामक वीणा उठाकर उस पर बुद्ध, धर्म, सङ्घ, अर्हत् तथा भोग-सम्बन्धी गाने गाये। बुद्ध उसका गान सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् सभी देवताओं के साथ देवेन्द्र शक्र ने गुहा में प्रवेश करके बुद्ध की वन्दना की तथा उनकी आज्ञा से अपना यह प्रश्न पूछा— "मार्ष! देव, मनुष्य, असुर, नाग, गन्धर्व तथा अन्य प्राणी किस बन्धन में पड़े हैं? वे वैर, दण्ड, शत्रु और हिंसा के भाव को छोड़कर वैर-रहित हो विहार करने की इच्छा रखते हुए भी दण्ड-सहित, शत्रुता और हिंसा-भाव से युक्त होकर वैर-सहित ही रहते हैं"।

बुद्ध ने शक्र के इस प्रशन का उत्तर देते हुए कहा कि सभी देव, मनुष्यादि ईर्ष्या और मात्सर्य के कारण ही उपर्युक्त अवस्थाओं से मुक्त नहीं हो पाते। शक्र ने भगवान् रो दूसरा प्रश्न पूछा— "मार्ष, ईर्ष्या और मात्सर्य के निदान, समुदय, जाति तथा प्रभव क्या हैं? किसके होने से ईर्ष्या और मात्सर्य होते हैं और किसके न होने से ये नहीं होते"? बुद्ध ने उत्तर दिया कि प्रिय और अप्रिय के कारण ही ईर्ष्या और मात्सर्य की स्थिति होती है, इनके अभाव में ये नहीं होते।

इसके पश्चात् शक्र ने पूछा कि प्रिय-अप्रिय के कारण क्या हैं? तब बुद्ध ने बतलाया कि प्रिय तथा अप्रिय 'छन्द' के कारण होते हैं। तब शक्र के यह पूछने पर कि 'छन्द' के कारण क्या हैं? बुद्ध ने कहा कि 'छन्द', 'वितर्क' के कारण होता है। पुन: शक्र ने इस 'वितर्क' का भी कारण पूछा और तब बुद्ध ने उत्तर दिया कि 'वितर्क' सांसारिक प्रपञ्च के कारण होता है।

इस प्रकार शक्र द्वारा पूछे गये अन्य प्रश्नों के भी बुद्ध ने समुचित उत्तर दिये, जिससे इन्द्र की सभी शङ्काओं का समाधान हो गया और इसके साथ ही उन्हें परमसत्य का भी ज्ञान हो गया।

(९) महासतिपट्ठानसुत्त

बुद्ध कुरु देश में 'कम्मासदम्म' नामक कुरुओं के निगम में साधना कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि चारों 'सतिपट्ठान' सत्त्वों की विशुद्धि, शोक तथा कष्ट के विनाश, दु:ख तथा दौर्मनस्य के अतिक्रमण, सभी बन्धनों से मुक्ति पाने तथा परम ज्ञान एवं निर्वाण का साक्षात्कार करने के लिये अकेले मार्ग हैं। ये चार स्मृतिपट्ठान हैं— कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना तथा धम्मानुपस्सना। बुद्ध ने इनकी क्रमश: व्याख्या भी की।

१. 'कायानुपस्सना' क्या है? भिक्षु अरण्य, वृक्ष के नीचे अथवा शून्यागार में जाकर आसन लगा शरीर को सीधा कर स्मृति को सामने रख शरीर की सम्पूर्ण अवस्थाओं में जागरूक रहता है।

वह 'आनापान-सति' की साधना करता है। इस प्रकार वह स्मरण रखते हुए साँस छोड़ता है और लेता है। लम्बी साँस लेते समय वह यह जानता रहता है कि वह लम्बी साँस ले रहा

है। छोटी साँस लेते समय वह यह जानता रहता है कि वह छोटी साँस ले रहा है। इसी प्रकार लम्बी साँस छोड़ते समय वह यह जानता रहता है कि वह लम्बी साँस छोड़ रहा है तथा छोटी साँस छोड़ते समय भी वह जानता रहता है कि वह छोटी साँस छोड़ रहा है।

वह उठते, बैठते, चलते तथा सोते समय इन सभी क्रियाओं से परिचित रहता है। वह प्रत्येक कार्य करते हुए उसे पूर्णरूप से जानते हुए करता है।

वह पैर के तलवे से ऊपर तथा केश-मस्तक से नीचे इस सम्पूर्ण काया को नाना प्रकार के मलों से पूर्ण देखता है। वह यह अनुभव करता है कि इस काया में केश, रोम, नख, दाँत, त्वचा, माँस, स्नायु, अस्थि, अस्थि-मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, छोटी आँत, उदरस्थ वस्तुएँ, मल, पित्त, कफ, पीव, रक्त, स्वेद, मेद, आँसू, वसा, लार, नासामल, लसीका और मूत्र विद्यमान हैं।

वह इस काया के विषय में सोचते हुये यह देखता है कि इस काया में 'पथवी धातु', 'आपो धातु', 'तेजो धातु' तथा 'वायु धातु' नामक चार धातुएँ विद्यमान हैं। वह विचित्र अवस्थाओं को प्राप्त श्मशान में फेंके हुये मृतक शरीरों को देखकर उसको अपने शरीर पर घटित करते हुये यह अनुभव करता है कि मेरी यह काया भी इसी कर्मवाली, ऐसी ही होनेवाली और इस अवस्था से बचकर न निकलनेवाली है।

२. 'वेदनानुपस्सना' क्या है ? भिक्षु सुख-वेदना को अनुभव करते हुये यह जानता है कि वह 'सुख-वेदना' का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार वह 'दुःख-वेदना', 'अदुःख-असुख-वेदना' इत्यादि को भी पूर्ण रूप से जानता है और उन सबसे जागरूक रहते हुए ही वह उनका अनुभव करता है।

३. 'चित्तानुपस्सना' क्या है ? भिक्षु 'सराग चित्त', 'विराग चित्त', 'सद्वेष चित्त', 'वीतद्वेष चित्त', 'समोह चित्त' तथा 'वीतमोहादि चित्तों' को पूर्ण रूप से समझते हुये ही उनका अनुभव करता है।

४. 'धम्मानुपस्सना' क्या है ? भिक्षु पञ्च नीवरण, पञ्च स्कन्ध, द्वादश आयतन, सात बोध्यङ्ग, चार आर्यसत्य—इन सभी के स्वरूप को जानते हुए ही इन का अनुभव करता है।

इस प्रकार ये ही चार 'सतिपट्ठान' हैं, जिनका क्रमशः अनुभव करते हुए मनुष्य अपने परम लक्ष्य तक पहुँच जाता है। इनकी विशेष उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए अन्त में बुद्ध ने यह भी कहा कि जो इन चार सतिपट्ठानों की भावना सात वर्ष तक करे तो उसे अर्हत्त्व का साक्षात्कार तथा 'उपधिशेष' होने पर 'अनागामित्व', इन दो फलों में से एक फल की अवश्य प्राप्ति होगी। बुद्ध ने यह भी बतलाया कि यदि छह वर्ष भी....पाँच वर्ष भी....चार वर्ष भी....एक वर्ष भी....एक मास भी....एक सप्ताह भी इन चार 'सतिपट्ठानों' का अभ्यास करे तो उसे 'अर्हत्त्व' की प्राप्ति या 'अनागामित्व' लाभ अवश्य हो जायगा।

(१०) पायासिराजञ्ञसुत्त

आयुष्मान् 'कुमारकस्सप' पाँच सौ भिक्षुओं के महासङ्घ के साथ चारिका करते हुए कोशल देश के 'सेतब्या' नामक नगर में पहुँचे और वहाँ नगर के उत्तर में स्थित 'सिंसपावन' में ठहरे। उस समय राजन्य 'पायासी' भी उसी नगर में निवास करता था, जिसे इस प्रकार की

मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो गयी थी कि यह लोक अथवा परलोक दोनों नहीं हैं तथा सुकृत तथा दुष्कृत कर्मों का कोई विपाक नहीं होता।

'पायासी' आयुष्मान् 'कुमार कस्सप' के पास गया और अपने इस मिथ्या मत का प्रतिपादन किया। इस सम्बन्ध में उसने यह भी कहा कि मरणासन्न अपने कई मित्र और सम्बन्धियों को उसने इस लोक के बाद दूसरे लोक में जन्म लेने के पश्चात् अपने अपने सन्देश भेजने के लिये कहा, पर आज तक किसी ने ऐसा नहीं किया।

आयुष्मान् 'कुमार कस्सप' ने उपयुक्त उपमाओं द्वारा उसे यह समझाया कि यदि वे दुष्कर्म करने वाले रहे हों और इससे नरक में पड़े हों, तो नरक के यमों ने उन्हें आपके पास अपने सन्देश कहने के लिये आने न दिया होगा। यदि वे सुकर्मी रहे होंगे तो उनकी उत्पत्ति स्वर्ग में हुई होगी। ऐसी अवस्था में वे वहाँ के सुखों की अवहेलना करके इस अवास्तविक जगत् में क्यों आना चाहते!

इसके पश्चात् 'पायासी' ने यह कहा कि परलोक नहीं है, क्योंकि यदि श्रमण-ब्राह्मणों को ऐसा विश्वास होता कि इस लोक के बाद सुगति विद्यमान है तो उसे शीघ्र ही प्राप्त करने के लिये वे आत्महत्या कर लेते।

आयुष्मान् 'कुमार कस्सप' ने इसका उत्तर देते हुए यह उपमा दी कि जिस प्रकार गर्भवती स्त्री का पेट चीर कर प्रसव में शीघ्रता करना असम्भव है; उसी प्रकार कोई आत्म-हत्या करके अपने कर्म-फल की प्राप्ति में शीघ्रता नहीं कर सकता।

तत्पश्चात् 'पायासी' ने अपने द्वारा किये गये उस प्रयोग का विवरण दिया, जिसके द्वारा उसने यह जानने की चेष्टा की थी कि क्या सचमुच जीव अथवा आत्मा नामक कोई तत्त्व मनुष्य में विद्यमान रहता है, जो मृत्यु के पश्चात् उसे छोड़कर चला जाता है। उसने बतलाया कि उसने एक मनुष्य को ,एक बड़े घड़े पर एक छोटा सा छेद किया और उसे जलते हुए चूल्हे पर चढ़ा दिया और उसके बाद ध्यानपूर्वक यह देखा कि उसमें से कोई तत्त्व बाहर निकलता है, अथवा नहीं। परन्तु उसे कोई भी तत्त्व बाहर निकलते नहीं दिखलायी दिया।

आयुष्मान् 'कुमारकस्सप' ने स्वप्न की उपमा देते हुये उससे यह कहा कि स्वप्न में मनुष्य विभिन्न स्थानों की यात्रा करता है तथा उसकी विभिन्न लोगों से भेंट भी होती है। पर क्या ऐसा करने में कोई जीव को शरीर से बाहर निकलते देखता है! जीव इसलिये नहीं दिखलायी पड़ता कि मनुष्य का व्यक्तित्व विज्ञानादि परम्परा में निहित रहता है। अत: उसकी कल्पना भौतिक रूप में नहीं की जा सकती।

सबसे अन्त में 'पायासी' राजन्य ने यह कहा कि वह अपनी इस धारणा का बहुत दिनों से प्रतिपादक है और उसका इससे इतना अनन्य सम्बन्ध है कि इस अवस्था में उसके लिये इसका छोड़ना नितान्त कठिन है। उसकी इस बात का निराकरण करते हुये 'कुमार कस्सप' ने यह कहानी सुनाई कि "एक बार कुछ मित्र धनोपार्जन के अभिप्राय से बाहर चले। मार्ग में उन्होंने एक स्थान पर पड़ा हुआ सन का ढेर देखा। तब एक मित्र ने दूसरे से कहा कि यहाँ बहुत सन पड़ा है। हम दोनों सन का एक एक गट्ठर बाँध कर ले चलें। दूसरे ने इसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् दोनों ने सन के गट्ठर बाँध वहाँ से प्रस्थान किया। सन के गट्ठर को लिये हुये वे दूसरे ग्राम में पहुँचे। वहाँ पर बहुत सा टाट पड़ा था। पहले मित्र ने दूसरे से कहा कि सन की अपेक्षा टाट अधिक मूल्यवान्

और उपयोगी है। अत: हमें चाहिये कि हम सन के गट्ठरों को फेंककर टाट के गट्ठर बाँध लें। दूसरे मित्र ने उत्तर दिया कि वह बहुत दूर से सन का गट्ठर का ला रहा है; इसके साथ ही वह अच्छी तरह से बाँधा हुआ और उसके लिये पर्याप्त भी है। यदि वह चाहे तो अपने लिये टाट ले ले। उसके इस उत्तर को सुनकर पहले ने सन को छोड़ कर टाट ले लिया।

इसके पश्चात् उन्हें मार्ग में क्रमशः क्षौम का कता सूत, क्षौम के वस्त्र, कपास, ताँबा, राँगा, सीसा, चाँदी तथा स्वर्णादि मिले और वहाँ भी ऐसा ही हुआ। पहला क्रमशः अपने गट्ठर को बदलता गया और दूसरा अन्त तक सन के ही गट्ठर को लादे रहा।

आयुष्मान् 'कुमार-कस्सप' ने 'पायासी' राजन्य के कथन की उपमा उसी मूर्ख के कथन से देते हुये कहा कि वह अपनी उस प्रकार की मिथ्यादृष्टियों का परित्याग कर दे और उन्हें अपने भावी दु:खों का कारण न बनने दे।

राजन्य 'पायासी' ने अन्त में अपनी भूल को स्वीकार किया और आयुष्मान् 'कुमार-कस्सप' का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

The Present Volume : its Place in the Tipitaka

The three Piṭakas represent the three sections of the Canon. Their subject matter and way of treatment differ from one another. The Five books of the Vinaya Piṭaka deal with the rules and regulations of Monastic Discipline; the five Nikāyas of the Sutta Piṭaka are collections of the discourses delivered by the Buddha at different places, on different occasions, and addressed to different congregatios; and, the seven Pakaraṇas of the Abhidhamma Piṭaka are treatises on the technical psycho-ethical philosophy presented in terms and style suited to it.

The fitst Nikāya of the Sutta Piṭaka is the Dīgha Nikāya, a collection (Nikāya) of long (Dīgha) sermons. There are as many as 34 long sermons (Suttas) contained in it, divided in three books, called the Sīlakhandhavagga, the Mahāvagga and the Pāthikavagga.

The present volume is an edition of the Mahāvagga, the second book of the Dīgha Nikāya. This name, some times, confuses a beginner with the first book of the Vinaya Piṭaka of the same name. The distinction may be specified by calling the present volume as *Dīghanikāye Mahāvaggo* and the other as *Vinayapiṭake Mahāvaggo*. Out of the names of the ten Suttas contained in it, seven are conjoined with the epithet Mahā (great). This is why it has been given this name. Here, the word 'Mahā' indicates partly that they are great in length and partly that they are held in high esteem. As the third Sutta, the Mahāparinibbāna Sutta, gives a touching and inspiring record of the last days and hours of the life of the Buddha, it has been very often singled out as an independent book for study and recitation all over the Buddhist countries. Several editions of it have been available both in the Theravāda and in the Mahāyāna traditions.

The ninth Sutta, the Mahā Satipaṭṭhāna Sutta, which presents a full course of self-culture, has also borne an outstanding identity of its own as a piece of Word of the Buddha for daily recitation and meditation. Out of reverence for this Sutta, devoted disciples have, at places, got it inscribed on costly gold plates and the letters studded with grains of precious stones, and kept enshrined in Stūpas.

The Present Volume : Its importance

A glance at the list of these ten Suttas at once reveals that the importance of the present volume is principally different from that of the previous one.

A major portion of the book is dedicated to the description of and to the events connected with gods, spirits and legendary accounts. And, these, as they do to a certain extent, of course, present materials valuable for historical and cultural studies.

The first Sutta, the Mahāpadāna Sutta, gives detailed accounts of the lives of the six Buddhas previous to the historical one, Siddhārtha Gotama. Rhys Davids has rightly remarked— "So exactly do these legends follow one pattern that it has been possible, without the omission of any detail, to arrange them in paralled columns." These descriptions, at least, serve the great purpose of bringing into relief the basic principle of Buddhism that the functioning of the Law is without a beginning in the temporal series. This may also be attributed to the general Indian tendency of trying to glorify a thing by proving it to be ancient in origin.

The fourth Sutta, the Mahāsudassana Sutta, is important not only as a piece of Buddhist mythology, but even as one that has, perhaps, a more ancient origin. The Sutta is obviously an expansion of the reference made about it in the previous one, the Mahāparinibbāna Sutta. The same legend recurs as the Mahāsudassana Jātaka, No. 95 in Fausboll's edition, though differing in several important particulars. This has led scholars to presume that both of them might have been derived from a common older version of it. The long description of the riches and glory of Mahā Sudassana resembles to the sun-myth to a considerable degree, on the basis of which Rhys Davids writes—

"It must at once be admitted that whether the whole story is based on a sun-story, or whether certain parts of details of it are derived from things first spoken about the sun, or not, it is still essentially Buddhistic. A large portion of its contents has nothing at all to do with the worship of the sun : and even that which has, had not, in the mind of the author, when the book was put together. Whether indebted to sun-myth or not, it is therefore perfectly true and valid evidence of the religious belief of the people among whom it was current; and no more shows that the Buddhists were unconscious sun-worshippers than the sotry of Samson, under any theory of its possible origin, would prove the same of the Jews."

It is interesting to note that this view deserves collaboration with the fact that even now sun-worship forms a most integral element in the religious life of the present Magaḍha-Gayā and Patnā-the original central home of Buddhism, inspite of the fact that the people have lost their Buddhist conscious-

ness. The distinctive nature of this element is marked all the more when we see that sun-worshipping is almost unknown as soon as one crosses the boundary of this province.

Though the details given in this Sutta are legendary, they do enable one to judge as to what was then thought to be the greatest possible luxury and glory of the mightiest and most righteous king.

The fifth, the sixth, the seventh and the eights Suttas— Mahā Govinda, Mahā Samaya, Sakkapañha and Janavasabha— represent a most important source for studies in the Buddhist conception of Indra, Brahmā and the different Buddhistised communities of gods, fairies and ethereal beings of varied character and radiance.

The Mahā Parinibbāna Sutta opens with a reference to the political tussle that was going on between Magadha and Vesālī, ideologically opposed to one another. It gives a graphic description of the occasion that led to the construction of the city of Pāṭaliputta on the bank of the Gaṅges. This long Sutta is a store of valuable material for studies in the history and culture of the period.

The Second Sutta, the Mahā Nidāna, explains the Law of Paṭiccasamuppāda, the very pivot on which rests the entire system of Buddhist philosophy.

The importance of the Mahāsatipaṭṭhāna Sutta, last but not the least, cannot be overestimated as a sermon on practical training in the seventh factor of the Noble Path, namely— *sammā sati.* For generations, this Sutta has been a source of inspiration and guidance to the many who have cared to listen to the teachings of the Buddha and have set their heart to the actual fulfilment of the Path— men and women, monks and laity.

The Present Volume : a Summary

With this much of introduction to the present volume, the Mahāvagga of the Dīghanikāya, let us have a summary of the ten Suttas contained in it, giving an outline of their contents and way of treatment :—

(1) Mahāpadāna Sutta

The Buddha was staying in the Jetavana monastery at the Kareri cottage. There, at the request of the Bhikkhus, he delivered a Discourse to them on the subject of remembering former lives. He gave to them a list of the names of the previous Buddhas, with details of information about them, as regards their family, place of birth, tree of Enlightenment, two cheif disciples, and the cardinal events in the life of a Buddha.

Then, he narrated to them the whole life of Vipassi, the Supreme Enlightened One, from his birth to the attainment of Mahāparinibbāna, revealing that the lives of all the Buddhas are identically alike in their cardinal turning points, and it is only in their details that they differ. The common nature of the life of the Buddhas is called Dhammatā. Thus, when he enters the womb of his mother :— there appears an infinite and splendid radiance pervading the entire universe, his mother is virtuous and pure, is possessed of all grandeur of mundane achievement, is free from disease; on the seventh day after his birth, his mother passes away and is born in the Tusita heaven; his mother brings forth standing, not sitting or reclining as the other women do; when he issues from his mother's womb, gods receive him first, afterwards men; he comes forth stainless, undefiled by mucus or blood, as a jewel laid down on muslin; when he is born, two showers of water appear from the sky, one of cold and the other of warm; just after his birth, he stands on both feet and, with his face to the north, takes seven strides, and, looking around on every side, he declares:— "Chief am I in the world, eldest am I in the world, foremost am I in the world; this is my last birth. There is now no more taking a birth."

When Vipassī was born, his father, king Bandhumā invited the astrologer Brāhmaṇās to read the future of the boy. They predicted that if he stayed at home he was sure to be a Cakkavattī Monarch; and, if he renounced the world he would become a Buddha, Supreme Enlightened One. The king had three palaces built for the young prince, one for the rains, one for the winter and one for the summer. One day, the Prince went out on a chariot to have a stroll through the city. On the way, he caught sight of a decrepit leaning on a staff, tottering as the walked.

One different occasions, he came accross a sick man, and then a dead body being carried for cremation. These sights opened the eyes of the prince to the real nature of life, and he was very much brooding over it. One day, on a similar outing, he met a mendicant on the way, head shaven and clad in yellow, who told him that he had seen the evils of mundane existence and that he was

out in search of Peace and Liberation. Prince Vipassī left the royal palace to lead the life of monk in search of truth. After due efforts and meditation he got insight into the causal links of the cycle of birth and death; dispelled darkness and attained to sainthood. He became a supreme Buddha. Then, the Mahā Brahmā appeared before him and entreated upon him to take compassion on the grieved world, preach the Dhamma to them and lead them to Nibbanā.

Khaṇḍa and Tissa were the first two disciples of his. They were followed by eighty-four thousand inhabitants of the city of Bandhumatī. The Dhamma of Lord Vipassī spread far and wide. For the guidance of his Saṅgha he laid down the Patimokkha and full code of Discipline.

(2) Mahā Nidāna Sutta

The Buddha was staying at Kammāsadamma, a township in Kuru. There, he gave discourse on Paṭiccasamuppāda, the cycle of birth and death, to Venerable Ānanda :— "Old age and death are based on birth; birth is based upon the continuity of life-process; life-process is based on grasping; grasping is based on craving; craving is based on feeling; feeling is based on contact; contact is based on psycho-physical existence; psycho-physical existence is based on (re-birth-) consciousness."

Then, The Buddha went on the explain the same, link by link :— has a being not taken his birth, he would not have experienced old age and death; had a life-process not been continuing, there would have been no birth; had there been no grasping, there would not have been the continuity of life-process; had there been no craving, there would have been no grasping; had there been no feeling, there would have been no craving; had there been no psycho-physical existence, there would have been no contact; had there been no (rebirth-) consciousness, there would have been no psycho-physical existence.

The Buddha further explained that the different theories about the existence of a permanent and unchanging soul arise due to the ignorance of this Law of Paṭiccasamuppāda.

(3) Mahā Parinibbāna Sutta

The Buddha was dwelling in Rājagaha on the Gijjhakūta hill. Then, Vassakāra, the prime-minister of Magadha, approached him and said that king Ajātasattu was going to attack the Vijjis and crush their power. The Buddha pointed out to them that Magadha could do them no harm as long as they would have the following seven qualities :— collecting together frequently in public meeing of their clan; mutual concord; regard for the ancient institutions of their clan; reverence for elders; protecting the prestige of the fair sex; honouring their shrines; arranging for the safe and convenient stay of the Arhants.

After Vassakāra had gone away, the Buddha got the monks assembled in the Service Hall and delivered a discourse to them on the seven conditions of the welfare of a community, corresponding to the seven qualities of the Vijjis. He further preached to them on upright conduct, earnest contemplation, and true wisdom.

From Rājagaha, the Buddha went to Ambalaṭṭhikā and was staying there as Rājāgārika. There, he taught the disciples how ignorance is at the root of all evils and that is must be dispelled for the realisation of Liberation. Then, he came over to Pāvārika mango-grove at Nālandā. There, the Venerable Sāriputta approached him and, after doing homage to him, said :— "Lord, such faith have I in the Exalted One that methinks there never has been, nor will there be, nor is there now any other, a monk or a Brāhmaṇa, who is greater and wiser than than the Exalted One, that is to say, as regards the higher wisdom." He further explained that he had made this statement on the ground that the perfection of the Dhamma was such that it did not admit of any doubt.

From Nālandā, the Buddha went to Pāṭaligāma with a big assembly of monks. There, he preached a sermon to his disciples on the merits of a moral life and on the demerits of an immoral one. At that time, Sunīdha and Vassakāra, the chief ministers of Magadha, were building a fortress at Pāṭaligāma to repel the Vijjis. They offered the Buddha and the Bhikkhu Saṅgha a meal at their residence. While the Buddha passed by, they settled amongst themselves— "The gate through which the Buddha will emerge will be called the Gotama-door, and the ford at which he will cross the Ganges will be called the Gotama ferry."

On the other side of the Ganges, the Buddha was staying at Koṭigāma and Nādikā. There, he gave a discourse on the Four Noble Truths and preached the Dhammādāsa sermon. He proceeded on and reached Vesālī and was staying in the Mango-grove of Ambapālī, a courtesan of the city. Ambapālī was the first to approach him and offer his an invitation for a meal. The nobles of Vesālī felt humiliated that a harlot of the city outbeat them in doing honour to the Buddha. They offered rich prices to her to let them have the merit of giving the first meal to the Buddha; but, she would not forego the unique prestige even for any offer.

In the village Velua, the Buddha said :— "What, then, Ānanda, does the Order expect of me? I have preached the Doctrine without making any distinction between exoteric and esoteric; for, in respect of the Dhamma, Ānanda, the Tathāgata has no such thing as the closed fist of the teacher, who keeps some things back.... O Ānanda, be ye lamps unto yourselves, be ye refuge unto yourselves. Betake yourselves to no external refuge."

At Cāpāla shrine, the Buddha addressed the venerable Ānanda and said :— "How delightful a spot, Ānanda, is Vesālī, and how charming the Udena shrine, and the Gotamaka shrine, and the Sārandada shrine, and the Cāpala shrine; Ānanda, whosoever has developed and throughly mastered the four superhuman powers, Iddhis, he, should he desire it, could remain in the same birth for an aeon or for the remaining part of it." Ānanda, as if through the influence of the Māra, the Evil One, missed to entreat on him to take compassion on the world and live as long as that.

From Vesālī, the Buddha went over to Bhaṇḍagāma, to Hatthigāma, to

Bhoganagara, and then to Pāvā. There, at Pāvā, he was staying in the Mango grove of Cunda, a smith. Out of his devotion, Cunda prepared a nice meal, including *sūkaramaddava,* and offered it to him. When he had eaten that meal, there fell upon him a dire sickness, the disease of dysentery. He went aside from the path of the foot of a certain tree, and said :— "Fold, Ānanda, the robe in four, and spread it out for me. I am weary, Ānanda, and must rest awhile!" Ānanda did it, and went to the river Kakuttha to fetch some water. At that time five hundred carts had crossed the shallow river and the water stirred up by the wheels had become fouled and turbid. But, as soon as Ānanda reached the edge of the stream, it began to flow clear and bright. Ānanda brought water in the bowl. The Buddha drank of it.

After taking rest for a while, the Buddha took his bath in the river, came accross and laid himself down in a mango-grove on the bank. He asked Ānanda to remember that, after he had passed away, he should approach Cunda, the smith, and encourage him by saying that his was the last meal that the Tathāgata and partaken, after which he had attained the great Parinibbāna.

Then, the Buddha came to the Sāla Grove of the Mallas, the Upavattana of Kusinārā, on the further side of the river Hiranyavatī. He said :— "Spread over for me, O Ānanda, the bed with its head to the north, between the two Sāla trees. I am weary, Ānanda, and would lie down." This being done, he laid himself down on his right side, with one leg resting on the other.

At that time the twin Sāla trees were all one mass of bloom with flowers out of season; and all over the body of the Buddha they dropped themselves, out of reverence for him. And heavenly Mandārava flowers, too, and heavenly sandal-wood powder came falling from the sky, out of reverence for him. And heavenly music was sounded in the sky, out of reverence for him.

At all these marks of reverence, the Buddha addressed Ānanda and said :— "Now it is not thus, Ānanda, that the Buddha is rightly honoured, reverenced, or venerated. But, it is the devoted disciple, living the life in the fulfilment of the Dhamma, who rightly honours, reverences or venerates the Buddha with the worthiest homage. Therefore, O Ānanda, be ye constant in the fulfilment of the greater and of the lesser duties, and be ye correct in life."

The Buddha said :— "There are these four places, Ānanda, which the devoted disciples will visit with feelings of reverence— here the Tathagata was born; here he attained supreme and perfect insight; here was the kingdom of Righteousness set on foot by the Tathāgata; here the Tathāgata attained the Great Parinibbāna."

The Buddha got Ānanda called to his side and said :— "Enough, Ānanda, do not let yourself be troubled. Have I not, on former occasions, told you that it is in the very nature of all things most near and dear unto us that we must

divide ourselves from them, sever ourselves from them... for a long time, Ānanda, have you been very near to me by words of love, kind and good, that never varies, and is beyond all measure. You have done well. Ānanda, be earnest in effort, and you too shall soon be free from the Bondage."

The Venerable Ānanda said :— "Let not the Lord die in this little wattle and daub town, in the midst of the jungle, in this branch township. For, lord, there are other great cities, such a Cāmpā, Rājagaha, Sāvatthi, Sāketa, Kosāmbī and Vārāṇasī. Let the Lort die in one of them. There are many nobles and Brāhmaṇas and house-holders who are devoted to the Tathāgata, who will pay due honour to the remains of the Tathāgata."

The Buddha forbade Ānanda to think like that; for, he said, it was at this very place that long long ago there had flourished a big city, the capital of a Cakkavattī king, Mahāsudassana. And, he revealed that this king was none else but he himself.

Then, Subhadda, a member of the other sect, approached Ānanda and expressed his eagerness to see the Buddha. The Buddha happened to over-hear his words. he asked Ānanda not to check him, but to let him come. He preached the Dhamma to him. Thus, Subhadda was the last disciple converted and admitted in the Order himself by the Buddha, who became yet another among the Arahants.

The Buddha addressed the Venerable Ānanda and said :— "When I am gone, Ānanda, let the Doctrine and Discipline, which I have set forth and laid down for you all, be the Teacher to you...Let the Order, if it should so wish, abolish the lesser and minor rules....let the Order impose the High Penalty on Bhikkhu Channa : let Channa say whatever he may like, but none should either speak to him, or exhort him, or admonish him.

And, the last word of the Buddha was — "All things are transitory. Work out your salvation with diligence !"

At the moment of his passing out of existence, there arose a mighty earthquake, terrible and awe-inspiring; and the thunders of heaven burst forth. Then, the Bhikkus who were not yet free from the passions, some stretched out their arms and wept, and some fell headlong on the ground, rolling to and fro in anguish, saying :— "Too soon has the Lord died, too soon has he passed away, too soon has the Light gone out in the world !" But, those of them who had become Arahant bore their grief collected and composed at the thought— "Impermanent are all component things; how is it possible that they would not pass away?"

Now, the Venerable Anuruddha and the Venerable Ānanda spent the rest of that night in religious discourse.

The Mallas of Kusinārā took the perfumes and garlands, and all the musical instruments, and five hundred suits of apparel, and went to the Upavattana, to the Sāla Grove of the Mallas, where the body of the Buddha lay.

There they passed the day in paying honour, reverence, respect and homage to the remains of the Buddha with dancing and hymns, and music, and with garlands and perfumes, and preparing decoration-wreaths to hang thereon.

They carried the body by the north to the north of the city; and entering the city by the north gate they carried it though the midst of the city into the midst there of; and going out again by the eastern gate they carried it to their shrine, called Makuṭabandhana Cetiya; and there, to the east of the city, they laid the body down. Then, they wrapped the body in a new cloth, then they wrapped it in carded cotton wool, then again they wrapped it in a new cloth and again in carded cotton wool... and so on in five hundred layers. And, then they placed the body in an oil vessel of iron, and covered that with another. And then they built a funeral pyre of all kinds of perfumes, and they placed the body upon it.

And that time the Venerable Mahā Kassapa was coming to Kusinārā from Pāvā. A naked ascetic showed him the Mandarava flower that he had picked up at Kusinārā and gave him the information of the great functions that were being held there at the cremation of the body of the Buddha.

On that, of those of the Bhikkus who were not yet free from the passions, some stretched out their arms and wept, and some fell headlong on the ground, and some reeled to and fro in anguish. Now, at that time, a Bhikkhu named Subhadda, who had been received into the Order in his old age, was seated in the company, He spoke out :— "Enough sirs! weep not, neither lament; we are well rid of the Great Samaṇa. We used to be annoyed by being told— `This beseems you, this beseems you not.' But now we shall be able to do whatever we like; and what we do not like, that we shall not have to do!"

As the Venerable Mahā Kassapa and his assemble came up to the pyre and paid their homage to the Teacher, it caught fire itself. When it was all burnt up, there came down streams of water from the sky and extinguished the pyre. The Mallas of Kusinārā also brought water scented with all kinds of perfumes and extinguished the pyre.

Then, king Ajātasattu of Magadha, the Licchavis of Vesālī, the Sākiyas of Kapilavatthu, the Bulis of Allakappa, the Koliyas of Rāmagāma, the Brāhmaṇa of Vethadipa and the Mallas of Pāvā, all of them put their claim to a share in the sacred relics of the Tathāgata. Then, a wise Brāhmaṇa, Dona, divided the relics equally into eight parts, with fair division, and gave one to each of the claimants. The Brāhmaṇa got the vessel for himself in which the relics were kept. The Mauriyas of Pipphalivana came late to claim for a share. As nothing of it was left out, they took away only embers of the pyre.

(4) Mahā Sudassana Sutta

The Buddha was staying at Kusinārā, in the Upavattana, the Sāla Grove of the Mallas, between the Twin Sāla trees at the time of his death. The Venerable Ānanda said to him :— "Let not the Lord die in this little wattle-and-daub town, in the midst of the jungle, in this branch township. For, Lord, there are

other great cities, such as, Campā, Rājagaha, Sāvatthī, Sāketa, Kosāmbī and Vārāṇasī. Let the Lord die in one of them. There, there are many wealthy nobles and Brāhmaṇas, who will pay due honour to the remains of the Tathāgata."

The Buddha forbade Ānanda to think like this; for, he said, it was at this very place that long long ago there had flourished a very prosperous Capital city of the Cakkavattī king, Mahāsudassana. And, he further revealed that this king was none else but he himself in one of his previous births.

The royal city Kusavatī was surrounded by seven ramparts; and was surrounded by seven rows of palm trees, of gold and precious stones.

When, on the Uposatha full moon day, the king and purified himself and had gone on the uppermost floor of his palace, there appeared to him the heavenly Cakka Ratana, with its nave, its tire, and all its thousand spokes complete. Then, he rose from his seat, and reverently held a pitcher in his left hand, and with his right hand he sprinkled water on the Wheel. Then the wondrous wheel rolled onwards towards the region of the East. Then, all the rival kings in the region of the East came to him and said :— "Come, O mighty king! Welcome, O Great king! All is thine, O Great king! Do thou, O great king, be a Teacher to us!"

King Mahā Sudassana spoke :— "Ye shall slay no living thing. Ye shall not take that which has not been given. Ye shall not commit adultery. Ye shall speak no lie. Ye shall take no intoxicants." Then, all the rival kings in that region became loyal subjects unto the Great king.

Then, the wondrous Wheel plunged down into the great waters in the East and rose up out again and rolled onward to the region of the south.... of the west.... of the North.... all the rival kings in that region became loyal subject unto the Great king.

The wondrous Wheel went forth conquering over the whole earth to its very ocean boundary, and it returned back again to the royal city of Kusāvatī and remained fixed on the open terrace as a glorious adornment to his inner appartments.

Further, there appeared to the Great king the *Hatthi Ratana,* Elephant Treasure, all white, wonderful in power... the *Assa Ratana,* Horse Treasure, all white, with a crowblack head, and a dark mane, wonderful in power, flying through the sky.... The *Maṇi Ratana,* The Gem Treasure, bright, with eight facets, excellently wrought, clear, transparent, perfect in every way... the *Itthi Ratana,* Woman Treasure, graceful in figure, charming in manner and of the most fine complexion, surpassing human beauty...*the Gahapati Ratana,* wonderful Treasurer, possessed of a marvellous power of vision by which he could discover treasure far and near.... *Pariṇāyaka Ratana,* the wonderful Adviser, learned, clever and wise; and capable of leading the king to undertake what he ought to undertake. These were the seven Ratanas that had appeared to the Cakkavattī king, Mahā Sudassana.

Sakka, the king of the gods, ordered the Heavenly Builder, Vissakammā,

to create a mansion for the Great King, a league in length on the east and on the west, and half a league in breadth on the north and on the south.

The Buddha addressed Ānanda and said :— "See, Ānanda, how all these things are now past, are ended, have vanished away. Thus impermanent, Ānanda, are component things; thus transitory, Ānanda, are component things; thus untrustworthy, Ānanda, are component things."

(5) Janavasabha Sutta

The Buddha was staying at Nādikā. At that time he was wont to make declarations as to the rebirths of such followers of the Doctrine as had passed away round about—among the Kāsis and Kosalans, the Vijjis and Pañcālas, the Macchas and Saurasenas, saying :— "Such a one has been reborn there, and such an one there."

They requested the Buddha to make a similar declaration about the rebirths of the followers of the Doctrine in Magadha. Then, in the evening, The Buddha, arising from his meditation, went out and sat down on a mat spread in the shade behind the building. There, he narrated to Ānanda how an invisible spirit, Janavasabha, had made himself heard saying :— "I am Janavasabha, O Lord," who was none else but king Bimbisāra. He had already become a Sotapanna, and was going to attain to the stage of Sakadāgāmī. The spirit communicated to The Buddha how Brahmā Sanaṅkumāra had made his appearance amongst the Tāvatiṁsa gods; and, rising up into the air he sat down crosslegged in the sky, and preached them the glory of the Tathāgata and his Doctrine. He submitted an account of the lacs of Magadhan disciples who, after their death, were born in the higher realms and had attained to the stages of sainthood.

The Venerable Ānanda heard all these from the Buddha, and communicated the same to the disciples, male and female, monks and lay.

(6) Mahā Govinda Sutta

The Buddha was staying at Rājagaha on the Gijjhakūṭa Hill. Then, at night, the fairy musician Pañcasikha Gandhabbaputta appeared before him and offered him his salutation and, taking permission from him, narrated the following experience of his at the assembly of the Tāvatiṁsa gods—

A vast celestial company was seated round about, and at the four quarters of the firmament sat the four Mahārāja gods— Dhataraṭṭha, lord of the East; Virūḷhaka, lord of the South; Virūpākkha, lord of the West; and Vessavana, lord of the North. The gods, who were born in the Tavātiṁsa Heaven as result of the merits they had earned by leading the holy life under the Tathāgata, outshone others in radiance, beauty and glory. There, Sakka, the king of the gods, addressed a discourse to them on the eight eminent glories of the Tathāgata, the unique excellence of his. Some of the gods said :— "How nice it would have been if more Tathāgatas were born in the world!" Sakka told them that it was impossible for more than one Buddha to arise in the same period.

Then, from out of the North came forth a splendid light, and a radiance

shone around. Then, Sakka addressed the gods :— "According to the sign now seen, the light that ariseth, the radiance that appeareth— will Brahmā now be made manifest." Therefore, they all sat in silence with folded hands and crosslegged awaiting the appearance of Brahmā. Soon after, Brahmā approached the assembly, and, while invisible, recited stanzas in praise of the Tathāgata. Then, The Brahmā appeared before them seated in the sky and narrated to them the story of Mahāgovinda, the wise Brāhmana :—

Once upon a time, there was a king named Disampati. his minister was a Brahmana named Govinda. The king had a son named Renu; and the minister had a son named Jotipāla. These two were intimate friends of other six young princes.

After the minister Govinda had died, his son Joṭipāla was appointed on his post; and, after the death of Disampati, the prince Reṇu was anointed on the throne. Reṇu got the kingdom divided equally amongst his friends.

Later on, Jotipāla took leave from his administrative duties and devoted himself to the practice of Brahmavihāra. He renounced home and adopted the life of a monk. He became a great saint. He had a very big assembly of disciples. After their death, according to their respective achievements, they were born in different planes of heavenly existence. Even they who accomplished the lowest realm of all attained the realm of the Gandharva fairies.

This story being told, the Buddha revealed that the remembered all those incidents: for, it was he himself who was the Brāhamaṇa Minister at that time.

(7) Mahā Samaya Sutta

The Buddha was dwelling among the Sākiyas, at Kapilvatthu, in the Mahāvana, with a great assembly of five hundred monks, all Arahants. And, gods from the ten thousand world systems had gathered there to visit the Buddha and the Brotherhood. Four gods of the Suddhavasa heaven approached the place and each recited a stanza before him.

The Buddha addressed the monks and gave them the names of gods who had assembled there on that occasion. They were— Yakkhas, Vessāmitta, Kumbhera, king Dhataraṭṭha, Gandhabbas, Virūḷha, Kumbhaṇḍas, Virūpakkha, Nāgas, Kuvera, Māyā, Kuṭeṇḍu, Veṭeṇḍu, Viṭu, Viṭucca, Candana, Rāmaseṭṭha, Kinnughaṇḍu, Nighaṇḍu, Panāda, Mātali, Cittasena etc. etc. etc.

(8) Sakkapañha Sutta

The Buddha was staying in Magadha, to the east of Rājagaha, at a Brāhmaṇa village named Ambasaṇḍā. There, he resided on the Vediya mountain to the north of the village, in Inda Sala cave.

Then, Sakka, the king of the gods, surrounded by Tāvatiṁsa gods, and attended by Pañcasikha Gandhabbaputta, appeared there on the Vediya mountain, filling all round with a brilliant radiance. Then, Pañcasikha took his lyre and sang a song on it concerning the Awakened One and the Dhamma, the Arhants and love; and, the Buddha was pleased to hear it. Sakka and all of the

other gods entered the cave and paid their homage to the Buddha. Having obtained his permission, Sakka put his question :—

"By what fetters, Sir, are men and gods bound in that they, wishing very much to be free from these, do nevertheless live in enmity, hating, injuring, hostile and malign?"

Buddha— "By the fetters of envy and selfishness are they bound in that they, wishing very much to be free from these, do nevertheless live in enmity, hating, injuring, hostile and malign."

Sakka— "But envy and selfishness, Sir, what is the source thereof, the cause thereof? What gives birth to them? How do they come to by?"

Buddha— "Things as dear and not dear to us, Ruler of gods, this is the source and cause of envy and selfishness, this is what gives birth to them, this is how they come to be."

Sakka— "but, what, Sir, is the cause of things being dear and not dear, what gives birth to these feeling, how do they come to be?"

Buddha— "Desire, Ruler of gods, is the cause of things being dear or not dear. If desire be present, things become dear and not dear to us."

Sakka— "but desire, Sir, — what is the source and cause of that?"

Buddha— "Fights of thoughts, Ruler of gods,— this is the source, this is the cause of desire."

Sakka— "But what, Sir, is the source and cause of the flights of thoughts?"

Buddha— "The source, Ruler of gods, and the cause of our flights of thoughts is falling in the worldly complications."

The doubts of Sakka were removed; and he gained an insight into the Truth.

(9) Mahā Satipaṭṭhāna Sutta

The Buddha was staying at Kammāsadhamma, a city in the Kuru country. He addressed thus to the Bhikkhus— This is the only Path for the purification of the beings, for rising above all misery and grief, for the liberation from all bondage, for the realisation of insight, to the attainment of Nibbāna; namely, the four Ways of Mindfulness.

The Bhikkhu goes into the forest, or to the roots of a tree, or to an empty chamber, and sits down crosslegged, holding the body erect, alert in mind, aware of the physical states.

He practises Ānāpānasati, being aware of his respiration. Mindful he inhales, mindful he exhales. While inhaling a long breath, he is aware that he is inhaling a long breath, while inhaling a short breath, he is aware that he is inhaling a short breath; while exhaling a long breath, he is aware that he is exhaling a long breath, while exhaling a short breath, he is aware that he is exhaling a short breath.

While he is walking, standing, sitting or lying down, he is aware of it.

He reflects upon this very body, from the soles of his feet below upward

to the crown of his head, as full of impurities :— Here is in this body hair stand down, nails, teeth, skin, flesh, sinews, bones, marrow, kidney, heart, membranes, spleen, lungs, stomach, bowels, intestines, excrement, bile, phlegm, pus, blood, sweat, fat, tears, seram, saliva, mucus, synovic fluid, and urine.

He reflects upon this very body with respect to its fundamentals :— there are in this body the four primary elements of earth, water, heat and air.

He reflects upon the dead bodies thrown in the cemetery, in the different stages of decomposing, and applies that preception to this very body of his own— this body, too, is even so constituted, is of even such a nature, cannot escape this state.

When the Bhikkhu is affected by feelings pleasurable, painful or neutral, he is aware of it.

When there arises a thought in him, of love, or hate, or dullness... he is aware of it.

He is constantly aware of the nature of the Four obstacles (Nīvaraṇa), the five aggregates (Khandha), the Spheres of sense (Āyatana), The Four noble truths (Ariyasaccāni).

The Buddha said, :— "O Bhikkhus, who so shall thus practise these Four ways of Mindfulness for seven years is destined to be an Arhat, or atleast a Sakadāgāmi. Or, not to speak of seven years, who so shall thus practise these Four ways of Mindfulness for six years, for five only, for four only.... for one year only.... for one month only... for seven days is destined to be an Arhant, or atleast a Sakadāgāmi.

(10) Pāyāsī Sutta

The Venerable Kumāra Kassapa was going on tour with a great company of Bhikkhus in Kosala country, and was staying at Setavyā, in the Simsapa Grove. At that time, the Chieftain Pāyāsī was residing at the same City, who had fallen a victim to an erroneous view— "There is no life here-after, nor there is a result of deeds, good or bad."

Pāyāsī approached Kumāra Kassapa and asserted that there is no life hereafter. He said that he had requested many friends and relatives of his, who were about to die, to send words to him after they had been born some where else, but none of them had ever complied with it.

With the help of Similes, Kumār Kassapa explained that, if they had been evildoers and born in purgatory, they are not allowed by the Pit Keepers to come back to the world and tell you about themselves; or, if they had been good and noble and born in heaven, they themselves would loath to come to the foul realm of human beings.

Pāyāsī placed another argument to prove that there can be no life hereafter by saying that if the monks and Brāhmaṇas did actually believe in a better state of existence hereafter, they would have certainly committed suicide to expedite achievement of the same.

Venerable Kumāra Kassapa gave the simile of making an attempt to

take out the child atonce by cutting open the stomach of the pregnant woman and explained that the result of the deeds of a man cannot be realised by committing suicide.

Pāyasī gave an account of practical experiment that he had made to find out if there was any thing as life or soul in a man which leaves the body after he is dead. He got a man perfectly sealed in a jar, and when he knew that he was dead inside, he made a thin hole on it, and watched carefully, in vain, to see if any thing did actually emerge out through it.

The Venerable Kumāra Kassapa explained that the individuality of a man consists in the process of thought, which could not be conceived in terms of physical limitations. In a dream one goes out to distant places without actually emerging out of the body.

The last agrument of Pāyāsī was that he had been holding and advocating this view since long and that he was so much attached to it that he found it difficult for him to shun it at that stage.

The venerable Kassapa narrated the parable of friends gone out to earn money. They saw a heap of hemp thrown away. Then one said to the other :— "Here is a heap of hemp : do you make some into a bundle, I'll do the same and we'll carry it away." The other consented, and they did so.

Bearing this burden they went on to another village street. There they saw a heap of hempen cloths. And the one said to the other :— "This heap of hempen cloths is just the thing we want hemp for. Well then, friend, do you throw away your load of hemp, I'll also throw away my load, and We'll also each take a load of hempen cloth." Then, other friend replied :— "I have brought this load of hemp a long way, friend, and it is well tied up— that is enough for me : you choose for yourself." So the former changed his load for one of hempen cloth.

Then they came to another village street. There they saw a heap of flex; and to another where they saw linen cloth.

Venerable Kassapa said :— "Even like the simile of the load of hemp, methinks, prince, is what you say. Renounce, Prince, this evil set of opinions, renounce them. Let them not be long a source of bale and sorrow to you."

Prince Pāyāsī was ultimately convinced of his error, and he accepted the discipleship of Venerable Kumāra Kassapa.

THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARI AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a	आ = ā	इ = i	ई = ī	उ = u	ऊ = ū	ए = e	ओ = o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khī	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ñja	ध्व dhva	म्म mma
क्रि kri	ञ्झ ñjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇṭa	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇṭha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड nḍa	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह ḷha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā	ि = i	ी = ī	ु = u	ू = ū	े = e	ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

दीघनिकायपालि

(२. महावग्गो)

सुत्तसूची

दीघनिकायपालि

२. महावग्गो

[हिन्दीरूपान्तरसहितो]

[2]

✿ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ✿

दीघनिकायपालि

२. महावग्गो

१. महापदानसुत्तं

१. पुब्बेनिवासपटिसंयुत्तकथा

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [N.3, B.1, R.1] अनाथपिण्डिकस्स आरामे करेरिकुटिकायं। अथ खो सम्बहुलानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं करेरिमण्डमाळे सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं पुब्बेनिवासपटिसंयुत्ता धम्मी कथा उदपादि—"इति पि पुब्बेनिवासो, इति पि पुब्बेनिवासो" ति।

२. अस्सोसि खो भगवा दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय तेसं भिक्खूनं इमं कथासल्लापं। अथ खो भगवा उट्ठायासना येन करेरिमण्डलमाळो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"काय नुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना; का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति?

एवं वुत्ते, ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अम्हाकं पच्छाभत्तं [R.2]

✿ उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम ✿

दीघनिकायपालि

२. महावर्ग

१. महापदानसूत्र

१. भगवान् के पूर्वजन्मों से सम्बद्ध कथाएँ

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक (श्रेष्ठी) के आराम (जेतवन) की करेरीकुटी (जिसके द्वार पर वरुण वृक्ष शोभायमान था) में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भिक्षा कर्म से निवृत्त होकर, करेरीकुटी के बाहर वृत्ताकार पर्णशाला (मण्डलमाल, मण्डप) में सामूहिक रूप से एकत्र हुए बहुत से भिक्षुओं में पूर्वजन्मविषयक कुछ ऐसी धार्मिक बातें चल पड़ी— "पूर्वजन्म ऐसा भी होता है या पूर्वजन्म वैसा भी होता है।'

२. भगवान् ने अपनी अलौकिक दिव्य श्रोत्रधातु से उन भिक्षुओं में हो रहे वार्तालाप को सुन लिया। तब भगवान् अपने साधनास्थल से उठकर उस करेरीकुटी की पर्णशाला में एकत्र भिक्षुओं के बीच पधारे। वहाँ पधार कर वे प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। आसन पर विराजमान हुए भगवान् ने वहाँ एकत्र उन भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! तुम इस समय किस विषय पर परस्पर संवाद कर रहे थे और कहाँ आ कर तुम लोग रुक गये?

पिण्डपातपटिक्कन्तानं करेरिमण्डलमाळे सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं पुब्बेनिवासपटिसंयुत्ता धम्मी कथा उदपादि—'इति पि पुब्बेनिवासो, इति पि पुब्बेनिवासो' ति। अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता; अथ भगवा अनुप्पत्तो'' ति।

[B.2] ३. ''इच्छेय्याथ नो तुम्हे, भिक्खवे, पुब्बेनिवासपटिसंयुत्तं धम्मिं कथं सोतुं'' ति?

[N.4] ''एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत, कालो, यं भगवा पुब्बेनिवासपटिसंयुत्तं धम्मिं कथं करेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. पुब्बा भगवन्तो

४. ''इतो सो, भिक्खवे, एकनवुतिकप्पे यं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। इतो सो, भिक्खवे, एकतिंसे कप्पे यं सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। तस्मिञ्ञेव खो, भिक्खवे, एकतिंसे कप्पे वेस्सभू भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। इमस्मिञ्ञेव खो, भिक्खवे, भद्दकप्पे ककुसन्धो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। इमस्मिञ्ञेव खो, भिक्खवे, भद्दकप्पे कोणागमनो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। इमस्मिञ्ञेव खो, भिक्खवे, भद्दकप्पे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। इमस्मिञ्ञेव खो, भिक्खवे, भद्दकप्पे अहं एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो।

जातिया

५. ''विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसि,

---

(भगवान् द्वारा ऐसा पूछा जाने पर) उन भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! भिक्षा-कर्म से निवृत्त होने के बाद ....हम भिक्षुओं में पूर्वजन्मविषयक धार्मिक संवाद चल रहा था कि पूर्वजन्म ऐसे भी होता है, या पूर्वजन्म वैसे भी होता है; इसी बीच भगवान् का यहाँ पधारना हो गया।

३. ''तो क्या, भिक्षुओ! तुम पूर्वजन्मविषयक धार्मिक कथा सुनना चाहते हो?''

(भिक्षु बोले—)''भगवान्! इसी का समय है, सुगत! इसी का समय है कि भगवान् के श्रीमुख से पूर्वजन्मविषयक धार्मिक कथा हो। उसे भगवान् से सुन कर हम भिक्षुजन वैसा ही (प्रामाणिक रूप से) श्रद्धापूर्वक मान लेंगे।''

''तो भिक्षुओ! सुनो। अपने मन को इस तरफ लगाओ। मैं बता रहा हूँ।''

भिक्षुओं ने ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर भगवान् को उत्तर दिया।

२. पूर्व बुद्धों का जन्मसमय

४. भगवान् ने यों कहना प्रारम्भ किया (१) ''भिक्षुओ! आज से इकानवें (९१) कल्प पूर्व लोक में विपश्यी (विपस्सी) भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध (इस) संसार में उत्पन्न हुए थे। (२) आज से इकतीस (३१) कल्प पूर्व लोक में शिखी (सिखी) भगवान् ....हुए थे। (३) उसी इकतीसवें कल्प में विश्वभू (वेस्सभू) भगवान् .... हुए थे। (४) भिक्षुओ! इसी वर्तमान भद्रकल्प में ककुसन्ध (क्रकुच्छन्द) भगवान् ....हुए थे। (५) भिक्षुओ! इसी वर्तमान् भद्रकल्प में कोणागमन भगवान् ....हुए थे। (६) भिक्षुओ! इसी भद्रकल्प में काश्यप (कस्सप) भगवान् ....हुए थे। और (७) भिक्षुओ! इसी वर्तमान भद्रकल्प में, इस समय मैं लोक में भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध रूप में अवतरित हुआ हूँ।

खत्तियकुले उदपादि। सिखी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसि, खत्तियकुले उदपादि। वेस्सभू, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया [R.3] अहोसि, खत्तियकुले उदपादि। ककुसन्धो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो ब्राह्मणो जातिया अहोसि, ब्राह्मणकुले उदपादि। कोणागमनो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो ब्राह्मणो जातिया अहोसि, ब्राह्मणकुले उदपादि। कस्सपो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो ब्राह्मणो जातिया अहोसि, ब्राह्मणकुले उदपादि। अहं, भिक्खवे, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसिं, खत्तियकुले उप्पन्नो।

गोत्तेन

६. "विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन [B.3] अहोसि। सिखी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन अहोसि। वेस्सभू, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन अहोसि। ककुसन्धो, भिक्खवे,[N.3] भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कस्सपो गोत्तेन अहोसि। कोणागमनो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कस्सपो गोत्तेन अहोसि। कस्सपो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कस्सपो गोत्तेन अहोसि। अहं, भिक्खवे, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो गोतमो गोत्तेन अहोसिं।

आयुप्पमाणं

७. "विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असीतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सत्ततिवस्स-सहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सट्ठिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स चत्तालीसवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तिंसवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। कस्सपस्स, [R.4]

पूर्वबुद्धों की जाति–५. "भिक्षुओ! भगवान् विपश्यी जाति से क्षत्रिय थे (क्योंकि वे) क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए थे। भिक्षुओ! इसी प्रकार भगवान् शिखी भी जाति से क्षत्रिय ही थे, क्योंकि वे भी क्षत्रियकुल में ही उत्पन्न हुए थे।....भगवान् विश्वभू (वेस्सभू) भी जाति से क्षत्रिय ....। ....भगवान् ककुसन्ध जाति से ब्राह्मण थे, क्यों कि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ....भगवान् कोणागमन....भगवान् काश्यप भी जाति से ब्राह्मण ही थे; क्योंकि वे भी ब्राह्मणकुल में ही उत्पन्न हुए थे। और भिक्षुओ! इस समय मैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध जाति से क्षत्रिय हूँ; क्यों कि मैं क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

पूर्वबुद्धों का गोत्र–६. भिक्षुओ! भगवान् विपश्यी अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध गोत्र से कौण्डिन्य थे। ....शिखी भगवान्.... भी कौण्डिन्य गोत्र के ही थे। ....वेस्सभू भगवान् ....भी कौण्डिन्य गोत्र के ही थे। ....कोणागमन ....काश्यप भगवान्....भी काश्यप गोत्र के ही थे। और भिक्षुओ! मैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध गौतम गोत्र का हूँ।

पूर्वबुद्धों का आयुः प्रमाण–७. "भिक्षुओ! विपस्सी भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का आयुः प्रमाण अस्सी हजार वर्ष था। ....सिखी भगवान् .... का आयुःप्रमाण सत्तर हजार वर्ष था। ....वेस्सभू.... का आयुःप्रमाण साठ हजार वर्ष था। ....ककुसन्ध ....का आयुःप्रमाण चालीस हजार वर्ष था। ....कोणागमन ....का आयुः प्रमाण तीस हजार वर्ष था। .... काश्यप ....का आयुःप्रमाण बीस हजार वर्ष था। और, भिक्षुओ! इस समय मेरा आयुःप्रमाण तो (अतीत बुद्धों की अपेक्षा) सीमित और अल्प ही है। इस समय कोई बहुत अधिक

भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स वीसतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। मय्हं, भिक्खवे, एतरहि अप्पकं आयुप्पमाणं परित्तं लहुकं; यो चिरं जीवति सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो।

बोधिरुक्खा

८. ''विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पाटलिया मूले अभिसम्बुद्धो। सिखी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पुण्डरीकस्स मूले अभिसम्बुद्धो। वेस्सभू, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो सालस्स मूले अभिसम्बुद्धो। ककुसन्धो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो सिरीसस्स मूले अभिसम्बुद्धो। कोणागमनो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उदुम्बरस्स मूले अभिसम्बुद्धो। कस्सपो, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो निग्रोधस्स मूले अभिसम्बुद्धो। अहं, भिक्खवे, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो अस्सत्थस्स मूले अभिसम्बुद्धो।

सावकयुगं

[B.4] ९. ''विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स खण्डतिस्सं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अभिभूसम्भवं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो [N.6] सम्मासम्बुद्धस्स सोणुत्तरं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स विधुरसञ्जीवं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। [R.5] कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स भिय्योसुत्तरं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तिस्सभारद्वाजं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। मय्हं, भिक्खवे, एतरहि सारिपुत्तमोग्गल्लानं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं।

सावकसन्निपाता

१०. ''विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं

जीता है तो वह सौ वर्ष तक जी लेता है। या हो सकता है कि वह इससे भी कम समय तक ही जीवित रहे।

पूर्वबुद्धों के बोधिवृक्ष–८. ''भिक्षुओ! विपश्यी भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध पाटलि (पाढल) वृक्ष के नीचे अभिसम्बुद्ध हुए थे। ....शिखी भगवान् ....पुण्डरीक के नीचे ....। वेस्सभू भगवान् ....साल वृक्ष के नीचे ....। ....ककुसन्ध भगवान् शिरीष वृक्ष के नीचे ....। कोणागमन भगवान् उदुम्बर वृक्ष के नीचे....काश्यप भगवान् ....न्यग्रोध (बरगद) वृक्ष के नीचे....। और भिक्षुओ! मै अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हुआ अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे।

पूर्वबुद्धों के श्रावकयुगल–९. ''भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्....के खण्ड और तिष्य नामक दो श्रावक (प्रधान शिष्य) हुए। शिखी भगवान् ....के अभिभू और सम्भव नामक दो....। विश्वभू भगवान् ....के सोण और उत्तर नामक दो ....। ककुसन्ध भगवान् ....के विधुर और सञ्जीव नामक दो ....। कोणागमन भगवान् ....के भीयोसु और उत्तर नामक दो ....। काश्यप भगवान् ....के तिष्य और भारद्वाज नामक दो ....। और भिक्षुओ! मेरे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन नामक दो श्रावक (प्रधानशिष्य) हैं।

सन्निपाता अहेसुं। एको सावकानं सन्निपातो अहोसि अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि भिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीतिभिक्खु-सहस्सानि—विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं, सब्बेसं येव खीणासवानं।

"सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं। एको सावकानं सन्निपातो अहोसि भिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीतिभिक्खुसहस्सानि, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि सत्ततिभिक्खुसहस्सानि—सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं, सब्बेसं येव खीणासवानं।

"वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं। एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीतिभिक्खुसहस्सानि, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि सत्ततिभिक्खुसहस्सानि, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि सट्ठिभिक्खु-[B.5] सहस्सानि—वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं, सब्बेसंव खीणासवानं।

"ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एको सावकानं सन्निपातो अहोसि। चत्तालीसभिक्खुसहस्सानि—ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि, सब्बेसं येव खीणासवानं।

"कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एको सावकानं [R.6] सन्निपातो अहोसि। तिंसभिक्खुसहस्सानि—कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो [N.7] सम्मासम्बुद्धस्स अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि, सब्बेसं येव खीणासवानं।

"कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एको सावकानं सन्निपातो

पूर्वबुद्धों के श्रावक सन्निपात—१०."भिक्षुओ! विपश्यी भगवान् .... के तीन श्रावक सन्निपात (शिष्यसम्मेलन) हुए, जिनमें एक सम्मेलन–एक लाख अड़सठ हजार भिक्षुओं का था, एक सम्मेलन एक लाख भिक्षुओं का था और एक सम्मेलन अस्सी हजार भिक्षुओं का था। विपश्यी भगवान् .... के शिष्यों के यही तीन सम्मेलन थे, जिनमें सम्मिलित होने वाले सभी भिक्षु क्षीणास्रव (अर्हत्) थे।

"भिक्षुओ! शिखी भगवान् .... के भी तीन श्रावकसम्मेलन हुए; जिनमें एक सम्मेलन एक लाख भिक्षुओं का एक अस्सी हजार भिक्षुओं का और एक सत्तर हजार भिक्षुओं का था। यही तीन ....। इन में सम्मिलित होने वाले सभी क्षीणास्रव थे।

"भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान्....के भी तीन श्रावक सम्मेलन हुए ....एक अस्सी हजार भिक्षुओं का, एक सत्तर हजार का और एक साठ हजार भिक्षुओं का। ये भी तीनों सम्मेलन अर्हत् (क्षीणस्राव) भिक्षुओं के ही थे।

"भिक्षुओ! ककुसन्ध भगवान् .... का एक श्रावक सम्मेलन हुआ। उस एक सम्मेलन में चालीस हज़ार भिक्षु सम्मिलित हुए। इसमें भी सब भिक्षु क्षीणास्रव ही थे।

"भिक्षुओ! कोणागमन भगवान् .... का भी एक श्रावकसम्मेलन हुआ। उसमें तीस हजार भिक्षु सम्मिलित हुए। इस एक सम्मेलन में उपस्थित सभी भिक्षु क्षीणास्रव थे।

अहोसि। वीसतिभिक्खुसहस्सानि—कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि, सब्बेसं येव खीणासवानं।

''मय्हं, भिक्खवे, एतरहि एको सावकानं सन्निपातो अहोसि। अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि—मय्हं, भिक्खवे, अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि, सब्बेसं येव खीणासवानं।

अग्गुपट्ठाको

११.''विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असोको नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स खेमङ्करो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स उपसन्तो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स बुद्धिजो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सोत्थिजो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सब्बमित्तो [B.6] नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। मय्हं, भिक्खवे, एतरहि आनन्दो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको।

मातापिता

१२. ''विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स बन्धुमा नाम राजा [R.7] पिता अहोसि, बन्धुमती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती[१]। बन्धुमस्स रञ्ञो बन्धुमती नाम नगरं राजधानी अहोसि।

''सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अरुणो नाम राजा पिता

''भिक्षुओ! काश्यप भगवान् .... का भी एक श्रावकसम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में बीस हजार भिक्षु सम्मिलित हुए। इस काश्यप भगवान् के एक श्रावकसम्मेलन में भी सम्मिलित होने वाले सभी भिक्षु क्षीणास्रव ही थे।

''भिक्षुओ! इस समय मेरे शिष्यों का एक ही सम्मेलन हुआ है। जिसमें बारह सौ पचास भिक्षु सम्मिलित थे। इसमें भी सब भिक्षु क्षीणास्रव (अर्हत्) ही थे।

प्रधान उपस्थायक (सहचर)—११. ''भिक्षुओ! विपश्यी भगवान् .... का अशोक नामक भिक्षु उपस्थायक (सहचर, सेवक) प्रधान उपस्थाता था। भिक्षुओ! शिखी ....का क्षेमङ्कर नामक भिक्षु उपस्थायक ....। ....विश्वभू ....का उपशान्त नामक भिक्षु ....। ....क्रकुच्छन्द ....का बुद्धिज ....कोणागमन .... भगवान् का .... स्वस्तिज .... काश्यप ....भगवान् का सर्वमित्र ....। और भिक्षुओ! मेरा आनन्द नामक भिक्षु उपस्थायक एवं प्रधान उपस्थाता है।

माता–पिता और अभिजन—१२. ''भिक्षुओ! विपस्सी भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के बन्धुमान् नामक राजा पिता थे और माता का नाम बन्धुमती देवी था। उस राजा की राजधानी का नाम बन्धुमती था।

''शिखी भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के अरुण नामक राजा पिता थे और प्रभावती देवी उनकी माता थी। और इनकी राजाधानी का नाम अरुणवती था।

---

१. जनेत्ति— ना०, म०; एवमुपरि पि।

अहोसि, पभावती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। अरुणस्स रञ्ञो अरुणवती नाम नगरं राजधानी अहोसि।

"वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सुप्पतीतो नाम राजा पिता अहोसि, वस्सवती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। सुप्पतीतस्स रञ्ञो अनोमं नाम [N.8] नगरं राजधानी अहोसि।

"ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अग्गिदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता अहोसि, विसाखा नाम ब्राह्मणी माता अहोसि जनेत्ती। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन खेमो नाम राजा अहोसि। खेमस्स रञ्ञो खेमवती नाम नगरं राजधानी अहोसि।

"कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स यञ्ञदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता अहोसि, उत्तरा नाम ब्राह्मणी माता अहोसि जनेत्ती। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन सोभो नाम राजा अहोसि। सोभस्स रञ्ञो सोभवती नाम नगरं राजधानी अहोसि।

"कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ब्रह्मदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता अहोसि, धनवती नाम ब्राह्मणी माता अहोसि जनेत्ती। तेन खो पन, भिक्खवे, [B.7] समयेन किकी नाम राजा अहोसि। किकिस्स रञ्ञो बाराणसी नाम नगरं राजधानी अहोसि।

"मय्हं, भिक्खवे, एतरहि सुद्धोदनो नाम राजा पिता अहोसि, माया नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। कपिलवत्थु नाम नगरं राजधानी" ति।

इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि।

३. तथागतस्स धम्मता

१३. अथ खो तेसं भिक्खूनं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो अयमन्तराकथा [R.8] उदपादि—"अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता,

---

"भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान् .... के पिता सुप्रतीत नामके राजा थे और माता थी वर्षवती देवी और इनकी राजधानी का नाम अनोमा था।

".... ककुसन्ध ....भगवान् के पिता का नाम था अग्निदत्त ब्राह्मण और माता का नाम था विशाखा। उस समय भिक्षुओ! क्षेम नामक राजा राज्य करता था, उसकी राजधानी का नाम था क्षेमवती।

".... कोणागमन भगवान् ....के पिता का नाम यज्ञदत्त ब्राह्मण और माता का नाम था उत्तरा ब्राह्मणी। उस समय शोभ नाम का राजा राज्य करता था, उसकी राजधानी का नाम था शोभवती।

".... काश्यप भगवान् ....का पिता ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण था और माता का नाम था धनवती ब्राह्मणी। उस समय किकी नामक राजा राज्य करता था, उस की राजधानी थी वाराणसी।

"और, भिक्षुओ! इस समय मेरे पिता का नाम है राजा शुद्धोदन एवं मेरी माता का नाम है मायादेवी। कपिलवस्तु नगरी (उनकी) राजधानी है।"

भगवान् ने यह कहा। सुगत इतना कहकर आसन से उठ कर अपने साधनास्थल में पुनः जा विराजे।

३. तथागत का प्रभाव–प्रताप

१३. तब भगवान् के वहाँ से पधारते ही, भिक्षुओं में यह चर्चा चल पड़ी—"आयुष्मानो! आश्चर्य है! अद्भुत है आयुष्मानो! तथागत का ऐश्वर्य एवं उनकी महानुभावता कि (इस तरह) अतीत काल में तथागतों

यत्र हि नाम तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरिस्सति, नामतो पि अनुस्सरिस्सति, गोत्ततो पि अनुस्सरिस्सति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरिस्सति, सावकयुगतो पि अनुस्सरिस्सति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरिस्सति—'एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' ति।

"किं नु खो, आवुसो, तथागतस्सेव नु खो एसा धम्मधातु सुप्पटिविद्धा, यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, [N.9] आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—'एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' ति; उदाहु देवता तथागतस्स एतमत्थं आरोचेसुं येन तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे [R.9] सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—'एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, [B.8] एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' ति।

१४. अयं च हिदं तेसं भिक्खूनं अन्तराकथा विप्पकता होति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन करेरिमण्डलमाळो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"कायनुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना; का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति?

एवं वुत्ते, ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं— "इध, भन्ते, अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो अयं अन्तराकथा उदपादि—'अच्छरियं, आवुसो! अब्भुतं, आवुसो, तथागतस्स

ने जन्म लिया तथा उन्होने निर्वाण प्राप्त किया, संसार के प्रपञ्च (मायामोह) पर विजय प्राप्त की। संसार में अपना आवागमन समाप्त किया और अपने सभी सांसारिक दुःखों का नाश किया। इन्हें पूर्व बुद्धों के नामों का भी स्मरण है, गोत्रों का भी, वे उनका आयुःप्रमाण भी जानते हैं, उनके श्रावकयुगलों को भी जानते हैं, उनके श्रावकसन्निपात को भी जानते हैं। भगवान् उस जन्म में इस नाम के थे, इस गोत्र के थे, इस आचार के थे, इस धर्म (स्वभाव) के थे, इस प्रज्ञा के थे, उस तरह की साधना करते थे, इस तरह उन्हें (अन्त में) विमुक्तिज्ञान मिला। ये उन भगवानों के विषय में, यह सब कुछ जानते हैं। आदि-आदि।

"तो क्या आयुष्मानो! यह तथागत की ही शक्ति-सामर्थ्य है कि जिससे सम्पृक्त हो कर तथागत अतीतकाल में निर्वाण प्राप्त कर सके, अतीत बुद्धों के उन उन जन्मों को, उनके नाम ....स्मरण किया कि वे इस जाति .... के थे। या फिर किन्हीं देवताओं ने उनको यह सामर्थ्य प्रदान कर दिया था जिसके प्रभाव से वे यह सब कुछ जान पाये थे!"

१४. यही बात उन भिक्षुओं के परस्पर संवाद का कारण बनी हुई थी। इसी बीच, सायङ्काल भगवान् समाधि से उठ कर करेरीपर्णकुटी के मण्डप में पहुँचे, उन्होंने प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान् हो कर भिक्षुओं से पूछा—"अभी तुम लोगों में क्या धार्मिक संवाद चल रहा था?

महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरिस्सति, नामतो पि अनुस्सरिस्सति, गोत्ततो पि अनुस्सरिस्सति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरिस्सति, सावकयुगतो पि अनुस्सरिस्सति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरिस्सति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' ति! किं नु खो, आवुसो, तथागतस्सेव नु खो एसा धम्मधातु सुप्पटिविद्धा यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो [N.10] पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति, पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवं-[R.10] विहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति; उदाहु देवता तथागतस्स एतमत्थं आरोचेसुं येन तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवं-[B.9] विहारी एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति? अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता अथ भगवा अनुप्पत्तो'' ति।

१५. ''तथागतस्सेवेसा, भिक्खवे, धम्मधातु सुप्पटिविद्धा यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति। देवता पि तथागतस्स एतमत्थं आरोचेसुं येन तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे, सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति।

ऐसा पूछा जाने पर वे भिक्षु बोले–''भन्ते! आपके साधना–स्थल में प्रविष्ट होने के बाद, हम लोगों में ....पूर्ववत्....इसी बीच आप का यहाँ पधारना हो गया।

१५. (भगवान् बोले–) ''भिक्षुओ! यह तथागत का अपना सामर्थ्य–प्रभाव है कि वे उसके सहारे अतीत बुद्धों के जन्म ....पूर्ववत् .... जानते है। यह किसी देवता द्वारा उन्हें प्रदत्त सामर्थ्य का प्रभाव नहीं है कि उसके बल से वे अतीत बुद्धों के जन्म ....को जान पाये हों।

[R.11] "इच्छेय्याथ नो तुम्हे, भिक्खवे, भिय्योसोमत्ताय पुब्बेनिवासपटिसंयुत्तं धम्मिं कथं सोतुं" ति।

"एतस्स, भगवा, कालो; एतस्स, सुगत, कालो; यं भगवा भिय्योसो मत्ताय पुब्बेनिवासपटिसंयुत्तं धम्मिं कथं करेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति।

[N.11] "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

विपस्सी भगवा

१६. "इतो सो, भिक्खवे, एकनवुतिकप्पे यं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसि, खत्तियकुले उदपादि। विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन अहोसि। विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असीतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं [B.10] अहोसि। विपस्सी, भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पाटलिया मूले अभिसम्बुद्धो। विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स खण्डतिस्सं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं। एको सावकानं सन्निपातो अहोसि अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि भिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीतिभिक्खुसहस्सानि— विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं, सब्बेसंयेव खीणासवानं। विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असोको नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। विपस्सिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स बन्धुमा नाम राजा पिता अहोसि, बन्धुमती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। [R.12] बन्धुमस्स रञ्ञो बन्धुमती नाम नगरं राजधानी अहोसि।

१७. " अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा सतो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमि। अयमेत्थ धम्मता।

"धम्मता, एसा, भिक्खवे,। यदा बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा मातुकुच्छिं

"तो भिक्षुओ! क्या तुम उन अतीत बुद्धों के पूर्वजन्म आदि विषय में विस्तार से जानना-सुनना चाहते हो?"

"हाँ, भगवन्! उसे सुनने का यही उचित समय है। आप के श्रीमुख से उन अतीत बुद्धों के पूर्वजन्म आदि के विषय में विस्तृत वर्णन करने का यही उचित अवसर है। उसे सुन कर हम भिक्षु श्रद्धापूर्वक अपने मन में बैठा लेंगे।"

"तो, भिक्षुओ! सुनो! सुन कर उसे अपने मन में भली-भाँति बैठा लो। मैं बताता हूँ।"

"ठीक है, भन्ते! " कह कर भिक्षुओं ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया।

विपश्यी भगवान्—१६. (भगवान् बोले—)"भिक्षुओ! आज से इक्यानवें कल्प पूर्व में विपश्यी भगवान् ....पूर्ववत्.... बन्धुमती नामक नगर उस की राजधानी थी।

गर्भ के पूर्वलक्षण—१७. "तब,भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व तुषित लोक के देवकाय से च्युत होकर अपने

ओक्कमति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो पातु भवति, अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा, यत्थ पिमे चन्दिमसुरिया एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा आभाय नानुभोन्ति तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातु भवति, अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति—अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना ति। अयं च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पति [N.12] सम्पकम्पति सम्पवेधति। अप्पमाणो च उळारो ओभासो लोके पातु भवति, अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। अयमेत्थ धम्मता। (१)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, चत्तारो [B.11] नं देवपुत्ता चातुद्दिसं रक्खाय उपगच्छन्ति—'मा नं बोधिसत्तं वा बोधिसत्तमातरं त्रा मनुस्सो वा अमनुस्सो वा कोचि वा विहेठेसी' ति। अयमेत्थ धम्मता। (२)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, पकतिया सीलवती बोधिसत्तमाता होति, विरता पाणातिपाता, विरता अदिन्नादाना, विरता [R.13] कामेसुमिच्छाचारा, विरता मुसावादा, विरता सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना। अयमेत्थ धम्मता।(३)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु पुरिसेसु मानसं उप्पज्जति कामगुणूपसंहितं। अनतिक्कमनीया च बोधिसत्तमाता होति केनचि पुरिसेन रत्तचित्तेन। अयमेत्थ धम्मता। (४)

स्मृति-सम्प्रजन्य के साथ अपनी माता की कोंख (गर्भ) में प्रविष्ट हुए। उस समय के स्वाभाविक नियम (धर्मता) ये हैं।

"भिक्षुओ! उन में प्रथम स्वाभाविक नियम यह है कि जब बोधिसत्त्व तुषित लोक के देवकाय से च्युत हो कर (यहाँ) माता की कोंख में प्रविष्ट होते हैं तब देवता, असुर (मार), ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मणों के जनसमूह सहित इस लोक में देवताओं और मनुष्यों द्वारा न मापा जा सकने योग्य (अपरिमित) अत्यधिक उत्कृष्ट प्रकाश (चमक) होता है। दूसरे नरक आदि लोकों में भी, जहाँ निरन्तर अन्धकार की घोर कालिमा छायी रहती है क्योंकि वहाँ चन्द्र और सूर्य का प्रकाश भी कभी नहीं पहुँच पाता, वहाँ भी अत्यधिक उत्कृष्ट प्रकाश फैल जाता है। उस लोक में उस समय स्थित प्राणी उस प्रकाश (चमक) को देख कर परस्पर बात करने लगते हैं—'अरे यहाँ दूसरा प्राणी भी उत्पन्न हुआ है। जिस (उत्पाद) के कारण ये दस हजार ब्रह्माण्ड (=लोकधातु) काँप रहे हैं, हिल रहे हैं, इस संसार में देवों के तेज से भी बढ़ कर अत्युत्कट प्रकाश हो रहा है।'— यह उस बोधिसत्त्व के यहाँ अवतरित होने का प्रथम पूर्वलक्षण है। (१)

"भिक्षुओ! दूसरा पूर्वलक्षण यहाँ है—जब बोधिसत्त्व माता की कोंख में आते है तब चारों देवपुत्र चारों दिसाओं से उनकी रक्षा के लिये, वहाँ आकर पहरा देने लगते है कि उस समय बोधिसत्त्व या उन की माता को कोई मनुष्य या मनुष्येतर (देवता या मार) किसी प्रकार का कष्ट न दे सके। यह भी एक पूर्वलक्षण है। (२)

"भिक्षुओ! तीसरा पूर्वलक्षण यह है कि जब बोधिसत्त्व माता की कोंख में प्रविष्ट होते हैं तब बोधिसत्त्व की माता प्रकृतितः ही शीलवती (आचारसम्पन्न) हो जाती है, हिंसाविरत रहती है उनका चोरी, मिथ्याभाषण, कामभोगों के मिथ्याचार एवं मद्यपान करने का कभी मन नहीं होता। यह भी एक पूर्वलक्षण है। (३)

''धम्मता एसा, भिक्खवे, यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, लाभिनी बोधिसत्तमाता होति पञ्चन्नं कामगुणानं। सा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेति। अयमेत्थ धम्मता। (५)

''धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु कोचिदेव आबाधो उप्पज्जति। सुखिनी बोधिसत्तमाता होति अकिलन्तकाया, बोधिसत्तं च बोधिसत्तमाता तिरोकुच्छिगतं पस्सति सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। सेय्यथापि, भिक्खवे, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो। तत्रस्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य—'अयं खो मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो, तत्रिदं सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा
[B.12] ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिं
[N.13] ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु कोचिदेव आबाधो उप्पज्जति। सुखिनी बोधिसत्तमाता
[R.14] होति अकिलन्तकाया, बोधिसत्तं च बोधिसत्तमाता तिरोकुच्छिगतं पस्सति सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। अयमेत्थ धम्मता। (६)

''धम्मता एसा, भिक्खवे। सत्ताहजाते बोधिसत्ते बोधिसत्तमाता कालं करोति, तुसितं कायं उपपज्जति। अयमेत्थ धम्मता। (७)

''धम्मता, एसा, भिक्खवे। यथा अञ्ञा इत्थिका नव वा दस वा मासे गब्भं कुच्छिना परिहरित्वा विजायन्ति न हेवं बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायति। दसेव मासानि बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता कुच्छिना परिहरित्वा विजायति। अयमेत्थ धम्मता। (८)

''भिक्षुओ! जब बोधिसत्त्व माता की कोंख में आते हैं तब से उस माता को किसी अन्य पुरुष के प्रति कोई कामराग (मन में भी) उत्पन्न नहीं होता और न कोई अन्य पुरुष ही उस बोधिसत्त्व माता को कामरागचेष्टाओं से अपनी तरफ आकृष्ट करने का साहस कर सकता है। यह भी एक पूर्वलक्षण है ।(४)

''भिक्षुओ! .... पाँचों कामभोगों को प्राप्त करती रहती है। इस समय उसे इन पाँचों कामगुणों में से किसी की भी यत्किञ्चित् अल्पता अनुभव नहीं होती। यह भी एक पूर्वलक्षण है ।(५)

''भिक्षुओ! षष्ठ पूर्वलक्षण यह है ....बोधिसत्त्वमाता स्वस्थ रहती है, उन्हे कोई रोग नहीं होता, वह सुखपूर्वक रहती हुई, अक्लान्त शरीर रहते हुए अपनी कोंख में स्थित बोधिसत्त्व को सभी अङ्ग–प्रत्यङ्गों से पूर्ण (अहीनेन्द्रिय) होते हुए देखती रहती है। भिक्षुओ! जैसे कोई अच्छी जाति की (शुभ) वैदूर्यमणि अष्ट कोणयुक्त, अच्छी खरादी हुई, शुद्ध, निर्मल, एवं सर्वाकारसम्पन्न हो; उसमें पिरोया हुआ सूत भी उजला नीला पीला लाल या धूसर हो; उसे आँखों वाला पुरुष हाथ में ले कर देखे–'यह अच्छी जाति वाली वैदूर्यमणि .... है, इसमें का सूत्र भी ....धूसर है'; उसी प्रकार जब से बोधिसत्त्व माता की कोंख में आते हैं, तभी से उसकी माता नीरोग स्वस्थ सुखपूर्वक .... देखती रहती है। यह भी उस समय का एक पूर्वलक्षण है ।(६)

''भिक्षुओ! सातवाँ पूर्वलक्षण यह है कि.... बोधिसत्त्व के अवतरित (उत्पन्न) होने के एक सप्ताह बाद बोधिसत्त्व की माता का यहाँ से देहपात (मरण) के बाद उस की तुषित (देवलोक) में उत्पत्ति होती है। यह भी एक पूर्वलक्षण है। (७)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यथा अञ्ञा इत्थिका निसिन्ना वा निपन्ना वा विजायन्ति, न हेवं बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायति। ठिता व बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायति। अयमेत्थ धम्मता। (९)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, देवा पठमं पटिग्गण्हन्ति, पच्छा मनुस्सा। अयमेत्थ धम्मता। (१०)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अप्पत्तो व बोधिसत्तो पठविं होति, चत्तारो नं देवपुत्ता पटिग्गहेत्वा मातु पुरतो ठपेन्ति—'अत्तमना, देवि, होहि; महेसक्खो ते पुत्तो उप्पन्नो' ति। अयमेत्थ धम्मता। (११)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, विसदो व निक्खमति, अमक्खितो उद्देन, अमक्खितो सेम्हेन, अमक्खितो रुहिरेन, अमक्खितो केनचि असुचिना, सुद्धो, विसदो। सेय्यथापि, भिक्खवे, मणिरतनं कासिके वत्थे निक्खित्तं नेव मणिरतनं कासिकं वत्थं मक्खेति, ना पि कासिकं वत्थं मणिरतनं मक्खेति। तं किस्स हेतु? उभिन्नं सुद्धत्ता। एवमेव खो, भिक्खवे, यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, विसदो व निक्खमति, अमक्खितो उदेन, अमक्खितो सेम्हेन, अमक्खितो रुहिरेन, [B.13, R.15] अमक्खितो केनचि असुचिना, सुद्धो, विसदो। अयमेत्थ धम्मता। (१२)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, द्वे उदकस्स

"भिक्षुओ! आठवाँ लक्षण यह है कि जैसे दूसरी स्त्रियाँ नौ या दस महीने कोंख में बच्चे को रख कर प्रसव करती हैं, वैसे बोधिसत्त्व की माता बोधिसत्त्व का प्रसव नहीं करती। वह तो उसे पूरे दस महीने कोंख में रख कर ही प्रसव करती हैं। यह भी एक पूर्वलक्षण है। (८)

"भिक्षुओ! नौंवा लक्षण यह है कि जैसे अन्य गर्भिणी स्त्रियाँ बैठी या लेटी हुई प्रसव करती हैं ऐसे बोधिसत्त्व की माता प्रसव नहीं करती। वह तो खड़ी हुई प्रसव करती है। यह भी एक पूर्वलक्षण है। (९)

"भिक्षुओ! यह भी एक स्वाभाविक नियम है कि जब बोधिसत्त्व माता की कोंख से निकलते हैं उन्हें पहले देवता अपने हाथों से सम्हालते हैं, फिर मनुष्य। यह भी यहाँ एक स्वाभाविक नियम है। (१०)

"भिक्षुओ! यह भी एक स्वाभाविक पूर्वनियम है कि जब बोधिसत्त्व माता की कोंख से बाहर आते हैं तो वे सीधे पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाते; अपितु उनका पृथ्वी से स्पर्श होने के पूर्व ही देवता उन्हें अपने हाथों में सम्हाल कर उन्हें माता के सामने लाकर (यह कहते हुए) रखते है—'देवि! आप प्रसन्न हों। आप को अत्यन्त भाग्यशाली (महेसक्ख) पुत्र उत्पन्न हुआ है।' यहाँ यह भी एक स्वाभाविक नियम है। (११)

"भिक्षुओ! यहाँ एक स्वाभाविक नियम यह है कि जब बोधिसत्त्व माता की कोंख से निकलते हैं तो उन का शरीर सर्वथा निर्मल (विशद) रहता है, न वह गर्भस्राव की आर्द्रता से लिप्त रहता है, न कफ या रक्त से लिप्त रहता है न किसी प्रकार की अन्य अशुचि (गन्दगी) में ही लिपटा रहता है। वह तो सर्वथा शुद्ध साफ–स्वच्छ ही रहता है। जैसे भिक्षुओ! कोई मणिरत्न काशी के बने रेशमी वस्त्र में लिपटा हो वह न तो वस्त्र में चिपटता है, न काशी का बना रेशमी वस्त्र ही उससे चिपटता है। यह किस कारण? दोनों के ही (वस्त्र और रत्न) परिशुद्ध होने के कारण। इसी तरह बोधिसत्त्व का शरीर भी माता की कोंख से ....स्वच्छ ही रहता है। यह भी वहाँ एक स्वाभाविक नियम है। (१२)

भिक्षुओ! यहाँ....निकलते हैं तो उस समय आकाश से दो उदक–धाराएँ निकलती है; जिन में

धारा अन्तलिक्खा पातुभवन्ति—एका सीतस्स, एका उण्हस्स; येन बोधिसत्तस्स उदककिच्चं करोन्ति मातु च। अयमेत्थ धम्मता। (१३)

[N.14] "धम्मता एसा, भिक्खवे। सम्पतिजातो बोधिसत्तो समेहि पादेहि पतिट्ठहित्वा उत्तराभिमुखो सत्तपदवीतिहारेन गच्छति सेतम्हि छत्ते अनुधारियमाने; सब्बा च दिसा अनुविलोकेति; आसभिं वाचं भासति—'अग्गोहमस्मि लोकस्स, जेट्ठोहमस्मि लोकस्स, सेट्ठोहमस्मि लोकस्स। अयमन्तिमा जाति। नत्थिदानि पुनब्भवो' ति। अयमेत्थ धम्मता। (१४)

"धम्मता एसा, भिक्खवे। यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो पातु भवति, अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा, यत्थ पिमे चन्दिमसुरिया एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा आभाय नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातु भवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति—'अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना' ति। अयं च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति, अप्पमाणो च उळारो ओभासो लोके पातु भवति, अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। अयमेत्थ धम्मता।(१५)

४. द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि

[R.16] १८. "जाते खो पन, भिक्खवे, विपस्सिम्हि कुमारे बन्धुमतो रञ्ञो पटिवेदेसुं—'पुत्तो ते, देव, जातो। तं देवो पस्सतू' ति। अद्दसा खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिं [B.14] कुमारं। दिस्वा नेमित्ते ब्राह्मणे आमन्तापेत्वा एतदवोच—'पस्सन्तु भोन्तो नेमित्ता ब्राह्मणा कुमारं' ति। अद्दसंसु खो, भिक्खवे, नेमित्ता ब्राह्मणा विपस्सिं कुमारं। दिस्वा बन्धुमन्तं

एक उष्ण जल की होती है तो दूसरी शीतोदक की। जिनसे उस समय बोधिसत्त्व एवं उनकी माता का उदककृत्य (प्रक्षालन, स्नान आदि) होता है यह भी वहाँ....। (१३)

"भिक्षुओ! यहाँ चौदहवाँ स्वाभाविक नियम यह है कि बोधिसत्त्व उत्पन्न होते ही पैरों को बराबर (समान) रखते हुए खड़े हो कर उत्तर दिशा की तरफ मुख कर श्वेत छत्र धारण किये हुए सात कदम (पद–गति) जाते है, सभी दिशाओं को सौम्य दृष्टि से देखते है, तब श्रेष्ठ वाणी से उद्घोष करते हैं–'इस लोक में मैं ही श्रेष्ठ हूँ, मै ही अग्र (प्रधान) हूँ, मैं ही ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब मेरा अन्य जन्म नहीं होगा।' यह भी एक स्वाभाविक नियम है। (१४)

"भिक्षुओ! यहाँ एक स्वाभाविक नियम यह भी है कि जब बोधिसत्त्व माता की कोंख से बाहर आते हैं तब देवता असुर (मार) ब्रह्मा, श्रमण–ब्राह्मणों के जनसमूह....पूर्ववत्.... अत्युत्कृष्ट प्रकाश हो रहा है, यह भी एक स्वाभाविक नियम है। (१५)

४. बत्तीस महापुरुषलक्षण

१८. "भिक्षुओ! विपश्यी कुमार के उत्पन्न होने पर, अन्तःपुर के भृत्यों ने (आकर) राजा बन्धुमान् को सूचित किया–'देव! आप को पुत्र उत्पन्न हुआ है। आप उसे देखें।' भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने विपश्यी राजकुमार को देखा। और (यथासमय) नैमित्तिक (लक्षणविद्, ज्यौतिषी) पण्डितों को बुलाकर उनसे निवेदन किया–'आप लोग इस कुमार के शरीर–लक्षण देखें और बतावें कि यह कैसा भाग्यशाली होगा?' उन ज्यौतिषियों ने कुमार के शरीर–लक्षण देख कर राजा को बताया–'राजन्! आप

राजानं एतदवोचुं—'अत्तमनो, देव, होहि। महेसक्खो ते पुत्तो उप्पन्नो। लाभा ते, महाराज, सुलद्धं ते, महाराज, यस्स ते कुले एवरूपो पुत्तो उप्पन्नो। अयं हि, देव, कुमारो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनञ्ञा—

सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्तरतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। [N.15] परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति।

सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवटच्छदो।

१९. कतमेहि चायं, देव, कुमारो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो, [R.17] येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवंति अनञ्ञा....पे०....अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवटच्छदो ?

२०. अयञ्हि, देव, कुमारो सुप्पतिट्ठितपादो। यं पायं, देव, कुमारो सुप्पतिट्ठितपादो, इदम्पिमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति।

इमस्स, देव, कुमारस्स हेट्ठा पादतलेसु चक्कानि जातानि सहस्सारानि सनेमिकानि

का पुत्र तो अत्यन्त भाग्यवान् है। इसके (आपके यहाँ पुत्ररूप में) उत्पन्न होने से आपको अत्यधिक (यशो)लाभ होगा कि आप के कुल में ऐसा पुत्ररत्न हुआ। देव! यह कुमार महापुरुषों में पाये जाने वाले इन बत्तीस (३२) लक्षणों से सम्पन्न है जिन के पुरुष शरीर में पाये जाने पर उस पुरुष की दो ही गतियाँ होती हैं, अन्य (तीसरी) नहीं।

(१) 'यदि वह गृहस्थ धर्म के पालन में रहता है तो धार्मिक, धर्मराज, समुद्रपर्यन्त चारों दिशाओं को जीतने वाला अपने शासन से राज्य के गाँवों कस्बों और नगरों में स्थैर्य (=स्थिरता, शान्ति) लाने वाला एवं सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा (सम्राट्) होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—१. चक्ररत्न, २. हस्तिरत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपतिरत्न, एवं ७. परिणायक (मार्गदर्शक, परामर्शदाता) रत्न। वह हजारों ऐसे पुत्रों वाला होता है जो सभी शूरवीर, शत्रुसेना के संहारक होते हैं। वह समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वी को विना दण्ड या शस्त्र के बल से अपितु केवल स्वधर्माचरण के प्रभाव से अपने वश में रखते हुए सुखोपभोग करता है।

(२) 'और यदि वह घर छोड़कर बेघर हो प्रव्रजित हो (संसारत्याग, संन्यास ले) तो वह धर्मसाधना करता हुआ अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है।

१९. 'और देव! यह राजकुमार विपश्यी महापुरुषों के किन बत्तीस लक्षणों से युक्त है, जिन से समन्वित होने पर उस महापुरुष की दो गति होंगी, अन्य नहीं....पूर्ववत्.... अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है?

२०. 'देव! यह कुमार सुप्रतिष्ठितपाद (जिसका चरण पृथ्वी पर बराबर बैठता हो) है, यह भी देव! इस कुमार के महापुरुषलक्षणों में से एक है। (१)

[B.15] सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि। यं पि, देव, इमस्स कुमारस्स हेट्ठा पादतलेसु चक्कानि जातानि सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि, इदम्पिमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति। अयञ्हि, देव, कुमारो आयतपण्ही....पे०....। अयञ्हि देव, कुमारो दीघङ्गुली ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो मुदुतलुनहत्थपादो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो जालहत्थपादो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो उस्सङ्खपादो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो एणिजङ्घो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो ठितको व अनोनमन्तो उभोहि पाणितलेहि जण्णुकानि परामसति परिमज्जति....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो कोसोहितवत्थगुय्हो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो सुवण्णवण्णो कञ्चनसन्निभत्तचो [R.18]....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो सुखुमच्छवी। सुखुमत्ता छविया रजोजल्लं काये न उपलिप्पति ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो एकेकलोमो; एकेकानि लोमानि लोमकूपेसु जातानि ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो उद्धग्गलोमो; उद्धग्गानि लोमानि जातानि नीलानि अञ्जनवण्णानि कुण्डलावट्टानि दक्खिणावट्टकजातानि ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो ब्रह्मुजुगत्तो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो सत्तुस्सदो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो सीहपुब्बद्धकायो ....पे०....। अयञ्हि, देव, कुमारो चितन्तरंसो ....पे०....। अयञ्हि, देव, [N.16] कुमारो निग्रोधपरिमण्डलो। यावतक्वस्स कायो तावतक्वस्स ब्यामो, यावतक्वस्स ब्यामो

'इस कुमार के पैर के नीचे (तलवें में) सर्वाकारपरिपूर्ण नाभिनेमि (घुट्टी) वाले सहस्र आरों से युक्त चक्र का चिह्न है। (२)

'देव! यह कुमार आयतपार्ष्णि (चौड़ी एड़ी वाला) है ....। (३)

'....दीर्घ (लम्बी) अंगुलियाँ वाला है ....। (४)

'....मृदु एवं तरुण (कोमल) हाथ–पैर वाला है ....। (५)

'....जालहस्तपाद (अंगुलियों बीच में कोई छेद न दिखायी देता) है. ...। (६)

'....उत्शङ्खपाद (जिसके पैर में गुल्फ ऊपर अवस्थित) है ....। (७)

'....एणीजङ्घ (पिण्डलियों का भाग मृग जैसा) है ....। (८)

'....बिना झुके दोनों घुटनों को अपने हाथ के तलवे से छू लेता (= आजानुबाहु) है ....। (९)

'....इस की पुरुषेन्द्रिय वस्तिगुह्य (चर्म से आवृत) है ....। (१०)

'....इसका वर्ण एवं त्वचा भी सोने की तरह चमकीली है ....। (११)

'....इसके शरीर की आभा (छवि) सूक्ष्म मनोमोहक है ....। इसकी छवि के सूक्ष्म होने से इसके शरीर पर धूल नहीं जमती ....। (१२)

'....इसके एक एक रोमकूप मे एक एक ही रोम है ....। (१३)

'....इसके अञ्जनतुल्य काले एवं बाँए से दाहिनी तरफ घूमे हुए बाल है....। (१४)

'....यह लम्बे एवं सीधे शरीर वाला बनेगा ....। (१५)

'....यह सात अंगों में पूर्ण आकार वाला (सप्तोत्सद) है ....। (१६)

'....यह सिंह की तरह पूर्वार्ध (छाती आदि शरीर का ऊपरी भाग) वाला है ....। (१७)

'....इसके दोनों कन्धों के नीचे का भाग चित (पूर्ण) है ....। (१८)

'....इसके शरीर की लम्बाई चौड़ाई वट वृक्ष की तरह है ....। (१९)

'....यह समान परिमाण के कन्धे वाला है ....। (२०)

तावतक्रस्स कायो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो समवट्टक्खन्धो ....पे०.... । [B.16] अयञ्हि, देव, कुमारो रसग्गसग्गी ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो सीहहनु ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो चत्तालीसदन्तो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो समदन्तो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो अविरळदन्तो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो सुसुक्कदाठो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो पहूतजिव्हो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो ब्रह्मस्सरो करवीकभाणी ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो अभिनीलनेत्तो ....पे०.... । अयञ्हि, देव, कुमारो [R.19] गोपखुमो ....पे०.... । इमस्स, देव, कुमारस्स उण्णा भमुकन्तरे जाता ओदाता मुदुतूलसन्निभा। यं पि इमस्स, देव, कुमारस्स उण्णा भमुकन्तरे जाता ओदाता मुदुतूलसन्निभा, इदम्पिमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति।

अयञ्हि, देव, कुमारो उण्हीससीसो। यं पायं, देव, कुमारो उण्हीससीसो, इदम्पिमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति।

२१. "इमेहि खो अयं, देव, कुमारो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनञ्ञा—सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्तरतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्करतनं हत्थिरतनं अस्सरतनं मणिरतनं इत्थिरतनं गहपतिरतनं परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय [B.17] अज्झावसति। सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवटच्छदो' ति।

५. विपस्सी बोधिसत्तो

२२. " अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा नेमित्ते ब्राह्मणे अहतेहि वत्थेहि अच्छादापेत्वा सब्बकामेहि सन्तप्पेसि। अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिस्स कुमारस्स धातियो

'....यह सुन्दर सिराओं वाला है ....। (२१)
'....यह सिंह के समान पूरी ठोड़ी (हनु) वाला है ....। (२२)
'....इसके चवालीस (४४) दाँत है........। (२३)
'....इसके दाँत समान पंक्ति में हैं ....। (२४)
'....इसके दाँतों के बीच में स्थान रिक्त नहीं है ....। (२५)
'....इसके दंष्ट्राएँ (दाढ़) सफेद चमकीली है .....। (२६)
'....इसकी जिह्वा भी लम्बी है ......। (२७)
'....इसका स्वर भी करवीक (कोयल) पक्षी की तरह मधुर एवं गम्भीर है ....। (२८)
'....वह अलसी पुष्प के समान नीली आँखों वाला है ......। (२९)
'....इसकी आँखों की पक्ष्में (बाल) भी गाय के पक्ष्म की तरह हैं ......। (३०)
'....देव! इस कुमार की भौंहों के बीच में श्वेत कोमल कपासतुल्य ऊर्णा (सूक्ष्मरोम) है.....। (३१)
'....एवं इसका शिर सामने से उभरा हुआ है .....। (३२)
२१. "देव! यह भी इस कुमार के महापुरुष लक्षणों में से एक है। 'देव! यह कुमार महापुरुषों के

उपट्ठापेसि। अञ्ञा खीरं पायेन्ति, अञ्ञा न्हापेन्ति, अञ्ञा धारेन्ति, अञ्ञा अङ्केन परिहरन्ति। जातस्स खो पन, भिक्खवे, विपस्सिस्स कुमारस्स सेतच्छत्तं धारयित्थ, दिवा चेव रत्तिं च— [N.17] 'मा नं सीतं वा उण्हं वा तिणं वा रजो वा उस्सावो वा बाधयित्था' ति। जातो खो पन, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो बहुनो जनस्स पियो अहोसि मनापो। सेय्यथापि, भिक्खवे, उप्पलं [R.20] वा पदुमं वा पुण्डरीकं वा बहुनो जनस्स पियं होति मनापं एवमेव खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो बहुनो जनस्स पियो अहोसि मनापो। स्वास्सुदं अङ्केनेव अङ्कं परिहरियति।

"जातो खो पन, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो मञ्जुस्सरो च अहोसि वग्गुस्सरो च मधुरस्सरो च पेमनियस्सरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, हिमवन्ते पब्बते करवीका नाम सकुणजाति मञ्जुस्सरा च वग्गुस्सरा च मधुरस्सरा च पेमनियस्सरा च, एवमेव खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो मञ्जुस्सरो च अहोसि वग्गुस्सरो च मधुरस्सरो च पेमनियस्सरो च।

"जातस्स खो पन, भिक्खवे, विपस्सिस्स कुमारस्स कम्मविपाकजं दिब्बचक्खु पातुरहोसि, येन सुदं समन्ता योजनं पस्सति दिवा चेव रत्तिं च।

"जातो खो पन, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो अनिमिसन्तो पेक्खति सेय्यथापि देवा तावतिंसा। 'अनिमिसन्तो कुमारो पेक्खती' ति खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स कुमारस्स 'विपस्सी विपस्सी' त्वेव समञ्ञा उदपादि।

[B.18] २३. "अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा अत्थकरणे निसिन्नो विपस्सिं कुमारं अङ्के

इन बत्तीस लक्षणों से युक्त है जिनसे युक्त होने से पुरुष की दो ही गतियाँ होती हैं; तीसरी नहीं। यदि वह ....सम्यक्सम्बुद्ध होता है।

५. विपश्यी बोधिसत्त्व

२२. "भिक्षुओ! तब उस बन्धुमान् राजा ने उन विद्वान् ज्योतिषियों को, इन निमित्तों के वर्णन से प्रसन्न हो कर, नये-नये (अहत) बिना कटे-फटे वस्त्रों से आच्छादित कर सम्मानित किया। और उनकी अन्य सभी इच्छाएँ पूर्ण कीं। तब राजा बन्धुमान् विपक्षी कुमार की दाईयों (परिचारिकाओं) की नियुक्ति की। उनमें से कोई उन्हें दूध पिलाती थी, कोई नहलाती थी और कोई गोद में ले कर टहलाती थी। विपश्यी कुमार को जन्म काल से ही दिनरात श्वेत छत्र धारण कराया जाता था जिससे कि सर्दी-गर्मी, पत्ते-तिनके या धूल व ओस से उसकी रक्षा हो सके। विपश्यी कुमार अपने जन्म काल से ही, उसे देखने वाले सभी जनों को ऐसे ही प्रिय एवं मनोमोहक लगता था जैसे कि खिला हुआ लाल, नीला या श्वेत कमल का फूल। बहुप्रिय होने के कारण वह विपश्यी कुमार एक मनुष्य की गोद से दूसरे मनुष्य की गोद में पहुँचता रहता था।

"भिक्षुओ! वह विपश्यी कुमार जन्मकाल से ही कोमल मधुर एव प्रिय स्वर वाला था। जैसे, भिक्षुओ! हिमालय पर्वत में उत्पन्न कोयल जाति का पक्षी जन्म से ही कोमल मधुर एवं प्रिय स्वर वाला होता है, ऐसे ही वह विपश्यी कुमार भी कोमल मधुर तथा प्रिय स्वर (बोली) वाला था।

"भिक्षुओ! उस विपश्यी राजकुमार को अपने शुभ प्रारब्धवश जन्म काल में ही दिव्यचक्षु उत्पन्न हुआ, जिससे वह दिन या रात में अपने चारों तरफ एक योजन तक देख सकता था। (१)

"भिक्षुओं! वह विपश्यी राजकुमार अपने जन्म काल से ही त्रायस्त्रिंशवासी देवताओं की तरह पलक झपकाये बिना ही देखता था, अतः लोगों ने यह सोच कर कि यह तो बिना पलक झपकाये ही देखता है, अतः इसे 'विपश्यी' कहने लगे। अर्थात् लोगों ने उसका 'विपश्यी' नाम ही रख दिया। (२)

निसीदापेत्वा अत्थे अनुसासति। तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो पितुअङ्के [R.21] निसिन्नो विचेय्य विचेय्य अत्थे पनायति ञायेन। विचेय्य विचेय्य कुमारो अत्थे पनायति ञायेना ति खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स कुमारस्स भिय्योसोमत्ताय 'विपस्सी विपस्सी' त्वेव समञ्ञा उदपादि।

२४. ''अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिस्स कुमारस्स तयो पासादे कारापेसि— एकं वस्सिकं, एकं हेमन्तिकं, एकं गिम्हिकं; पञ्च कामगुणानि उपट्ठापेसि। तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो वस्सिके पासादे चत्तारो मासे निप्पुरिसेहि तुरियेहि परिचारियमानो न हेट्ठापासादं ओरोहती ति।

पठमभाणवारो ॥

चत्तारि निमित्तानि

२५. ''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सो कुमारो बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं [N.18] बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन सारथिं आमन्तेसि—'योजेहि, सम्म सारथि, भद्दानि भद्दानि यानानि; उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिदस्सनाया' ति। 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा भद्दानि भद्दानि यानानि योजेत्वा विपस्सिस्स कुमारस्स पटिवेदेसि—'युत्तानि खो ते, देव, भद्दानि भद्दानि यानानि। यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि उय्यानभूमिं निय्यासि।

---

२३. ''भिक्षुओ! बन्धुमान् राजा न्यायालय (अधिकरण) में जनता के अभियोग सुनते समय भी विपश्यी राजकुमार को अपनी गोद में ही बैठाये रखता था। तब वह कुमार पिता की गोद में बैठा हुआ विचार कर अभियोगों के निर्णयों में राजा को सहयोग करता था। यह देख कर भी जनता ने उस कुमार को विपश्यी, विपश्यी कहना प्रारम्भ कर दिया था। (३)

२४. ''कुछ समय बाद भिक्षुओ! उस बन्धुमान् राजा ने विपश्यी राजकुमार के निवास के लिये तीन राजप्रासाद बनवाये–एक वर्षा ऋतु (में वास) के लिये, एक हेमन्त (शीत) ऋतु (में वास) के लिये और एक ग्रीष्म ऋतु (में वास) के लिये। उन तीनों ही प्रासादों में पञ्च कामभोगों के लिये उपयुक्त सभी वस्तुएँ यथासमय उपलब्ध रहती थी। भिक्षुओ! वहाँ (उन प्रासादों में) उस राजकुमार की वर्षाकाल में चार मास तक निष्पुरुष (पुरुषरहित) केवल स्त्रियों द्वारा ही परिचर्या होती रहती थी, अतः उसे महल से नीचे आने की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

प्रथम भाणवार समाप्त॥

चार निमित्त (पूर्वलक्षण)–२५. ''भिक्षुओ! विपश्यी राजकुमार ने बहुत से वर्ष, बहुत से सौ वर्ष बहुत से हजार वर्ष बीत जाने पर एकदिन सारथि को बुलाकर आज्ञा दी–'सौम्य सारथि! अच्छे अच्छे (यात्रा योग्य) रथ सन्नद्ध करो। हमें उद्यानभूमि जाने की इच्छा है, वहाँ की रमणीयता देखने के लिये।' तब सारथि ने कुमार की आज्ञा शिरोधार्य कर 'अच्छा, देव!' कहते हुए अच्छे अच्छे (यात्रा योग्य) रथयान जुतवा कर कुमार से निवेदन किया–'देव! आप की (उद्यान भूमि की) यात्रा हेतु रथयान तय्यार कर लिये हैं। अब जैसा आप उचित समझें।' तब, भिक्षुओ! वह विपश्यी कुमार अच्छे से अच्छे एक यान पर चढ़ कर अच्छे–अच्छे रथों के साथ उद्यान भूमि की तरफ चल पड़ा।

(क) जिण्णो

[R.22] २६. "अद्दसा खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो पुरिसं जिण्णं [B.19] गोपानसिवङ्कं भोग्गं दण्डपरायनं पवेधमानं गच्छन्तं आतुरं गतयोब्बनं। दिस्वा सारथिं आमन्तेसि—'अयं पन, सम्म सारथि, पुरिसो किङ्कतो? केसा पिस्स न यथा अञ्ञेसं। कायो पिस्स न यथा अञ्ञेसं' ति।

'एसो खो, देव, जिण्णो नामा' ति।

'किं पनेसो, सम्म सारथि, जिण्णो नामा' ति?

'एसो खो, देव, जिण्णो नाम। न दानि तेन चिरं जीवितब्बं भविस्सती' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि जराधम्मो जरं अनतीतो' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे जराधम्मा जरं अनतीता' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याही' ति।

" 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासि। तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति—'धिरत्थु किर, भो, जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सती'!

२७. "अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा सारथिं आमन्तापेत्वा एतदवोच—'कच्चि, सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ? कच्चि, सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति?

(क) वृद्ध—२६. "तब भिक्षुओ! उद्यानभूमि की रमणीयता को देखने के निकले उस विपश्यी राजकुमार ने एक जीर्ण (पुराने), मकान की छत में लगी पुरानी कड़ी की तरह टेढ़े हुए, युवावस्था को भोग चुके, लाठी का सहारा लिये, काँपते हुए, रास्ता चलते रोगग्रस्त आदमी को देखा। उसे देखकर सारथि से पूछा—'सौम्य सारथि! इस पुरुष की यह दशा किस कारण हो गयी कि न तो इसके केश ही वैसे रह गये हैं जैसे अन्य साधारण पुरुषों के होते हैं और न ही इस का शरीर ही वैसा है जैसे कि अन्य साधारण पुरुषों का होता है?'

'देव! यह 'वृद्ध' (बूढ़ा) कहा जाता है।'

'भद्र सारथि! यह 'वृद्ध' क्या होता है?'

'देव! इसे लोग 'वृद्ध' कहते हैं। इसे अब बहुत दिन तक जीवित नहीं रहना है।'

'तो सौम्य सारथि! क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा? क्या यह सबके लिये अनिवार्य है?'

'हाँ देव! आपको,मुझको, सभी को एक न एक दिन इस जरा धर्म (बुढ़ापा) को प्राप्त होना ही है। कोई भी, जो पैदा हुआ है, इस जराधर्म से छुटकारा नहीं पा सकता।'

'तो सौम्य सारथि! अब उद्यानभूमि की तरफ न चलो। यहीं से रथ को अन्तःपुर की तरफ लौटा ले चलो।'

'भिक्षुओ! वह सारथि विपश्यी राजकुमार को अच्छा, देव! यों कह कर रथ को वहीं से पीछे की तरफ लौटा कर अन्तःपुर ले गया। तब, भिक्षुओ! वह विपश्यी राजकुमार अन्तःपुर में जा कर चिन्तित हो कर सोचने लगा—धिक्कार है यहाँ जन्म लेना! जब कि यहाँ जन्म ले कर सभी को बुड्ढा ही होना है।'

'न खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ। न खो, देव, कुमारो [N.19] उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अद्दस कुमारो उय्यानभूमिया निय्यन्तो' ति?

'अद्दसा खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया निय्यन्तो पुरिसं जिण्णं गोपानसिवङ्कं [R.23] भोग्गं दण्डपरायनं पवेधमानं गच्छन्तं आतुरं गतयोब्बनं। दिस्वा मं एतदवोच—अयं पन, सम्म सारथि, पुरिसो किङ्कतो, केसा पिस्स न यथा अञ्ञेसं, कायो पिस्स न यथा अञ्ञेसं ति?

'एसो खो, देव, जिण्णो नामा' ति?

'किं पनेसो, सम्म सारथि, जिण्णो नामा' ति?

'एसो खो, देव, जिण्णो नाम। न दानि तेन चिरं जीवितब्बं भविस्सती' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि जराधम्मो जरं अनतीतो' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे जराधम्मा जरं अनतीता ति। तेन हि, सम्म सारथि, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याही' ति।

'एवं, देवा' ति खो अहं, देव विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासिं। सो खो, देव, कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति—धिरत्थु किर, भो जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सती' ति!

२८. "अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमस्स रञ्ञो एतदहोसि—'मा हेव खो [B.20] विपस्सी कुमारो न रज्जं कारेसि, मा हेव विपस्सी कुमारो अगारस्मा अनगारियं पब्बजि, मा हेव नेमित्तानं ब्राह्मणानं सच्चं अस्स वचनं' ति! अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिस्स कुमारस्स भिय्योसोमत्ताय पञ्च कामगुणानि उपट्ठापेसि—'यथा विपस्सी कुमारो रज्जं करेय्य, यथा विपस्सी कुमारो न अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्य, यथा नेमित्तानं ब्राह्मणानं मिच्छा अस्स वचनं' ति।

(ख) व्याधितो

"तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो बहूनं वस्सानं ....पे०....।

२९. "अद्दसा खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो पुरिसं [R.24]

---

२७. "भिक्षुओ! कुछ देर बाद बन्धुमान् राजा ने सारथि को बुलाकर पूछा—'क्या सौम्य सारथि! कुमार का उद्यान भूमि की रमणीयता देखने में मन लगा?'

'नहीं, देव! कुमार का मन उद्यानभूमि की रमणीयता देखने में नहीं लगा।'

'क्यों, सौम्य सारथि! कुमार ने उद्यानभूमि की तरफ जाते हुए बीच में ऐसा क्या देख लिया था?'

'देव! उद्यानभूमि जाते हुए कुमार ने मार्ग में ....पूर्ववत्....जब सभी को बुड्ढा होना है।'

२८. "तब भिक्षुओ! बन्धुमान् राजा के मन में यह विचार उठा कि कहीं ऐसा न हो कि (ऐसी घटनाएँ देख-देख कर) विपश्यी कुमार का शासन करने में मन न लगे और वह घर छोड़ बेघर हो, प्रव्रजित हो जाय और उन नैमित्तिकों (ज्यौतिषियों) का कथन सत्य हो जाय! तब, भिक्षुओ! बन्धुमान् राजा ने विपश्यी कुमार के मनोविनोद के लिये और अधिक मनोरञ्जन के साधन (उसके महलों में) जुटा

आबाधिकं दुक्खितं बाळ्हगिलानं, सके मुत्तकरीसे पलिपन्नं सेमानं अञ्ञेहि वुट्ठापियमानं [N.20] अञ्ञेहि संवेसियमानं। दिस्वा सारथिं आमन्तेसि—'अयं पन, सम्म सारथि, पुरिसो किङ्कतो? अक्खीनि पिस्स न यथा अञ्ञेसं, सरो पिस्स न यथा अञ्ञेसं' ति?

'एसो खो, देव, ब्याधितो नामा' ति।

'किं पनेसो, सम्म सारथि, ब्याधितो नामा' ति?

'एसो खो, देव, ब्याधितो नाम। अप्पेव नाम तम्हा आबाधा वुट्ठहेय्या' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि ब्याधिधम्मो ब्याधिं अनतीतो' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे ब्याधिधम्मा ब्याधिं अनतीता' ति।

'तेन हि सम्म सारथि,अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याही' ति।

'एवं देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासि। तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति—'धिरत्थु किर भो जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सति, ब्याधि पञ्ञायिस्सती' ति!

३०. "अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा सारथिं आमन्तापेत्वा एतदवोच—'कच्चि, [B.21] सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ? कच्चि, सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति?

'न खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ। न खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति।

दिये कि इन में व्यस्त रह कर यह शासन में अपना मन लगाये और इस का ध्यान घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होने की तरफ न जाय कि उन ज्यौतिषियों का वचन सत्य हो जाय।

(ख) व्याधित (रोगी)—"भिक्षुओ! तब वह विपश्यी कुमार राजा बन्धुमान् द्वारा जुटाये गये मनोरञ्जन के साधनों के उपयोग में फिर लिप्त हो गया। इसी तरह कुछ समय बीता। तब एक दिन विपश्यी कुमार बहुत वर्षों ....पूर्ववत्....उद्यानभूमि की रमणीयता के दर्शनहेतु निकल पड़ा।

२९. "भिक्षुओ! तब उद्यानयात्रा करते समय विपश्यी कुमार ने एक ऐसे पुरुष को देखा जो अपने ही मल–मूत्र में लिपटा पड़ा था, दूसरे लोग उसे उठा–बैठा रहे थे, स्वयं अपनी क्रियाएँ करने में असमर्थ था, वह बहुत दुःखी दीख रहा था। उसे देख कर विपश्यी कुमार ने सारथि से पूछा–'सौम्य सारथि! इस पुरुष को क्या हो गया है? इसकी आँखे भी अन्य साधारण पुरुषों की तरह नहीं दिखायी देती? न इसका स्वर ही अन्य पुरुषों की तरह सामान्य सुनायी दे रहा है?"

'देव! यह मनुष्य रोगी है।'

'रोगी क्या होता है?'

'देव! यह रोगग्रस्त हो चुका है। इस रोग से इसका छुटकारा पाना संशयास्पद ही है।'

'क्या मैं भी कभी रोगी हो सकता हूँ? क्या रोग होना सभी के लिये अनिवार्य है?'

'हाँ, देव! आप मैं और सभी लोग एक न एक दिन रोगग्रस्त होंगे ही। यह रोगी होना सभी के लिये अनिवार्य है।'

'तो सौम्य सारथि! आज आगे उद्यानभूमि की तरफ जाना रोक दो। वापस अन्तःपुर लौट चलो।'

'किं पन, सम्म सारथि, अद्दस कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो' ति?

'अद्दसा खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो पुरिसं आबाधिकं दुक्खितं [R.25] बाळ्हगिलानं, सके मुत्तकरीसे पलिपन्नं सेमानं अञ्ञेहि वुट्ठापियमानं अञ्ञेहि संवेसियमानं। दिस्वा मं एतदवोच—अयं पन, सम्म सारथि, पुरिसो किङ्कतो, अक्खीनि पिस्स न यथा अञ्ञेसं, सिरो पिस्स न यथा अञ्ञेसं' ति?

'एसो खो, देव, ब्याधितो नामा' ति।

'किं पनेसो, सम्म सारथि, ब्याधितो नामा' ति?

'एसो खो, देव, ब्याधितो नाम। अप्पेव नाम तम्हा आबाधा वुट्ठहेय्या' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि ब्याधिधम्मो ब्याधिं अनतीतो' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे ब्याधिधम्मा ब्याधिं अनतीता' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्च-[N.21] निय्याही' ति।

'एवं, देवा ति खो अहं, देव, विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासिं। सो खो, देव, कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति—धिरत्थु किर, भो, जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सति, ब्याधि पञ्ञायिस्सती' ति!

३१. ''अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमस्स रञ्ञो एतदहोसि—'मा हेव खो विपस्सी कुमारो न रज्जं कारेसि, मा हेव खो विपस्सी कुमारो अगारस्मा अनगारियं पब्बजि, मा हेव नेमित्तानं ब्राह्मणानं सच्चं अस्स वचनं' ति। अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिस्स कुमारस्स भिय्योसोमत्ताय पञ्च कामगुणानि उपट्ठापेसि—'यथा विपस्सी कुमारो रज्जं करेय्य, यथा विपस्सी कुमारो न अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्य, यथा नेमित्तानं ब्राह्मणानं मिच्छा अस्स वचनं' ति।

''तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो बहूनं वस्सानं ....पे०....।

(ग) कालङ्कतो

३२. ''अद्दसा खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो महाजन-[B.22] कायं सन्निपतितं नानारत्तानं च दुस्सानं विलातं कयिरमानं। दिस्वा सारथिं आमन्तेसि—[R.26]

'अच्छा, देव! कह कर सारथि ने रथ को पुनः (प्रासाद के) अन्तःपुर में ही पहुँचा दिया। वहाँ विपश्यी कुमार ने विचार किया....रोगी होना सभी के लिये अनिवार्य है।'

३०–३१. ''भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजा ने ....पूर्ववत् ....ज्यौतिषियों का वचन सत्य न हो जाय।

''भिक्षुओ! तब विपश्यीकुमार राजा बन्धुमान् द्वारा जुटाये गये मनोरञ्जन के साधनों के उपयोग में और अधिक लिप्त हो गया। इसी तरह कुछ समय और व्यतीत हुआ। तब एक दिन विपश्यी कुमार बहुत वर्षों ....पूर्ववत्....उद्यानभूमि की रमणीयता के दर्शनहेतु निकल पड़ा।

(ग) कालकृत (मृत)—३२. ''तब भिक्षुओ! उद्यानभूमि की तरफ जाते हुएं विपश्यी कुमार ने मार्ग में एक स्थान पर ऐसा जनसमूह देखा जो नानाप्रकार के रंग-बिरंगे कपड़ों से अर्थी (शव ले जाने का साधन)

'किं नु खो सो, सम्म सारथि, महाजनकायो सन्निपतितो नानारत्तानं च दुस्सानं विलातं कयिरती' ति?

'एसो खो, देव, कालङ्कतो नामा' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, येन सो कालङ्कतो तेन रथं पेसेही' ति।

''' एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा येन सो कालङ्कतो तेन रथं पेसेसि। अद्दसा खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो पेतं कालङ्कतं। दिस्वा सारथिं आमन्तेसि—'किं पनायं, सम्म सारथि, कालङ्कतो नामा' ति?

'एसो खो, देव, कालङ्कतो नाम। न दानि तं दक्खन्ति माता वा पिता वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता। सो पि न दक्खिस्सति मातरं वा पितरं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति।

[N.22] 'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि मरणधम्मो मरणं अनतीतो; मं पि न दक्खन्ति देवो वा देवी वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता; अहं पि न दक्खिस्सामि देवं वा देविं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे मरणधम्मा मरणं अनतीता; तं पि न दक्खन्ति देवो वा देवी वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता; त्वं पि न दक्खिस्ससि देवं वा देविं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याही' ति।

'''एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासि। तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति—'धिरत्थु किर, भो, जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सति, ब्याधि पञ्ञायिस्सति, मरणं पञ्ञायिस्सती' ति!

सजा रहे थे। उसे देख कर कुमार ने अपने सारथि से पूछा—'सौम्य सारथि! ये इतने आदमियों का समूह एकत्र हो कर इन नाना प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़ों से अर्थी क्यों बना रहा है?'

'देव! यह एक आदमी मर गया है।'

'तो, सौम्य सारथि! जहाँ यह आदमी मरा पड़ा है, हमारा रथ वहाँ ले चलो।'

'ठीक है देव!' कह कर सारथि ने विपश्यी कुमार के रथ को उस शव (मृतक) के पास पहुँचा दिया। विपश्यी कुमार ने उस शव को देखा (उसे) देख कर उसने सारथि से फिर पूछा—'यह शव क्या चीज है?'

'देव! यह मर गया है, अब आज के बाद उसे उसके माता-पिता कभी नहीं देख पायेंगे, न उसके ज्ञाति-परिजन ही। और वह भी इन अपने माता-पिता एवं ज्ञाति-परिजनों को नहीं देख पायगा।

'तो क्या, सौम्य सारथि! मैं भी मर जाऊँगा? क्या यह मरण सब के लिये अनिवार्य हैं? क्या मुझे भी मेरे माता-पिता या ज्ञाति-परिजन नहीं देख पायेंगे। या मैं उन्हें नहीं देख पाऊँगा?'

'हाँ, देव! आप या मैं सभी को एक दिन मरना ही है। सभी का माता-पिता एवं ज्ञाति-परिजनों से वियोग होगा ही।'

'तो, सौम्य सारथि! अब आगे उद्यान की यात्रा स्थगित करो। पुनः अन्तःपुर लौट चलो।'

३३. "अथ खो,भिक्खवे, बन्धुमा राजा सारथिं आमन्तापेत्वा एतदवोच—'कच्चि, सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ? कच्चि, सम्म सारथि, कुमारो उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति?

'न खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया अभिरमित्थ। न खो, देव, कुमारो [R.27] उय्यानभूमिया अत्तमनो अहोसी' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अद्दस कुमारो उय्यानभूमिया निय्यन्तो' ति?

'अद्दसा खो, देव, कुमारो उय्यानभूमिया निय्यन्तो महाजनकायं सन्निपतितं नानारत्तानं च दुस्सानं विलातं कयिरमानं। दिस्वा मं एतदवोच—किं नु खो सो, सम्म सारथि, [B.23] महाजनकाया सन्निपतितो नानारत्तानं च दुस्सानं विलातं कयिरती' ति?

'एसो खो, देव, कालङ्कतो नामा' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, येन सो कालङ्कतो तेन रथं पेसेही' ति।

'एवं देवा' ति खो अहं, देव, विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा येन सो कालङ्कतो तेन रथं पेसेसिं। अद्दसा खो, देव, कुमारो पेतं कालङ्कतं। दिस्वा मं एतदवोच—किं पनायं, सम्म सारथि, कालङ्कतो नामा ति?

'एसो खो, देव, कालङ्कतो नाम। न दानि तं दक्खन्ति माता वा पिता वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता। सो पि न दक्खिस्सति मातरं वा पितरं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति।

'किं पन, सम्म सारथि, अहं पि मरणधम्मो मरणं अनतीतो; मं पि न [N.23] दक्खन्ति देवो वा देवी वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता; अहं पि न दक्खिस्सामि देवं वा देविं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति?

'त्वञ्च, देव, मयञ्चम्ह सब्बे मरणधम्मा मरणं अनतीता; तं पि न दक्खन्ति देवो वा देवी वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिता, त्वं पि न दक्खिस्ससि देवं वा देविं वा अञ्ञे वा ञातिसालोहिते' ति।

'तेन हि, सम्म सारथि, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याही' ति।

'एवं, देवा' ति खो अहं, देव, विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासिं। सो खो, देव, कुमारो अन्तेपुरं गतो दुक्खी दुम्मनो पज्झायति —'धिरत्थु किर, भो, जाति नाम, यत्र हि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सति, ब्याधि पञ्ञायिस्सति, मरणं पञ्ञायिस्सती' ति!

३४. "अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमस्स रञ्ञो एतदहोसि—'मा हेव खो विपस्सी कुमारो न रज्जं कारेसि, मा हेव खो विपस्सी कुमारो अगारस्मा अनगारियं पब्बजि, मा [R.28] हेव खो नेमित्तानं ब्राह्मणानं सच्चं अस्स वचनं' ति। अथ खो, भिक्खवे, बन्धुमा राजा विपस्सिस्स कुमारस्स भिय्योसोमत्ताय पञ्च कामगुणानि उपट्ठापेसि—'यथा विपस्सी कुमारो

'अच्छा देव!' –कह कर सारथि ....पूर्ववत्....ज्यौतिषियों का वचन मिथ्या हो जाय।

रज्जं करेय्य, यथा विपस्सी कुमारो न अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्य, यथा नेमित्तानं ब्राह्मणानं मिच्छा अस्स वचनं' ति।

(घ) पब्बजितो

''तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो [B.24] परिचारेति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन सारथिं आमन्तेसि—'योजेहि, सम्म सारथि, भद्दानि भद्दानि यानानि; उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिदस्सनाया' ति। 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा भद्दानि भद्दानि यानानि योजेत्वा विपस्सिस्स कुमारस्स पटिवेदेसि—'युत्तानि खो ते, देव, भद्दानि भद्दानि यानानि; यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि उय्यानभूमिं निय्यासि।

३५. ''अद्दसो खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो उय्यानभूमिं निय्यन्तो पुरिसं भण्डुं [N.24] पब्बजितं कासायवसनं। दिस्वा सारथिं आमन्तेसि—'अयं पन, सम्म सारथि, पुरिसो किङ्कतो? सीसं पिस्स न यथा अञ्ञेसं, वत्थानि पिस्स न यथा अञ्ञेसं' ति?

'एसो खो, देव, पब्बजितो नामा' ति।

'किं पनेसो, सम्म सारथि, पब्बजितो नामा' ति?

'एसो खो, देव, पब्बजितो नाम साधु धम्मचरिया, साधु समचरिया, साधु कुसलचरिया, साधु पुञ्ञकिरिया, साधु अविहिंसा, साधु भूतानुकम्पा' ति।

[R.29] 'साधु खो सो, सम्म सारथि, पब्बजितो नाम; साधु, सम्म सारथि, धम्मचरिया, साधु समचरिया, साधु कुसलचरिया, साधु पुञ्ञकिरिया, साधु अविहिंसा, साधु भूतानुकम्पा ति। तेन हि, सम्म सारथि, येन सो पब्बजितो तेन रथं पेसेही' ति।

(घ) प्रव्रजित (साधु)—''भिक्षुओ! तब विपश्यी कुमार अपने पिता राजा बन्धुमान् द्वारा जुटाये गये मनोविनोद के साधनों से अपना मनोरञ्जन करने लगा। भिक्षुओ! यों, बहुत से वर्ष व्यतीत होने के बाद, कुमार ने एक दिन सारथि को बुलाया और कहा—'सौम्य सारथि! ....उद्यानभूमि के लिये चल पड़ा।

३५. ''भिक्षुओ! उद्यानभूमि की तरफ जाते हुए विपश्यी कुमार ने एक स्थान पर किसी मुण्डित, काषायवस्त्रधारी, प्रव्रजित (साधु—सन्त) को देखा। देख कर कुमार ने सारथि से पूछा—'सौम्य! यह पुरुष कौन है? इस का शिर भी मुंडा हुआ है और इसके वस्त्र भी काषाय हैं, दूसरों के जैसे नहीं ? 'देव! यह प्रव्रजित है ।'

'यह प्रव्रजित क्या होता है?'

'देव! यह पुरुष अच्छे धर्माचरण, शान्ति, सत्कर्म, पुण्यसञ्चय, अहिंसा एवं भूतों पर अनुकम्पा हेतु प्रव्रजित हो (संसार—त्याग) चुका है।' 'तो सौम्य! मेरा रथ इस प्रव्रजित के पास ले चलो।'

'अच्छा, देव!' कह कर सारथि रथ को प्रव्रजित के पास ले गया। तब भिक्षुओ! विपश्यी कुमार ने उस प्रव्रजित से पूछा—'सौम्य! आप कौन हैं? आप का शिर....आप के वस्त्र ....?'

'देव! मैं प्रव्रजित हूँ मेरी धर्मचर्या, समचर्या, कुशलचर्या, अहिंसा, भूतों पर दया—ये सभी साधु (शुद्ध) हैं।

" 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि, विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा येन सो पब्बजितो तेन रथं पेसेसि। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो तं पब्बजितं एतदवोच—'त्वं पन, सम्म, किङ्कतो? सीसं पिस्स ते न यथा अञ्ञेसं, वत्थानि पि ते न यथा अञ्ञेसं' ति?

'अहं खो, देव, पब्बजितो नामा' ति।

'किं पन त्वं, सम्म, पब्बजितो नामा' ति?

'अहं खो, देव, पब्बजितो नाम; साधु धम्मचरिया, साधु समचरिया, साधु कुसलचरिया, साधु पुञ्ञकिरिया, साधु अविहिंसा, साधु भूतानुकम्पा' ति।

'साधु खो त्वं, सम्म, पब्बजितो नाम; साधु धम्मचरिया, साधु समचरिया, साधु कुसलचरिया, साधु पुञ्ञकिरिया, साधु अविहिंसा, साधु भूतानुकम्पा' ति।

३६. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी कुमारो सारथिं आमन्तेसि—'तेन हि, [B.25] सम्म सारथि, रथं आदाय इतो व अन्तेपुरं पच्चनिय्याहि। अहं पन इधेव केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगरियं पब्बजिस्सामी' ति। 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, सारथि विपस्सिस्स कुमारस्स पटिस्सुत्वा रथं आदाय ततो व अन्तेपुरं पच्चनिय्यासि। विपस्सी पन कुमारो तत्थेव केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि।

महाजनकायो विपस्सिं अनुपब्बजि

३७. "अस्सोसि खो, भिक्खवे, बन्धुमतिया राजधानिया महाजनकायो [N.25] चतुरासीति पाणसहस्सानि—'विपस्सी किर कुमारो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि [R.30] वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो' ति। सुत्वान तेसं एतदहोसि—'न हि नून सो ओरको धम्मविनयो, न सा ओरका पब्बज्जा, यत्थ विपस्सी कुमारो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। विपस्सी पि नाम कुमारो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति, किमङ्गं पन मयं' ति!

"अथ खो, सो भिक्खवे, महाजनकायो चतुरासीति पाणसहस्सानि केसमस्सुं ओहारेत्वा

'हाँ,सौम्य! आपकी धर्मचर्या....सभी साधु है।'

३६. ''भिक्षुओ! तब विपश्यी कुमार ने अपने सारथि से कहा—'सौम्य सारथि! तुम यहाँ से रथ लेकर वापस अन्तःपुर लौट जाओ। मैं तो यहीं से दाढ़ी–मूँछ मुँडवा कर, काषाय वस्त्र पहन कर घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' भिक्षुओ! तब सारथि विपश्यी कुमार को 'अच्छा देव' कहते हुए रथ लेकर वापस अन्तःपुर लौट गया। उधर विपश्यी कुमार वहीं दाढ़ी–मूँछ मुँडवा कर काषाय वस्त्र पहन कर गृहत्याग का सङ्कल्प कर प्रव्रजित हो गया।

बन्धुमती–वासियों की भी प्रव्रज्या—३७. ''भिक्षुओ! उस समय बन्धुमती राजधानी के वासी चौरासी हजार मनुष्यों ने सुना—'विपश्यी राजकुमार.....प्रव्रजित हो गया।' यह सुन कर उन्होंने सोचा—'वह धर्म–मार्ग साधारण नहीं होगा, और वह प्रव्रज्या भी साधारण नहीं होगी, जिसको विपश्यी राजकुमार ने स्वीकार किया है। जब विपश्यी कुमार ही .....प्रव्रजित हो गये तो अब हम लोगों के लिये क्या बचा है!'

कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा विपस्सिं बोधिसत्तं अगारस्मा अनगारियं पब्बजितं अनुपब्बजिंसु। ताय सुदं, भिक्खवे, परिसाय परिवुतो विपस्सी बोधिसत्तो गामनिगमजनपदराजधानीसु चारिकं चरति।

३८. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'न खो पनेतं पतिरूपं योहं आकिण्णो विहरामि। यन्नूनाहं एको गणम्हा वूपकट्ठो विहरेय्यं' ति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी बोधिसत्तो अपरेन समयेन एको [B.26] गणम्हा वूपकट्ठो विहासि। अञ्ञेनेव मग्गेन तानि चतुरासीति पब्बजितसहस्सानि अगमंसु, अञ्ञेन मग्गेन विपस्सी बोधिसत्तो।

विपस्सिस्स ञाणपटिवेधो (पटिच्चसमुप्पादो)

३९. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स वासूपगतस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'किच्छं वतायं लोको आपन्नो, जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च। अथ च पनिमस्स दुक्खस्स निस्सरणं नप्पजानाति [R.31] जरामरणस्स। कुदास्सु नाम इमस्स दुक्खस्स निस्सरणं पञ्ञायिस्सति जरामरणस्सा' ति?

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति जरामरणं होति, किं पच्चया जरामरणं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो सति जरामरणं होति, जातिपच्चया जरामरणं' ति। (१)

[N.26] "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति

"तब, भिक्षुओ! उन चौरासी हजार मनुष्यों ने भी ....विपश्यी बोधिसत्त्व से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उस चौरासी हजार भिक्षुओं की परिषद् से घिरे हुए विपश्यी बोधिसत्त्व ग्राम, निगम, जनपद राजधानियों में क्रमशः चारिका करने लगे।

३८. तब,भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व के एकान्त में ध्यानमग्न होने पर यह बात विचार में आयी –'यह अब मुझे शोभा नहीं देता कि मैं अब आगे भी समूह से घिरा हुआ चारिका करूँ, क्यों न मैं आज से एकाकी रह कर साधनारत रहूँ!' तब वे विपश्यी बोधिसत्त्व गण (सङ्घ) से पृथक् हो कर एकाकी चारिका करने लगे। वे चौरासी हजार प्रव्रजित एक तरफ गये तो विपश्यी बोधिसत्त्व दूसरी तरफ चल दिये।

विपश्यी को बुद्धत्वप्राप्ति (प्रतीत्य समुत्पाद)–३९. "तब, भिक्षुओ! कुटिया में एकान्त में ध्यानमग्न बैठे विपश्यी बोधिसत्त्व के मन में यह विचार उठा–"यह संसार कितने अधिक दु:खो के जंगल में फँसा पड़ा है। यहाँ कोई जन्म लेता है तो कोई मरता है। कोई वृद्ध है तो कोई रोगी। कोई मर रहा है तो कोई फिर जन्म ले रहा है। परन्तु इस जरा–मरण रूपी दु:ख से छूटने का उपाय कोई भी नहीं जानता। इस जरा–मरण रूपी दु:ख से छूटने का उपाय कैसे जाना जाय।'

"तब, भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व यों चिन्तन करने लगे–'किस के होने पर यह जरा–मरण होता है, और किस हेतु (प्रत्यय) से यह जरा–मरण होता है? चिन्तन करते–करते उन्हें बोध हुआ कि यह जरा–मरण जाति (जन्म) होने पर होता है। यों जन्म ही इस जरा–मरण का हेतु है। (१)

जाति होति, किंपच्चया जाती' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'भवे खो सति जाति होति, भवपच्चया जाती' ति।(२)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति भवो होति, किंपच्चया भवो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'उपादाने खो सति भवो होति, उपादानपच्चया भवो' ति। (३)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति उपादानं होति, किंपच्चया उपादानं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'तण्हाय खो सति उपादानं होति, तण्हापच्चया उपादानं' ति। (४)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति तण्हा होति, किंपच्चया तण्हा' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स [B.27] योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'वेदनाय खो सति तण्हा होति, वेदनापच्चया तण्हा' ति। (५)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति वेदना होति, किंपच्चया वेदना' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स [R.32] योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'फस्से खो सति वेदना होति, फस्सपच्चया वेदना' ति। (६)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति फस्सो होति, किंपच्चया फस्सो' ति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सळायतने खो सति होति, सळायतनपच्चया फस्सो' ति। (७)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति सळायतनं होति, किंपच्चया सळायतनं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स

"भिक्षुओ! ....क्यों होने से जन्म होता है? किस हेतु (प्रत्यय) से जन्म होता है? ....तब उन्हें ज्ञान हुआ–भव (आवागमन) के होने से 'जन्म' होता है, भव के हेतु से जन्म होता है। (२)

"....ज्ञान हुआ–उपादान (परिग्रह) होने से 'भव' होता है, उपादान के हेतु से भव होता है। (३)

"....ज्ञान हुआ–तृष्णा के होने से 'उपादान' होता है, तृष्णा के हेतु से उपादान होता है। (४)

"....ज्ञान हुआ–वेदना (अनुभव) के होने से 'तृष्णा' होती है, वेदना के हेतु से तृष्णा होती है। (५)

"....ज्ञान हुआ–स्पर्श (इन्द्रिय–विषय संयोग) के होने से 'वेदना' होती है। स्पर्श के हेतु से वेदना[1] होती है। (६)

"....ज्ञान हुआ–छह आयतन के होने से 'स्पर्श' होता है। षडायतन केहेतु से 'स्पर्श' होता है। (७)

---

१. इन्द्रिय और विषय के संस्पर्श (संयोग) से चित्त में उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख आदि विकारों का उत्पाद (अनुभव) ही 'वेदना' है।

योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो सति सळायतनं होति, नामरूपपच्चया सळायतनं' ति। (८)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति नामरूपं होति, किंपच्चया नामरूपं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'विञ्ञाणे खो सति नामरूपं होति, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं' ति। (९)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति [N.27] विञ्ञाणं होति, किंपच्चया विञ्ञाणं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो सति विञ्ञाणं होति, नामरूपपच्चया विञ्ञाणं' ति। (१०)

४०. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'पच्चुदावत्तति खो इदं विञ्ञाणं नामरूपम्हा, नापरं गच्छति। एत्तावता जायेथ वा जिय्येथ वा मिय्येथ वा चवेथ [B.28] वा उपपज्जेथ वा, यदिदं नामरूपपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूप- [R.33] पच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति'।

४१. "समुदयो समुदयो ति खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि।

"....नाम-रूप के होने से 'षडायतन'[१] होता है। नाम-रूप के हेतु से 'षडायतन' होता है। (८)

".....विज्ञान के होने से 'नामरूप' होता है। विज्ञान के हेतु से 'नामरूप' होता है। (९)

"....नामरूप के होने पर 'विज्ञान' होता है। नामरूप के हेतु से 'विज्ञान' उत्पन्न होता है। (१०)

४०. "भिक्षुओ! तब विपश्यी बोधिसत्त्व के मन में यह विचार हुआ-'यह विज्ञान नाम-रूप से पुनः पीछे की तरफ लौटना प्रारम्भ होता है। इस से आगे यह क्रम नहीं जाता। इतने से (उपर्युक्त क्रम में आबद्ध हो कर) ही सब जन्म लेते हैं, मरते है, च्युत होते हैं, फिर उत्पन्न होते हैं। जो यह-नामरूप-प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय (हेतु, अपेक्षा) से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से षडायतन, षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान, के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म) और जाति के प्रत्यय से ही जरामरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास की उत्पत्ति होती है। यों इस समग्र दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति (=समुदय) होती है।

४१. "यों, भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व को 'समुदय' 'समुदय' शब्द,जो अभी तक उसने विद्वानों से बार-बार सुन ही रखा था, या फिर शास्त्रों में जहाँ-तहाँ पढ़ रखा था-के विषय में गम्भीर विचार करने पर यही उपर्युक्त बात समझ में आयी, यह ज्ञान हुआ यह प्रज्ञा उत्पन्न हुई, यह विद्या (बोध) उत्पन्न हुई, उसकी आँखों के सामने नया प्रकाश कोंध गया। यों, उस के धर्मचक्षु खुल गये।

१. चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन— ये छह इन्द्रियाँ ही छह आयतन होते हैं।

४२. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जरामरणं न होति, किस्स निरोधा जरामरणनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो असति जरामरणं न होति, जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो' ति। (१)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जाति न होति, किस्स निरोधा जातिनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'भवे खो असति जाति न होति, भवनिरोधा जातिनिरोधो' ति। (२)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति भवो न होति, किस्स निरोधा भवनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'उपादाने खो असति भवो न होति, उपादाननिरोधा भवनिरोधो' ति। (३)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति उपादानं न होति, किस्स निरोधा उपादाननिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, [B.29] विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'तण्हाय खो [N..28] असति उपादानं न होति, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो' ति। (४)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति तण्हा न होति, किस्स निरोधा तण्हानिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स [R.34] बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'वेदनाय खो असति तण्हा न होति, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो' ति। (५)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति वेदना न होति, किस्स निरोधा वेदनानिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स

---

४२. "इसके बाद, भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व के मन में यह विचार आया—'क्या न होने पर यह जरामरण न हो, किस हेतु किस प्रत्यय से इस जरा-मरण का निरोध हो पाता है?'

"तब, भिक्षुओ! उस विपश्यी बोधिसत्त्व को, इस विषय में सूक्ष्म विचार करने पर यह बोध (प्रज्ञा) हुआ –जन्म के न होने पर जरामरण नहीं हो पाता, अर्थात् जन्म के निरोध से जरामरण का निरोध पूर्णतः सम्भव है। (१)

"....भव के न होने पर जन्म नहीं हो पाता, अर्थात् भव का निरोध हो जाने पर जन्म का निरोध तो अवश्यम्भावी है। (२)

"....उपादान के न होने पर 'भव' नही हो पाता, अर्थात् उपादान के निरोध से भव का निरोध भी अवश्य होगा। (३)

"....तृष्णा के न होने पर 'उपादान' नहीं होता अर्थात् तृष्णा के निरोध से ही उपादान का निरोध सम्भव होगा। (४)

"....वेदना के न होने पर 'तृष्णा' नहीं होती। अर्थात् वेदना के निरोध से ही तृष्णानिरोध सम्भव है। (५)

योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'फस्से खो असति वेदना न होति, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो' ति। (६)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति फस्सो न होति, किस्स निरोधा फस्सनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सळायतने खो असति फस्सो न होति, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो' ति। (७)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति सळायतनं न होति, किस्स निरोधा सळायतननिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो असति सळायतनं न होति, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो' ति। (८)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति नामरूपं न होति, किस्स निरोधा नामरूपनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'विञ्ञाणे खो असति नामरूपं न होति, विञ्ञाणनिरोधो नामरूपनिरोधो' ति। (९)

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति विञ्ञाणं न होति, किस्स निरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स [B.30] बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो असति विञ्ञाणं न होति, नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति। (१०)

४३. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'अधिगतो खो [R.35] म्यायं मग्गो सम्बोधाय यदिदं—नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा [N.29] नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो,

"....स्पर्श के न होने से 'वेदना' नहीं होती, अर्थात् स्पर्श के निरोध से वेदना का अभाव भी अवश्यम्भावी है। (६)

"....छह आयतनों के संयम (निरोध) से 'स्पर्श' भी नहीं होता, अर्थात् इन छह आयतनों का निरोध होने पर 'स्पर्श' का होना असम्भव है। (७)

"नामरूप के न होने से उक्त 'छह आयतन' भी नहीं होंगे। अर्थात् नामरूप-निरोध से ही छह आयतनों का निरोध सम्भव है। (८)

"...विज्ञान के निरोध से 'नामरूप' का भी निरोध हो जायगा। अर्थात् विज्ञान के निरोध से ही नामरूप-निरोध सम्भव है। (९)

"....नामरूप के न होने से 'विज्ञान' भी नहीं होता। अर्थात् नामरूप-निरोध से ही विज्ञान का निरोध सम्भव है। (१०)

४३. "तब भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व को, इतने सूक्ष्म चिन्तन के बाद, यह समझ में आया कि 'मैने (इस संसार से) मुक्ति का मार्ग अन्त में जान ही लिया। वह यह है—नामरूपनिरोध से विज्ञान का निरोध. विज्ञान के निरोध से नामरूपनिरोध, नामरूपनिरोध से छह आयतनों का निरोध, छह आयतनों के निरोध से स्पर्शनिरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना-निरोध से तृष्णानिरोध, तृष्णानिरोध

फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति'।

४४. ''निरोधो निरोधो ति खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि।

४५. ''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी बोधिसत्तो अपरेन समयेन पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सी विहासि—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना, इति वेदनाय समुदयो, इति वेदनाय अत्थङ्गमो; इति सञ्ञा, इति सञ्ञाय समुदयो, इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो; इति सङ्खारा, इति सङ्खारानं समुदयो, इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो; इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। तस्स पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिनो विहरतो न चिरस्सेव अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्ची ति।

दुतियभाणवारो ॥

६. विपस्सी भगवा सम्मासम्बुद्धो

ब्रह्मयाचनकथा

४६. ''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं धम्मं देसेय्यं' ति। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो [B.31, R.36] सम्मासम्बुद्धस्स एतदहोसि—'अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो

से उपादान का निरोध, उपादाननिरोध से भव का निरोध, भवनिरोध से जन्म का निरोध। यों, जन्म का निरोध होने से उस जन्म के कारण उत्पन्न होने वाले जरा, मरण, शोक, परिदेव, दु:ख, दौर्मनस्य एवं उपायास–इन सभी का उत्पाद असम्भव है। इस तरह (ही) इस समग्र दु:खस्कन्ध का नाश (निरोध) सम्भव है।'

४४. ''यों, भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व को 'निरोध' 'निरोध' शब्द,जो अभी तक विद्वानों से ही बार बार सुना था, या फिर शास्त्रों में जहाँ–तहाँ पढ़ा था, के विषय में गम्भीर चिन्तन करने पर ....पूर्ववत्....उसके धर्मचक्षु खुल गये।

४५. ''तब भिक्षुओ! विपश्यी बोधिसत्त्व ने, दूसरे समय, पाँच उपादानस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान) की उदय (उत्पत्ति) एवं व्यय (नाश) के विषय में इसी तरह सूक्ष्म चिन्तन किया। जैसे– 'यह रूप है', 'यह रूप का उदय है', 'यह रूप का अस्त (विनाश) हो जाना' है, 'यह वेदना है', 'यह संज्ञा है'....., 'यह संस्कार है...., एवं 'यह विज्ञान है', 'यह विज्ञान का उदय है' और 'यह विज्ञान का नाश है'। यों इन पञ्च उपादानस्कन्धों के उत्पत्ति एवं नाश पर विचार करते–करते परिणामस्वरूप उस विपश्यी बोधिसत्त्व का चित्त आश्रवों (चित्त–विकारों) से पूर्णत: मुक्त हो गया।

द्वितीय भाणवार समाप्त।।

६. विपश्यी भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध

ब्रह्मयाचनकथा– ४६. ''तब, भिक्षुओ! भगवान् विपश्यी अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ–'मुझे इस साक्षात्कृत धर्म का उपदेश दूसरों को भी करना चाहिये!' परन्तु विचार करते–करते

पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो; आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्चसमुप्पादो। इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहञ्चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं— सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा' ति।

[N.30] ४७. ''अपिस्सु, भिक्खवे, विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा—

'किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
'पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा' ति॥

''इति ह, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय।

४८. ''अथ खो, भिक्खवे, अञ्ञतरस्स महाब्रह्मुनो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो [R.37] सम्मासम्बुद्धस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि—'नस्सति वत भो लोको, विनस्सति वत भो लोको, यत्र हि नाम विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

भगवान् को यह लगा— 'मैंने इस गम्भीर, कठिनाई से साक्षात्करणीय, दुर्ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क की सीमा से दूर, निपुण, पण्डितों (विद्वानों) द्वारा ही समझने योग्य धर्म (का ज्ञान) प्राप्त किया है। और ये सांसारिकजन भोगों (आलय) में आसक्त (रत) है और उन्हीं को पाकर प्रमुदित रहते हैं। ऐसे इन सांसारिकजनों के लिये यह समझना अत्यन्त कठिन है कि इस प्रत्यय (हेतु, अपेक्षा) से इस की उत्पत्ति होती है। यह समझना भी कठिन है कि सभी संस्कारों के शान्त होने से, सभी उपाधियों के दूर हो जाने पर, तृष्णा का नाश हो जाने पर,संसार से विरक्ति हो जाने पर तथा सभी प्रकार का निरोध हो जाने पर निर्वाण अधिगत हो सकता है। (अत:) यह भी हो सकता है कि मैं इसका उपदेश भी करूँ और दूसरे (सामने सुनने वाले) लोग इसे समझ ही न पावें। तब तो मेरा यह (दूसरों को धर्मोपदेश का) प्रयास और श्रम निष्फल ही होगा और यह मेरे लिये कष्टकर बात हो जायेगी।

४७. ''उसके साथ ही उन विपश्यी भगवान् को इन बातों का इन अश्रुतपूर्व अतएव आश्चर्यजनक गाथाओं के माध्यम से भी भान हुआ—

'अत्यन्त कठिनता से प्राप्त इस धर्म का दूसरों को उपदेश इतनी सरलता से कर देना उचित नहीं होगा; क्योंकि रागद्वेष में लिप्त साधारणजनों को यह धर्म (उपदेशमात्र) सरलता से समझ में नहीं आयगा।।

'इस उल्टी धार वाले (प्रतिस्रोतोगामी), निपुण, गम्भीर, दुर्ज्ञेय एवं सूक्ष्म धर्म को राग में आसक्त एवं अविद्यान्धकार से आवृत लोग समझ ही नहीं सकते॥'

''भिक्षुओ! यों चिन्तन करते हुए विपश्यी भगवान् के चित्त में उक्त साक्षात्कृत धर्म का उपदेश करने के लिये उठा उत्साह मन्द पड़ गया। धर्मदेशना की बात उन्हें नहीं जँची।

४८. ''तब, भिक्षुओ! उन विपश्यी भगवान्....के चित्त के विचार को स्वचित्त से जानकर किसी (अन्यतर) महाब्रह्मा के मन में यह आया— 'अरे, तब तो यह लोक (सृष्टि) नष्ट हो जायगा, विनष्ट हो

अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाया' ति। अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुरतो पातुरहोसि। अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणं जाणुमण्डलं [B.32] पथवियं निहन्त्वा येन विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनञ्जलिं पणामेत्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका; अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो' ति।

४९. ''एवं वुत्ते, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तं महाब्रह्मानं एतदवोच—'मय्हम्पि खो, ब्रह्मे, एतदहोसि—यन्नूनाहं धम्मं देसेय्यं ति। तस्स मय्हं, ब्रह्मे, एतदहोसि—अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्च-समुप्पादो। इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सगो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहञ्चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं— सो [N.31] ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा ति।

'अपिस्सु मं, ब्रह्मे, इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा-[R.38]

'किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
'पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा ति॥

'इति ह मे, ब्रह्मे, पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाया' ति।

जायगा, यदि विपश्यी भगवान्....का चित्त धर्मोपदेश हेतु उपेक्षायुक्त हो गया!' भिक्षुओ! वह महाब्रह्मा, जैसे कोई बलवान् पुरुष...., वैसे ही ब्रह्मलोक से अन्तर्हित हो कर विपश्यी भगवान्...के सम्मुख प्रकट हुआ। तब, भिक्षुओ! उस महाब्रह्मा ने, चादर को एक कन्धे पर करके दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टिकाकर, जिधर विपश्यी भगवान्.... विराजमान थे, उधर अञ्जलिबद्ध प्रणाम कर विपश्यी भगवान्....से यों निवेदन किया— ''भन्ते! भगवान् जनता को धर्मोपदेश (अवश्य) करें; कारण कि संसार में सभी रागद्वेषयुक्त प्राणी नहीं है, उन में से कुछ तो ऐसे भी होंगे जिनका चित्त निर्मल (अल्परजस्क) या कुछ कम विकार वाला हो। वे यदि आपके उपदेश सुनने का अवसर नहीं पायेंगे तो उनकी बहुत हानि होगी। हो सकता है कुछ लोगों को आपके द्वारा की गयी धर्मदेशना में अत्यधिक उत्सुकता हो। वे आप से ज्ञानलाभ कर इस संसार से छुटकारा ही पाना चाहते हों।

४९. (महाब्रह्मा द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, भिक्षुओ! विपश्यी भगवान्.....ने महाब्रह्मा को यह उत्तर दिया— ब्रह्मन् ! मैने यह समझा था— यह धर्म बहुत गम्भीर.....पूर्ववत्.....धर्मदेशना हेतु मेरे मन में उपेक्षाभाव जाग्रत हो गया।

५०. ''दुतियं पि खो, भिक्खवे, सो महाब्रह्मा....पे०....ततियं पि खो, भिक्खवे, सो महाब्रह्मा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो' ति।

५१. ''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा सत्तेसु च कारुञ्ञतं पटिच्च बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेसि। अद्दसा खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये अप्पेकच्चे परलोक-वज्जभयदस्साविनो विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते। सेय्यथापि नाम उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तो निमुग्गपोसीनि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि समोदकं ठितानि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि [R.39] उदके संवड्ढानि उदका अच्चुग्गम्म ठितानि अनुपलित्तानि उदकेन; एवमेव खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो अद्दस सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते।

[N.32] ५२. ''अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं गाथाहि अज्झभासि—

'सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो, यथा पि पस्से जनतं समन्ततो।

---

५०. ''दूसरी बार भी, भिक्षुओ! महाब्रह्मा ने....तीसरी बार भी, भिक्षुओ! महाब्रह्मा ने....पूर्ववत्....इस संसार से छुटकारा पाना ही चाहते हों।

५१. ''तब, भिक्षुओ! विपश्यी भगवान् ने उस महाब्रह्मा का अध्याशय (हृद्गत भाव) जान कर प्राणियों पर करुणा-कटाक्ष डालते हुए बुद्ध चक्षु (ज्ञान दृष्टि) से लोक को देखा। यों, भिक्षुओं! विपश्यी भगवान्....ज्ञानदृष्टि से लोक को देखने लगे। तब उन्होंने यह पाया कि इस लोक में ऐसे भी लोग हैं जिन में किसी का चित्त निर्मल है, किसी का चित्त दुर्गुणों से भरा पड़ा है, कुछ तीक्ष्ण प्रज्ञा वाले हैं तो कुछ मन्दमति भी हैं, कुछ सुरूप हैं तो कुछ कुरूप, कुछ मेरे धर्मोपदेश को जल्दी समझने वाले हैं तो कुछ कठिनता से समझने वाले, कुछ परलोक से भय मानने वाले लोग भी हैं। जैसे पद्मवन में, उत्पलवन में या पुण्डरीक वन में कितने ही जल से उत्पन्न जल में बढ़े, जल से ही निकले कोई-कोई नील कमल श्वेत कमल या रक्त कमल जल के अन्दर ही डूबे रहते हैं, कुछ जल के ऊपर खिले रहते हैं, और कुछ जल के बहुत ऊपर आकर जल से कुछ भी सम्पर्क न रखते हुए प्रफुल्ल रहते हैं; इसी तरह भिक्षुओ! विपश्यी भगवान्.....बुद्धचक्षु से लोक को देखते हुए कुछ निर्मल चित्त वाले...पूर्ववत्....और कुछ परलोक से भय खाने वाले लोगों को देखा।

५२. ''तब, भिक्षुओ! वह महाब्रह्मा विपश्यी भगवान्....के चित्त में उठने वाले विचारों को जान कर विपश्यी....से इन गाथाओं के माध्यम से निवेदन करने लगा—

तथूपमं धम्ममयं सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु॥
'सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको, अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं।
उट्ठेहि, वीर विजितसङ्गाम, सत्थवाह, अणण, विचर लोके॥
'देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती' ति॥

५३. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तं महाब्रह्मानं [B.34] गाथाय अज्झभासि—

'अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा, ये सोतवन्तो पमुञ्चन्तु सद्धं।
विहिंससञ्ञी पगुणं न भासिं, धम्मं पणीतं मनुजेसु ब्रह्मे' ति॥

"अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा—'कतावकासो खोम्हि विपस्सिना भगवता [R.40] अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मदेसनाया' ति, विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेव अन्तरधायि।

अग्गसावकयुगं

५४. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एतदहोसि—'कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं, को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति ? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एतदहोसि—'अयं खो खण्डो च राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो बन्धुमतिया राजधानिया पटिवसन्ति पण्डिता वियत्ता [N.33] मेधाविनो दीघरत्तं अप्परजक्खजातिका। यन्नूनाहं खण्डस्स च राजपुत्तस्स तिस्सस्स च पुरोहितपुत्तस्स पठमं धम्मं देसेय्यं, ते इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सन्ती' ति।

'जैसे कोई बड़ी-बड़ी चट्टानों वाले पहाड़ की चोटी (शिखर) पर चढ़ कर नीचे चारों ओर मनुष्यों को देखे; उसी तरह, हे सुबुद्धे! धर्मरूपी इस प्रासाद पर चढ़ कर चारों तरफ शोकपीड़ित जन्म-जरा से अभिभूत जनसमूह को देखें।।

'हे वीर! हे संग्रामविजयिन्, हे मार्गदर्शक! हे ऋण से मुक्त! आप लोक में चारिका हेतु विचरण कीजिये और धर्म-प्रचार में स्वचित्त लगाइये। उस धर्म को समझने वाले (आप का शिष्य बनने योग्य) लोग भी आप को मिलेंगे'।।

५३. "तब, भिक्षुओ! विपश्यी भगवान्....ने महाब्रह्मा को गाथाओं के माध्यम से ही उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! अमृत का द्वार उन के लिये खुला ही समझें जो मेरा उपदेश श्रद्धापूर्वक सुनेंगे। मैं तो यह सोचकर इस धर्मोपदेश की उपेक्षा करने जा रहा था कि कहीं इसे सुनने-समझने वाले ही न मिलें और मेरा परिश्रम ही व्यर्थ हो जाय।।'

"तब, भिक्षुओ! वह महाब्रह्मा यह सोचकर कि विपश्यी भगवान्....ने मुझको जनता में धर्मोपदेश का वचन दे दिया; भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

प्रधान श्रावकयुगल— ५४. "तब, भिक्षुओ! विपश्यी भगवान्....के मन में यह विचार आया— 'मैं सर्वप्रथम किसे धर्मोपदेश करूँ कि जो इसे जल्दी (क्षिप्रता) से समझ सके।' भिक्षुओ! तब विपश्यी भगवान् ने सोचा—'ये जो खण्ड राजपुत्र और तिष्य पुरोहितपुत्र, जो कि बन्धुमती राजधानी में रहते हैं, दोनों ही पण्डित, तीक्ष्णबुद्धि, मेधावी और दीर्घकाल से निर्मल चित्त वाले हैं— क्यों न मैं इन दोनों (खण्ड राजपुत्र और तिष्य पुरोहितपुत्र) को ही सर्वप्रथम धर्मोपदेश करूँ। ये दोनों मेरे द्वारा किये धर्मोपदेश को शीघ्र ही समझ सकेंगे'।

५५. "अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव— बोधिरुक्खमूले अन्तरहितो बन्धुमतिया राजधानिया खेमे मिगदाये पातुरहोसि। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो दायपालं आमन्तेसि— 'एहि त्वं, सम्म दायपाल, बन्धुमतिं राजधानिं पविसित्वा खण्डं च राजपुत्तं तिस्सं च पुरोहितपुत्तं एवं वदेहि— विपस्सी, भन्ते, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बन्धुमतिं राजधानिं अनुप्पत्तो खेमे मिगदाये विहरति, सो तुम्हाकं दस्सनकामो' [B.35] ति। 'एवं, भन्ते' ति खो, भिक्खवे, दायपालो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा बन्धुमतिं राजधानिं पविसित्वा खण्डं च राजपुत्तं तिस्सं च पुरोहितपुत्तं एतदवोच— 'विपस्सी, भन्ते, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बन्धुमतिं राजधानिं अनुप्पत्तो खेमे मिगदाये विहरति; सो तुम्हाकं दस्सनकामो' ति।

[R.41] ५६. "अथ खो, भिक्खवे, खण्डो च राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो भद्दानि भद्दानि यानानि योजापेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि बन्धुमतिया राजधानिया निय्यिंसु; येन खेमो मिगदायो तेन पायिंसु। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिका व येन विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

५७. "तेसं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं— दानकथं सीलकथं सग्गकथं; कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा ते भगवा अञ्ञासि कल्लचित्ते मुदुचित्ते विनीवरणचित्ते उदग्गचित्ते पसन्नचित्ते, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि— दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि

---

५५. तब विपश्यी भगवान् ने— जैसे कोई बलवान् पुरुष....वैसे ही बोधिवृक्ष के नीचे से अन्तर्धान होकर बन्धुमती राजधानी के क्षेम मृगदाव में प्रकट हुए। भिक्षुओ! तब विपश्यी भगवान्....ने वहाँ के वनरक्षक (दायपाल) को अपने पास बुलाया और उस से कहा— 'सौम्य दायपाल! तुम बन्धुमती राजधानी में जा कर खण्ड राजपुत्र और तिष्य पुरोहितपुत्र से यों कहना— 'श्रीमन्! विपश्यी भगवान्....बन्धुमती राजधानी के क्षेम मृगारण्य में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं। वे आपलोगों से मिलना चाहते हैं।' भिक्षुओ! उस वनरक्षक ने 'अच्छा, भन्ते!' कहकर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर बन्धुमती जाकर खण्ड राजपुत्र और तिष्य पुरोहित से कहा— 'श्रीमन्! विपश्यी भगवान्...पूर्ववत्....आप लोगों से मिलना चाहते हैं।'

५६. "भिक्षुओ! तब खण्ड राजपुत्र एवं तिष्य पुरोहितपुत्र अच्छे अच्छे रथों को जुतवा कर, उन पर चढ़कर, बन्धुमती राजधानी से निकलकर, जहाँ क्षेम मृगदाव था, वहाँ पहुँचे। जितना रथ से जाने योग्य मार्ग था, वहाँ तक रथ से जाकर, अवशिष्ट पर पैदल ही चल कर जहाँ विपश्यी भगवान्...विराजमान थे वहाँ गये। जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

५७. विपश्यी भगवान्....ने उनको आनुपूर्वी (क्रमशः) ये कथाएँ कहीं। जैसे—दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, भोगों के दोष, उनसे होने वाली हानि एवं क्लेश, भोग–त्याग के गुण। जब भगवान् ने जान लिया, वे अब स्वच्छ, मृदु एवं नीवरणों से रहित चित्त वाले हो चुके हैं, उदग्र एवं प्रसन्न चित्त वाले हो चुके हैं, तब उन्होंने बुद्धों द्वारा स्वयं साक्षात्कृत ज्ञान— दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग का उपदेश किया। जैसे कालिमारहित स्वच्छ वस्त्र किसी भी रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है,

नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव खण्डस्स च राजपुत्तस्स तिस्सस्स च पुरोहितपुत्तस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि— यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्ण-विचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोचुं— 'अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं [B.36, R.42] गच्छाम धम्मं च। लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं' ति।

५८. ''अलत्थुं खो, भिक्खवे, खण्डो च राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थुं उपसम्पदं। ते विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि; सङ्खारानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। तेसं विपस्सिना भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मिया कथाय सन्दस्सियमानानं समादपियमानानं समुत्तेजियमानानं सम्पहंसियमानानं नचिरस्सेव अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

महाजनकायपब्बज्जा

५९. ''अस्सोसि खो, भिक्खवे, बन्धुमतिया राजधानिया महाजनकायो चतुरासीति-पाणसहस्सानि— 'विपस्सी किर भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बन्धुमतिं राजधानिं अनुप्पत्तो खेमे मिगदाये विहरति, खण्डो च किर राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा

इसी तरह खण्ड...और तिष्य... को तत्काल ही उसी आसन पर रागरहित निर्मल धर्मदृष्टि उत्पन्न हो गयी कि 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है वह एक न एक दिन नाश को प्राप्त (नाशधर्मा) होगा ही'। उन्होंने धर्म को भलीभाँति जानकर, प्राप्त किम्वा देखकर, उस पर भलीभाँति आरूढ़ हो कर, उसके विषय में विचिकित्सा (संशय) रहित हो कर निःशङ्क हो कर शास्ता के बताये हुए धर्म में परम विशारदता (निपुणता) को प्राप्त कर विपश्यी भगवान्..... से यह निवेदन किया— 'आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे उल्टे को सीधा.... पूर्ववत्....उसी तरह भगवान् ने अनेकविध उपायों से स्वधर्म का प्रकाशन किया। भन्ते! हम लोग आप की शरण में जाते हैं और धर्म की भी। भन्ते! भगवान् से हम लोगों को प्रव्रज्या-दीक्षा मिले, उपसम्पदा मिले।'

५८. ''भिक्षुओ! खण्ड.... और तिष्य.... ने विपश्यी भगवान्... से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त की। विपश्यी भगवान्...ने उन दोनों को धार्मिक कथाओं द्वारा सच्चे धर्म का मार्ग दिखाया उसमें प्रमुदित किया, उत्साहित एवं सन्तुष्ट किया, विपश्यी भगवान्.... ने उनको संस्कारों के दोष, अपकार, क्लेश तथा निर्वाण से होने वाले लाभ बताये। विपश्यी भगवान् द्वारा सच्चे धर्म का उपदेश किये जाने से उनके चित्त शीघ्र ही सर्वथा आश्रव(मल)रहित हो गये।

महाजनकायप्रव्रज्या— ५९. ''भिक्षुओ! बन्धुमती राजधानी के चौरासी हजार मनुष्यों ने सुना— 'विपश्यी भगवान्....बन्धुमती राजधानी में आकर क्षेम मृगदाव में साधना हेतु विराजमान हैं और खण्ड.... और

अनगारियं पब्बजिता' ति। सुत्वान नेसं एतदहोसि– 'न हि नून सो ओरको धम्मविनयो, न सा ओरका पब्बज्जा, यत्थ खण्डो च राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, खण्डो च राजपुत्तो तिस्सो च पुरोहितपुत्तो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सन्ति, किमङ्ग पन मयं' ति। अथ खो सो, भिक्खवे, महाजनकायो चतुरासीतिपाण- [N.35, R.43] सहस्सानि बन्धुमतिया राजधानिया निक्खमित्वा येन खेमो मिगदायो येन विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

६०. "तेसं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं– [B.37] दानकथं सीलकथं सग्गकथं; कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा ते भगवा अञ्ञासि कल्लचित्ते मुदुचित्ते विनीवरणचित्ते उदग्गचित्ते पसन्नचित्ते, अथ या बुद्धानं, सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि– दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव तेसं चतुरासीतिपाणसहस्सानं तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि– यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोचुं– 'अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेव भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं' ति।

६१. "अलत्थुं खो, भिक्खवे, तानि चतुरासीतिपाणसहस्सानि विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थुं उपसम्पदं। ते विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि; सङ्खारानं [R.44] आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। तेसं विपस्सिना भगवता

तिष्य..... विपश्यी भगवान्....से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा ग्रहण कर चुके हैं।' सुन कर उन लोगों मे मन में हुआ– 'वह धर्म साधारण नहीं होगा, प्रव्रज्या भी साधारण न होगी जहाँ खण्ड और तिष्य प्रव्रजित हुए हैं। जब वे दोनों ही प्रव्रजित हो गये तो हम लोग इस गृहस्थ धर्म में रह कर क्या करेंगे !' तब, भिक्षुओ! वे चौरासी हजार मनुष्य भी राजधानी से निकल कर क्षेम मृगदाव में विपश्यी भगवान्.... के पास पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

६०. "विपश्यी भगवान् ने उन लोगों को आनुपूर्वी कथा कही; जैसे दानकथा, शीलकथा.... पूर्ववत्....प्रव्रज्या, उपसम्पदा प्राप्त करें।

६१. "भिक्षुओ! उन चौरासी हजार लोगों ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त की। .... उनके चित्त आश्रवों से सर्वथा मुक्त हो गये।

अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मिया कथाय सन्दस्सियमानानं समादपियमानानं समुत्तेजियमानानं सम्पहंसियमानानं नचिरस्सेव अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

पुरिमपब्बजितानं धम्माभिसमयो

६२. "अस्सोसुं खो, भिक्खवे, तानि पुरिमानि चतुरासीतिपब्बजित-[N.36, B.38] सहस्सानि—'विपस्सी किर भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बन्धुमतिं राजधानिं अनुप्पत्तो खेमे मिगदाये विहरति, धम्मं च किर देसेती' ति। अथ खो, भिक्खवे, तानि चतुरासीतिपब्बजित-सहस्सानि येन बन्धुमती राजधानी, येन खेमो मिगदायो, येन विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

६३. "तेसं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा ते भगवा अञ्ञासि कल्लचित्ते सुदुचित्ते विनीवरणचित्ते उदग्गचित्ते पसन्नचित्ते, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि— दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव तेसं चतुरासीति-पब्बजितसहस्सानं तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विपस्सिं [R.45] भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोचुं— 'अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बजं, लभेय्याम उपसम्पदं' ति।

६४. "अलत्थुं खो, भिक्खवे, तानि चतुरासीतिपब्बजितसहस्सानि विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थुं उपसम्पदं। ते विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि; सङ्खारानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। तेसं विपस्सिना भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मिया कथाय सन्दस्सियमानानं समादपियमानानं समुत्तेजियमानानं सम्पहंसियमानानं [B.39] नचिरस्सेव अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

पहले प्रव्रजितों का धर्माभिसमय— ६२. "भिक्षुओ! जब पूर्व प्रव्रजित जो विपश्यी कुमार के साथ प्रव्रजित हुए थे चौरासी हजार भिक्षुओं ने सुना— 'विपश्यी भगवान्.....।

६३. "भिक्षुओ! तब वे ....अभिवादन कर एक और बैठ गये। विपश्यी भगवान्.... ने उन को क्रमशः ....पूर्ववत्....।

६४. "....उनके चित्त आस्रवों से सर्वथा विमुक्त हो गये।"

चारिकाअनुजानना

६५. ''तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन बन्धुमतिया राजधानिया महाभिक्खुसङ्घो [N.37] पटिवसति अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं। अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— 'महा खो एतरहि भिक्खुसङ्घो बन्धुमतिया राजधानिया पटिवसति अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं, यन्नूनाहं भिक्खू [R.46] अनुजानेय्यं— चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं; मा एकेन द्वे अगमित्थ; देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अपि च छन्नं छन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमती राजधानी उपसङ्कमितब्बा पातिमोक्खुद्देसाया' ति।

६६. ''अथ खो, भिक्खवे, अञ्ञतरो महाब्रह्मा विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य; एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तरहितो विपस्सिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुरतो पातुरहोसि। अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनञ्जलिं पणामेत्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच— 'एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत! महा खो, भन्ते, एतरहि भिक्खुसङ्घो बन्धुमतिया राजधानिया पटिवसति अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं। अनुजानातु, भन्ते, भगवा भिक्खू— चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय [B.40] अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं; मा एकेन द्वे अगमित्थ; देसेथ, भिक्खवे, धम्मं

चारिका के लिये आदेश— ६५. ''भिक्षुओ! उस समय एक लाख अड़सठ हजार[1] भिक्षुओं का बृहत् सङ्घ बन्धुमती राजधानी में ठहरा हुआ था। तब एक दिन एकान्त में ध्यानमग्न बैठे विपश्यी भगवान्.... के मन में ये विचार उठा— 'इस समय बन्धुमती राजधानी में एक लाख अड़सठ हजार भिक्षुओं का बृहत् सङ्घ ठहरा हुआ है। अतः मैं इन भिक्षुओं को अनुज्ञा (आदेशात्मक अनुमति) करूँ— 'भिक्षुओ! अनेक लोगों के हित–सम्पादन के लिये, उन्हें सुख देने के लिये, लोक पर अनुकम्पा के लिये, देवता और मनुष्यों के लाभ हित एवं सुख के लिये तुम लोग अब चारिका के रूप में देश में विचरण करो। एक ही मार्ग पर दो भिक्षु न जाना। भिक्षुओ! तुम लोग इस आदि में कल्याणप्रद,मध्य में भी कल्याणप्रद एवं अन्त में भी कल्याणप्रद मेरे द्वारा कथित इस धर्म का सार्थक एवं स्पष्ट अक्षरों से उपदेश करो;क्योंकि यह अपने आप में परिपूर्ण एवं धर्मसाधना में सर्वथा सहायक है। लोक में तुम्हें ऐसे भी पुरुष मिलेंगे जिनका चित्त निर्मल है, उन्हें तुम्हारे द्वारा किये गये उन देश की तत्काल आवश्यकता है, अन्यथा उनकी हानि ही होगी। और तुम छह–छह वर्ष के अन्तर से इस बन्धुमती राजधानी में भी आते रहना तथा यहाँ आकर प्रातिमोक्ष (शिक्षापद–पाठ) का वाचन करते रहना।'

६६. ''तब, भिक्षुओ! देवताओं में विशिष्ट (अन्यतर) महाब्रह्मा विपश्यी भगवान्.....के चित्त

---

१. यहाँ भिक्षुद्वय ने अपने हिन्दी अनुवाद में सर्वत्र अड़सठ लाख— ऐसा अनुवाद किया है, जबकि गणना में ८४ + ८४ = १६८००० संख्या ही बैठती है। — सं.।

आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अपि च, भन्ते, मयं तथा करिस्साम यथा भिक्खू छन्नं छन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमतिं राजधानिं उपसङ्कमिस्सन्ति पातिमोक्खुद्देसाया' ति। इदमवोच, भिक्खवे, सो महाब्रह्मा। इदं वत्वा विपस्सिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं [R.47] अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेव अन्तरधायि।

६७. ''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो भिक्खू आमन्तेसि— 'इध मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— महा खो एतरहि भिक्खुसङ्घो बन्धुमतिया राजधानिया पटिवसति अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं। यन्नूनाहं भिक्खू अनुजानेय्यं—चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं; मा एकेन द्वे अगमित्थ; देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ; सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो; अपि च, छन्नं छन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमती राजधानी उपसङ्कमितब्बा पातिमोक्खुद्देसाया' ति।

६८. ''अथ खो, भिक्खवे, अञ्ञतरो महाब्रह्मा मम चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य; एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तरहितो मम पुरतो पातुरहोसि। अथ खो सो, भिक्खवे, महाब्रह्मा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येनाहं तेनञ्जलिं पणामेत्वा मं एतदवोच— 'एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत। महा खो, भन्ते, एतरहि भिक्खुसङ्घो बन्धुमतिया राजधानिया पटिवसति अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं। अनुजानातु, भन्ते, भगवा भिक्खू—चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं; मा एकेन द्वे [B.41] अगमित्थ; देसेथ, भिक्खवे, धम्मं....पे०....सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता [R.48] धम्मस्स परिहायन्ति; भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो ति। अपि च, भन्ते, मयं तथा करिस्साम यथा भिक्खू छन्नं छन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमतिं राजधानिं उपसङ्कमिस्सन्ति पातिमोक्खुद्देसाया'

को....जानकर.... प्रकट हुआ। भिक्षुओ! तब चादर को एक कन्धे पर कर महाब्रह्मा ने.... यों निवेदन किया– 'यही उचित है भगवन्! .... प्रतिमोक्ष का वाचन करते रहना। साथ ही, भन्ते! हम देवता लोग ऐसी व्यवस्था कर देंगे कि ये भिक्षुजन प्रति छह वर्ष बीतने पर प्रातिमोक्ष पाठ के लिये यहाँ एकत्र हो सकें। महाब्रह्मा ने यह निवेदन किया और वह वहीं अन्तर्धान हो गया।

६७. ''तब, भिक्षुओ! विपश्यी भगवान्.... ने सायङ्काल ध्यान भावना से उठकर भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उन से कहा– 'भिक्षुओ! यहाँ एकान्त में ध्यानमग्न बैठे मुझको यह विचार आया– इस समय बन्धुमती राजधानी में .... पूर्ववत्....प्रातिमोक्ष का वाचन करते रहना।'

६८. ''तब, भिक्षुओ! महाब्रह्मा स्वचित्त से मेरी बात को जान कर.... प्रकट हुआ। .....यह निवेदन किया और अन्तर्धान हो गया।

ति। इदमवोच, भिक्खवे, सो महाब्रह्मा। इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेव अन्तरधायि।

६९. "अनुजानामि, भिक्खवे, चरथ चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अपि च, भिक्खवे, छन्नं छन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमती राजधानी उपसङ्कमितब्बा पातिमोक्खुद्देसाया' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, भिक्खू येभुय्येन एकाहेनेव जनपदचारिकं पक्कमिंसु।

[N.39] ७०. "तेन खो पन समयेन जम्बुदीपे चतुरासीति आवाससहस्सानि होन्ति। एकम्हि हि वस्से निक्खन्ते देवता सद्दमनुस्सावेसुं— 'निक्खन्तं खो, मारिसा, एकं वस्सं; पञ्च दानि वस्सानि सेसानि; पञ्चन्नं वस्सानं अच्चयेन बन्धुमती राजधानी उपसङ्कमितब्बा पातिमोक्खुद्देसाया' [R.49] ति। द्वीसु वस्सेसु निक्खन्तेसु....तीसु वस्सेसु निक्खन्तेसु....चतूसु वस्सेसु निक्खन्तेसु ....पञ्चसु वस्सेसु निक्खन्तेसु देवता सद्दमनुस्सावेसुं— 'निक्खन्तानि खो, मारिसा, पञ्च वस्सानि; एकं दानि वस्सं सेसं; एकस्स वस्सस्स अच्चयेन बन्धुमती राजधानी उपसङ्कमितब्बा पातिमोक्खुद्देसाया' ति। छसु वस्सेसु निक्खन्तेसु देवता सद्दमनुस्सावेसुं— 'निक्खन्तानि खो, मारिसा, छब्बस्सानि। समयो दानि बन्धुमतिं राजधानिं उपसङ्कमितुं पातिमोक्खुद्देसाया' ति। अथ खो ते, भिक्खवे, भिक्खू अप्पेकच्चे सकेन इद्धानुभावेन, अप्पेकच्चे देवतानं इद्धानुभावेन एकाहेनेव बन्धुमतिं राजधानिं उपसङ्कमिंसु पातिमोक्खुद्देसाया ति।

[B.42] ७१. "तत्र सुदं, भिक्खवे, विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो भिक्खुसङ्घे एवं पातिमोक्खं उद्दिसति—

---

६९. "अतः भिक्षुओ! मेरी तुम्हें अनुज्ञा (अनुमति) है— 'तुम लोग अनेकजनों के हित के लिये...पूर्ववत्...प्रातिमोक्ष का वाचन करते रहना।'

"तब, भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु एक ही दिन में जनपद-चारिका के लिये (बन्धुमती राजधानी से) प्रस्थान कर गये।

७०. "उस समय, भिक्षुओ! जम्बुद्वीप में चौरासी हजार आवास (= मठ, साधु सन्तों के रहने के स्थान) थे। एक वर्ष बीत जाने पर, देवताओं ने आकाश से शब्द (वाणी) सुनायी— 'मार्ष![1] अब एक वर्ष निकल (बीत) गया। पाँच वर्ष और बीतने पर प्रातिमोक्ष-वाचन के लिये बन्धुमती राजधानी में पहुँचना है।' दो वर्ष....तीन वर्ष.....चार वर्ष...पाँच वर्ष बीतने पर भी देवताओं ने यह आकाशवाणी की कि 'मार्ष! पाँच वर्ष निकल चुके हैं, एक वर्ष और शेष है। एक वर्ष और बीतने पर....बन्धुमती राजधानी पहुँचना है।' (अन्त में) छह वर्ष बीतने पर देवताओं ने फिर यह आकाशवाणी की कि 'मार्षो! छह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब समय आ गया है कि आप लोग बन्धुमती राजधानी में जा कर एकत्र हों और प्रातिमोक्ष का वाचन करें।'

"भिक्षुओ! तब के सभी भिक्षु, कोई अपने ऋद्धिबल के प्रभाव से या फिर कोई देवताओं के ऋद्धिबल के सहारे से एक ही दिन में प्रातिमोक्ष के वाचन के उद्देश्य से बन्धुमती राजधानी पहुँच गये।

१. देवताओं में समान व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होने वाला यह सम्मानसूचक शब्द है।

'खन्ती परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती, समणो होति परं विहेठयन्तो॥
सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानसासनं॥
अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं, पन्तञ्च सयनासनं॥ [R.50]
अधिचित्ते च आयोगो, एतं बुद्धानसासनं' ति॥

देवतारोचना

७२. ''एकमिदाहं, भिक्खवे, समयं उक्कट्ठायं विहरामि सुभगवने सालराजमूले। तस्स मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— 'न खो सो सत्तावासो सुलभरूपो, यो मया अनज्झावुट्ठपुब्बो इमिना दीघेन अन्धुना अञ्ञत्र सुद्धावासेहि देवेहि। यन्नूनाहं येन सुद्धावासा देवा तेनुपसङ्कमेय्यं' ति। अथ ख्वाहं, भिक्खवे— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, [N.40] एवमेव—उक्कट्ठायं सुभगवने सालराजमूले अन्तरहितो अविहेसु देवेसु पातुरहोसिं। तस्मिं, भिक्खवे, देवनिकाये अनेकानि देवतासतानि अनेकानि देवतासहस्सानि येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, भिक्खवे, ता देवता मं एतदवोचुं— 'इतो सो, मारिसा, एकनवुतिकप्पे यं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उदपादि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसि, खत्तियकुले

---

७१. ''भिक्षुओ! तब विपस्सी भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने उस विशाल भिक्षुसङ्घ को इस तरह प्रातिमोक्ष (शिक्षापदों) का वाचन कराया–

'तितिक्षा (सहनशीलता) और दूसरों के अपराध को क्षमा करना ही उत्तम तप है। बुद्धों ने निर्वाण को मानव का सर्वोपरि लक्ष्य घोषित किया है। प्रव्रजित भिक्षु न तो दूसरों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाता है और न किसी प्रकार का कष्ट।।

'सभी पापों को न करना और सभी कुशल कर्मों को करते रहना, तथा अपने चित्त की शुद्धि– यही अनुशासन भिक्षुओं को बुद्धों ने कर्तव्य रूप में बताया है।

'दूसरों को कठोर या दुर्वचन न कहना, परहिंसा से विरत रहना, प्रातिमोक्ष में संयमपूर्वक सम्मिलित होना, मात्रा से भोजन करना, सब से दूर एकान्त में शयनासन (निवास) और चित्त का संयम (इन्द्रियनिग्रह) यही बुद्धों का आदेश है।।

देवताओं का साक्ष्य—७२. ''भिक्षुओ! एक समय मैं उक्कट्ठा के सुभगवन में सालराज वृक्ष के नीचे साधना में रत था। उस समय एकान्त में ध्यान करते करते मेरे मन में आया– 'शुद्धावास देवलोक को छोड़ कर ऐसी कोई योनि (सत्त्वावास) अवशिष्ट नहीं है जहाँ मैंने अब तक कभी न कभी इतने दीर्घकाल में जन्म न लिया हो। तों क्यों न मैं शुद्धावास देवलोक चलूँ, जहाँ शुद्धावास देवता रहते हैं।' तब, भिक्षुओ! जैसे कोई बलवान् पुरुष....अपने ऋद्धिबल से उक्कट्ठा के सुभगवन में खड़े सालराज वृक्ष के नीचे से अन्तर्हित हो कर अवृह देवलोक में शुद्धावास (देवों का एक समुदाय) में प्रकट हुआ। उस समय, भिक्षुओ! उस देवतावास के अनेकों हजार देवता मेरे पास आये। आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक

[B.43] उदपादि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन अहोसि। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असीतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पाटलिया मूले अभिसम्बुद्धो। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स खण्डतिस्सं नाम सावकयुगं अहोसि [R.51] अग्गं भद्दयुगं। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं– एको सावकानं सन्निपातो अहोसि अट्ठसट्ठि भिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि भिक्खु-सतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीति-भिक्खुसहस्सानि। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं सब्बेसं येव खीणासवानं। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असोको नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। विपस्सिस्स, मारिस, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स बन्धुमा नाम राजा पिता अहोसि, बन्धुमती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। बन्धुमस्स रञ्ञो बन्धुमती नाम नगरं राजधानी अहोसि। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एवं अभिनिक्खमनं अहोसि, एवं पब्बज्जा, एवं पधानं, एवं अभिसम्बोधि, एवं धम्मचक्कप्पवत्तनं। ते मयं, मारिसा, विपस्सिम्हि भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा कामेसु कामच्छन्दं विराजेत्वा इधूपपन्ना' ति।

"तस्मिं येव खो, भिक्खवे, देवनिकाये अनेकानि देवतासहस्सानि अनेकानि देवता-सतसहस्सानि येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, भिक्खवे, ता देवता मं एतदवोचुं– 'इमस्मिंयेव खो, मारिसा, भद्दकप्पे भगवा [N.41] एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो। भगवा, मारिसा, खत्तियो जातिया, खत्तियकुले [R.52] उप्पन्नो। भगवा, मारिसा, गोतमो गोत्तेन। भगवतो, मारिसा, अप्पकं आयुप्पमाणं परित्तं लहुकं। यो चिरं जीवति सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो। भगवा, मारिसा, अस्सत्थस्स [B.44] मूले अभिसम्बुद्धो। भगवतो, मारिसा, सारिपुत्तमोग्गल्लानं नाम सावकयुगं अहोसि

ओर खड़े हुए उन देवताओं ने मुझ से कहा– 'मार्ष! आज के इक्कानवें कल्प पहले विपश्यी भगवान् संसार में उत्पन्न हुए थे। वे जाति से क्षत्रिय....गोत्र से कौण्डिन्य....उनका अस्सी हजार वर्ष आयु:प्रमाण...उनकी बोधि पाटलिवृक्ष के नीचे... खण्ड एवं तिष्य– दो श्रावक....तीन शिष्य–सम्मेलन.... अशोक नामक भिक्षु उपस्थायक....बन्धुमान् राजा पिता, बन्धुमती देवी माता...बन्धुमती नाम की नगरी राजधानी थी। मार्ष! उन विपश्यी भगवान्... ने इस प्रकार प्रव्रज्या.... इस प्रकार बुद्धत्व–प्राप्ति की साधना (*पधान*), इस प्रकार बुद्धत्वप्राप्ति एवं इस प्रकार धर्मचक्रप्रवर्तन (शिष्यों को उपदेश) किया था। उस समय हम लोगों ने उन विपश्यी भगवान्.... द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुसार साधना की थी और भौतिक सुखों (कामच्छन्द) का परित्याग किया था। उसी के फलस्वरूप, देहत्याग के बाद, इस लोक में उत्पन्न हुए हैं।

"भिक्षुओ! उसी देवनिकाय (देवलोक) में रहने वाले अनेक सहस्रों लाखों देवता मेरे पास आये...उन्होंने मुझको बताया– मार्ष! इसी भद्रकल्प में आप स्वयं भगवान्....उत्पन्न हुए हैं। मार्ष! भगवान् जाति से क्षत्रिय, गोत्र से गौतम हैं। हाँ, मार्ष! (आज समय के प्रभाव से) आप का आयु:परिमाण अवश्य बहुत कम है; क्योंकि आप बहुत जीयेंगे तो एक सौ वर्ष या इस से भी कम। आप की बोधि पिप्पल

अग्गं भद्दयुगं। भगवतो, मारिसा, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि। अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि— भगवतो, मारिसा, अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि सब्बेसं येव खीणासवानं। भगवतो, मारिसा, आनन्दो नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। भगवतो, मारिसा, सुद्धोदनो नाम राजा पिता अहोसि, माया नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती, कपिलवत्थु नाम नगरं राजधानी अहोसि। भगवतो, मारिसा, एवं अभिनिक्खमनं अहोसि, एवं पब्बज्जा, एवं पधानं, एवं अभिसम्बोधि, एवं धम्मचक्कप्पवत्तनं। ते मयं, मारिसा, भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा कामेसु कामच्छन्दं विराजेत्वा इधूपपन्ना' ति।

७३. "अथ ख्वाहं, भिक्खवे, अविहेहि देवेहि सद्धिं येन अतप्पा देवा तेनुपसङ्कमिं ....पे०...अथ ख्वाहं, भिक्खवे, अविहेहि च देवेहि अतप्पेहि च देवेहि सद्धिं येन सुदस्सा देवा तेनुपसङ्कमिं.... अथ ख्वाहं, भिक्खवे, अविहेहि च देवेहि अतप्पेहि च देवेहि सुदस्सेहि च देवेहि सद्धिं येन सुदस्सी देवा तेनुपसङ्कमिं.... अथ ख्वाहं, भिक्खवे, अविहेहि च देवेहि अतप्पेहि च देवेहि सुदस्सेहि च देवेहि सद्धिं येन अकनिट्ठा देवा तेनुपसङ्कमिं; तस्मिं, भिक्खवे, देवनिकाये अनेकानि देवतासहस्सानि अनेकानि देवतासतसहस्सानि येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, भिक्खवे, ता देवता मं एतदवोचुं— 'इतो सो, मारिसा, एकनवुतिकप्पे यं विपस्सी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो [R.53] लोके उदपादि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो खत्तियो जातिया अहोसि, खत्तियकुले उदपादि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कोण्डञ्ञो गोत्तेन अहोसि। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असीतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। विपस्सी, मारिसा, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पाटलिया मूले अभिसम्बुद्धो। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स खण्ड-तिस्सं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं। एको सावकानं सन्निपातो अहोसि अट्ठसट्ठिभिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं [N.42] सन्निपातो अहोसि भिक्खुसतसहस्सं, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि असीति-[B.45] भिक्खुसहस्सानि— विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स इमे तयो सावकानं सन्निपाता अहेसुं सब्बेसं येव खीणासवानं। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स असोको नाम भिक्खु उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। विपस्सिस्स, मारिसा,

---

(अश्वत्थ) वृक्ष के नीचे हुई। .... आपके सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन नामक दो श्रावक.... बारह सौ पचास भिक्षुओं का एक शिष्य सम्मेलन....आनन्द भिक्षु नामक एक उपस्थायक.... शुद्धोदन नामक राजा पिता, माया देवी नाम की माता.... कपिलवस्तु राजधानी.... इस प्रकार अभिनिष्क्रमण....। मार्ष! हम लोगों ने आप के शासन में साधना....यहाँ उत्पन्न हुए हैं।

७३. "तदनन्तर, भिक्षुओ! मैं उन अवृह देवों के साथ जहाँ अतप्य देव थे वहाँ गया।.... उन अवृह और अतप्य देवों के साथ जहाँ सुदर्श देव थे वहाँ गया.... तब मैं अतप्य सुदर्श देवताओं के साथ जहाँ सुदर्शी देव थे वहाँ गया... जहाँ अकनिष्ठ देव थे वहाँ गया...उसी देव लोक में जो अनेक सहस्रों लाखों

भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स बन्धुमा नाम राजा पिता अहोसि, बन्धुमती नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती। बन्धुमस्स रञ्ञो बन्धुमती नाम नगरं राजधानी अहोसि। विपस्सिस्स, मारिसा, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स एवं अभिनिक्खमनं अहोसि, एवं पब्बज्जा, एवं पधानं, एवं अभिसम्बोधि, एवं धम्मचक्कप्पवत्तनं। ते मयं, मारिसा, विपस्सिम्हि भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा कामेसु कामच्छन्दं विराजेत्वा इधूपपन्ना' ति।

तस्मिं येव खो, भिक्खवे, देवनिकाये अनेकानि देवतासहस्सानि अनेकानि देवतासत-सहस्सानि येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, भिक्खवे, ता देवता मं एतदवोचुं– 'इतो सो, मारिसा, एकतिंसे कप्पे यं सिखी भगवा....पे०....ते मयं, मारिसा, सिखिम्हि भगवति....पे०....तस्मिं येव खो, मारिसा, एकतिंसे कप्पे यं वेस्सभू भगवा....पे०.... ते मयं, मारिसा, वेस्सभूम्हि भगवति....पे०....इमस्मिं येव खो, मारिसा, भद्दकप्पे ककुसन्धो, कोणागमनो, कस्सपो भगवा....पे०....ते मयं, मारिसा, ककुसन्धम्हि कोणागमनम्हि कस्सपम्हि भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा कामेसु कामच्छन्दं विराजेत्वा इधूपपन्ना' ति।

७४. "तस्मिं येव खो, भिक्खवे, देवनिकाये अनेकानि देवतासहस्सानि अनेकानि देवतासतसहस्सानि येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, भिक्खवे, ता देवता मं एतदवोचुं– 'इमस्मिं येव खो, मारिसा, भद्दकप्पे भगवा एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो। भगवा, मारिसा, खत्तियो जातिया, खत्तियकुले उप्पन्नो। भगवा, मारिसा, गोतमो गोत्तेन। भगवतो, मारिसा, अप्पकं आयुप्पमाणं परित्तं लहुकं; यो चिरं जीवति सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो। भगवा, मारिसा, अस्सत्थस्स मूले अभिसम्बुद्धो। [B.46] भगवतो, मारिसा, सारिपुत्तमोग्गल्लानं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। भगवतो, मारिसा, एको सावकानं सन्निपातो अहोसि अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि। भगवतो, मारिसा, [N.43] अयं एको सावकानं सन्निपातो अहोसि सब्बेसं येव खीणासवानं। भगवतो, मारिसा, आनन्दो नाम भिक्खु उपट्ठाको अग्गुपट्ठाको। भगवतो, मारिसा, सुद्धोदनो नाम राजा पिता अहोसि, माया नाम देवी माता अहोसि जनेत्ती, कपिलवत्थु नाम नगरं राजधानी अहोसि। भगवतो, मारिसा, एवं अभिनिक्खमनं अहोसि, एवं पब्बज्जा, एवं पधानं, एवं अभिसम्बोधि,

---

देवता थे वे मेरे पास आये....प्रणाम कर वे बोले– 'विपश्यी भगवान्.... पूर्ववत्....साधना कर हम लोग यहाँ उत्पन्न हुए।

"उस समय, भिक्षुओ! उस देव निकाय के अनेक सहस्रों लाखों देवता मेरे पास आये। आकर मुझ से बोले– 'मार्ष! आज से इकतीसवें कल्प पहले शिखी भगवान्...उसी कल्प में वेस्सभू भगवान्....ककुसन्ध भगवान्....कोणागमन भगवान्....काश्यप भगवान्....साधना कर हम लोग यहाँ उत्पन्न हुए हैं।

७४. "भिक्षुओ! तदनन्तर उसी देवनिकाय के वासी अनेकों हजार अनेकों लाख देवता मेरे पास आये... वे बोले– 'मार्ष! इसी भद्रकल्प में आप भगवान्....पूर्ववत्....आप के बताये हुए साधना–मार्ग से अपने कामराग प्रहीण कर यहाँ उत्पन्न हुए हैं।

एवं धम्मचक्कप्पवत्तनं। ते मयं, मारिसा, भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा कामेसु कामच्छन्दं विराजेत्वा इधूपपन्ना' ति।

७५. "इति खो, भिक्खवे, तथागतस्सेव सा धम्मधातु सुप्पटिविद्धा, यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, [R.54] आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति; एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति।

"देवता पि तथागतस्स एतमत्थं आरोचेसुं— येन तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जातितो पि अनुस्सरति, नामतो पि अनुस्सरति, गोत्ततो पि अनुस्सरति, आयुप्पमाणतो पि अनुस्सरति, सावकयुगतो पि अनुस्सरति, सावकसन्निपाततो पि अनुस्सरति; एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा, एवंगोत्ता, एवंसीला, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

महापदानसुत्तं निट्ठितं॥

---

७५. "यों, भिक्षुओ! यह तथागत के ही ऋद्धिविध का सामर्थ्य है कि जिस के सहारे तथागत भवबन्धन से दूर हुए, परिनिर्वृत्त हुए उन अतीत बुद्धों को उनके जाति, नाम, गोत्र, आयुःप्रमाण, श्रावकयुगल भेद से पृथक् पृथक् जानते हैं कि वे इस जाति के थे, इस नाम के थे, इस गोत्र के थे इस आयुःप्रमाण के थे, ऐसे सदाचार वाले थे, ऐसे स्वभाव वाले थे, ऐसी प्रज्ञावाले थे, ऐसे-ऐसे साधना करते थे और यों वे भवबन्धन से विमुक्त होकर ज्ञानी बने।"

भगवान् ऐसा बोले। उन आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण अभिनन्दन किया।।

प्रथम महापदानसूत्र समाप्त॥

२. महानिदानसुत्तं

१. गम्भीरो पटिच्चसमुप्पादो

[N.44, B.47, R.55] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासधम्मं नाम कुरूनं निगमो। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच– "अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते। याव गम्भीरो चायं, भन्ते, पटिच्चसमुप्पादो गम्भीरावभासो च। अथ च पन मे उत्तानकुत्तानको विय खायती" ति।

"मा हेवं, आनन्द, अवच; मा हेवं, आनन्द, अवच। गम्भीरो चायं, आनन्द, पटिच्चसमुप्पादो गम्भीरावभासो च। एतस्स, आनन्द, धम्मस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमयं पजा तन्ताकुलकजाता कुलगण्ठिकजाता मुञ्जबब्बजभूता अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति।

इदप्पच्चया

२. " 'अत्थि इदप्पच्चया जरामरणं' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया जरामरणं' ति इति चे वदेय्य, 'जातिपच्चया जरामरणं' ति इच्चस्स वचनीयं। (१)
[R.56] " 'अत्थि इदप्पच्चया जाती' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया जाती' ति इति चे वदेय्य, 'भवपच्चया जाती' ति इच्चस्स वचनीयं। (२)

" 'अत्थि इदप्पच्चया भवो' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया भवो' ति इति चे वदेय्य, 'उपादानपच्चया भवो' ति इच्चस्स वचनीयं। (३)

---

२. महानिदानसूत्र

१. प्रतीत्यसमुत्पाद की गम्भीरता

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरुदेश के कल्माषधर्म नामक कुरुओं के निगम (कस्बे) में साधनाहेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये। जाकर प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया– "आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! (लोग कहते हैं) कि यह प्रतीत्यसमुत्पाद कितना गम्भीर है, कितना गम्भीर सा दीखता भी है; परन्तु मुझे तो यह बहुत सरल और स्पष्ट सा ही समझ में आ रहा है।"

(भगवान् बोले–) "नहीं, आनन्द! ऐसा न कहो। आनन्द! यह प्रतीत्यसमुत्पाद तो वस्तुतः गम्भीर है ही, इसीलिये गम्भीर सा दीखता भी है। आनन्द! इस सिद्धान्त को न समझने के कारण ही, यह संसार का मानव इसके अन्तस्तल तक न जानने के कारण ही उलझे सूत सा, गाँठ पड़ी रस्सी सा या मूंज-बब्बज घास (रस्सी के रूप में) सा उलझ कर अपाय एवं दुर्गति को प्राप्त हो इसी संसार में भटकता रहता है, इस संसार के पार पहुँचना इस की सामर्थ्य से बाहर लगता है।

इस प्रत्यय से– २. "आनन्द कोई तुम से पूछे– 'क्या जरामरण सकारण है?' तो तुम्हें कहना चाहिये– 'हाँ जरामरण सकारण है।' 'आनन्द! कोई तुम से पूछे– 'जरामरण का क्या कारण है?' तो तुम्हें उत्तर देना चाहिये– 'जाति इसका कारण है।' (१)

"आनन्द! कोई तुमसे पूछे–'जाति सकारण है?' तो तुम्हें कहना चाहिये–'हाँ, जाति सकारण है।' 'जाति का कारण क्या है?' तो तुम्हें उत्तर देना चाहिये 'भव इस जाति का कारण है।' (२)

" 'अत्थि इदप्पच्चया उपादानं' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया उपादानं' ति इति चे वदेय्य, 'तण्हापच्चया उपादानं' ति इच्चस्स वचनीयं। (४)

" 'अत्थि इदप्पच्चया तण्हा' ति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। [B.48] 'किंपच्चया तण्हा' ति इति चे वदेय्य, 'वेदनापच्चया तण्हा' ति इच्चस्स वचनीयं। (५)

" 'अत्थि इदप्पच्चया वेदना' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स [N.45] वचनीयं। 'किंपच्चया वेदना' ति इति चे वदेय्य, 'फस्सपच्चया वेदना' ति इच्चस्स वचनीयं।(६)

" 'अत्थि इदप्पच्चया फस्सो' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया फस्सो' ति इति चे वदेय्य, 'नामरूपपच्चया फस्सो' ति इच्चस्स वचनीयं। (७)

" 'अत्थि इदप्पच्चया नामरूपं' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया नामरूपं' ति इति चे वदेय्य, 'विञ्ञाणपच्चया नामरूपं' ति इच्चस्स वचनीयं।(८)

" 'अत्थि इदप्पच्चया विञ्ञाणं' ति इति पुट्ठेन सता, आनन्द, अत्थीतिस्स वचनीयं। 'किंपच्चया विञ्ञाणं' ति इति चे वदेय्य, 'नामरूपपच्चया विञ्ञाणं' ति इच्चस्स वचनीयं।(९)

३. "इति खो, आनन्द, नामरूपपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं,

---

"आनन्द! 'क्या भव सकारण है'– पूछे जाने पर, 'हाँ सकारण है'– यह कहना चाहिये। यदि वह यह पूछे कि 'इस भव का कारण क्या है?' तो यह पूछे जाने पर, 'भव का कारण है उपादान'– यह उत्तर देना चाहिये। (३)

"आनन्द! 'क्या उपादान (परिग्रहेच्छा) सकारण है?'– यह पूछे जाने पर 'हाँ, उपादान सकारण है'– यह कहना चाहिये।' 'उपादान का क्या कारण है?' यह पूछे जाने पर 'उपादान का कारण है तृष्णा'– यह इसको उत्तर देना चाहिये। (४)

"आनन्द! 'क्या तृष्णा सकारण है?'– पूछे जाने पर 'हाँ, तृष्णा सकारण है'– यह उत्तर देना चाहिये। 'इस तृष्णा का क्या कारण है?'– पूछे जाने पर, 'तृष्णा का कारण है वेदना'– यह उत्तर देना चाहिये। (५)

"आनन्द! 'क्या वेदना सकारण है?' – ऐसा पूछे जाने पर 'हाँ वेदना सकारण है'– यह कहना चाहिये। यदि यह पूछा जाय कि 'वेदना का क्या कारण होता है?' तो वेदना का कारण है स्पर्श' (इन्द्रिय–विषयसंयोग)– यह उत्तर देना चाहिये। (६)

"आनन्द! 'क्या स्पर्श भी सकारण है?'– 'ऐसा पूछा जाने पर, 'हाँ स्पर्श भी सकारण है'– ऐसा कहना चाहिये। फिर कोई यह पूछे कि 'इस स्पर्श का क्या कारण है?' तो कहना चाहिये– 'नामरूप स्पर्श का कारण है।' (७)

"आनन्द! फिर कोई तुमसे यह पूछे– 'क्या नामरूप सकारण है?' 'हाँ! सकारण हैं'– यह उत्तर देना चाहिये। इस पर कोई पूछे– 'नामरूप का क्या कारण है? तो उत्तर देना चाहिये– 'नामरूप का कारण है विज्ञान' (८)

"'तो क्या विज्ञान भी सकारण है?' आनन्द! तुमसे किसी के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर तुम्हें उत्तर देना चाहिये– 'विज्ञान भी सकारण है।' 'तो फिर विज्ञान का क्या कारण है?' ऐसा पूछे जाने पर कहना चाहिये– 'विज्ञान का कारण नाम रूप'। (९)

३. "यों, आनन्द! नामरूप के प्रत्यय (कारण) से विज्ञान, विज्ञान के कारण (प्रत्यय) से नामरूप,

उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा [R.57] सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

इमस्मिं असति इदं न होति

४. " 'जातिपच्चया जरामरणं' ति इति खो पनेतं वुत्तं, तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— जातिपच्चया जरामरणं। जाति चे हि, आनन्द, नाभविस्स, सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं— देवानं वा देवत्ताय, गन्धब्बानं वा गन्धब्बत्ताय, यक्खानं वा यक्खत्ताय, भूतानं वा भूतत्ताय, मनुस्सानं वा मनुस्सत्ताय, चतुप्पदानं वा चतुप्पदत्ताय, पक्खीनं वा पक्खित्ताय, सरीसपानं वा सरीसपत्ताय, तेसं तेसं च हि, आनन्द, सत्तानं तदत्ताय [B.49] जाति नाभविस्स, सब्बसो जातिया असति जातिनिरोधा अपि नु खो जरामरणं पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु, एतं निदानं, एस समुदयो, एस पच्चयो जरामरणस्स यदिदं जाति।

[N.46] ५. " 'भवपच्चया जाती' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं यथा— भवपच्चया जाति। भवो च हि, आनन्द, नाभविस्स, सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं— कामभवो वा रूपभवो वा अरूपभवो वा, सब्बसो भवे असति भवनिरोधा अपि नु खो जाति पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो जातिया यदिदं भवो।

नामरूप के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति, जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास का सम्भव (उत्पत्ति) है। यों इस समग्र दुःख–स्कन्ध का समुदय (उत्पत्ति) होता है।

इसके न होने पर यह नहीं होता– ४. "आनन्द! जाति (जन्म) के कारण जरा–मरण' –यह जो कहा गया उसे इस तरह विस्तारपूर्वक जानना चाहिये। यदि आनन्द! यदि यहाँ जाति न होती तो सर्वप्रकार से सब की सर्वथा कोई कुछ भी जाति ही न होती; जैसे–देवों का देवत्व, गन्धर्वों का गन्धर्वत्व, यक्षों का यक्षत्व, भूतों का भूतत्व, मनुष्यों का मनुष्यत्व, चतुष्पदों (चौपायों) का चतुष्पदत्व, पक्षियों का पक्षित्व, सरीसृपों (रेंगने वालों) का सरीसृपत्व, संक्षेप में कहना हो तो यों कहिये कि उन प्राणियों का वह वह न होना। आनन्द! यदि जाति न होती, तो जाति का सर्वथा निरोध होने पर जरा–मरण की यत्किञ्चित् भी सम्भावना होगी? "नहीं भन्ते!"

"अतः आनन्द! जरामरण का जाति ही एकमात्र हेतु है, यही निदान है, इसे समुदय कह लो, या प्रत्यय कह लो।

५. "आनन्द! पीछे 'भव के कारण जाति होती है'–कहा गया है, इसे इस तरह विस्तारपूर्वक जानना चाहिये–'भव के कारण जाति होती है; क्योंकि आनन्द! यदि जाति न होती तो यहाँ यह कोई भव न होता। जैसे–कामभव (पार्थिव लोक) रूपभव (=अपार्थिव साकार लोक) एवं अरूपभव (निराकार लोक)। भव के सर्वथा न होने पर भव का सर्वथा निरोध होने पर, आनन्द! क्या जाति (जन्म) दिखायी पड़ती?" "नहीं दिखायी पड़ती, भन्ते!"

६. " 'उपादानपच्चया भवो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— उपादानपच्चया भवो। उपादानं च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन [R.58] सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं— कामुपादानं वा दिट्ठुपादानं वा सीलब्बतुपादानं वा अत्तवादुपादानं वा, सब्बसो उपादाने असति उपादाननिरोधा अपि नु खो भवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो भवस्स यदिदं उपादानं।

७. " 'तण्हापच्चया उपादानं' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— तण्हापच्चया उपादानं। तण्हा च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं— रूपतण्हा सद्दतण्हा गन्धतण्हा रसतण्हा फोट्ठब्बतण्हा धम्मतण्हा, सब्बसो तण्हाय असति तण्हानिरोधा अपि नु खो उपादानं पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो उपादानस्स यदिदं तण्हा।

८. " 'वेदनापच्चया तण्हा' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— वेदनापच्चया तण्हा। वेदना च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं [B.50] सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं— चक्खुसम्फस्सजा वेदना सोतसम्फस्सजा वेदना घानसम्फस्सजा वेदना जिव्हासम्फस्सजा वेदना कायसम्फस्सजा वेदना मनोसम्फस्सजा वेदना, सब्बसो वेदनाय असति वेदनानिरोधा अपि नु खो तण्हा पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"इसलिये, आनन्द! जन्म का यही हेतु है इसे समुदय या प्रत्यय कुछ भी कहा जा सकता है।"

६. "आनन्द! उपादानप्रत्यय से भव होता है–यह कहा गया है, इस का विश्लेषण इस प्रकार जानना चाहिये–उपादानप्रत्यय से भव होता है। यदि आनन्द! उपादान न होता तो सब तरह से सर्वथा सब कुछ किसी का भी किसी में भी जैसे–कामोपादान, दृष्ट्युपादान, शीलव्रतोपादान, अथवा आत्मवादोपादान होता। इस उपादान के न होने पर उपादान का निरोध होने पर क्या, आनन्द! भव को प्रज्ञप्त किया जा सकता था?" "नही, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! भव का उपादान ही हेतु है। इस हेतु को ही समुदय या प्रत्यय कह देते हैं।"

७. "और, आनन्द! 'तृष्णा' के कारण उपादान होता है–यह जो कहा है इसका विश्लेषण यह है–यदि, आनन्द! यहाँ तृष्णा न होती, जैसे की रुपतृष्णा, शब्दतृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा स्प्रष्टव्यतृष्णा या धर्मतृष्णा। आनन्द! यदि यह सब तरह की तृष्णा न होती तो क्या सभी तरह का उपादान किसी को जानना पड़ता?" "नहीं, भन्ते!"

"तो, आनन्द! इस तृष्णा को ही उपादान का हेतु समझो....।

८. "और, आनन्द! वेदना के कारण तृष्णा होती है–इस का विश्लेषण यों है–यदि यह वेदना सर्वथा.... न होती जैसे–चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदना, श्रोत्रसंस्पर्शजन्य वेदना, घ्राणसंस्पर्शजन्य वेदना, जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदना, कायसंस्पर्शजन्य वेदना, मनःसंस्पर्शजन्य वेदना। इस तरह आनन्द! इस सार्वत्रिक

[N.47] ''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो तण्हाय यदिदं वेदना।

९. ''इति खो पनेतं, आनन्द, वेदनं पटिच्च तण्हा, तण्हं पटिच्च परियेसना, परियेसनं पटिच्च लाभो, लाभं पटिच्च विनिच्छयो, विनिच्छयं पटिच्च छन्दरागो, छन्दरागं पटिच्च अज्झोसानं, [R.59] अज्झोसानं पटिच्च परिग्गहो, परिग्गहं पटिच्च मच्छरियं, मच्छरियं पटिच्च आरक्खो, आरक्खाधिकरणं दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुञ्ञ-मुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति।

१०. '' 'आरक्खं पटिच्च आरक्खाधिकरणं दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुञ्ञ-मुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ती' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— आरक्खाधिकरणं दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुञ्ञ-मुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति। आरक्खो च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो आरक्खे असति आरक्खनिरोधा अपि नु खो दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुञ्ञ-मुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवेय्युं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुञ्ञ-मुसावादानं अनेकेसं पापकानं अकुसलानं धम्मानं सम्भवाय यदिदं आरक्खो।

११. '' 'मच्छरियं पटिच्च आरक्खो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं

वेदना के अभाव में इस का सर्वथा निरोध होने पर क्या यह सम्भव है कि फिर किसी प्रकार की तृष्णा उत्पन्न हो जाय?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो, आनन्द! इस वेदना को ही तृष्णा का उत्पादक कारण समझो। यह वेदना ही इस तृष्णा का निदान है, समुदय है, प्रत्यय है—ऐसा समझो।

९. ''इस प्रकार, आनन्द! वेदना की अपेक्षा से यह तृष्णा उत्पन्न होती है और इस तृष्णा की अपेक्षा कर के पर्येषणा (खोज), पर्येषणा की अपेक्षा कर के लाभ, लाभ की अपेक्षा करके विनिश्चय (=लाभप्राप्ति हेतु दृढ़ निर्णय), विनिश्चय की अपेक्षा से छन्दराग (तदर्थ प्रयत्न की इच्छा), छन्दराग की अपेक्षा से अध्यवसान (प्रयत्न), अध्यवसान की अपेक्षा से परिग्रह (संग्रह करना), परिग्रह की अपेक्षा से मात्सर्य (कञ्जूसी), मात्सर्य की अपेक्षा से आरक्षा (=प्राप्त की सुरक्षा), और इस आरक्षा की अपेक्षा से ही लोक में सर्वत्र लाठी-डण्डा ले कर चलना (दण्डग्रहण), भाला, तलवार ले कर चलना (शस्त्र-ग्रहण), परस्पर कलह, विग्रह, विवाद, तूँ-तूँ मैं-मैं, एक दूसरे की चुगलखोरी, झूँठ बोलना आदि अनेक पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है।

१०. ''यहाँ, आनन्द! 'आरक्षा की अपेक्षा से ही लोक में सर्वत्र ....पूर्ववत् .... अकुशल धर्म उत्पन्न होने की सम्भावना होती है'—यह जो कहा है, उसे इस तरह से समझना चाहिये—यदि, आनन्द! आरक्षा.... न होती आरक्षा का सर्वथा अभाव होने पर उसका सर्वथा निरोध होने पर क्या यह सम्भव था कि लोग हाथ में लाठी-डण्डा, भाला तलवार....अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो पाती?'' ''नहीं, भन्ते!''

परियायेन वेदितब्बं, यथा— मच्छरियं पटिच्च आरक्खो। मच्छरियं च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो मच्छरिये असति [B.51] मच्छरियनिरोधा अपि नु खो आरक्खो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो आरक्खस्स यदिदं मच्छरियं।

१२. '' 'परिग्गहं पटिच्च मच्छरियं' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— परिग्गहं पटिच्च मच्छरियं। परिग्गहो च हि, [N.48, R.60] आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो परिग्गहे असति परिग्गहनिरोधा अपि नु खो मच्छरियं पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो मच्छरियस्स यदिदं परिग्गहो।

१३. '' 'अज्झोसानं पटिच्च परिग्गहो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— अज्झोसानं पटिच्च परिग्गहो। अज्झोसानं च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो अज्झोसाने असति अज्झोसाननिरोधा अपि नु खो परिग्गहो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो परिग्गहस्स— यदिदं अज्झोसानं।

१४. '' 'छन्दरागं पटिच्च अज्झोसानं' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं

''तो, आनन्द! इसी बात से समझ लो कि लोक में इस लाठी-डण्डा.... अकुशल धर्मों की उत्पत्ति इस आरक्षा की अपेक्षा से ही होती है।

११. ''आनन्द! पहले यह भी कहा था-'मात्सर्य की अपेक्षा से ही आरक्षा की आवश्यकता पड़ती है'। इसका विस्तार यों समझना चाहिये-यदि आनन्द! सर्वथा सब तरह से सभी को किसी तरह का कुछ भी मात्सर्य न होता तो इस सब तरह के मात्सर्य के अभाव के कारण, मात्सर्य के निरोध के कारण, आरक्षा की कोई आवश्यकता न रहने से वह कहीं देखने में आती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो बस, आनन्द! इसी से समझ लो कि यह मात्सर्य ही आरक्षा का उत्पादक कारण है। ....''

१२. ''आनन्द! अभी पीछे कहा गया था-'परिग्रह ही इस मात्सर्य का हेतु (प्रत्यय) है' -इस का विश्लेषण यों समझना चाहिये-परिग्रह की अपेक्षा से ही मात्सर्य होता है; यदि ऐसा न होता और सर्वथा, सबको सब तरह से कहीं भी, किसी की भी परिग्रह का सर्वथा निरोध हो जाने पर मात्सर्य की किसी को आवश्यकता पड़ती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो फिर आनन्द! इसी से समझ लो कि यह परिग्रह ही इस मात्सर्य का मूल है निदान है, समुदय या प्रत्यय है।

१३. ''और, आनन्द! 'अध्यवसान (प्रयत्न) ही परिग्रह का हेतु है' यह जो कहा था, उसका विस्तार यों करना चाहिये-यदि, आनन्द! किसी का सर्वथा, सब तरह से सबका कोई अध्यवसान न होता तो क्या किसी को परिग्रह की आवश्यकता होती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो बस, आनन्द! इसी से समझ लो कि इस परिग्रह का अध्यवसान ही एकमात्र हेतु है....।

परियायेन वेदितब्बं, यथा— छन्दरागं पटिच्च अज्झोसानं। छन्दरागो च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो छन्दरागे असति छन्दरागनिरोधा अपि नु खो अज्झोसानं पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो अज्झोसानस्स यदिदं छन्दरागो।

१५. '' 'विनिच्छयं पटिच्च छन्दरागो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— विनिच्छयं पटिच्च छन्दरागो। विनिच्छयो च हि, आनन्द नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो विनिच्छये असति विनिच्छयनिरोधा [R.61] अपि नु खो छन्दरागो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो छन्दरागस्स यदिदं विनिच्छयो।

[B.52] १६. '' 'लाभं पटिच्च विनिच्छयो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा— लाभं पटिच्च विनिच्छयो। लाभो च हि, आनन्द, नाभविस्स [N.49] सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो लाभे असति लाभनिरोधा अपि नु खो विनिच्छयो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो विनिच्छयस्स यदिदं लाभो।

१७. '' 'परियेसनं पटिच्च लाभो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा—परियेसनं पटिच्च लाभो। परियेसना च हि, आनन्द, नाभविस्स

---

१४. ''आनन्द! पीछे कहा गया—'छन्दराग (प्रयत्न की इच्छा) की अपेक्षा से अध्यवसान होता है' इस का विश्लेषण भी यों समझो—आनन्द! यदि सर्वथा सब तरह से सबको छन्दराग होता ही नहीं और इस प्रकार इस छन्दराग का सर्वथा अभाव होने पर, निरोध होने पर अध्यवसान (प्रयत्न) सम्भव होता?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो आनन्द! इसी से समझ लो कि छन्दराग ही इस अध्यवसान की उत्पत्ति में हेतु है ....।

१५.'' 'विनिश्चय (दृढ़ निश्चय) के कारण छन्दराग उत्पन्न होता है'—इस का विश्लेषण आनन्द! यों समझो—आनन्द! यदि सर्वथा सब तरह से सब को यह विनिश्चय नहीं होता तो छन्दराग की सम्भावना (उत्पत्ति) होती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो आनन्द! इतने से ही समझ लो कि छन्दराग के उत्पाद में विनिश्चय ही एकमात्र कारण है....।

१६.' ''लाभ के कारण विनिश्चय होता है' —आनन्द! इस कथन का विस्तार भी ऐसे समझ लो—''आनन्द! लाभ के कारण ही मनुष्य को विनिश्चय होता है। यदि सर्वथा, सब को कोई लाभ न होता तो क्या किसी को, लाभ के अभाव में तथा लाभ का सर्वथा निरोध हो जाने पर, वहाँ विनिश्चय की सम्भावना होती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो आनन्द! इसी से समझ लो कि यह विनिश्चय लाभमूलक ही है; क्योंकि लाभ न होगा तो विनिश्चय की सम्भावना ही कहाँ होगी!

सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सब्बसो परियेसनाय असति परियेसनानिरोधा अपि नु खो लाभो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो लाभस्स यदिदं परियेसना।

१८. '' 'तण्हं पटिच्च परियेसना' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा—तण्हं पटिच्च परियेसना। तण्हा च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं—कामतण्हा विभवतण्हा, सब्बसो तण्हाय असति तण्हानिरोधा अपि नु खो परियेसना पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो परियेसनाय यदिदं तण्हा। इति खो, आनन्द, इमे द्वे धम्मा द्वयेन वेदनाय एकसमोसरणा भवन्ति।

१९. '' 'फस्सपच्चया वेदना' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं [R.62] परियायेन वेदितब्बं, यथा— फस्सपच्चया वेदना ति। फस्सो च हि, आनन्द, नाभविस्स सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं कस्सचि किम्हिचि, सेय्यथिदं—चक्खुसम्फस्सो सोतसम्फस्सो घानसम्फस्सो जिव्हासम्फस्सो कायसम्फस्सो मनोसम्फस्सो, सब्बसो फस्से असति फस्सनिरोधा अपि नु खो वेदना पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो वेदनाय [B.53] यदिदं फस्सो।

२०. '' 'नामरूपपच्चया फस्सो' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं [N.50] परियायेन वेदितब्बं, यथा—नामरूपपच्चया फस्सो। येहि, आनन्द, आकारेहि येहि लिङ्गेहि

---

१७. ''आनन्द! 'पर्येषणा (=खोज) लाभ का कारण है'—यह जो कहा था, इस का स्पष्टीकरण यों है—आनन्द! यह पर्येषणा (=खोज) लाभ का कारण है। यदि सब को सब तरह से कोई पर्येषणा न होती तो लाभ की उत्पत्ति सम्भव थी?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो आनन्द! इसी से समझ लो कि लाभ की उत्पत्ति में पर्येषणा ही मूल हेतु है।

१८. '' 'यह तृष्णा ही उक्त पर्येषणा में प्रथमतः अपेक्षित होती है'—यह जो कहा गया है, उसका स्पष्टार्थ यों है—(कामतृष्णा, भवतृष्णा विभवतृष्णा) इस त्रिविध तृष्णा से ही पर्येषणा होती है। अन्यथा सब को सब तरह से सर्वथा तृष्णा का अभाव रहता, उसका निरोध हो जाता तो क्या पर्येषणा की उत्पत्ति सम्भव थी?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो इसी से समझना चाहिये कि यह तृष्णा ही पर्येषणा की उत्पत्ति में सहायक है। इस तरह आनन्द! इस वेदना के प्रत्ययमूल ये दो धर्म (वट्टमूलतृष्णा एवं समुदाचारतृष्णा) एकत्र रहते हैं।

१९. '' 'स्पर्श के कारण वेदना होती है'—आनन्द! यह जो कहा गया है उसका स्पष्टार्थ यह है—स्पर्श के कारण ही वेदना होती है। आनन्द! यदि स्पर्श (विषयेन्द्रियसंयोग) किसी को सर्वथा न होता, जैसे—चक्षुःसंस्पर्श, श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणसंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्श, कायसंस्पर्श एवं मनःसंस्पर्श यों सब प्रकार के स्पर्श न होने पर स्पर्श का निरोध होने पर क्या किसी वेदना की उत्पत्ति होती?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो आनन्द! इसी से समझ लो इस स्पर्श के उत्पाद में वेदना ही प्रधान कारण (हेतु) है। ....।

२०. '' 'नामरूप के कारण स्पर्श का उत्पाद होता है'—आनन्द! यह जो कहा गया है, उसका

येहि निमित्तेहि येहि उद्देसेहि नामकायस्स पञ्ञत्ति होति, तेसु आकारेसु तेसु लिङ्गेसु तेसु निमित्तेसु तेसु उद्देसेसु असति अपि नु खो रूपकाये अधिवचनसम्फस्सो पञ्ञायेथा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''येहि, आनन्द, आकारेहि येहि लिङ्गेहि येहि निमित्तेहि येहि उद्देसेहि रूपकायस्स पञ्ञत्ति होति, तेसु आकारेसु....पे०....तेसु उद्देसेसु असति अपि नु खो नामकाये पटिघसम्फस्सो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''येहि, आनन्द, आकारेहि....पे०....येहि उद्देसेहि नामकायस्स च रूपकायस्स च पञ्ञत्ति होति, तेसु आकारेसु ....पे०....तेसु उद्देसेसु असति अपि नु खो अधिवचनसम्फस्सो वा पटिघसम्फस्सो वा पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''येहि, आनन्द, आकारेहि....पे०....येहि उद्देसेहि नामरूपस्स पञ्ञत्ति होति, तेसु आकारेसु....पे०....तेसु उद्देसेसु असति अपि नु खो फस्सो पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो फस्सस्स यदिदं नामरूपं।

[R.63] २१.'' 'विञ्ञाणपच्चया नामरूपं' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा—विञ्ञाणपच्चया नामरूपं। विञ्ञाणं च हि, आनन्द, मातुकुच्छिस्मिं न ओक्कमिस्सथ अपि नु खो नामरूपं मातुकुच्छिस्मिं समुच्चिस्सथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''विञ्ञाणं च हि, आनन्द, मातुकुच्छिस्मिं ओक्कमित्वा वोक्कमिस्सथ अपि नु खो नामरूपं इत्थत्ताय अभिनिब्बत्तिस्सथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

स्पष्टीकरण यों है—नामरूप के कारण स्पर्श की उत्पत्ति होती है। आनन्द! जिन आकारों, लिङ्गों, निमित्तों, उद्देशों के कारण नाम–काय (नाम–समुदाय) का ज्ञान होता है; उन आकारों, लिङ्गों, निमित्तों, उद्देशों के न होने पर क्या रूपकाय (रूपसमुदाय) का अधिवचन (नाम) देखा जाता है ?''

''नहीं, भन्ते!''

''आनन्द! जिन आकारों ....उद्देशों से रूपकाय का ज्ञान होता है, उन आकारों ....उद्देशों के न होने पर क्या नामकाय में प्रतिघसंस्पर्श (विरोध–योग) देखा जाता है?'' ''नहीं, भन्ते!''

''आनन्द! जिन आकारों ....उद्देशों से नामकाय और रूपकाय का ज्ञान होता है उन आकारों ....उद्देशो के न होने पर क्या उपर्युक्त अधिवचनसंस्पर्श या प्रतिघसंस्पर्श दिखायी पड़ता है?'' ''नहीं,भन्ते!''

''आनन्द! जिन आकारों ....उद्देशों से नामरूप का प्रज्ञापन (बोलना) होता है उन आकारों ....उद्देशों के अभाव में क्या स्पर्श दिखायी पड़ता है?'' ''नहीं, भन्ते!''

''इसीलिये समझ लो कि स्पर्श का यह नामरूप ही प्रत्यय है, निदान है और समुदय है।

२१. ''आनन्द! 'विज्ञान के कारण नामरूप होते हैं'—यह जो कहा है उस का स्पष्टीकरण इस तरह समझो कि विज्ञान की अपेक्षा से नामरूप का उत्पाद होता है। यदि आनन्द! विज्ञान (चित्तसन्तति, जीव) माता की कोंख में न आता तो यह नामरूप प्रयोग में आता?'' ''नहीं, भन्ते!''

''आनन्द! (एक बात और) यदि विज्ञान ही माता की कोंख में प्रवेश कर निकल जाय (गर्भपात हो जाय) तो इसके लिये कोई नाम–रूप प्रज्ञप्त करना ठीक होगा?'' ''नहीं, भन्ते!''

"विञ्ञाणं च हि, आनन्द, दहरस्सेव सतो वोच्छिज्जिस्सथ कुमारकस्स वा [N.51] कुमारिकाय वा अपि नु खो नामरूपं वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जिस्सथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो नामरूपस्स—यदिदं विञ्ञाणं।

२२. " 'नामरूपपच्चया विञ्ञाणं' ति इति खो पनेतं वुत्तं; तदानन्द, [B.54] इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं, यथा—नामरूपपच्चया विञ्ञाणं। विञ्ञाणं च हि, आनन्द, नामरूपे पतिट्ठं न लभिस्सथ अपि नु खो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु एतं निदानं एस समुदयो एस पच्चयो विञ्ञाणस्स यदिदं नामरूपं। एत्तावता खो, आनन्द, जायेथ वा जीयेथ वा मीयेथ वा चवेथ वा उपपज्जेथ वा। एत्तावता अधिवचनपथो, एत्तावता निरुत्तिपथो, एत्तावता पञ्ञत्तिपथो, एत्तावता [R.64] पञ्ञावचरं, एत्तावता वट्टं वत्तति इत्थत्तं पञ्ञापनाय यदिदं नामरूपं सह विञ्ञाणेन अञ्ञमञ्ञपच्चयता पवत्तति।

२. अत्तपञ्ञत्ति

२३. "कित्तावता च, आनन्द, अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति? रूपिं वा हि, आनन्द, परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति—'रूपी मे परित्तो अत्ता' ति। रूपिं वा हि, आनन्द, अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति—'रूपी मे अनन्तो अत्ता' ति। अरूपिं वा हि, आनन्द, परित्तं

"यदि, आनन्द! कुमार या कुमारी के अतिशिशु रहते ही यदि विज्ञान छिन्नभिन्न हो जाय तो क्या नामरूप वृद्धि या विपुलता को प्राप्त होगा?" "नहीं, भन्ते!"

"इस युक्ति से यह सिद्ध होता है आनन्द! कि यह नामरूप विज्ञान के ही कारण प्रज्ञप्त होता है।

२२. "और, आनन्द! यह जो कहा है—'नामरूप के कारण विज्ञान होता है', इस का अभिप्राय इस तरह समझना चाहिये—नाम-रूप के प्रत्यय (कारण) से विज्ञान होता है। यदि, आनन्द! विज्ञान नामरूप में प्रतिष्ठित न होता, उसका अभाव और निरोध हो जाता तो भी क्या उसके कारण उद्भूत होने वाले जाति, जरा-मरण आदि दुःखों की उत्पत्ति सम्भव है?" "नहीं, भन्ते!"

"यदि, आनन्द! कुमार या कुमारी के अतिशिशु रहते ही यदि विज्ञान छिन्नभिन्न हो जाय तो क्या नामरूप वृद्धि या विपुलता को प्राप्त होगा?" "नहीं, भन्ते!"

"इस लिये, आनन्द! विज्ञान का यही नामरूप हेतु है, यही निदान है, यही समुदय है, यही प्रत्यय है। इस विज्ञानसहित नामरूप से प्राणी जन्मता है, बूढ़ा होता है, मरता है, इसकी देहच्युति होती है, और यह फिर उत्पन्न होता है। इतने से ही यह नामरूप व्यवहार(अधिवचन), इतने से ही निरुक्ति-(=भाषा) व्यवहार, इतने से ही प्रज्ञा (=ज्ञान) का विषय है, इतने से ही 'इस प्रकार (इत्थन्त्व) का मार्ग बताने के लिये यह कहा जा रहा है कि नामरूप विज्ञान के साथ परस्पर सापेक्ष है।

२.(क) आत्मवाद-प्रज्ञप्ति

२३. "आनन्द! आत्मा (की सत्ता) का प्रज्ञापन करने वाले (आत्मवादी) कितने कारणों से उसका प्रज्ञापन (सत्ताबोध) करते हैं? (क) "कोई आत्मा को रूपवान् (भौतिक) एवं सूक्ष्म, (परित्त) मानता हुआ

अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति—'अरूपी मे परित्तो अत्ता' ति। अरूपिं वा हि, आनन्द, अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति—'अरूपी मे अनन्तो अत्ता' ति।

२४. "तत्रानन्द, यो सो रूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, एतरहि वा सो रूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो रूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, रूपिं परित्तत्तानुदिट्ठि अनुसेती ति इच्चालं वचनाय। (क)

"तत्रानन्द, यो सो रूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, एतरहि वा सो रूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो रूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो [B.55] पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स होति। [N.52] एवं सन्तं खो, आनन्द, रूपिं अनन्तत्तानुदिट्ठि अनुसेती ति इच्चालं वचनाय। (ख)

"तत्रानन्द, यो सो अरूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, एतरहि वा सो अरूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो अरूपिं परित्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, अरूपिं परित्तत्तानुदिट्ठि अनुसेती ति इच्चालं वचनाय। (ग)

"तत्रानन्द, यो सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, एतरहि वा सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं पञ्ञापेन्तो [R.65] पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, अरूपिं अनन्तत्तानुदिट्ठि अनुसेती ति इच्चालं वचनाय। (घ)

कहता है—'मेरा आत्मा रूपवान् और सूक्ष्म है'। (ख) कोई आत्मा को रूपवान् एवं अनन्त मानता हुआ कहता है—'मेरा यह आत्मा रूपवान् एवं अनन्त है'। (ग) और कोई आत्मा को रूपरहित परन्तु अणु मानता हुआ कहता है—'यह आत्मा रूपरहित एवं अणु है'। (घ) और कोई इस आत्मा को रूपरहित परन्तु अनन्त मानता हुआ कहता है—'यह आत्मा रूपरहित एवं अनन्त है'।

आत्मवाद का खण्डन—२४. "यहाँ, आनन्द! जो आत्मा को रूपवान् तथा अणु बताता है उससे पूछना चाहिये आप यह रूपवान् एवं अणु वर्तमान आत्मा को बता रहे हैं या भावी आत्मा को....? या वैसा न होते हुए को भी रूपवान् एवं अणु बताना चाह रहे हैं? ऐसा करने पर तो आनन्द! वह (ऐसा आत्मवादी) रूपवत्ता एवं सूक्ष्मता की मिथ्यादृष्टि के जाल में फँसा हुआ है—यही कहना पड़ेगा। (क)

"वह जो, आनन्द! (आत्मवादी) आत्मा को रूपवान् एवं अनन्त बता रहा है वह भी वर्तमान आत्मा को रूपवान् एवं अनन्त बता रहा है या भावी आत्मा को....? या उसके वैसा न होते हुए भी....पूर्ववत्....रूपवत्ता एवं अनन्त के मिथ्यादृष्टि जाल में फँसा हुआ है—यही कहना पड़ेगा। (ख)

"वह जो आनन्द! (आत्मवादी) आत्मा को रूपरहित परन्तु अणु बता रहा है वह भी वर्तमान्....पूर्ववत्.... रूपरहित सूक्ष्मता....यही कहना पड़ेगा। (ग)

"वह जो आनन्द! (आत्मवादी) आत्मा को रूपरहित परन्तु अनन्त बता रहा है वह वर्तमान आत्मा....पूर्ववत्.... रूपरहित अनन्तता की मिथ्यादृष्टि के जाल में फँसा हुआ है—यही कहना पड़ेगा। (घ)

"आनन्द! इन चार कारणों से ही कोई भी आत्मवादी आत्मा (की सत्ता) का प्रज्ञापन कर सकता है या कर पाता है।

"एत्तावता खो, आनन्द, अत्तानं पञ्ञापेन्तो पञ्ञापेति॥

न अत्तपञ्ञत्ति

२५. "कित्तावता च, आनन्द, अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति? रूपिं वा हि, आनन्द, परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति—'रूपी मे परित्तो अत्ता' ति। रूपिं वा हि, आनन्द, अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति—'रूपी मे अनन्तो अत्ता' ति। अरूपिं वा हि, आनन्द, परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति—'अरूपी मे परित्तो अत्ता' ति। अरूपिं वा हि, आनन्द, अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति—'अरूपी मे अनन्तो अत्ता' ति।

२६. "तत्रानन्द, यो सो रूपिं परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, एतरहि वा सो रूपिं परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो रूपिं परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स न होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, रूपिं परित्तत्तानुदिट्ठि नानुसेती ति इच्चालं वचनाय। (क)

"तत्रानन्द, यो सो रूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, एतरहि [B.56] वा सो रूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो रूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स न होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, रूपिं अनन्तत्तानुदिट्ठि नानुसेती ति इच्चालं वचनाय।(ख)

"तत्रानन्द, यो सो अरूपिं परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, एतरहि वा सो अरूपिं परित्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो अरूपिं परित्तं [N.53] अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा पनस्स न होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, अरूपिं परित्तत्तानुदिट्ठि नानुसेती ति इच्चालं वचनाय।(ग)

"तत्रानन्द, यो सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, एतरहि [R.66] वा सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, तत्थ भाविं वा सो अरूपिं अनन्तं अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति, 'अतथं वा पन सन्तं तथत्ताय उपकप्पेस्सामी' ति इति वा

---

२. (ख) **अनात्मवादप्रज्ञप्ति**—२५. "आनन्द! यहाँ कोई अनात्मवादी (आत्मा को प्रज्ञापित न करने वाला) अनात्मवाद (आत्मा के अभाव) को कैसे प्रज्ञापित करता है? (क) आनन्द! वह न तो आत्मा को रूपवान् तथा अणु कहता है। (ख) न आत्मा को रूपवान् या अनन्त मानता हुआ आत्मा का अस्त्वि स्वीकार करता है। (ग) न ही आत्मा को रूपरहित तथा सूक्ष्म मानता है। (घ) और न उसे रूपरहित अनन्त मानता है। **अनात्मवाद का खण्डन**—२६. आनन्द! वह अनात्मवाद को प्रज्ञापित करने वाला ऐसा करते हुए क्या वर्तमान आत्मा को रूपवान् या अणु प्रज्ञापित नहीं करता, या भावी आत्मा को या वैसा न होते हुए में वैसा आरोपित करता हुआ प्रज्ञापित करता है? तो ऐसा होने से वह 'आत्मा रूपवान् या अणु नहीं है'— इस दृष्टि को नही पकड़ पाया—यही कहना चाहिये। (क)

"आनन्द! ....वर्तमान रूपवान् अनन्त आत्मा को....आत्मा रूपवान् एवं अनन्त है—इस दृष्टि को नहीं पकड़ पाया—यही कहना चाहिये। (ख)

"आनन्द! ....वह वर्तमान रूपरहित एवं अणु आत्मा को....नहीं पकड़ पाया—यही कहना चाहिये। (ग)

पनस्स न होति। एवं सन्तं खो, आनन्द, अरूपिं अनन्तत्तानुदिट्ठि नानुसेती ति इच्चालं वचनाय। (घ)

एत्तावता खो, आनन्द, अत्तानं न पञ्ञापेन्तो न पञ्ञापेति।

अत्तसमनुपस्सना

२७. ''कित्तावता च, आनन्द, अत्तानं समनुपस्समानो समनुपस्सति? वेदनं वा हि, आनन्द, अत्तानं समनुपस्समानो समनुपस्सति—'वेदना मे अत्ता' ति। 'न हेव खो मे वेदना अत्ता, अप्पटिसंवेदनो मे अत्ता' ति इति वा हि, आनन्द, अत्तानं समनुपस्समानो समनुपस्सति। 'न हेव खो मे वेदना अत्ता, नो पि अप्पटिसंवेदनो इमे अत्ता, अत्ता मे वेदियति, वेदनाधम्मो हि मे अत्ता' ति इति वा हि, आनन्द, अत्तानं समनुपस्समानो समनुपस्सति।

२८. ''तत्रानन्द, यो सो एवमाह—'वेदना मे अत्ता' ति, सो एवमस्स वचनीयो—'तिस्सो खो इमा, आवुसो, वेदना—सुखा वेदना, दुखा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमासं [B.57] खो त्वं तिस्सन्नं वेदनानं कतमं अत्ततो समनुपस्ससी' ति? यस्मिं, आनन्द, समये सुखं वेदनं वेदेति, नेव तस्मिं समये दुक्खं वेदनं वेदेति, न अदुक्खमसुखं वेदनं वेदेति; सुखं येव तस्मिं समये वेदनं वेदेति। यस्मिं, आनन्द, समये दुक्खं वेदनं वेदेति, नेव तस्मिं समये सुखं वेदनं वेदेति, न अदुक्खमसुखं वेदनं वेदेति; दुक्खं येव तस्मिं समये वेदनं वेदेति। यस्मिं, आनन्द, समये अदुक्खमसुखं वेदनं वेदेति, नेव तस्मिं समये सुखं वेदनं वेदेति, न दुक्खं वेदनं वेदेति; अदुक्खमसुखं येव तस्मिं वेदनं वेदेति।

''आनन्द!....वह वर्तमान रूपरहित एवं अनन्त आत्मा को....नहीं पकड़ पाया—यही कहना चाहिये। (घ)

''इस तरह आनन्द! इन कारणों से वह अनात्मवादी आत्मा की प्रज्ञप्ति नहीं करपाता।

आत्मसमनुपश्यना—२७. ''आनन्द! किस हेतु से आत्मवादी आत्मा को देखते हुआ क्या देखता है? आत्मा की खोज करते हुए वह वेदना को ही आत्मा समझता हुआ 'वेदना मेरी आत्मा है'—यह समझता है। (क)

''या फिर 'वेदना मेरी आत्मा नहीं, अपितु असंवेदन (अननुभव) ही मेरी आत्मा है'—यह समझता है। (ख)

''या, आनन्द, कोई तत्त्वान्वेषी-'न वेदना मेरी आत्मा है, न अप्रतिसंवेदन ही मेरी आत्मा है, अपितु मेरी आत्मा वेदित है, अतः मेरी आत्मा वेदना धर्मवाली है'—ऐसा समझता है। (ग)

आनन्द, इन तीन विधियों से वह आत्मा की समनुपश्यना करता है।

२८. ''आनन्द! वह जो यह कहता है कि 'वेदना मेरी आत्मा है' उसको यह पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! वेदनाएँ तीन मानी गयी है'—सुखा वेदना, दुःखा वेदना एवं अदुःख—असुखा वेदना। इन तीन वेदनाओं में किस वेदना को तुम अपनी आत्मा समझ रहे हो? आनन्द! जब सुखा वेदना का अनुभव होता है तो उस समय सुखा वेदना ही रहती है, दुःखा वेदना या अदुःखासुखा वेदना नहीं; उस समय तो केवल सुखा वेदना ही रहती है। और जिस समय दुःखा वेदना का अनुभव होता है.... केवल दुःखा वेदना ही रहती है। और जिस समय, आनन्द! अदुःखासुखा वेदना का अनुभव होता है तो उस समय अदुःखासुखा वेदना अनुभूत होती है। तब न तो दुःखा वेदना और न सुखा वेदना ही अनुभूत होती है। उस समय तो केवल अदुःखासुखा वेदना ही रहती है।

२९. ''सुखा पि खो, आनन्द, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। दुक्खा पि खो, आनन्द, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्च-[R.67] समुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। अदुक्खमसुखा पि खो, आनन्द, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। तस्स सुखं वेदनं वेदियमानस्स 'एसो मे अत्ता' ति होति। तस्सा येव सुखाय वेदनाय निरोधा 'ब्यगा मे अत्ता' ति होति। दुक्खं वेदनं वेदियमानस्स 'एसो मे अत्ता' ति होति। तस्मा येव [N.54] दुक्खाय वेदनाय निरोधा 'ब्यगा मे अत्ता' ति होति। अदुक्खमसुखं वेदनं वेदियमानस्स 'एसो मे अत्ता' ति होति। तस्मा येव अदुक्खमसुखाय वेदनाय निरोधा 'ब्यगा मे अत्ता' ति होति। इति सो दिट्ठेव धम्मे अनिच्चसुखदुक्खवोकिण्णं उप्पादवयधम्मं अत्तानं समनुपस्समानो समनुपस्सति, यो सो एवमाह—'वेदना मे अत्ता' ति। तस्मातिहानन्द, एतेन पेतं नक्खमति— 'वेदना मे अत्ता' ति समनुपस्सितुं।

३०. ''तत्रानन्द, यो सो एवमाह—'न हेव खो मे वेदना अत्ता, अप्पटिसंवेदनो मे अत्ता' ति, सो एवमस्स वचनीयो—'यत्थ पनावुसो, सब्बसो वेदयितं नत्थि अपि नु खो, तत्थ अयमहमस्मी ति सिया' '' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''तस्मातिहानन्द, एतेन पेतं नक्खमति—'न हेव खो मे वेदना अत्ता, अप्पटिसंवेदनो मे अत्ता' ति समनुपस्सितुं।

३१. ''तत्रानन्द, यो सो एवमाह—'न हेव खो मे वेदना अत्ता, नो पि [B.58] अप्पटिसंवेदनो मे अत्ता, अत्ता मे वेदियति, वेदनाधम्मो हि मे अत्ता' ति, सो एवमस्स वचनीयो— 'वेदना च हि, आवुसो, सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अपरिसेसा निरुज्झेय्युं, सब्बसो वेदनाय

---

२९. ''आनन्द! सुखा वेदना भी अनित्य, संस्कृत एवं सापेक्षजन्म वाली (प्रतीत्यसमुत्पन्न) है, अतः वह क्षयधर्म है, विनाशी है, वैराग्य एवं निरोध धर्म (स्वभाव) वाली है। दुःखा वेदना भी अनित्य ....निरोध धर्म वाली है। और अदुःखासुखा वेदना भी अनित्य....निरोध धर्म वाली है। उस (तत्त्वान्वेषी) को सुखा वेदना का अनुभव करते हुए यह (सुखा वेदना) मेरी आत्मा है; उस सुखा वेदना का निरोध होने पर 'मेरी आत्मा विगत (विनष्ट) हो गयी' ऐसा होता है। दुःखा वेदना को अनुभव करते हुए....पूर्ववत्.....। अदुःखा सुखा वेदना का अनुभव करते हुए उसे होता है कि यही मेरी आत्मा है; परन्तु उसके निरुद्ध होने पर 'मेरी आत्मा विगत हो गयी'—ऐसा भी उसे ही अनुभव होता है। तो, आनन्द! वह इसी जन्म में आत्मा को अनित्य, सुख-दुःखमिश्रित, उत्पत्ति-विनाशस्वभाव वाला देखता है। तब उसका यह कहना कि—'वेदना मेरी आत्मा है'—यह ठीक नहीं। (क)

३०. ''आनन्द! जो वह ऐसा कहता है-'वेदना (अनुभव) मेरी आत्मा नहीं, अप्रतिसंवेदन (अनुभव. न होना) मेरी आत्मा है'; उससे यह पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! जब तुम्हारे कथनानुसार सर्वत्र असंवेदयित है तो तुम्हारा यह कहना कैसे बनेगा कि—वह मैं हूँ?'' ''नहीं बनेगा, भन्ते!''

''तो तुम्हारा यह कहना भी उचित नहीं कि अप्रतिसंवेदन ही आत्मा है। (ख)

३१. ''और जो (तीसरा) मतवादी यह कहता है कि न मेरी वेदना आत्मा है, न अप्रतिसंवेदन ही आत्मा है, अपितु जिस आत्मा को मैं अनुभव कर रहा हूँ वही मेरी आत्मा है; उससे भी यह पूछना चाहिये

असति वेदनानिरोधा अपि नु खो तत्थ अयमहमस्मी ति सिया' '' ति? ''नो हेतं, भन्ते''। [R.68] ''तस्मातिहानन्द, एतेन पेतं नक्खमति—'न हेव खो मे वेदना अत्ता, नो पि अप्पटिसंवेदनो मे अत्ता, अत्ता मे वेदियति, वेदनाधम्मो हि मे अत्ता' ति समनुपस्सितुं।

३२. ''यतो खो, आनन्द, भिक्खु नेव वेदनं अत्तानं समनुपस्सति, नो अप्पटिसंवेदनं अत्तानं समनुपस्सति, नो पि 'अत्ता मे वेदियति, वेदनाधम्मो हि मे अत्ता' ति समनुपस्सति; सो एवं न समनुपस्सन्तो न च किञ्चि लोके उपादियति। अनुपादियं न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एवं विमुत्तचित्तं खो, आनन्द, भिक्खुं यो एवं वदेय्य—'होति तथागतो परं मरणा इतिस्स दिट्ठी' ति, तदकल्लं; 'न होति तथागतो परं मरणा इतिस्स दिट्ठी' ति, तदकल्लं; [N.55] 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' इतिस्स दिट्ठी ति, तदकल्लं; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' इतिस्स दिट्ठी ति, तदकल्लं। तं किस्स हेतु? यावता, आनन्द, अधिवचनं यावता अधिवचनपथो, यावता निरुत्ति, यावता निरुत्तिपथो, यावता पञ्ञत्ति, यावता पञ्ञत्तिपथो, यावता पञ्ञा, यावता पञ्ञावचरं, यावता वट्टं, यावता वट्टति, तदभिञ्ञाविमुत्तो भिक्खु। तदभिञ्ञाविमुखं भिक्खुं 'न जानाति न पस्सति इतिस्स दिट्ठी' ति, तदकल्लं।

३. सत्त विञ्ञाणट्ठितियो

३३. ''सत्त खो, आनन्द, विञ्ञाणट्ठितियो, द्वे आयतनानि। कतमा सत्त? (१)

कि जब एक समय आने पर सब वेदनाएँ निरुद्ध हो ही जाती है तो, तब 'यह मेरी आत्मा है'—इसका विषय बनने के लिये कोई अवशिष्ट रह जायगा?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो, आनन्द! इस युक्ति से यह समझना चाहिये कि इस तीसरे मतवादी का मत भी उचित नहीं।

३२. ''क्योंकि, आनन्द! साधक भिक्षु न वेदना को आत्मा समझता है, न अप्रतिसंवेदन (अनुभव न होना) को और न 'आत्मा मेरा वेदित है, वेदना धर्मवाला मेरा आत्मा है'—यह समझता है। इस प्रकार समझकर लोक में किसी को भी 'मैं,' 'मेरा' से ग्रहण नहीं करता। उसके न ग्रहण करने वालों से वह त्रास नहीं पाता। त्रास न पाता हुआ स्वयं परिनिर्वाण को प्राप्त होता है। (तब वह) 'मेरा जन्म (—परम्परा) समाप्त हो गया, धर्म-साधना (ब्रह्मचर्यवास) पूर्ण हो चुकी, (अब मेरे लिये) यहाँ कुछ करणीय अवशिष्ट नहीं है'—इसे जानता है। आनन्द! ऐसे मुक्तचित्त साधक भिक्षु के विषय में कोई यह कहे—'मरने के बाद तथागत होते हैं—यह इसका मत (दृष्टि) है'—वह कथन अयुक्त है। 'मरने के बाद तथागत नहीं होते'—....। 'मरने के बाद तथागत होते भी है, नहीं भी होते'— ....। 'मरने के बाद तथागत न होते है, न नहीं होते'—यह भी अयुक्त है; वह किस कारण? जितनी भी, आनन्द! नामसंज्ञा (अधिवचन) है, जितना पथ (वाग्व्यवहार) है, जितना निर्वचन (भाषा) है, जितनी प्रज्ञप्ति (रूढ़ि) है, जितना भी प्रज्ञप्ति—व्यवहार है, जितनी भी प्रज्ञा (ज्ञान) है या जितना भी प्रज्ञा का विषय संसार (वट्ट) में है, उस सब को जान कर भिक्षु मुक्त हो जाता है। ऐसे विमुक्त उस भिक्षु के विषय में यह कहना कि 'यह नहीं जानता है, नहीं देखता है'—यह कहना (सर्वथा) असङ्गत है।

३. सप्तविध विज्ञानस्थितियाँ

३३. ''आनन्द! विज्ञान (जीव) की सात स्थितियाँ (योनियाँ) है, और दो आयतन (क्षेत्र)। वे सात

सन्तानन्द, सत्ता नानत्तकाया नानत्तसञ्ञिनो, सेय्यथापि मनुस्सा, एकच्चे च देवा, [R.69] एकच्चे च विनिपातिका। अयं पठमा विञ्ञाणट्ठिति। (२) सन्तानन्द, सत्ता नानत्तकाया [B.59] एकत्तसञ्ञिनो, सेय्यथापि देवा ब्रह्मकायिका पठमाभिनिब्बत्ता। अयं दुतिया विञ्ञाणट्ठिति। (३) सन्तानन्द, सत्ता एकत्तकाया नानत्तसञ्ञिनो, सेय्यथापि देवा आभस्सरा। अयं ततिया विञ्ञाणट्ठिति। (४) सन्तानन्द, सत्ता एकत्तकाया एकत्तसञ्ञिनो, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा। अयं चतुत्थी विञ्ञाणट्ठिति। (५) सन्तानन्द, सत्ता सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनूपगा। अयं पञ्चमी विञ्ञाणट्ठिति। (६) सन्तानन्द, सत्ता सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनूपगा। अयं छट्ठी विञ्ञाणट्ठिति। (७) सन्तानन्द, सत्ता सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनूपगा। अयं सत्तमी विञ्ञाणट्ठिति। असञ्ञसत्तायतनं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनमेव दुतियं।

३४. "तत्रानन्द, यायं पठमा विञ्ञाणट्ठिति नानत्तकाया नानत्तसञ्ञिनो, सेय्यथापि मनुस्सा, एकच्चे च देवा, एकच्चे च विनिपातिका, यो नु खो, आनन्द, तं च पजानाति तस्सा च समुदयं पजानाति तस्सा च अत्थङ्गमं पजानाति तस्सा च अस्सादं पजानाति तस्सा च आदीनवं पजानाति तस्सा च निस्सरणं पजानाति, कल्लं नु तेन तदभिनन्दितुं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तत्रानन्द, यमिदं असञ्ञसत्तायतनं , यो नु खो, आनन्द, तं च पजानाति तस्स च

योनियाँ कौन सी हैं? (१) "कोई-कोई सत्त्व नाना काय एवं नाना संज्ञा वाले, होते हैं; जैसे-मनुष्य, देवता, (कामधातु के छह) और विनिपातिक (पिशाच आदि नीच योनियों वाले) यह प्रथम विज्ञान स्थिति (योनि) है। (२) "और आनन्द! कोई कोई सत्त्व नाना कायवाले परन्तु एक संज्ञा वाले होते है; जैसे-प्रथम ध्यान के साथ उत्पन्न ब्रह्मकायिक देवता। वह दूसरी विज्ञानस्थिति है। (३) आनन्द! कोई सत्त्व ऐसे भी हैं जो एक काया परन्तु नाना संज्ञावाले हैं; जैसे-आभास्वर देवता। यह तृतीय विज्ञानस्थिति है। (४) ....एक काया तथा एक संज्ञा वाले हैं; जैसे- शुभकृत्स्न। यह चतुर्थ विज्ञानस्थिति है। (५) आनन्द! कोई सत्त्व ऐसे हैं जो रूप-संज्ञा के अतिक्रमण, प्रतिहिंसा (प्रतिघ-द्वेष) संज्ञा के अस्त हो जाने से नानात्व की संज्ञा का चित्त में ध्यान न करने से 'अनन्त आकाश'-इस आकाश-आयतन (वासस्थान) को प्राप्त करते हैं। यह पाँचवीं विज्ञान स्थिति हैं। (६) ....आकाश आयतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर विज्ञान अनन्त है, इस विज्ञान-आयतन को प्राप्त करते हैं। यह छठी विज्ञानस्थिति है। (७) आनन्द! कोई कोई सत्त्व विज्ञान आयतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'-इस आकिञ्चन्य आयतन को प्राप्त होते हैं। यह सातवीं विज्ञान स्थिति है। दो आयतन (क्षेत्र, वासस्थान) भी हैं-जैसे-एक असंज्ञी (संज्ञारहित) सत्त्व आयतन एवं दूसरा नैव संज्ञा नासंज्ञा-आयतन (न संज्ञा वाला न असंज्ञावाला) सत्त्वों का आवास।

३४. "आनन्द! वहाँ यह जो प्रथम विज्ञानस्थिति है, जहाँ नाना काय एवं नाना संज्ञावाले प्राणी जन्म लेते है, जैसे मनुष्य, देव एवं विनिपातिक; आनन्द! जो साधक उसे जानता है, उसके समुदय (उत्पत्ति) को जानता है, उसके अस्तगमन (नाश या निरोध) को जानता है, उसके आस्वाद को जानता है, उसके दुष्परिणामों (दोषों) को जानता है, उससे निःसरण (छूटने का मार्ग) को जानता है, क्या ऐसे उस ज्ञाता को इस विज्ञानस्थिति का अभिनन्दन (हर्षोल्लास) करना उचित है?" "नहीं भन्ते!"

[N.56] समुदयं पजानाति तस्स च अत्थङ्गमं पजानाति तस्स च अस्सादं पजानाति तस्स च आदीनवं पजानाति तस्स च निस्सरणं पजानाति, कल्लं नु तेन तदभिनन्दितुं'' ति?

[R.70] ''नो हेतं, भन्ते''।

''तत्रानन्द, यमिदं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं, यो नु खो, आनन्द, तं च पजानाति तस्स च समुदयं पजानाति तस्स च अत्थङ्गमं पजानाति तस्स च अस्सादं पजानाति तस्स च आदीनवं पजानाति तस्स च निस्सरणं पजानाति, कल्लं नु तेन तदभिनन्दितुं'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''यतो खो, आनन्द, भिक्खु इमासं च सत्तन्नं विञ्ञाणट्ठितीनं इमेसं च द्विन्नं आयतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादा विमुत्तो होति, अयं वुच्चतानन्द, भिक्खु पञ्ञाविमुत्तो।

४. अट्ठ विमोक्खा

[B.60] ३५. ''अट्ठ खो इमे, आनन्द, विमोक्खा। कतमे अट्ठ? (१) रूपी रूपानि पस्सति, [R.71]अयं पठमो विमोक्खो। (२) अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति, अयं दुतियो विमोक्खो। (३) सुभन्तेव अधिमुत्तो होति, अयं ततियो विमोक्खो। (४) सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं चतुत्थो विमोक्खो। (५) सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं पञ्चमो विमोक्खो। (६) सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं छट्ठो विमोक्खो। (७) सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं

इसी तरह, आनन्द! जो दूसरी....तीसरी....चौथी....पाँचवी....छठी....सातवी....आँठवीं ....पूर्ववत्....।

''आनन्द! वहाँ जो असंज्ञी सत्त्वायतन है, उसे जो जानता है, उसका समुदय, विनाश, आस्वाद, आदीनव, एवं निःसरण जानता है उसे उसका अभिनन्दन करना उचित है?'' ''नहीं, भन्ते!''

''आनन्द! वहाँ जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है ....पूर्ववत्....?'' ''नहीं, भन्ते!''

''क्योंकि, आनन्द! जो साधक भिक्षु इन सात विज्ञानस्थितियों का, इन दो आयतनों का समुदय, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथातथ रूप से जानकर इन उपादानों को न ग्रहण कर मुक्त हो जाता है, वह भिक्षु 'प्रज्ञा द्वारा विमुक्त' कहलाता है।

३. आठ विमोक्ष

३५. ''आनन्द! ये आठ विमोक्ष हैं। कौन से आठ? (१) स्वयं रूपवान् (होता हुआ) दूसरे रूपों को देखता है।—यह प्रथम विमोक्ष है। (२) स्वयं आन्तरिक रूपरहित संज्ञा वाला होता हुआ, बाहर के रूपों को देखता है—यह द्वितीय विमोक्ष है। (३) 'शुभ है'—इस से विमुक्त रहता है—यह तृतीय विमोक्ष है। (४) ''रूप''संज्ञा का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) संज्ञा के अस्त (विनष्ट) हो जाने से नानात्व संज्ञा को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'—इस अनन्त आकाश के आयतन को प्राप्त हो कर साधना करता है—यह चतुर्थ विमोक्ष है। (५) 'अनन्त आकाश के आयतन का भी सर्वथाअतिक्रमण कर विज्ञान अनन्त है'—इस अनन्त विज्ञान आयतन को प्राप्त कर साधना करता है—यह पञ्चम विमोक्ष है। (६) 'वह विज्ञान आयतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—यह आकिञ्चन्य आयतन प्राप्त कर साधना करता है—यह षष्ठ विमोक्ष है। (७) (साधना करते-करते) इस आकिञ्चन्य आयतन का भी सर्वथा

समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं सत्तमो विमोक्खो। (८) सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति, अयं अट्ठमो विमोक्खो। इमे खो, आनन्द अट्ठ विमोक्खा।

३६. "यतो खो, आनन्द, भिक्खु इमे अट्ठ विमोक्खे अनुलोमं पि समापज्जति, पटिलोमं पि समापज्जति, अनुलोमपटिलोमं पि समापज्जति, यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चतानन्द, भिक्खु उभतोभाग-[N.57] विमुत्तो। इमाय च, आनन्द, उभतोभागविमुत्तिया अञ्ञा उभतोभागविमुत्ति उत्तरितरा वा पणीततरा वा नत्थी" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

महानिदानसुत्तं निट्ठितं दुतियं॥

साधना करता है—यह सातवाँ विमोक्ष है। (८) "और इसी तरह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी अतिक्रमण कर, संज्ञा की वेदना के निरोध (संज्ञावेदितनिरोध) को प्राप्त कर साधना करता है— यह अष्टम विमोक्ष है।

३६. "जब आनन्द! इन आठ विमोक्षों को,साधक भिक्षु,अनुलोम (१,२,३) क्रम से प्राप्त कर समाधिरत रहता है, प्रतिलोम क्रम से (८,७,६) भी साधनारत रहता है तथा अनुलोम से भी और प्रतिलोम क्रम से (१,८,१) भी साधनारत रहता है, जैसे चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है उतनी समाधि प्राप्त करता है, उतनी समाधि से उठता है। आश्रवों (राग-द्वेषादि चित्त-मलों) के क्षय से इसी जन्म में अनाश्रव (आश्रवरहित) चित्तविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात् कर साधनारत रहता है; आनन्द! ऐसा साधक भिक्षु 'उभतोभागविमुक्त' कहलाता है। आनन्द! ऐसा, इस उभतोभागविमुक्ति से प्राप्त हुए ज्ञान से बढ़ कर,दूसरा कोई ज्ञान नहीं है।"

भगवान् ने यह कहा। आप्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की इस देशना का अभिनन्दन किया।।

द्वितीय महानिदानसूत्र समाप्त।।

३. महापरिनिब्बानसुत्तं

१. वज्जीनं सत्त अपरिहानिया धम्मा

[N.58, B.61, R.72] १. "एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो होति। सो एवमाह— "अहं हिमे वज्जी एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे उच्छेच्छामि वज्जी, विनासेस्सामि वज्जी, अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी" ति।

२. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वस्सकारं ब्राह्मणं मगधमहामत्तं आमन्तेसि— "एहि त्वं, ब्राह्मण, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ— 'राजा, भन्ते, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि— 'राजा, भन्ते, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो। सो एवमाह— अहं हिमे वज्जी एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे उच्छेच्छामि [R.73] वज्जी, विनासेस्सामि वज्जी, अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी' ति। यथा ते भगवा ब्याकरोति तं साधुकं उग्गहेत्वा मम आरोचेय्यासि। न हि तथागता वितथं भणन्ती' " ति।

३. "एवं, भो" ति खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिस्सुत्वा भद्दानि भद्दानि यानानि योजेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि राजगहम्हा निय्यासि, येन गिज्झकूटो पब्बतो तेन पायासि। यावतिका यानस्स

---

३. महापरिनिर्वाणसूत्र

१. अजातशत्रु का वज्जियों के विरुद्ध अभियान

गृधकूट पर्वत पर– १. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र वज्जिप्रदेश पर चढ़ाई (आक्रमण=अभियान) करना चाहता था। वह यों बोला– "मैं इन ऐसे वैभवशाली (=महर्द्धिक) और ऐसे अतितेजस्वी (महानुभाव) वज्जियों को नष्ट-भ्रष्ट (उच्छिन्न) कर डालूँगा। उन को घोर सङ्कट में डाल दूँगा।"

२. तब मागध राजा अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने मगध राज्य के महामन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को यह आदेश दिया– "ब्राह्मण! जहाँ भगवान् (बुद्ध) विराजमान हैं वहाँ जाओ, जाकर उन भगवान् के श्रीचरणों में मेरी तरफ से प्रणाम करो और उनसे कुशल-प्रश्न एवं स्वास्थ्यकामना करने के बाद कहना– 'भन्ते! मागध राजा अजातशत्रु आपके श्रीचरणों में प्रणाम करता हुआ आप का कुशल-क्षेम एवं मङ्गल-कामना करता है'। और यह कहना– 'भन्ते! राजा अजातशत्रु वज्जिप्रदेश पर चढ़ाई करना चाहता है। उसने यह पूछा है– मैं इन समृद्धशाली अत्यन्त तेजस्वी वज्जिप्रदेशवासियों को उच्छिन्न कर डालना चाहता हूँ, घोर सङ्कट में डाल देना चाहता हूँ; (इस के लिए मुझे क्या करना चाहिये?) (इस प्रश्न पर) भगवान् जैसा कहें, उसे ठीक से समझ कर यहाँ मुझे आकर बताओ। तथागत अयथार्थ (=मिथ्या) नहीं बोला करते।"

३. वह मगधमहामात्य वर्षकार ब्राह्मण मगधराज अजातशत्रु को "अच्छा, श्रीमन्"– यों उत्तर देकर अच्छे अच्छे यात्रायोग्य यान तय्यार करवा कर, उन में से अच्छे से अच्छे यान पर चढ़कर, राजगृह

भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। [B.62] एकमन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच– "राजा, भो गोतम, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भोतो गोतमस्स पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। राजा, भो गोतम, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो एवमाह– 'अहं हिमे वज्जी एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे उच्छेच्छामि [N.59] वज्जी, विनासेस्सामि वज्जी, अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी' " ति।

४. तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो भगवतो पिट्ठितो ठितो होति, भगवन्तं बीजयमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि– "किन्ति ते, आनन्द, सुतं– 'वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला' " ति?

"सुतं मेतं, भन्ते– 'वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला' " ति।

"यावकीवं च, आनन्द, वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला भविस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (१)

"किन्ति ते, आनन्द, सुतं– 'वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति समग्गा वुट्ठहन्ति [R.74] समग्गा वज्जिकरणीयानि करोन्ती' " ति?

"सुतं मेतं, भन्ते– 'वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति समग्गा वुट्ठहन्ति समग्गा वज्जिकरणीयानि करोन्ती' " ति।

"यावकीवं च, आनन्द, वज्जी समग्गा सन्निपतिस्सन्ति समग्गा वुट्ठहिस्सन्ति समग्गा वज्जिकरणीयानि करिस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (२)

से गृधकूट पर्वत की तरफ चल पड़ा। यान में बैठकर जाने योग्य भूमि तक यान से जाकर फिर यान से उतर कर पैदल ही, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् से सर्वप्रथम उनका कुशल–मङ्गल पूछा। कुशल–मङ्गल पूछने के बाद वह एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे हुए उसने भगवान् से यों निवेदन किया– "भो गौतम! मागध राजा अजातशत्रु आपके श्रीचरणों में प्रणाम.....पूर्ववत्..... वज्जियों को छिन्न–भिन्न कर दूँगा, घोर सङ्कट में डाल दूँगा।"

४. उस समय, आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे खड़े होकर उन पर पंखा झल रहे थे। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा– "आनन्द! क्या तुमने सुना है कि वज्जिप्रदेशवासी नागरिक (परस्पर परामर्श हेतु) बराबर एकत्र होकर मिलते रहते हैं? यों यह ऐसे मिलना–जुड़ना उनके स्वभाव में सम्मिलित हो गया है?"

"हाँ, भन्ते! मैंने सुना है कि वज्जिप्रदेशवासी नागरिक...सम्मिलित हो गया है।"

"तो, आनन्द! ये वज्जिप्रदेशवासी जब तक परस्पर परामर्श हेतु एकत्र (समग्र) होकर बैठते रहेंगे, एकत्र होकर बैठना इनका स्वभाव बना रहेगा तब तक इनकी निरन्तर वृद्धि (उन्नति) ही होती रहेगी, किसी प्रकार की हानि (अवनति) की सम्भावना नहीं। (१)

"और क्या, आनन्द! तुमने यह भी सुना है– वज्जी एक होकर (सभाओं में) बैठते हैं, एक हो कर (सभाओं से) उठते हैं, एक होकर अपना कर्तव्य (कर्म) करते हैं?"

"सुना है, भन्ते ! वज्जी....करते हैं।"

"किन्ति ते, आनन्द, सुतं— 'वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति, यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती' " ति?

"सुत्तं मेतं, भन्ते— 'वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति, यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती' " ति।

"यावकीवं च, आनन्द, वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेस्सन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दिस्सन्ति, यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (३)

[B.63] "किन्ति ते, आनन्द, सुतं— 'वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञन्ती' " ति?

"सुतं मेतं, भन्ते— 'वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञन्ती' " ति।

"यावकीवं च, आनन्द, वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करिस्सन्ति गरुं करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञिस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (४)

[N.60] "किन्ति ते, आनन्द, सुतं— 'वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती' " ति?

"सुतं मेतं, भन्ते— 'वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती' " ति।

"तो, आनन्द! ये वज्जिप्रदेशवासी एक होकर....जब तक कर्तव्य कर्म करते रहेंगे तब तक इन की वृद्धि ही होती रहेगी, किसी प्रकार की हानि की कोई सम्भावना नहीं। (२)

"आनन्द! क्या तुमने सुना है कि वज्जीगण अप्रज्ञप्त (अवैध) को प्रज्ञप्त (वैध) नहीं कहते और न प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त ही कहते हैं?"

"हाँ, भन्ते! सुना है कि वज्जी....अप्रज्ञप्त ही कहते हैं।"

"तो, आनन्द! ये वज्जीगण जब अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं कहेंगे या प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त सिद्ध करने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक इनकी वृद्धि (उन्नति) ही होगी, हानि (अवनति) नहीं। (३)

"क्या, आनन्द! तुमने सुना है कि ये वज्जिगण अपने से अवस्थावृद्धों तथा ज्ञानवृद्धों का सत्कार करते हैं, उनकी मर्यादा रखते हैं, उनका गौरव बढ़ाते हैं, उनका पूजा-मान करते हैं एवं उनके कहे हुए को सादर सुनते हैं?"

"हाँ, भन्ते! सुना है कि....कहे हुए को सादर सुनते हैं।"

"तो, आनन्द! जब तक ये अपने से....कहे हुए को सुनते रहेंगे तब तक इनकी वृद्धि ही होगी, कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है। (४)

"तो क्या, आनन्द! तुमने सुना है कि ये वज्जिजन दूसरों की कुलस्त्रियों (सन्नारियों) या कुलकुमारियों (सत्पुत्रियों) को बलात् अपने घरों में लाकर नहीं बसाते?"

"हाँ, भन्ते! सुना तो है....अपने घरों में लाकर नहीं बसाते।"

"तो, आनन्द! जब तक वज्जिजन दूसरों की कुलस्त्रियों या कुलकुमारियों को हठात् अपने घरों में लाकर नहीं बसाते तब तक इनकी वृद्धि ही होती रहेगी, हानि की कोई सम्भावना नहीं। (५)

''यावकीवं च, आनन्द, वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (५)

''किन्ति ते, आनन्द, सुतं— 'वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जिचेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च, तानि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, तेसं च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ती' '' ति?

''सुतं मेतं, भन्ते— 'वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जिचेतियानि अब्भन्तरानि [R.75] चेव बाहिरानि च, तानि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, तेसं च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ती' '' ति।

''यावकीवं च, आनन्द, वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जिचेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च, तानि सक्करिस्सन्ति गरुं करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति, तेसं च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेस्सन्ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (६)

''किन्ति ते, आनन्द, सुतं— 'वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता, किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं, आगता च अरहन्तो विजिते फासु विहरेय्युं' '' ति?

''सुतं मेतं, भन्ते— 'वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता, किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं, आगता च अरहन्तो विजिते फासु विहरेय्युं' '' ति।

''यावकीवं च, आनन्द, वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता भविस्सति, किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं, आगता च अरहन्तो [B.64] विजिते फासु विहरेय्युं ति, वुद्धियेव, आनन्द, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानी'' ति। (७)

"तो क्या, आनन्द! तुमने यह भी सुना है कि ये वज्जी लोग अपने बाहरी (सार्वजनीन) एवं आभ्यन्तर (अपने-अपने घरों में बने) चैत्यों (देव-मन्दिरों) को सत्कार करते हैं....पूजा करते हैं? और उनके पूर्वजों द्वारा उन देवमन्दिरों के लिये निकाली गयी दानवृत्ति एवं बलिकर्म के लिये दी गयी धनराशि में कोई कटौती नहीं करते?"

"हाँ, भन्ते! सुना तो है कि ये....कोई कटौती नहीं करते।"

"तो, आनन्द! जब तक ये वज्जिजन अपने....चैत्यों का सत्कार करते रहेंगे....कोई कटौती नहीं करेंगे तब तक....इनकी कोई हानि नहीं होगी। (६)

"तो, क्या, आनन्द! तुमने यह सुना है कि ये वज्जीजन यह सोचकर अपने प्रदेश में अर्हतों (ज्ञानियों) की धर्मानुसार (धार्मिक) रक्षा (पालन) करते हैं कि ये अर्हज्जन फिर कभी भी हमारे प्रदेश में जनता को धर्मोपदेश करने हेतु आते रहें?"

"हाँ, भन्ते! मैंने भी सुना है कि ये अर्हतों की धर्मानुसार रक्षा करने में पूरा ध्यान देते हैं कि ये अर्हज्जन अभी शान्तिपूर्वक धर्मोपदेश कर सकें तथा फिर भी किसी समय इस प्रदेश में धर्मोपदेश हेतु आते रहें।"

"तो, आनन्द! जब तक ये वज्जिजन अर्हतों की....धर्मोपदेश हेतु आते रहें— ऐसा ही व्यवहार करते रहेंगे, तब तक इनकी उन्नति ही होगी, हानि की कोई सम्भावना नहीं।" (७)

५. अथ खो भगवा वस्सकारं ब्राह्मणं मगधमहामत्तं आमन्तेसि— "एकमिदाहं, ब्राह्मण, समयं वेसालियं विहरामि सारन्ददे चेतिये। तत्राहं वज्जीनं इमे सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेसिं। यावकीवं च, ब्राह्मण, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा वज्जीसु ठस्सन्ति, इमेसु च [N.61] सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु वज्जी सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, ब्राह्मण, वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानी" ति।

एवं वुत्ते, वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच— "एकमेकेन पि, भो गोतम, अपरिहानियेन धम्मेन समन्नागतानं वज्जीनं वुद्धियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि; को [R.76] पन वादो सत्तहि अपरिहानियेहि धम्मेहि! अकरणीया व, भो गोतम, वज्जी रञ्ञा मागधेन अजातसत्तुना वेदेहिपुत्तेन यदिदं युद्धस्स, अञ्ञत्र उपलापनाय, अञ्ञत्र मिथुभेदाय। हन्द च दानि मयं, भो गोतम, गच्छाम, बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्स दानि त्वं, ब्राह्मण, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२. भिक्खूनं सत्त अपरिहानिया धम्मा

६. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते वस्सकारे ब्राह्मणे मगधमहामत्ते आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "गच्छ त्वं, आनन्द, यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा

---

५. तब भगवान् ने वर्षकार ब्राह्मण को सम्बोधित किया— "ब्राह्मण! एक समय मैं वैशाली नगर के सारन्दद चैत्य में साधना हेतु ठहरा हुआ था। उसी समय मैंने इन वज्जियों को उपर्युक्त सात अपरिहाणीय (किसी भी स्थिति में न छोड़ने योग्य) धर्मों का उपदेश किया था। अतः ब्राह्मण! जब तक ये सात धर्म इन वज्जियों में रहेंगे, इन सात अपरिहेय धर्मों का ये वज्जी जब तक पालन करते रहेंगे तब तक, ब्राह्मण! इन वज्जियों की उन्नति ही उन्नति है, इन धर्मों का पालन करते हुए इन का कोई कुछ भी अपकार (हानि) नहीं कर सकता।"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वर्षकार ब्राह्मण बोला— "तब तो, भो गोतम! वे वज्जी लोग इन सातों में एक भी अपरिहाणीय धर्म का जब तक पालन करते रहेंगे, तब तक इनकी चहुँमुखी उन्नति ही होती रहेगी, इनको कोई किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता। सातों धर्मों के पालन करने पर तो बात ही क्या! भो गोतम! इन धर्मों के रहते राजा अजातशत्रु अब इन वज्जियों को न युद्ध कर के जीत सकता है न इनमें एकता के रहते इनको (रिश्वत आदि देकर) बहका सकता है। अब तो इनमें किसी प्रकार फूट डालना (उपलापन) ही राजा के लिये एकमात्र उपाय रह गया है। अच्छा तो, भो गौतम! आज्ञा दीजिये। अब हम चलेंगे; क्योंकि हमें और भी बहुत से कार्य हैं।"

"ब्राह्मण! जैसा आप उचित समझें।"

तब वह मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के भाषण का अभिनन्दन-अनुमोदन करता हुआ आसन से उठकर चला गया।

२. भिक्षुओं के लिये सात अपरिहेय धर्म (क)

६. तब, वर्षकार ब्राह्मण के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से

यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच– "सन्निपतितो, भन्ते, भिक्खुसङ्घो। यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति।

अथ खो भगवा उट्ठायासना येन उपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [B.65] पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– "सत्त वो, भिक्खवे, अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू अभिण्हंसन्निपाता सन्निपातबहुला भविस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो पारिहानि। (१)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू समग्गा सन्निपतिस्सन्ति समग्गा [N.62, R.77] वुट्ठहिस्सन्ति समग्गा सङ्घकरणीयानि करिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (२)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू अपञ्ञत्तं न पञ्ञपेस्सन्ति पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दिस्सन्ति, यथापञ्ञत्तेसु सिक्खापदेसु समादाय वत्तिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो पारिहानि। (३)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू ये ते भिक्खू थेरा रत्तञ्ञू चिरपब्बजिता सङ्घपितरो

कहा– "जाओ, आनन्द! तुम, जितने भी भिक्षु राजगृह या उस के आस–पास साधनाहेतु ठहरे हुए हैं उन सबको, उपस्थानशाला (सभा–भवन) में एकत्र करो!"

"अच्छा, भन्ते!" आनन्द ने भगवान् को यों उत्तर देकर उनकी आज्ञा मानते हुए (राजगृह के) समग्र भिक्षु–सङ्घ को एकत्र कर, इसकी सूचना देने के लिये भगवान् के पास जा कर उनको प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया– "भन्ते! भिक्षु–सङ्घ एकत्र हो गया है, अब आप जैसा उचित समझें।"

तब भगवान् आसन से उठकर उपस्थानशाला में पधारे और उनके लिये बिछे आसन पर विराजे और भिक्षुओं से यों बोले– "भिक्षुओ! मैं अब तुम्हें सात अपरिहाणीय (कभी न त्यागने योग्य) धर्मों का उपदेश करता हूँ। उन्हें सुनो और भलीभाँति मन बैठा लो। मैं कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!"...भगवान् बोले–

"भिक्षुओ! जब तक सभी भिक्षु (किसी धर्म–चर्चा हेतु) बार–बार (अभीक्ष्ण) एकत्र हो कर बैठते रहेंगे, समग्र (सन्निपतित) होकर बैठते रहेंगे तब तक भिक्षुओं की सर्वतः वृद्धि (उन्नति) ही होगी, हानि (अवनति) नहीं। (१)

"भिक्षुओ! .... समग्र होकर बैठते, उठते रहेंगे, समग्र होकर ही सङ्घ के सभी कर्तव्य कर्म करते रहेंगे...(अवनति) नहीं। (२)

"भिक्षुओ! सभी भिक्षु जब तक अप्रज्ञप्त (अवैध तथा अविहित) को प्रज्ञप्त (वैध) बताने का प्रयास नहीं करेंगे या फिर प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त बता कर उन्हें उच्छिन्न करने का प्रयास नहीं करेंगे, और शिक्षापद जैसे बताये गये हैं, उन्हें उसी तरह धारण करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओं की....हानि नहीं। (३)

सङ्घपरिणायका ते सक्करिस्सन्ति गरुं करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (४)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू उप्पन्नाय तण्हाय पोनोब्भविकाय न वसं गच्छिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (५)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू आरञ्ञकेसु सेनासनेसु सापेक्खा भविस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (६)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू पच्चत्तञ्ञेव सतिं उपट्ठपेस्सन्ति– 'किन्ति अनागता च पेसला सब्रह्मचारी आगच्छेय्युं, आगता च पेसला सब्रह्मचारी फासु विहरेय्युं' ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (७)

"यावकीवं च, भिक्खवे, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (क)

अपरे पि सत्त

[B.66] ७. "अपरे पि खो, भिक्खवे, सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

[R.78] "यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न कम्मारामा भविस्सन्ति न कम्मरता न कम्मारामतमनुयुत्ता, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (१)

"भिक्षुओ! जब तक (सङ्घ में) नव (आगत) भिक्षु पुराने स्थविर भिक्षुओं, जो कि धर्मानुरागी हैं, चिरप्रवजित हैं, सङ्घ के पिता या सङ्घ के मार्गदर्शक (परिणायक) हैं, उनका सत्कार करेंगे, और गौरव बढ़ायेंगे, सम्मान व पूजा करेंगे, उनके कथन को सुनने (ध्यान देने) योग्य समझेंगे, तब तक उन भिक्षुओं की....हानि नहीं। (४)

"भिक्षुओ! जब तक भिक्षु पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली सांसारिक तृष्णा के वश में न होंगे तब तक उन भिक्षुओं की...हानि नहीं। (५)

"भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अरण्य (एकान्त) वास में उत्सुक रहेंगे, तब तक उन भिक्षुओं की....हानि नहीं। (६)

"जब तक भिक्षुओ! प्रत्येक भिक्षु की यह हार्दिक भावना रहेगी कि भविष्य में भी सुलझे विचारों वाले भिक्षु ही इस सङ्घ में सम्मिलित हों और वे भी यहाँ सुखपूर्वक साधना करें तो तब तक उनकी....हानि नहीं। (७)

"भिक्षुओ! जब तक ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं में पाये जाते रहेंगे या सभी भिक्षु इन सातों धर्मों का ध्यान रखेंगे कि ये कहीं से खण्डित न होने पावें, तब तक भिक्षुओ! भिक्षुसङ्घ की सर्वथा उन्नति ही होगी, हानि नहीं।।

अन्य सात अपरिहानीय धर्म (ख)

७. "भिक्षुओ! मैं दूसरे प्रकार से भी सात अपरिहाणीय धर्म तुम्हें बता रहा हूँ। उन्हें भी तुम ध्यान लगा कर सुनो।"

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न भस्सारामा भविस्सन्ति न भस्सरता न भस्सारामतमनुयुत्ता, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (२)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न निद्दारामा भविस्सन्ति न निद्दारता न [N.63] निद्दारामतमनुयुत्ता, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो, परिहानि। (३)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न सङ्गणिकारामा भविस्सन्ति न सङ्गणिकारता न सङ्गणिकारामतमनुयुत्ता, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (४)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न पापिच्छा भविस्सन्ति न पापिकानं इच्छानं वसं गता, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (५)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न पापमित्ता भविस्सन्ति न पापसहाया न पापसम्पवङ्का, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (६)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू न ओरमत्तकेन विसेसाधिगमेन अन्तरावोसानं आपज्जिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (७)

"यावकीवं च, भिक्खवे, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (ख)

अपरे पि सत्त

८. "अपरे पि खो, भिक्खवे, सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि....पे०.... यावकीवं

"अच्छा भन्ते!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान् बोले–

(१) "....जब तक भिक्षु कर्माराम (दिन–रात चीवर आदि कार्यों में लगे रहना) न करेंगे या कर्माराम में सुख मानने वाले न होंगे तब तक उनकी....हानि नहीं होगी।

(२) "....जब तक भिक्षु दिन–रात व्यर्थ का आलाप (वितण्डा) न करेंगे या व्यर्थ–आलाप करने में सुख नहीं मानेंगे तब तक....हानि नहीं होगी।

(३) "....जब तक भिक्षु दिन रात सोते–ऊँघते रह कर समय नहीं बितायेंगे या उसी में सुख नहीं मानेंगे तब तक....।

(४) ".... जब तक भिक्षु दिन–रात भीड़ को न चाहने वाले या भीड़ में ही सुख न मानने वाले होंगे तब तक....।

(५) "....जब तक भिक्षु पाप कर्म न करने की इच्छा वाले, पापमय कर्म न करने में ही सुख मानने वाले होंगे तब तक....।

(६) "....जब तक भिक्षु अपने पापमित्र न बनायेंगे या पापमित्रों के साथ बैठने–उठने में सुख न मानेंगे तब तक....हानि नहीं होगी।

(७) "....जब तक भिक्षु ब्रह्मचर्य–साधना में कुछ सफलता मिल जाने पर ही उसे छोड़ना चाहेंगे या उसके छोड़ने में ही सुख न मानेंगे तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"इस तरह, भिक्षुओ! जब तक ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं के आचरण में अपनी स्थिति बनाये रखेंगे या भिक्षुजन इन सातों धर्मों में गम्भीरता प्रदर्शित करेंगे, तब तक भिक्षुओं की उन्नति ही होगी, हानि नहीं।

च, भिक्खवे, भिक्खू (१) सद्धा भविस्सन्ति....पे०....(२) हिरिमना भविस्सन्ति..... (३) [R.79] ओत्तप्पी भविस्सन्ति.... (४) बहुस्सुता भविस्सन्ति....(५) आरद्धविरिया [B.67]भविस्सन्ति....(६) उपट्ठितस्सती भविस्सन्ति.... (७) पञ्ञवन्तो भविस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

''यावकीवं च, भिक्खवे, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (ग)

अपरे पि सत्त

९. ''अपरे पि खो, भिक्खवे, सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी'' ति।

[N.64] ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू (१) सतिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति....पे०....(२) धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति....(३) विरियसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति....(४) पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति....(५) पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति....(६) समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति ....(७) उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। यावकीवं च, भिक्खवे, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (घ)

अपरे पि सत्त

१०. ''अपरे पि खो, भिक्खवे, सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी'' ति।

अन्य भी सात अपरिहाणीय धर्म (ग)

८. ''भिक्षुओ! इसी तरह मैं तुम्हें अन्य सात अपरिहाणीय धर्म भी बताता हूँ....। (१) ''भिक्षुओ! जब तक भिक्षु (शिक्षापदों में) श्रद्धालु होंगे....। (२) .... लज्जालु होंगे....। (३) ....पाप से भय खाने वाले होंगे....। (४) ....बहुश्रुत होंगे......। (५) ....निरन्तर कुशल के लिये प्रयत्न करते रहेंगे....। (६) ....स्मृतिमान् रहेंगे....। (७) ....प्रज्ञावान् होंगे....।

भिक्षुओ! जब तक ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं के आचरण में अपना स्थान बनाये रखेंगे...हानि नहीं।

अन्य भी सात अपरिहाणीय धर्म (घ)

९. ''भिक्षुओ! इसी तरह मैं तुम्हें अन्य भी सात अपरिहाणीय धर्म बताता हूँ...। (१) ''जब तक भिक्षुओ! भिक्षु स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता रहेगा....। (२) .... धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग की....। (३) .... वीर्यसम्बोध्यङ्ग की....। (४) .... प्रीतिसम्बोध्यङ्ग की....। (५) .... प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग की....। (६) .... समाधिसम्बोध्यङ्ग की....। (७) .... उपेक्षासम्बोध्यङ्ग की....। जब तक भिक्षुओ! ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं की.... हानि नहीं।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू (१) अनिच्चसञ्ञं भावेस्सन्ति...पे०....(२) अनत्तसञ्ञं भावेस्सन्ति....(३) असुभसञ्ञं भावेस्सन्ति.... (४) आदीनवसञ्ञं भावेस्सन्ति....(५) पहानसञ्ञं भावेस्सन्ति... (६) विरागसञ्ञं भावेस्सन्ति....(७) निरोधसञ्ञं भावेस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

"यावकीवं च, भिक्खवे, इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, [R.80] इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (ङ)

३. भिक्खूनं छ अपरिहानिया धम्मा

११. "छ, भिक्खवे, अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठापेस्सन्ति [B.68] सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (१)

"यावकीवं च भिक्खवे, भिक्खू मेत्तं वचीकम्मं पच्चुपट्ठापेस्सन्ति....पे०...मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठापेस्सन्ति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (२-३)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू, ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो [N.65] पत्तपरियापन्नमत्तं पि तथारूपेहि लाभेहि अप्पटिविभत्तभोगी भविस्सन्ति सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि साधारणभोगी, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (४)

दूसरे भी सात अपरिहाणीय धर्म (ङ)

१०. "भिक्षुओ! मैं तुम्हें दूसरे भी सात अपरिहाणीय धर्म बताता हूँ, सुनो....। (१) जब तक भिक्षुओ! भिक्षु अनित्यसंज्ञा की भावना करता रहेगा....। (२) .... अनात्मसंज्ञा की....। (३) .... अशुभसंज्ञा की ....। (४) .... आदीनवसंज्ञा की....। (५) .... प्रहाणसंज्ञा की....। (६) .... विरागसंज्ञा की....। (७) .... निरोधसंज्ञा की....। "जब तक भिक्षुओ! ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं के आचरण में....।

३. भिक्षुओं के छह अपरिहाणीय धर्म

११. "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें छह अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश करता हूँ। उन्हें सुनो और अपने मन में भलीभाँति बैठा लो।"

"अच्छा, भन्ते!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान् बोले– "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अपने समानधर्माराधकों (सब्रह्मचारियों) के साथ गुप्त और प्रकट– दोनों तरह से मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म करेंगे, भिक्षुओ! तब तक इन की वृद्धि (उन्नति) ही होती रहेगी, हानि (अवनति) नहीं। (१)

"भिक्षुओ! ...मैत्रीपूर्ण वाक्कर्म करेंगे....हानि नहीं। (२)

"भिक्षुओ! ...मैत्रीपूर्ण मनःकर्म करेंगे....हानि नहीं। (३)

"भिक्षुओ! जब तक सभी भिक्षु अपने धार्मिक (धर्म से प्राप्त) लाभों– यहाँ तक कि पात्र में लगे

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू यानि कानि सीलानि अखण्डानि अच्छिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञूपसत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि तथारूपेसु सीलेसु सीलसामञ्ञगता विहरिस्सन्ति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (५)

"यावकीवं च, भिक्खवे, भिक्खू यायं दिट्ठि अरिया निय्यानिका, निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय, तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठिसामञ्ञगता विहरिस्सन्ति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (६)

[R.81] "यावकीवं च, भिक्खवे, इमे छ अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति, इमेसु च छसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव, भिक्खवे, भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानी" ति।

१२. तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरन्तो गिज्झकूटे पब्बते एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति— "इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, सामाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं— कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

[B.69] १३. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "आयामानन्द, येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन अम्बलट्ठिका

रहने योग्य द्रव्य को भी परस्पर शीलवान् सब्रह्मचारियों में बाँट कर उनका उपभोग करते रहेंगे, तब तक.... हानि नहीं। (४)

"भिक्षुओ! जब तक सभी भिक्षु अखण्ड (अविभक्त), अछिद्र (निर्दोष), अकल्मष (निष्कलङ्क), शुद्ध, सेवनीय (= भुजिस्स), विद्वत्प्रशंसित, अनिन्दित समाधि की तरफ आगे बढ़ाने वाले शील (सदाचार) से, शीलश्रामण्य से युक्त रह कर अपने सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त या प्रकट भाव से व्यवहार करते रहेंगे, तब तक इनकी उन्नति ही होगी, हानि नहीं। (५)

"और, भिक्षुओ! जब तक भिक्षु उत्तम (आर्य), भव सागर पार करने वाली (नैर्याणिक), दुःखक्षय की तरफ ले जाने वाली प्रज्ञा के सहारे अपने सब्रह्मचारियों के साथ ही प्रकट या गुप्त दैनिक व्यवहार रखते रहेंगे, उन की उन्नति ही होगी, हानि नहीं। (६)

"भिक्षुओ! जब तक भिक्षु इन छह अपरिहाणीय धर्मों के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखेंगे, इन छह धर्मों के प्रति अपनी श्रद्धा तथा सम्मान प्रदर्शित करते रहेंगे, तब तक उनकी उन्नति होगी, हानि नहीं"।

१२. वहाँ राजगृह में गृधकूट पर्वत के आस-पास चारिका करते हुए भगवान् भिक्षुओं को प्रायः इन्हीं विषयों पर धर्मोपदेश करते थे; जैसे-शील का आचरण ऐसे किया जाने से फलदायक होता है, समाधि की भावना इस तरह की जाती है, प्रज्ञा को इस तरह प्राप्त किया जाता है, प्रज्ञायुक्त चित्त बनाने से ही वह इन आश्रवों (विकारों) से रहित होता है; जैसे कामाश्रव, भवाश्रव, एवं अविद्याश्रव"।

अम्बलट्ठिका में— १३. तब भगवान् ने राजगृह में यथानुकूल चारिका करते हुए, आनन्द से कहा— "चलो, आनन्द! जहाँ अम्बलट्ठिका है वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते" यों आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

तदवसरि। तत्र सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरति राजागारके। तत्रापि सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरन्तो राजागारके एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति— "इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता [N.66] पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं— कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

१४. अथ खो भगवा अम्बलट्ठिकायं यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "आयामानन्द, येन नाळन्दा तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन नाळन्दा तदवसरि। तत्र सुदं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बने।

४. सारिपुत्तस्स सीहनादो

१५. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं [R.82] एतदवोच— "एवं पसन्नो अहं, भन्ते, भगवति! न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवतो भिय्योभिञ्ञतरो, यदिदं सम्बोधियं" ति।

"उळारा खो ते अयं, सारिपुत्त, आसभी वाचा भासिता! एकंसो गहितो। सीहनादो नदितो—'एवंपसन्नो अहं, भन्ते, भगवति! न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिञ्ञतरो यदिदं सम्बोधियं' ति। किं ते, [B.70] सारिपुत्त, ये ते अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो

तब भगवान् बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी वहाँ, पहुँचे। अम्बलट्ठिका के राजागारक में साधनाहेतु विराजमान रहते हुए भी उन्होंने प्रायः उन्हीं पूर्व विषयों को आधार बनाकर धर्मचर्चा की। जैसे— शील, शील से परिभावित समाधि, समाधिपरिभावित प्रज्ञा एवं प्रज्ञापरिभावित चित्तों का कामाश्रव आदि से विमुक्त होना आदि।

१४. तब भगवान्, कुछ समय अम्बलट्ठिका में धर्म-साधना करने के बाद, आनन्द से कहने लगे— 'आओ, आनन्द! अब नालन्दा चलें। "अच्छा, भन्ते! कहकर आनन्द ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया। तब भगवान् उस विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका करते हुए नालन्दा पहुँचे। और वहाँ प्रावारिक आम्रवन में साधना हेतु विराजे।

४. सारिपुत्र का सिंहनाद

नालन्दा के प्रावारिकाम्रवन में— १५. तब जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ (नालन्दा के प्रावारिकाम्रवन में) आयुष्मान् सारिपुत्र आये, आकर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् के विषय में ये निर्भीक वचन कहे— "भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है कि सम्बोधि (परम ज्ञान की प्राप्ति) में भगवान् से बढ़कर (=भिय्योभिञ्ञतरो) कोई दूसरा श्रमण-ब्राह्मण न पहले हुआ है, न इस समय है, न आगे होगा।"

(भगवान् बोले—) "सारिपुत्र! तुमने यह बहुत ही स्पष्ट (=उदार) एवं वृषभ की तरह निर्भीक वाणी प्रयुक्त की कि जिसका किसी के पास उत्तर ही नहीं है। यह तो एक तरह से तुम्हारा सिंहनाद लग रहा है (जो तुम कह रहे हो) कि 'मेरा ऐसा विश्वास है....न आगे होगा'। परन्तु यह तो बताओ, सारिपुत्र! कि

परिच्च विदिता—'एवंसीला ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंधम्मा एवंपञ्ञा एवंविहारी एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' '' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''किं पन, सारिपुत्त, ये ते भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता—'एवंसीला ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पि, एवंधम्मा एवंपञ्ञा एवंविहारी एवंविमुत्ता ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पी' '' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''किं पन ते, सारिपुत्त, अहं एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो चेतसा चेतो परिच्च विदितो—'एवंसीलो भगवा इति पि, एवंधम्मो एवंपञ्ञो एवंविहारी एवंविमुत्तो भगवा इति पी' '' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

[N.67] ''एत्थ च हि ते, सारिपुत्त, अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियञाणं नत्थि। अथ किञ्चरहि ते अयं, सारिपुत्त, उळारा आसभी वाचा भासिता, [R.83] एकंसो गहितो, सीहनादो नदितो—'एवंपसन्नो अहं, भन्ते, भगवति! न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिञ्ञतरो, यदिदं सम्बोधियं' '' ति?

१६. ''न खो मे, भन्ते अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियञाणं अत्थि। अपि च मे धम्मन्वयो विदितो। सेय्यथापि, भन्ते, रञ्ञो पच्चन्तिमं नगरं दळ्हुद्धापं दळ्हपाकारतोरणं एकद्वारं। तत्रस्स दोवारिको पण्डितो वियत्तो मेधावी, अञ्ञातानं निवारेता ञातानं पवेसेता। सो तस्स नगरस्स सामन्ता अनुपरियायपथं अनुक्कममानो न पस्सेय्य पाकारसन्धिं वा पाकारविवरं वा, अन्तमसो बिळारनिक्खमनमत्तं पि। तस्स एवमस्स—'ये खो केचि ओळारिका पाणा इमं नगरं पविसन्ति वा निक्खमन्ति वा सब्बे ते इमिना व द्वारेन पविसन्ति वा [B.71] निक्खमन्ति वा' ति। एवमेव खो मे, भन्ते धम्मन्वयो विदितो—'ये ते, भन्ते, अहेसुं

क्या तुम ने अपने चित्त से उन पूर्व बुद्धों को भी जान लिया है कि वे सभी बुद्ध भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी समाधि वाले, ऐसी प्रज्ञा वाले या ऐसे प्रज्ञाबल से आश्रवविमुक्त चित्तवाले थे?''

''नहीं, भन्ते!''

''तो फिर, सारिपुत्र! तुमने स्वचित्त से भविष्य में होने वाले बुद्धों के विषय में जान लिया है कि वे.... आश्रवविमुक्त चित्त वाले होंगे?''

''नहीं, भन्ते!

''तो फिर, सारिपुत्र! तुमने इस समय वर्तमान मुझ भगवान् बुद्ध के विषय में स्वचित्त से जान लिया है कि मैं....ऐसे चित्त वाला हूँ?'' ''नहीं भन्ते!''

''तो फिर, सारिपुत्र! जब तुम्हारा अतीत, अनागत तथा वर्तमान बुद्धों के विषय में कोई चित्तज्ञान ही नहीं है तो तुमने ऐसी उदार एवं निर्भीक वाणी से सिंहनाद कैसे कर दिया कि 'मेरा विश्वास है कि सम्बोधि में आपके समान....कोई दूसरा नहीं है'।''

१६. ''भन्ते! यद्यपि यह बात सत्य है कि मुझे अतीत, अनागत एवं वर्तमान बुद्धों के विषय में स्वचित्तज्ञान नहीं है, तो भी मुझे आप सब (अतीत–वर्तमान–अनागत) बुद्धों की धर्म–साधना में समानता (=धर्मान्वय) तो सर्वथा विदित है ही। जैसे कि, भन्ते! किसी राजा का सीमान्त–नगर दृढ़ नींव (उद्धाप) वाला, दृढ़ प्राकार वाला एवं एक ही द्वार वाला हो। वहाँ कोई अपरिचितों को उस नगर में जाने से रोकने

अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्ता, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुझिंसु। ये पि ते, भन्ते, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्ता, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झिस्सन्ति। भगवा पि, भन्ते एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्तो, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो'' ति।

१७. तत्र पि सुदं भगवा नाळन्दायं विहरन्तो पावारिकम्बवने एतदेव बहुलं [R.84] भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति—''इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञा-[N.68] परिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा ति।

५. पाटलिगामिकानं भगवतो ओवादो

१८. अथ खो भगवा नाळन्दायं यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— ''आयामानन्द, येन पाटलिगामो तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन पाटलिगामो तदवसरि। अस्सोसुं खो पाटलिगामिका उपासका—''भगवा किर पाटलिगामं अनुप्पत्तो''

वाला, परिचितों को ही उसमें प्रवेश की अनुमति देने वाला पण्डित, चतुर, बुद्धिमान् द्वारपाल हो। वहाँ वह नगर के चारों ओर क्रमशः सभी ओर जाकर सूक्ष्मतया निरीक्षण कर यह जान ले कि इस प्राकार में किधर से भी जाने के लिये इतना भी मार्ग (=सन्धि) या छिद्र नहीं है कि जिसमें होकर कोई बिल्ली भी अन्दर आ सके। तब उसको यह ध्यान में आवे— 'जो भी छोटे-बड़े प्राणी इस नगर में प्रविष्ट होते हैं, वे सब इसी एक द्वार से ही प्रविष्ट होते हैं। ऐसे ही भन्ते! मैंने यह धर्मान्वय जान लिया कि अतीत काल में जो अर्हत् ज्ञानी, सम्यक्सम्बुद्ध हुए उनमें से सभी ने चित्त के उपक्लेशों को दुर्बल करने वाले, पाँचों नीवरणों को छोड़, चारों स्मृतिप्रस्थानों को सुप्रतिष्ठित कर, सात बोध्यङ्गों की यथार्थतः भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक्सम्बोधि (परम ज्ञान) का साक्षात्कार किया और भन्ते! अनागत (भविष्यत्) काल में भी जो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होंगे वे सभी चित्त के उपक्लेशों को.... साक्षात्कार करेंगे। इस समय वर्तमान आप भी अर्हत्...साक्षात्कार कर चुके हैं।''

१७. वहाँ नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में जब तक भगवान् विराजे तब तक वे भिक्षुओं से इसी तरह शील, समाधि एवं प्रज्ञा तथा प्रज्ञापरिभावित चित्त आदि के विषय में धर्म-चर्चा करते रहे।

५. पाटलिग्रामवासियों को भगवान् का उपदेश

१८. तब भगवान् ने नालन्दा में जब तक चाहा तब तक धर्म-साधना करते हुए, (एक दिन) आयुष्मान् आनन्द को कहा— ''चलो, आनन्द! जहाँ पाटलिग्राम है, वहाँ चलें।'' ''अच्छा, भन्ते!'' तब भगवान्, बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ पाटलिग्राम था वहाँ गये। (उधर) पाटलिग्राम के उपासकों ने सुना कि भगवान् पधारे हैं, तो वे सब जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ

ति। अथ खो पाटलिगामिका उपासका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो पाटलिगामिका उपासका भगवन्तं एतदवोचुं—"अधिवासेतु नो, भन्ते, भगवा आवसथागारं" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो पाटलिगामिका उपासका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं [B.72] अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन आवसथागारं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सब्बसन्थरिं आवसथागारं सन्थरित्वा आसनानि पञ्ञापेत्वा उदकमणिकं पतिट्ठापेत्वा तेलप्पदीपं आरोपेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो पाटलिगामिका उपासका भगवन्तं एतदवोचुं—"सब्बसन्थरिसन्थतं, भन्ते, आवसथागारं। आसनानि पञ्ञत्तानि, उदकमणिको पतिट्ठापितो, तेलपदीपो आरोपितो; यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति।

[R.85] अथ खो भगवा सायण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन आवसथागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि। भिक्खुसङ्घो पि खो पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि, भगवन्तमेव पुरक्खत्वा। पाटलिगामिका पि खो उपासका पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पुरत्थिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु, भगवन्तमेव पुरक्खत्वा।

१९. अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके आमन्तेसि—"पञ्चिमे, गहपतयो, आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। कतमे पञ्च? इध, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो [N.69] पमादाधिकरणं महतिं भोगजानिं निगच्छति। अयं पठमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। (१)

गये। एक ओर बैठे उन पाटलिग्रामवासियों ने भगवान् से निवेदन किया– "भन्ते! भगवान् हमारी अतिथिशाला (आवसथागार) में पधारें।" भगवान ने मौन भाव से उनका निवेदन स्वीकार कर लिया। तब वे उपासक भगवान् की स्वीकृति जानकर, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था वहाँ गये। वहाँ जाकर उस आवसथागार में चारों ओर बिछायत बिछा कर, आसन लगाकर, जल का घड़ा (उदकमणि) भरकर, तैल का दीपक जलाकर पुनः जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान् को अभिवादन कर, एक ओर खड़े होकर भगवान् से उन्होंने निवेदन किया– "भन्ते! आवासथागार में बिछायत बिछा दी....दीपक जला दिया। अब, भन्ते! जैसा उचित समझें।"

तब भगवान् शरीर पर वस्त्र डालकर, पात्र–चीवर ले भिक्षुसङ्घ के साथ उस आवसथागार में पहुँचे। पहुँच कर, पैर धोकर, आवसथागार में प्रविष्ट हो बीच के खम्भे का सहारा लेकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठे। उधर भिक्षुसङ्घ पैर पखार कर, आवसथागार में जाकर पश्चिम दीवार की तरफ पूर्व की तरफ मुख कर, भगवान् को आगे कर बैठ गया। और तब पाटलिग्रामवासी उपासक उसी तरह पैर धोकर आवसथागार में प्रविष्ट होकर पूर्व की दीवार (भित्ति) के सहारे पश्चिम की ओर (भगवान् को सामने कर) मुख कर के बैठे।

१९. तब भगवान् ने उन पाटलिग्राम के उपासकों को उपदेश करना प्रारम्भ किया–"गृहपतियो! दुराचारी (दुःखशील) पुद्गल के लिये दुराचार (शील के अभाव) के कारण ये पाँच दुष्परिणाम (आदीनव)

''पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलस्स सीलविपन्नस्स पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं दुतियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। (२)

''पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति—यदि खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं—अविसारदो उपसङ्कमति मङ्कुभूतो। अयं ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। (३)

''पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो सम्मूळ्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। (४)

''पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो कायस्स भेदा परं मरणा [B.73] अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। (५)

''इमे खो, गहपतयो, पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

२०. ''पञ्चिमे, गहपतयो, आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय। कतमे पञ्च? [R.86] इध, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो अप्पमादाधिकरणं महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छति। अयं पठमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। (१)

''पुन च परं, गहपतयो, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं दुतियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। (२)

''पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति—यदि

होते हैं। कौन से पाँच? (१) गृहपतियो! दुराचारी आलस्याभिभूत होकर अपने बहुत से कामभोगों को नष्ट कर बैठता है— दुराचारी के दुराचार के कारण यह पहला दुष्परिणाम है।

(२) फिर, गृहपतियो! दुराचारी की, अपनी दुराचार के कारण, लोक (समाज) में निन्दा होने लगती है— यह....दूसरा दुष्परिणाम है।

(३) तब फिर गृहपतियो! वह दुराचारी जिस किसी भी समाज में जाता है— भले ही वह क्षत्रिय-समाज हो, ब्राह्मणसमाज हो, गृहपतिसमाज हो या साधुसमाज हो, सर्वत्र ही वह भौंचक सा रहकर मङ्कु (मूढ़) बनकर बैठा रहता है। यह उसके दुराचार का तीसरा दुष्परिणाम है।

(४) तब फिर, गृहपतियो! वह दुराचारी इसी तरह मूढ़ होकर घूमता हुआ अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है— यह चतुर्थ परिणाम है।

(५) तब फिर, गृहपतियो! वह दुराचारी अपने उन दुराचरणों के फलस्वरूप अपने इस देहपात के बाद अपाय, दुर्गति, पतन, एवं निरय (नरक) में जाकर गिरता है— यह उसका दुराचार के कारण मिला पाँचवाँ दुष्परिणाम है।

''गृहपतियो! ये पाँच दुष्परिणाम उस दुराचारी को अपने दुराचार के कारण भोगने पड़ते हैं।

२०. ''इसके विपरीत, गृहपतियो! सदाचारी को, अपने सदाचार के कारण, ये पाँच सुपरिणाम उपलब्ध होते हैं। कौन से पाँच? (१) सदाचारी कभी भी, कहीं भी किसी प्रकार का अप्रमाद न करता हुआ अच्छे अच्छे कामभोगों का उपभोग करता रहता है— यह उसके सदाचार का प्रथम सुपरिणाम है।

(२) ''फिर, गृहपतियो! उस सदाचारी का, उसके सदाचार के कारण, समाज में यशोगान प्रारम्भ हो जाता है— यह उसके सदाचार का द्वितीय सुपरिणाम है।

खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं—विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो। अयं ततियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। (३)

"पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो असम्मूळ्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। (४)

"पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। (५)

"इमे खो, गहपतयो, पञ्च आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाया" ति।

२१. अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उय्योजेसि—"अभिक्कन्ता को, गहपतयो, रत्ति। यस्स [N.70] दानि तुम्हे कालं मञ्ञथा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो पाटलिगामिका उपासका भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु। अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तेसु पाटलिगामिकेसु उपासकेसु सुञ्ञागारं पाविसि।

६. पाटलिपुत्तनगरमापनं

[B.74] २२. तेन खो पन समयेन सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। तेन खो पन समयेन सम्बहुला देवतायो सहस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि [R.87] परिग्गण्हन्ति। यस्मिं पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, महेसक्खानं तत्थ

---

(३) "फिर, गृहपतियो! वह सदाचारी जहाँ भी जाय, जिस भी समाज में जाय, फिर भले ही वह क्षत्रियसमाज हो...साधुसमाज हो– सदाचार के कारण, सर्वत्र उसकी प्रशंसा ही होती है– यह उसके सदाचार का तीसरा सुपरिणाम है।

(४) "फिर, गृहपतियो! वह सदाचारी अपने सदाचार के कारण अपने स्मृति–सम्प्रजन्य (असम्मूढ़ता) के साथ ही, विना किसी कष्टभोग के, मृत्यु को प्राप्त होता है– यह चतुर्थ सुपरिणाम है।

(५) "फिर, गृहपतियो! वह शीलवान्, शीलसम्पन्न अपने सदाचार के फलस्वरूप, अपने इस देहपात के बाद, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है– यह उस का पाँचवाँ सुपरिणाम है। जो वह अपने सदाचार के कारण प्राप्त करता है।

"इस तरह, गृहपतियो! ये पाँच सत्परिणाम शीलवान् शीलसम्पन्न को, उसके शील के कारण, प्राप्त होते हैं।"

२१. तब भगवान् ने बहुत रात्रि तक उन पाटलिग्रामवासियों से धर्मचर्चा की और दानकथा, शीलकथा आदि नाना कथाएँ सुनाकर उन्हें समुत्तेजित.... सम्प्रहृष्ट कर धर्मपालन में उत्साहित किया और अन्त में कहा– "गृहपतियो! रात बहुत बीत चुकी है; अब जैसा तुम उचित समझो वैसा करो।"

गृहपतियों ने कहा– "हाँ, भन्ते! आप सत्य कह रहे हैं।" तब वे पाटलिग्रामवासी गृहस्थ उपासक आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर (अपने–अपने घरों को) चले गये। तब पाटलिग्राम के उन उपासकों के चले जाने पर, कुछ समय बाद, भगवान् भी शून्यागार में चले गये।

६. पाटलिपुत्रनगर का निर्माण

२२. उस समय मगध साम्राज्य के दो महामात्य– सुनीध और वर्षकार ब्राह्मण पाटलिग्राम में वज्जियों के प्रतिरोध हेतु एक सुदृढ नगर बसाने के लिये पाटलिग्राम में ठहरे हुए थे। उस समय हजारों

रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं।

अद्दसा खो भगवा दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन ता देवतायो सहस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो। अथ खो भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"के नु खो, आनन्द, पाटलिगामे नगरं मापेन्ती" ति ?

"सुनिधवस्सकारा, भन्ते, मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाया" ति।

"सेय्यथापि, आनन्द, देवेहि तावतिंसेहि सद्धिं मन्तेत्वा, एवमेव खो, आनन्द, सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता पाटिलगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। इधाहं, आनन्द, अद्दसं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सम्बहुला देवतायो सहस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो। यस्मिं, आनन्द, पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, महेसक्खानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापितुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यावता, आनन्द, अरियं [N.71, R.88] आयतनं, यावता वणिप्पथो, इदं अग्गनगरं भविस्सति पाटलिपुत्तं पुटभेदनं। पाटलिपुत्तस्स खो, आनन्द, तयो अन्तराया भविस्सन्ति—अग्गितो वा, उदकतो वा, मिथुभेदा वा" ति।

देवता भी पाटलिग्राम में वास कर रहे थे। जिस स्थान में महान् प्रभावशाली देवता घर बना कर वास कर रहे होते हैं, उस स्थान में उन राजमहामात्यों के मन में नगर निर्माण की बात बैठती है। और जिस स्थान में मध्यम श्रेणि के देवता वास करते हैं वहाँ मध्यम श्रेणि के राजाओं को नगर बसाने की बात जँचती है तथा जहाँ हीन श्रेणि के देवता वास करते हैं वहाँ छोटे-छोटे राजा लोग नगर बसाने की बात सोचते हैं।

भगवान् ने अपने दिव्य नेत्रों से हजारों देवताओं को आवास बनाते देखा और रात्रि के अन्तिम पहर में उठकर आयुष्मान् आनन्द से पूछा— "आनन्द! पाटलिग्राम में यह नगर कौन बसा रहा है?"

"भन्ते! मगध महामात्य सुनीध और वर्षकार ब्राह्मण वज्जियों के प्रतिरोधहेतु यह नगरनिर्माण करा रहे हैं।"

"आनन्द! ये मगध महामात्य तो मानो त्रायस्त्रिंश देवताओं से पूछकर ही यह नगरनिर्माण करा रहे हैं। आनन्द! मैने अभी अब दिव्य नेत्रों से देखा कि अनेक हजार देवता यहाँ पाटलिग्राम में घर (=वास्तु) बना कर रह रहे हैं। जिस प्रदेश में महाशक्तिशाली देवता वास कर रहे होते हैं...पूर्ववत्....छोटे-छोटे राजा नगर निर्माण की बात सोचते हैं। आनन्द! (इस देश में) जितने भी आर्य आयतन (समृद्धशाली लोगों के वासयोग्य नगर हैं, जितने भी महत्त्वपूर्ण व्यापारमार्गों पर पड़ने वाले नगर हैं, उन में यह पाटलिपुत्र नगर सर्वप्रधान होगा। यहीं व्यापार के लिये सामानों की बड़ी-बड़ी गाँठें खुलने (पुटभेदन) लगेंगीं। आनन्द! इस पाटिलपुत्र के तीन ही अन्तराय (विघ्न) होंगे (जिनके कारण यह समय समय पर उजड़ता भी रहेगा)— अग्नि से, जल (बाढ़) से या फिर पारस्परिक मतभेद (फूट) से।"

[B.75] २३. अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं एतदवोचुं—''अधिवासेतु नो भवं गोतमो अज्जतनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवतो अधिवासनं विदित्वा येन सको आवसथो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सके आवसथे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसुं—''कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं'' ति।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन सुनिधवस्सकारानं मगधमहामत्तानं आवसथो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसुं सम्पवारेसुं। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो सुनिधवस्सकारे मगधमहामत्ते भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

''यस्मिं पदेसे कप्पेति, वासं पण्डितजातियो।
सीलवन्तेत्थ भोजेत्वा, सञ्ञते ब्रह्मचारियो॥
''या तत्थ देवता आसुं, तासं दक्खिणमादिसे।
ता पूजिता पूजयन्ति, मानिता मानयन्ति नं॥
[R.89] ''ततो नं अनुकम्पन्ति, माता पुत्तं व ओरसं।
देवतानुकम्पितो पोसो, सदा भद्रानि पस्सती'' ति॥

---

२३. तब वे सुनीध और वर्षकार– दोनों महामात्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन्होंने भगवान् से उनका कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछ कर वे एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े होकर, वे दोनों महामात्य भगवान् से यों निवेदन करेन लगे– ''भन्ते! भगवान् आज का भोजन (भिक्षा) भिक्षुसङ्घ के साथ हमारे यहाँ स्वीकार करें।'' भगवान् ने (इस निवेदन को) मौन रहकर स्वीकार कर लिया। तब वे दोनों महामात्य, भगवान् की स्वीकृति जानकर, अपने आवास पर लौट आये। अपने आवास पर लौट कर उन्होंने अच्छे अच्छे खाने–पीने योग्य स्वादिष्ट भोज्य एवं पेय पदार्थ बनवा कर, वे भगवान् को भोजनहेतु सूचना देने गये कि ''भन्ते! भोजन तय्यार है, अब आप जैसा उचित समझें।''

तब भगवान्, पूर्वाह्न समय जानकर, वस्त्र पहन कर पात्र चीवर ले, जहाँ उन मगधमहामात्यों का आवास (डेरा, तम्बू) था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर विराजे। तब सुनीध और वर्षकार ने बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को अपने हाथों से उत्तम खाद्य, भोज्य एवं पेय सामग्री परोस कर सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। जब उन महामात्यों ने भगवान् को पात्र से हाथ हटा हुआ देख लिया तो वे भी समीप ही अपेक्षाकृत नीचे आसन पर एक और बैठ गये। उन दोनों के एक ओर बैठ जाने पर, भगवान् ने उनको यह उपदेश किया–

''जिस प्रदेश में पण्डित जन शीलवान् एवं इन्द्रियसयमी धर्माराधकों को भोजन कराकर वास करता है।।

''वहाँ जो देवता है उनके निमित्त उसे दान–दक्षिणा करनी चाहिये। उन देवताओं के पूजित एवं मानित होने पर वे भी बदले में उसका मान–पूजन करते हैं।।

अथ खो भगवा सुनिधवस्सकारे मगधमहामत्ते इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२४. तेन खो पन समयेन सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं [N.72, B.76] पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति—"येनज्ज समणो गोतमो द्वारेन निक्खमिस्सति, तं गोतमद्वारं नाम भविस्सति; येन तित्थेन गङ्गं नदिं तरिस्सति, तं गोतमतित्थं नाम भविस्सती" ति। अथ खो भगवा येन द्वारेन निक्खमि, तं गोतमद्वारं नाम अहोसि।

अथ खो भगवा येन गङ्गा नदी तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन गङ्गा नदी पूरा होति समतित्तिका काकपेय्या। अप्पेकच्चे मनुस्सा नावं परियेसन्ति, अप्पेकच्चे उळुम्पं परियेसन्ति, अप्पेकच्चे कुल्लं बन्धन्ति पारा पारं गन्तुकामा। अथ खो भगवा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य; एवमेव गङ्गाय नदिया ओरिमतीरे अन्तरहितो पारिमतीरे पच्चुट्ठासि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अद्दसा खो भगवा ते मनुस्से अप्पेकच्चे नावं परियसन्ते, अप्पेकच्चे उळुम्पं परियेसन्ते, अप्पेकच्चे कुल्लं बन्धन्ते पारा पारं गन्तुकामं। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"ये तरन्ति अण्णवं सरं, सेतुं कत्वान विसज्ज पल्ललानि।
कुल्लं हि जनो बन्धति, तिण्णा मेधाविनो जना" ति॥

पठमभाणवारो॥

"तब वे (देवता) उस पर उसी तरह अनुकम्पा करते हैं जैसे कोई माता अपने कोंख से जन्मे पुत्र पर अनुकम्पा करती है। इस तरह देवताओं से कृपाप्राप्त पुरुष का समय (जीवन-यात्रा) सदैव मङ्गलमय होता है।"

भगवान् इन गाथाओं से उन सुनीध और वर्षकार महामात्यों को यों उपदेश कर आसन से उठकर अपने विहार की तरफ चल दिये।

२४. उस समय सुनीध एवं वर्षकार महामात्य भी भगवान् के पीछे-पीछे यह उद्देश्य लेकर चल रहे थे कि आज भगवान् इस नगर के जिस द्वार से निकलेंगे उस द्वार का नाम "गौतम-द्वार' रखा जायगा और गङ्गा नदी के जिस घाट से उस पार जायँगें उस घाट का नाम 'गौतम-तीर्थ' (गौतम-घाट) रखा जायगा। तब भगवान् नगर के जिस द्वार से निकले वह 'गौतमद्वार' एवं गङ्गा के जिस घाट से उतरे वह 'गौतमतीर्थ' कहलाया।

तब भगवान् जहाँ गङ्गा नदी है वहाँ उसके घाट पर गये। उस समय वह गङ्गा नदी तटों तक जल से इतनी परिपूर्ण थी कि कौए भी किनारों पर बैठ कर अपनी चोंच से सरलतापूर्वक जल पी सकते थे। उस समय गङ्गा के घाट पर मनुष्यों की भीड़ लगी हुई थी। उस पार जाने के लिये कोई छोटी नाव खोज रहा था तो कोई बड़ी नाव (उडुम्प)। कोई अपने हाथों बेड़ा (कुल्ल) बाँध रहा था कि उसी के सहारे इस पार से उस पार जाया जा सके। तब भगवान्, जैसे कोई बलवान् पुरुष अपनी समेटी बाँह को पसार दे या पसारी बाँह को समेट ले, उसी तरह भगवान् भिक्षुसङ्घ के साथ गङ्गा के इस पार के किनारे से अन्तर्धान हो उस पार के किनारे आ गये। भगवान् ने उन मनुष्यों को तब भी उसी तरह छोटी या बड़ी नाव खोजते, बेड़ा बनाने के कार्यों में लगे हुए देखा। तब भगवान् के श्रीमुख से उन को लक्ष्य करके यह हृदयोद्गार निकला—

"साधारणजन जिस तरह समुद्र, नदी, छोटी या बड़ी झील के पार जाने के लिये किसी नाव या

कोटिगामे धम्मीकथा

[R.90] २५. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "आयामानन्द, येन कोटिगामो तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन कोटिगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा कोटिगामे विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—

[B.77] "चतुन्नं, भिक्खवे, अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च । कतमेसं चतुन्नं? दुक्खस्स, भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। दुक्खसमुदयस्स, भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। दुक्खनिरोधस्स, भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं [N.73] दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय, भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। तयिदं, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं। उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति, नत्थि दानि पुनब्भवो" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[R.91] "चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु॥

बेड़े की व्यवस्था करते ही रह जाते हैं; परन्तु बुद्धिमान् लोग अनायास ही (किसी सरल उपाय से) उस पार पहुँच जाते हैं"।।

प्रथम भाणवार समास।।

कोटिग्राम में धर्मोपदेश

२५. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा– "आओ, आनन्द! अब (धर्मचारिकाहेतु) जहाँ कोटिग्राम हैं, वहाँ चलें।" आनन्द ने कहा– "अच्छा, भन्ते!" तब भगवान्, उस बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ कोटिग्राम था वहाँ पहुँचे। पहुँच कर कोटिग्राम में साधनाहेतु ठहरने के बाद वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को यों धर्मोपदेश किया–

"भिक्षुओ! चारों आर्यसत्यों का ज्ञान तथा साक्षात्कार न होने के कारण ही इतने लम्बे समय से तुम्हारा–हमारा संसार में आना–जाना, दौड़ना–धूपना लगा हुआ है। कौन से चार? भिक्षुओ! 'दुःख आर्यसत्य है'– इसके ज्ञान....लगा हुआ है। ....'दुःखसमुदय आर्यसत्य है– इसके ज्ञान....लगा हुआ है। ....'दुःखनिरोध आर्यसत्य है' – इसके ज्ञान....लगा हुआ है।" ....'दुःखनिरोधागामी मार्ग आर्य सत्य है'– इसके ज्ञान...लगा हुआ है। परन्तु, भिक्षुओ! जब से हमने दुःख....दुःखसमुदय....दुःखनिरोध....एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग का ज्ञान तथा साक्षात्कार कर लिया, तब से हमारा और तुम्हारा यह संसार में बार बार आना–जाना, इसमें इस योनि से उस योनि में भटकना समाप्त हो गया है; क्योंकि तुम्हारी–हमारी भवतृष्णा समाप्त हो चुकी, अतः संसार में आवागमन की परम्परा नष्ट हो चुकी है। अब तुम्हारा–हमारा पुनर्जन्म नहीं हो पायगा।" भगवान् ने यों कहकर इसी बात को गाथाबद्ध कहना प्रारम्भ किया–

"तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थि दानि पुनब्भवो"॥ ति॥

तत्र पि सुदं भगवा कोटिगामे विहन्तो एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति— "इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जसवा" ति।

७. धम्मादासो धम्मपरियायो

२६. अथ खो भगवा कोटिगामे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "आयामानन्द, येन नातिका तेनुपङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा [B.78] आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन नातिका तदवसरि। तत्र पि सुदं भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"साळ्हो नाम, भन्ते, भिक्खु नातिके कालङ्कतो। तस्स का गति, को अभिसम्परायो? नन्दा नाम, भन्ते, भिक्खुनी नातिके कालङ्कता, [R.92] तस्सा का गति? को अभिसम्परायो? सुदत्तो नाम, भन्ते उपासको नातिके कालङ्कतो, तस्स का गति? को अभिसम्परायो? सुजाता नाम, भन्ते, उपासिका नातिके कालङ्कता, [N.74] तस्सा का गति? को अभिसम्परायो! कुक्कुटो नाम, भन्ते, उपासको नातिके कालङ्कतो। तस्स का गति? को अभिसम्परायो? काळिम्बो नाम, भन्ते, उपासको....पे०....निकटो नाम, भन्ते,

---

"चारों आर्यसत्यों को न जानने न समझने के कारण (हमलोग) उन-उन योनियों में लम्बे समय से आते-जाते रहे हैं। जब ये (चारों आर्यसत्य) जान लिये समझ लिये जाते हैं तब हमारी यह संसार में जन्म लेने की तृष्णा नष्ट हो जाती है। दुःख का मूल (जड़) कट जाता है, ऐसी स्थिति में (हमारा) यहाँ पुनर्जन्म होना असम्भव बन जायगा।"

इस प्रकार भगवान् कोटिग्राम में विहार करते हुए भिक्षुओं को प्रायः यही धर्मोपदेश करते रहे कि-यह शील....यह शील परिभावित समाधि....पूर्ववत्.... प्रज्ञापरिभावित चित्त कामाश्रव आदि से पूर्णतः विमुक्त हो जाता है।

७. धर्मादर्श नामक धर्मपर्याय

नातिका में- २६. तब भगवान् ने कोटिग्राम में इच्छानुसार धर्मोपदेश कर आयुष्मान् आनन्द को कहा- "आओ, आनन्द! अब नातिका ग्राम चलें।" "अच्छा, भन्ते"- यह आनन्द का उत्तर था। तब भगवान् अपने विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ नातिकाग्राम के ईंटों से बने आवास (गिञ्जकावसथ) में जाकर विराजे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराज रहे थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक और बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से जिज्ञासा की- "भन्ते! साढ नामक भिक्षु का इस नातिका ग्राम में देहपात हो गया था, मरणानन्तर उसकी क्या गति हुई? उसे पुनर्जन्म में कौन लोक (अभिसम्पराय) मिला? नन्दा नामक भिक्षुणी का यहाँ देहपात हो गया था....? सुदत्त नामक एक उपासक का भी यहाँ देहपात हुआ था, उसकी क्या गति हुई....? सुजाता नाम की एक उपासिका का भी यहाँ देहपात हुआ था उसकी क्या गति हुई....? भन्ते! कुक्कुट नामक उपासक....कालिम्ब नामक उपासक...निकट

उपासको ....कटिस्सहो नाम, भन्ते, उपासको....तुट्ठो नाम, भन्ते, उपासको ....सन्तुट्ठो नाम, भन्ते, उपासको ....भद्दो नाम, भन्ते, उपासको ....सुभद्दो नाम, भन्ते, उपासको नातिके कालङ्कतो, तस्स का गति ? को अभिसम्परायो'' ति ?

२७. ''साळ्हो, आनन्द, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। नन्दा, आनन्द, भिक्खुनी पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनी अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका। सुदत्तो, आनन्द, उपासको तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सति। सुजाता, आनन्द, उपासिका तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा। कुक्कुटो, आनन्द, उपासको पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्ति- [B.79] धम्मो तस्मा लोका। काळिम्बो आनन्द, उपासको....पे०....। निकटो, आनन्द, उपासको....। कटिस्सहो, आनन्द, उपासको ....। तुट्ठो, आनन्द, उपासको....। सन्तुट्ठो, आनन्द, उपासको ....। भद्दो, आनन्द, उपासको....। सुभद्दो, आनन्द, उपासको पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा [R.93] लोका। परोपञ्ञासं, आनन्द, नातिके उपासका कालङ्कता, पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका। साधिका नवुति, आनन्द, नातिके उपासका कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। सातिरेकानि, आनन्द, पञ्चसतानि नातिके उपासका कालङ्कता, तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा।

उपासक....कटिस्सह उपासक....तुष्ट उपासक....सन्तुष्ट उपासक....भद्र उपासक....सुभद्र उपासक इस नातिका ग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुआ था, उसकी क्या गति हुई? उसे पुनर्जन्म में कौन लोक (अभिसम्पराय) मिला?''

२७. ''आनन्द! वह साढ भिक्षु इसी जन्म में आश्रवों के क्षय से आश्रवरहित चित्त की मुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को जानकर स्वयं साक्षात्कार कर इसी जन्म में अर्हत् हो गया। और आनन्द! नन्दा नामक भिक्षुणी पाँचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से, देवलोक में जाकर वहीं परिनिर्वाण पा लेगी। सुदत्त नामक उपासक, आनन्द! तीन संयोजनों के (सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा एवं शीलव्रतपरामर्श के) क्षीण होने से राग-द्वेष-मोह के दुर्बल (तनु) होने से सकृदागामी हुआ। एक ही बार इस लोक में पुनः आकर दुःख का अन्त कर लेगा। आनन्द! सुजाता उपासिका तीन संयोजनों के क्षीण ....। आनन्द! कुक्कुट नामक उपासक ....। कालिम्ब नामक उपासक ....। निकट नामक उपासक ....। कटिस्सह नामक उपासक ....। तुष्ट नामक उपासक ....। सन्तुष्ट नामक उपासक ....। भद्र नामक उपासक ....। सुभद्र नामक उपासक पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से मरणानन्तर देवलोक में उत्पन्न होकर वहीं परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा। आनन्द! इस नातिका में अब तक पचास से अधिक उपासक कालकवलित हो चुके हैं, वे सभी ....अनागामी ....हैं। नब्बे से अधिक उपासक ....सकृदागामी ....हैं। पाँच सौ से अधिक उपासक स्रोत आपन्न .... अवश्य ही अर्हत्त्व प्राप्त करेंगे।

२८. "अनच्छरियं खो पनेतं, आनन्द, यं मनुस्सभूतो कालं करेय्य। तस्मिं येव कालङ्कते तथागतं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छिस्सथ। विहेसा हेसा, आनन्द, तथागतस्स। तस्मातिहानन्द, धम्मादासं नाम धम्मपरियायं देसेस्सामि येन समन्नागतो अरियसावको [N.75] आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो सोतापन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति।

२९. "कतमो च सो, आनन्द, धम्मादासो धम्मपरियायो येन समन्नागतो अरियसावको आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो सोतापन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति?

"इधानन्द, अरियसावको बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'इति पि सो [B.80] भगवा अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। (१)

"धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। (२)

"सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, [R.94] उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो

---

२८. "परन्तु, आनन्द! जिसने मनुष्य योनि में जन्म लिया है वह एक न एक दिन तो मरेगा ही, इस में आश्चर्य की कौन बात है कि उसके लिये तथागत के पास आकर उनसे पूछा जाय! आनन्द! यह तो तथागत को कष्ट ही देना हुआ। अतः (इसके लिये) मैं तुम्हें धर्मादर्श नामक उपदेश करूँगा; जिससे युक्त होने पर कोई भी आर्यश्रावक स्वयं अपने भविष्य का व्याख्यान (व्याकरण) कर सकेगा कि 'मैं अब नरक, पशुयोनि, भूत-प्रेतयोनि, अपाय, दुर्गति या अधोगति प्राप्त नहीं करूँगा; क्योंकि मैं स्रोतआपन्न (बोधिमार्गारूढ़) हो चुका हूँ, जहाँ से मनुष्य का पतन असम्भव होता है।'

२९. "आनन्द! क्या है वह धर्मादर्श नामक धर्मपर्याय (उपदेश), जिससे युक्त....पूर्ववत्.... असम्भव है?'

"आनन्द! जो आर्यश्रावक (भगवान्) बुद्ध में अत्यन्त श्रद्धा-प्रीतियुक्त होकर उन्हें यों स्मरण करता है- 'वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत्... देव और मनुष्यों के उपदेशक ज्ञानी भगवान् हैं। (१)

"आनन्द जो आर्यश्रावक धर्म में अत्यन्त श्रद्धायुक्त होकर उसे यों स्मरण करता है- 'भगवान् का धर्म सुन्दर व्याख्यानपूर्वक कहा गया है, वह इसी जन्म में फलप्रद है, कालान्तर में नहीं, तत्काल ही फल (परिणाम) का देने वाला है, यहीं अपना चमत्कार (प्रभाव) दिखाने वाला है, निर्वाण तक पहुँचाने वाला तथा विज्ञजनों को अपने भीतर (साक्षात्) ही दिखायी देने वाला है।' (२)

"आनन्द! जो आर्य श्रावकसङ्घ में अत्यन्त श्रद्धा प्रीतियुक्त होकर उसके विषय में यह स्मरण करता है- 'भगवान् का श्रावकसङ्घ सन्मार्ग पर चलने वाला, सरल मार्ग पर चलने वाला, न्यायमार्ग पर चलने वाला, सम्यक्मार्ग पर चलने वाला है। स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हत्- ये चार पुरुष-पुद्गल एवं इन चारों अवस्थाओं फलों के साक्षात्कार करने में तत्पर- ये चार पुरुषपुद्गल- यों आठ

भगवतो सावकसङ्घो—यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला, एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। (३)

"अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञूपसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधि संवत्तनिकेहि। (४)

"अयं खो सो, आनन्द, धम्मादासो धम्मपरियायो येन समन्नागतो अरियसावको आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो सोतापन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो''' ति।

तत्र पि सुदं भगवा नातिके विहरन्तो गिञ्जकावसथे एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं [N.76] कथं करोति—"इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

[B.81] ३०. अथ खो भगवा नातिके यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"आयामानन्द, येन वेसाली तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन वेसाली तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरति अम्बपालिवने। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—

"सतो, भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी। कथं

प्रकार के साधक ही इस सङ्घ में उपलब्ध हैं जो कि (सत्कर्मों में) आह्वान करने योग्य हैं, आतिथ्य करने योग्य हैं, दान देने योग्य हैं, हाथ जोड़ने (प्रणाम करने) योग्य और लोक के लिये पुण्योत्पादक क्षेत्र हैं। (३)

यह बुद्धोपदिष्ट धर्ममार्गारूढ़ आर्यश्रावक आर्यों को प्रिय तथा ऐसे शील सदाचार से युक्त है, जो अखण्ड है, अच्छिद्र है, शुद्ध है, कल्मषरहित है, (साधुजन–) योग्य है, विद्वत्प्रशंसित है, अनिन्द्य है एवं समाधि (चित्तनिरोध) के लिये प्रेरक है। (४)

"आनन्द! यह धर्मादर्श नामक धर्मपर्याय ऐसा है जिससे युक्त होने पर कोई भी आर्यश्रावक, चाहने पर, अपने आपके विषय में जान सकता है कि 'मेरे लिये नरक, पशुयोनि, तिर्यग्योनि, भूत प्रेतयोनि, अपाय, दुर्गति या विनिपात– सब कुछ निरुद्ध हो चुका है; क्योंकि मैं न गिरने वाले बोधि के मार्ग आरुढ़ (स्रोतआपन्न) हो चुका हूँ।'

इस प्रकार भगवान् नातिका में धर्मचर्चा के प्रसङ्ग में इन विषयों पर उपदेश करते रहे कि– 'यह शील....पूर्णतः विमुक्त हो जाता है।'

वैशाली में चारिका– ३०. तब भगवान् नातिका में जब तक चाहा, तब तक धर्मोपदेश करने के बाद आनन्द से बोले– "चलो, आनन्द! अब जहाँ वैशाली है वहाँ चलें।" आयुष्मान् आनन्द ने भी "अच्छा, भन्ते!" कहकर भगवान् का आदेश स्वीकार किया। तब भगवान् बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ वैशाली नगरी में पहुँचे। वहाँ वे वैशाली स्थित अम्बपालिवन में जा कर विराजे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को बुलाकर यह धर्मदेशना की–

"भिक्षुओ! किसी भी साधक भिक्षु को स्मृति एवं सम्प्रजन्य (विवेक) पूर्वक ही धर्मसाधना करनी

च, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति [R.95] आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु वेदनानुपस्सी....पे०.... चित्ते चित्तानुपस्सी....पे०....धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति; सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति। सतो, भिक्खवे, भिक्खु, विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति।

८. अम्बपाली गणिका

३१. अस्सोसि खो अम्बपाली गणिका—"भगवा किर वेसालिं अनुप्पत्तो वेसालियं विहरति मय्हं अम्बवने" ति। अथ खो अम्बपाली गणिका भद्दानि भद्दानि यानानि योजापेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि वेसालिया निय्यासि, येन सको आरामो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, पच्चोरोहित्वा पत्तिका व येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं [N.77, B.82] खो अम्बपालिं गणिकं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता

चाहिये। भिक्षुओ! उक्त साधक भिक्षु कैसे 'स्मृतिमान्' कहलाता है? जब भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु काया में कायानुपश्यी (इस मानव शरीर को उसकी रचना के अनुसार केश–नख–मक्त–मूत्र आदि के रूप में विवेचना करने वाला) हो, उद्योगशील हो, सम्प्रजन्ययुक्त हो, लोक के प्रति लोभ–द्वेष हटा कर साधना करता है; वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो...., चित्त में चित्तानुपश्यी हो...., धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर साधना करता है, तब वह भिक्षु 'स्मृतिमान्' कहलाता है।

"भिक्षुओ! कैसे कोई साधक भिक्षु 'सम्प्रज्ञात' कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपने गमन–आगमन आदि में, आलोकन–विलोकन में, अङ्गों के सङ्कोच–प्रसारण में, सङ्घाटी–पात्र–चीवर आदि के धारण करने में; अशन, पान, खादन, आस्वादन, मल–मूत्रोत्सर्ग आदि में या चलते–फिरते, बोलते चुप रहते आदि स्वकीय क्रियाओं में सम्प्रजन्य (विवेकपूर्वक सावधानी) रखता है, भिक्षुओ! वही भिक्षु सम्प्रजानकारी कहलाता है। यों, भिक्षुओ! कोई भी साधक भिक्षु स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञात होकर ही साधना करे— यही हमारा अनुशासन (उपदेश) है।"

८. अम्बपाली गणिका

३१. इसी समय, भगवान् का वैशाली के आम्रवन में आकर विराजना आम्रपाली गणिका ने भी सुना। तब आम्रपाली गणिका अच्छे अच्छे यान तैयार कराकर...पूर्ववत्....जहाँ आम्रवन था वहाँ गयी।.... उस समय, एक ओर बैठी आम्रपाली को धार्मिक कथाएँ सुनाकर (धर्माचरण के लिये) समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। अन्त में आम्रपाली गणिका ने भगवान् से यों निवेदन किया— "भन्ते! अच्छा हो कि कल भगवान् भिक्षुसङ्घ के साथ मेरे घर पर भोजन करें। भगवान् ने मौन रह कर यह निमन्त्रण स्वीकार कर

सम्पहंसिता भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

[R.96] अस्सोसुं खो वेसालिका लिच्छवी—"भगवा किर वेसालिं अनुप्पत्तो वेसालियं विहरति अम्बपालिवने" ति। अथ खो ते लिच्छवी भद्दानि भद्दानि यानानि योजापेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि वेसालिया निय्यिंसु। तत्र एकच्चे लिच्छवी नीला होन्ति नीलवण्णा नीलवत्था नीलालङ्कारा, एकच्चे लिच्छवी पीता होन्ति पीतवण्णा पीतवत्था पीतालङ्कारा, एकच्चे लिच्छवी लोहिता होन्ति लोहितवण्णा लोहितवत्था लोहितालङ्कारा, एकच्चे लिच्छवी ओदाता होन्ति ओदातवण्णा ओदातवत्था ओदातालङ्कारा। अथ खो अम्बपाली गणिका दहरानं दहरानं लिच्छवीनं अक्खेन अक्खं चक्केन चक्कं युगेन युगं पटिवट्टेसि। अथ खो ते लिच्छवी अम्बपालिं गणिकं एतदवोचुं—"किं, जे अम्बपालि, दहरानं दहरानं लिच्छवीनं अक्खेन अक्खं चक्केन चक्कं युगेन युगं पटिवट्टेसी" ति?

"तथा हि पन मे, अय्यपुत्ता, भगवा निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति।

"देहि, जे अम्बपालि, एतं भत्तं सतसहस्सेना" ति।

"सचे पि मे, अय्यपुत्ता, वेसालिं साहारं दस्सथ, एवमहं तं भत्तं न दस्सामी" ति।

अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं फोटेसुं—"जितम्ह वत भो अम्बकाय, जितम्ह वत भो अम्बकाया" ति। अथ खो ते लिच्छवी येन अम्बपालिवनं तेन पायिंसु। अद्दसा खो भगवा ते [B.83] लिच्छवी दूरतो व आगच्छन्ते। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"येसं, भिक्खवे, भिक्खूनं

लिया। तब अम्बपाली, भगवान् की स्वीकृति जानकर, आसन से उठकर अपने आवास की तरफ चली गयी।

उधर, वैशालीवासी लिच्छवियों ने भी सुना कि भगवान् वैशाली में पधारे हैं। तब वे लिच्छवि सुन्दर सुन्दर यान....वैशाली से निकले। उनमें कुछ लिच्छवि नीलवर्ण, नीलवस्त्र एवं नील अलङ्कार वाले थे; कोई पीतवर्ण, पीतवस्त्र....कोई रक्तवर्ण, रक्तवस्त्र....कोई श्वेतवर्ण, श्वेतवस्त्र, एवं श्वेत अलङ्कार वाले थे। मार्ग में (भगवान् का दर्शन कर लौटती हुई हर्ष से अभिभूत) आम्रपाली ने उन तरुण एवं यौवन-सम्पन्न लिच्छवियों के रथों के धुरों से अपने रथ का धुरा, चक्के से चक्का (पहिया), एवं जुए से जूआ टकरा दिया। तब उन लिच्छवियों ने आम्रपाली से पूछा– "अरी आम्रपालि! क्यों तूँ तरुण लिच्छवियों के .....जूए से जूआ टकराती है?"

"क्योंकि, आर्यपुत्रो! मैंने कल के भोजन के लिये भगवान् को भिक्षुसङ्घ के साथ अपने घर पर निमन्त्रित किया है।"

"अरी आम्रपालि! एक लाख कार्षापण लेकर यह भोजन (कराने का अवसर) हमें दे दे।"

"नहीं, आर्यपुत्रो! नहीं; यदि आप लोग (इसके बदले में) मुझे समग्र वैशाली नगर भी दें तो भी मैं यह अवसर आपको नहीं दूँगी।"

तब अङ्गुलियाँ तोड़ते (चटकाते) हुए से लिच्छवि बोले– "अरे इस अवसर को हस्तगत कर इस स्त्री ने तो हमको जीत लिया, हमको पराजित कर दिया!" तब वे लिच्छविगण जहाँ आम्रवन था, वहाँ गये। भगवान् ने दूर से ही उन (रास्ते में आते) लिच्छवियों को देख लिया। देख कर वे भिक्षुओं से यों

देवा तावतिंसा अदिट्ठपुब्बा, ओलोकेथ, भिक्खवे, लिच्छविपरिसं; अपलोकेथ, [N.78, R.97] भिक्खवे, लिच्छविपरिसं; उपसंहरथ, भिक्खवे, लिच्छविपरिसं—तावतिंससदिसं'' ति।

अथ खो ते लिच्छवी यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिका व येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते लिच्छवी भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो ते लिच्छवी भगवन्तं एतदवोचुं—''अधिवासेतु नो, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अथ खो भगवा ते लिच्छवी एतदवोच—''अधिवुत्थं खो मे, लिच्छवी, स्वातनाय अम्बपालिया गणिकाय भत्तं'' ति। अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं फोटेसुं—''जितम्ह वत, भो अम्बकाय, जितम्ह वत भो अम्बकाया'' ति। अथ खो ते लिच्छवी भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

३२. अथ खो अम्बपाली गणिका तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके आरामे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—''कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'' ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन अम्बपालिया गणिकाय निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो अम्बपाली गणिका बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं भुत्taविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा [R.98] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं एतदवोच— ''इमाहं, भन्ते, आरामं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स दम्मी'' ति। पटिग्गहेसि भगवा आरामं। अथ खो भगवा अम्बपालिं गणिकं धम्मिया कथाय सन्देस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

बोले— ''भिक्षुओ! जिन्होंने त्रायस्त्रिंश देव आज तक न देखे हों, वे (आते हुए) इस लिच्छविसमूह को देख लें। (शोभा, सौन्दर्य एवं गुणवत्ता में) इन लिच्छवियों को त्रायस्त्रिंश देवों के समान ही समझो।''

तब वे लिच्छवि....रथ से उतर कर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। .....एक और बैठे उन लिच्छवियों को भगवान् ने धार्मिक कथा (दान कथा आदि) से....समुत्तेजित....किया। तब वे लिच्छवि भगवान् से यों बोले— ''अच्छा हो, भन्ते! कल का भोजन....हमारे यहाँ करें।'' भगवान् बोले— ''लिच्छवियों! कल का भोजन तो मैने आम्रपाली गणिका के घर स्वीकार कर लिया है।'' तब वे लिच्छविं (खिन्नतावश) अपनी अंगुलियाँ चटकाते हुए बाले— अरे! इस साधारण सी स्त्री ने तो हमको जीत लिया (कि पहले ही आकर भगवान् को निमन्त्रित कर गयी।) तब वे लिच्छवि भगवान् के कथन का अनुमोदन कर, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर, वापस अपने घरों को लौट गये।

३२. उधर, आम्रपाली गणिका ने, वह रात्रि बीत जाने पर, प्रातःकाल अपने घर पर अच्छा, स्वादिष्ट नानाविध खाद्य भोज्य पदार्थ तय्यार कराकर भगवान् को सूचित किया।....भगवान्....आम्रपाली के घर जाकर बिछे आसन पर विराजे। तब आम्रपाली ने बुद्धप्रमुख....पात्र से हाथ हटा लेने पर.... एक और बैठी आम्रपाली गणिका ने भगवान् से निवेदन किया— '' भन्ते! मैं इस आराम को आपको साधनाहेतु भिक्षुसङ्घ के निमित्त प्रदान करती हूँ।'' भगवान् ने (आम्रपाली गणिका द्वारा प्रदत्त) वह आराम स्वीकार कर

[B.84] तत्र पि सुदं भगवा वेसालियं विहरन्तो अम्बपालिवने एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति—"इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

९. वेळुवगामवस्सूपगमनं

[N.79] ३३. अथ खो भगवा अम्बपालिवने यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"आयामानन्द, येन वेळुवगामको तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन वेळुवगामको तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वेळुवगामके विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"एथ तुम्हे, भिक्खवे, समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपेथ। अहं पन इधेव वेळुवगामके वस्सं उपगच्छामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुत्वा समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपगच्छिंसु। [R.99] भगवा पन तत्थेव वेळुवगामके वस्सं उपगच्छि।

३४. अथ खो भगवतो वस्सूपगतस्स खरो आबाधो उप्पज्जि। बाळ्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका। तत्र सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"न खो मेतं पतिरूपं य्वाहं अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसङ्घं परिनिब्बायेय्यं। यन्नूनाहं इमं आबाधं विरियेन पटिप्पणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहरेय्यं" ति। अथ खो भगवा तं आबाधं विरियेन पटिप्पणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहासि। अथ खो भगवतो सो आबाधो पटिप्पस्सम्भि। अथ खो भगवा गिलानवुट्ठितो अचिरवुट्ठितो

लिया। तब भगवान् आम्रपाली को धार्मिक कथाओं द्वारा धर्मपालनहेतु समुत्तेजित....सम्प्रहृष्ट कर आसन से उठकर चले गये।

उस वैशाली के चारिका-प्रसङ्ग में, भगवान् यही धार्मिक चर्चा करते रहे कि "यह शील.... कामाश्रवादि से चित्त विमुक्त हो जाता है।"

९. वेणुग्राम में चातुर्मास्य

३३. तब भगवान् ने, वैशाली के उस आम्रवन में साधनाहेतु जब तक चाहा तब तक ठहर कर किसी समय आनन्द को बुलाया और कहा– "आओ, चलो, आनन्द! अब यहाँ से वेळुवग्राम (वेणुग्राम) चलेंगे।" "अच्छा, भन्ते" कहकर आनन्द ने भगवान् का आदेश स्वीकार कर लिया। तब भगवान् विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका करते हुए वेणुग्राम पहुँचे। वहाँ ठहरकर साधना का निश्चय करते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को यों आदेश दिया– "भिक्षुओ! जाओ, वैशाली के चारों तरफ बिखर कर मित्र या परिचित का आवास देखकर उसी के आस-पास वर्षावास करो। मैं तो इसी वेणुग्राम में यह वर्षावास करूँगा।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वे सभी भिक्षु वैशाली के चारों ओर बिखर कर वर्षावास करने लगे।

३४. वेणुग्राम में वर्षावास करते हुए भगवान् को कठिन रोग उत्पन्न हुआ। उससे उन्हें मरणतुल्य कठोर कष्ट (वेदना) अनुभूत होने लगा। परन्तु भगवान् ने वह घोर कष्ट भी स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ सहन कर लिया। उस समय भगवान् को यह विचार हुआ– "मेरे लिये यह उचित न होगा कि मैं अपने उपस्थायकों (सेवकों) को बिना बताये, भिक्षुसङ्घ को विना देखे-सुने ही परिनिर्वाण (देहपात) प्राप्त करूँ।

गेलञ्ञा विहारा निक्खम्म विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं [B.85] निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"दिट्ठो मे, भन्ते, भगवतो फासु; दिट्ठं मे, भन्ते, भगवतो खमनीयं। अपि च मे, भन्ते, मधुरकजातो विय कायो; दिसा पि मे न पक्खायन्ति; धम्मा पि मं न पटिभन्ति भगवतो गेलञ्ञेन। अपि च मे,भन्ते, अहोसि काचिदेव अस्सासमत्ता—'न ताव भगवा परिनिब्बायिस्सति न याव भगवा भिक्खुसङ्घं आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरती' " ति।

३५. "किं पनानन्द, भिक्खुसङ्घो मयि पच्चासीसति? देसितो, [N.80, R.100] आनन्द, मया धम्मो अनन्तरं अबाहिरं करित्वा। नत्थानन्द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठि। यस्स नून, आनन्द, एवमस्स—'अहं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी' ति वा 'ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घो' ति वा, सो नून, आनन्द, भिक्खुसङ्घं आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरेय्य। तथागतस्स खो, आनन्द, न एवं होति—'अहं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी' ति वा, 'ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घो' ति वा। सकिं, आनन्द, तथागतो भिक्खुसङ्घं आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरिस्सति। अहं खो पनानन्द, एतरहि जिण्णो वुद्धो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। आसीतिको मे वयो वत्तति। सेय्यथापि, आनन्द, जज्जरसकटं वेधमिस्सकेन यापेति; एवमेव खो, आनन्द, वेधमिस्सकेन मञ्ञे तथागतस्स कायो यापेति। यस्मिं, आनन्द, समये तथागतो सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा एकच्चानं वेदनानं

क्यों न मैं इस रोग (आबाधा) को बलपूर्वक हटाकर, जीवन-संस्कार को दृढ़तापूर्वक धारण करता हुआ अभी साधना में लगा रहूँ।" यह सोचकर उस रोग को भगवान् बलपूर्वक हटाकर, जीवन-संस्कार को दृढ़तापूर्वक धारण करते हुए धर्म-साधना में लगे रहे। तब भगवान् का वह रोग भी शान्त हो गया। भगवान् उस रोग से छुटकारा पाकर, उस रोग से अभी-अभी मुक्त होकर, विहार की छाया में बिछे आसन पर आ विराजे। तब आयुष्मान आनन्द....एक ओर बैठे...भगवान् से यों बोले— "भन्ते! आज मैंने भगवान् को सुखी देखा तो! आज, भन्ते! मैंने भगवान् को स्वस्थ देखा तो! भन्ते! मेरा शरीर तो शून्य (स्तब्ध) ही हो गया था: मुझे दिशाएँ भी नहीं सूझ पड़ती थीं। आप को रोगी देखकर मेरा धर्मविचार में भी मन नहीं लगता था। हाँ, मुझे इस बात से कुछ आश्वासन अवश्य मिल रहा था कि आप तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे, जबतक भिक्षुसङ्घ को कुछ (अन्तिम) आदेश (उपदेश) न दे लें।"

३५. "आनन्द! भिक्षुसङ्घ अब भी मुझसे और क्या चाहता है? आनन्द! मैंने तो उसे अपना सभी धर्म विना कुछ भीतर-बाहर किये (कुछ भी न छिपाते हुए) जैसा का तैसा बता दिया। मैंने इस धर्मोपदेश में कोई आचार्यमुष्टि नहीं रखी है। आनन्द! जिसको ऐसा अनुभव हो रहा हो— 'यह सङ्घ मैंने किसी स्वार्थ के कारण या उद्देश्य को सामने रखकर बनाया है'— तब मुझे कहना हो सकता है। परन्तु, आनन्द! मेरी तरफ से तो ऐसा कुछ विचार है नहीं। आनन्द! तथागत अब भिक्षुसङ्घ को और क्या कहें! आनन्द! अब मैं जीर्ण, वृद्ध, बड़ा, मृत्यु के किनारे लगा (खड़ा) हुआ, (अध्वगत) अत्यधिक आयु वाला (वय:प्राप्त) हो चुका हूँ। मेरी आयु अब अस्सी वर्ष हो चुकी है। आनन्द! जैसे पुरानी गाड़ी (शकट) बांध-बूंध कर, जकड़-पकड़ कर चलती है (किसी तरह उससे काम लिया जाता है); उसी तरह आनन्द तथागत का यह शरीर बांध-बूंध कर चलाया जा रहा है। आनन्द! जिस समय तथागत सभी निमित्तों को मन में न कर, किन्हीं-किन्हीं वेदनाओं का निरोध कर, निमित्तरहित चित्त की समाधि (एकाग्रता) प्राप्त कर साधनारत

निरोधा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, फासुतरो, आनन्द, तस्मिं समये तथागतस्स कायो होति। तस्मातिहानन्द, अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा।

"कथञ्चानन्द, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनञ्ञसरणो, धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्ञसरणो? इधानन्द, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु....पे०....चित्ते....पे०....धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। एवं खो, आनन्द, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनञ्ञसरणो, धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्ञसरणो। ये हि [B.89, R.101] केचि, आनन्द, एतरहि वा मम वा अच्चयेन अत्तदीपा विहरिस्सन्ति अत्तसरणा अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा, तमतग्गे मे ते, आनन्द, भिक्खू भविस्सन्ति ये केचि सिक्खाकामा" ति॥

दुतियभाणवारो॥

१०. चापालचेतिये आयुसङ्खारं ओस्सजि

[R.102] ३६. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि [N.81] —"गण्हाहि, आनन्द, निसीदनं। येन चापालं चेतियं तेनुपसङ्कमिस्साम दिवाविहाराया" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा निसीदनं आदाय भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। अथ खो भगवा येन चापालं चेतियं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। आयस्मा पि खो आनन्दो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

रहते हैं उस समय तथागत का यह शरीर हल्का (स्वास्थ्यमय) रहता है। इसलिये आनन्द! भिक्षु (साधक) आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मदीप, धर्मशरण एवं धर्म को छोड़कर किसी अन्य की शरण में जाने वाला न होकर साधनारत रहे।

"आनन्द! कैसे भिक्षु आत्मदीप...साधना करे? काया में कायानुपश्यी....वेदनाओं में वेदनानुपश्यी...चित्त में चित्तानुपश्यी...धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर[1]....। आनन्द! मेरे परिनिर्वृत होने के बाद जो आत्मदीप....रहेंगे वे मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्मानुसार आगे-आगे चलते हुए कहलायेंगे॥

द्वितीय भाणवार समाप्त॥

१०. चापाल चैत्य में भगवान् का आयु:संस्कार-त्याग

३६. तदनन्तर, भगवान् पूर्वाह्न समय वस्त्र पहनकर, पात्र-चीवर लेकर, भिक्षाकार्य के लिये वैशाली में प्रविष्ट हुए। वैशाली में भिक्षाटन के बाद, भिक्षा कार्य से निवृत्त होकर भगवान् ने आनन्द को बुलाया और कहा- "आनन्द! आसन उठाओ। अब दैवसिक साधना के लिये चापालचैत्य चलेंगे।" "अच्छा, भन्ते" कहकर आयुष्मान् आनन्द भी भगवान् के पीछे-पीछे लगे हुए जहाँ चापाल चैत्य था वहाँ गये। जाकर भगवान् बिछे आसन पर विराजे। आयुष्मान् आनन्द भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

---

१. *द्र०- महासतिपट्ठानसुत्त (इसी भाग के अन्त में)।*

३७. एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—"रमणीया, आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं चेतियं, रमणीयं सत्तम्बं चेतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं, रमणीयं सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं। यस्स कस्सचि, [R.103] आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो पन, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। सो आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा" ति। एवं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवता ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं; न भगवन्तं याचि—"तिट्ठतु, भन्ते भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं" ति, यथा तं मारेन परियुट्ठितचित्तो।

दुतियं पि खो भगवा....पे०....ततियं पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं [B.87] आमन्तेसि—"रमणीया, आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं चेतियं, रमणीयं सत्तम्बं चतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं, रमणीयं सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं। यस्स कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा" ति। एवं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवता ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं; न भगवन्तं याचि—"तिट्ठतु, भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो [R.104] कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं" ति,

---

३७. एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् यों बाले– "आनन्द! देखो यह वैशाली नगरी कितनी रमणीय (कितनी मनोमोहक) है। इसके उदयन चैत्य, गौतम चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्र चैत्य, सारन्दद चैत्य और चापाल चैत्य– सभी स्थल तो रमणीय एवं मनोमोहक हैं। आनन्द! जिस किसी ने चारों ऋद्धिपादों की साधना कर ली है, साधना करते–करते इन्हें बढ़ा लिया है, इनको सही रास्ते पर लगा दिया है, हृदय में ठीक ढंग से बैठा लिया है, स्थिर (अनुत्थित) कर लिया है उनसे पूर्णतः परिचित हो चुका है, इसके लिये वे सुसमारब्ध हो चुके हैं, वह फिर यदि चाहे तो कल्प पर भी यहाँ ठहर सकता है, या फिर कल्प के अवशिष्ट भाग तक भी। आनन्द! तथागत ने ये चारों ही ऋद्धिपाद ठीक ढंग से सिद्ध कर लिये हैं, बढ़ा लिये हैं...पूर्ववत्....आनन्द! यदि तथागत चाहें तो यहाँ कल्पभर ठहर सकते हैं या कल्प के अवशिष्ट समय तक।"

भगवान् द्वारा ऐसा स्पष्ट संकेत किये जाने पर भी, आयुष्मान् आनन्द उस संकेत को न समझ पाये और उन्होंने भगवान् से यह प्रार्थना नहीं की– "भन्ते! बहुजनहितार्थ बहुजनसुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ देव–मनुष्यों के हित, सुख एवं प्रयोजन–सिद्धि के लिये कल्प भर (यहाँ) ठहरें"; क्योंकि मार ने उनका मन विचलित कर दिया था।

दूसरी बार भी भगवान् ने...पूर्ववत्....मन फेर दिया था। तीसरी बार भी भगवान् ने...पूर्ववत्....

[N.82] यथा तं मारेन परियुट्ठितचित्तो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि– "गच्छ, त्वं, आनन्द, यस्स दानि कालं मञ्ञसी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा अविदूरे अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि।

३८. अथ खो मारो पापिमा अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते आनन्दे येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो मारो पापिमा भगवन्तं एतदवोच– "परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा–'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं [B.88] सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती' ति। एतरहि खो [R.105] पन, भन्ते, भिक्खू भगवतो सावका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञपेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। (१)

"भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा–'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा

मन को फेर दिया था। तब भगवान् ने आनन्द से कहा– "जाओ! आनन्द! अब जैसा उचित समझो, करो।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर आनन्द आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर कुछ ही दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

मारयाच्ञा– ३८. तब, आयुष्मान् आनन्द के चले जाने के कुछ ही देर बाद, पापी मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े होकर पापी मार ने भगवान् से यह कहा– "भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भन्ते! यह आपके परिनिर्वाण का समय आ गया है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं– 'पापिन्! मैं तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा, जब तक मेरे भिक्षु शिष्य व्यक्त (पण्डित), विनयसम्पन्न, विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुसारी, धर्म–मार्ग पर आरूढ़, धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले न होंगे; अपने अपने सिद्धान्त (आचार्यक) सीख कर उनका उपदेश, प्रज्ञापन (दूसरों को समझाना), आख्यान, प्रतिष्ठापन, विवरण, विभजन, सरलीकरण न करने लगेंगे; दूसरों के उठाये आक्षेपों को धर्मानुसार खण्डित कर प्रातिहार्य (युक्ति) के साथ धर्मोपदेश न करने लगेंगे।' इस समय, भन्ते! आपके भिक्षु शिष्य व्यक्त ...पूर्ववत्....प्रातिहार्य के साथ धर्मोपदेश करने लगे हैं, भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों....। भन्ते! आपके परिनिर्वाण का यह समय आ गया है।

"भन्ते! आपने यह भी कहा है–'पापिन्! मैं जब तक मैं परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा, जब तक मेरी शिष्याएँ भिक्षुणियाँ व्यक्त ....। भन्ते! आपका यह परिनिर्वाण का समय आ गया है।

आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती' ति। एतरहि खो पन, भन्ते, भिक्खुनियो भगवतो साविका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञपेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं [N.83] परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। (२)

"भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा—'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती' ति। एतरहि खो पन, भन्ते, उपासका भगवतो सावका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं [R.106] आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञपेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं [B.89] देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। (३)

"भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा—'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती' ति। एतरहि खो पन, भन्ते, उपासिका भगवतो साविका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञपेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा, परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। (४)

"भन्ते! आपने यह भी कहा है– 'पापिन्! मैं तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा, जब तक मेरे उपासक व्यक्त ....। भन्ते! आप का यह परिनिर्वाण का समय आ चुका है।

"भन्ते! आपने यह भी कहा है– 'पापिन् मैं तब तक परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं करूँगा, जब तक कि मेरी उपासिका श्राविकाएँ व्यक्त ....। भन्ते! अब यह आपका परिनिर्वाण का समय आ गया है।

"भन्ते! आपने यह भी कहा है– 'पापिन्! मैं तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा, जब तक मेरे

"भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा—'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे इदं ब्रह्मचरियं न इद्धं चेव भविस्सति फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं, याव [N.84] देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं' ति। एतरहि खो पन, भन्ते, भगवतो इदं ब्रह्मचरियं इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं, याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो" ति। (५)

एवं वुत्ते भगवा मारं पापिमन्तं एतदवोच—"अप्पोस्सुक्को त्वं, पापिम, होहि। न चिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती" ति।

३९. अथ खो भगवा चापाले चेतिये सतो सम्पजानो आयुसङ्खारं ओस्सजि। ओस्सट्ठे [B.90, R.107] च भगवता आयुसङ्खारे महाभूमिचालो अहोसि भिंसनको सलोमहंसो। देवदुन्दुभियो च फलिंसु। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"तुलमतुलं च सम्भवं, भवसङ्खारमवस्सजि मुनि।
अज्झत्तरतो समाहितो, अभिन्दि कवचमिवत्तसम्भवं" ति।

११. महतो भूमिचालस्स अट्ठ पच्चया

४०. अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो। महा वतायं भूमिचालो, सुमहा वतायं भूमिचालो भिंसनको सलोमहंसो; देवदुन्दुभियो च फलिंसु। को नु खो हेतु को पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाया" ति?

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा

द्वारा उपदिष्ट यह धर्म ऋद्ध (उन्नत), स्फीत (स्पष्ट), विस्तारित, बहुजनगृहीत एवं इतना विशाल कि देवता और मनुष्य– सभी इसे जानने समझने लगें'। भन्ते! आप के द्वारा कथित यह धर्म ऋद्ध....देवता एवं मनुष्य–सभी इसे जानने समझने लगे हैं। (अतः) भन्ते! अब आपका यह परिनिर्वाण काल आ गया है।"

ऐसा कहे जाने पर, उस पापी मार को भगवान् ने यह उत्तर दिया– "पापिन् मार! तू (मेरे परिनिर्वाण के विषय में) निश्चिन्त (अल्पौत्सुक्य) रह। शीघ्र ही (न चिरं) तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बीतने पर तथागत परिनिर्वृत होंगे।"

३९. तब भगवान् ने चापाल चैत्य में स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपना आयुःसंस्कार (प्राणशक्ति) छोड़ दिया। भगवान् द्वारा अपना आयुःसंस्कार छोड़ते ही (उसी समय) भयङ्कर भूचाल (भूकम्प) हुआ, देवदुन्दुभियाँ बज उठीं। यह बात जान कर भगवान् ने श्रीमुख से यह हृदयोद्गार निकला–

"मुनि ने अतुल–तुल उत्पन्न (सम्भव) भव संस्कार (जीवन–शक्ति) छोड़ दिया।
अध्यात्मरत और एकाग्रचित्त हो उन्होंने अपने साथ उत्पन्न कवच को तोड़ दिया"।।

११. अत्युग्र भूचाल के आठ कारण

४०. उस समय आयुष्मान् आनन्द को मन में यह विचार उठा– 'अरे यह आश्चर्य है! अरे यह अद्भुत बात है कि इतना उग्र भूचाल आया है, यह तो भीषण एवं रोमञ्चकारी है। देवों की दुन्दुभियाँ (नगाड़े) भी बज रही हैं। इस महान् भूकम्प के प्रादुर्भाव का क्या हेतु (कारण) या क्या प्रत्यय हो सकता है?"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक तरफ

एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते। महा वतायं, भन्ते, भूमिचालो; सुमहा वतायं, भन्ते, भूमिचालो भिंसनको सलोमहंसो; देवदुन्दुभियो च फलिंसु। को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभवाया" ति?

४१. "अट्ठ खो इमे, आनन्द, हेतू, अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। कतमे अट्ठ? अयं, आनन्द, महापथवी उदके पतिट्ठिता, उदकं वाते पतिट्ठितं, वातो आकासट्ठो। होति सो खो, आनन्द, समयो, यं महावाता वायन्ति। महावाता वायन्ता उदकं [N.85] कम्पेन्ति। उदकं कम्पितं पथविं कम्पेति। अयं पठमो हेतु, पठमो पच्चयो महतो [R.108] भूमिचालस्स पातुभावाय। (१)

"पुन च परं, आनन्द, समणो वा होति ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो, देवो वा महिद्धिको महानुभावो। तस्स परित्ता पथवीसञ्ञा भाविता होति, अप्पमाणा आपोसञ्ञा। सो इमं पथविं कम्पेति सङ्कम्पेति सम्पकम्पेति सम्पवेधेति। अयं दुतियो हेतु, दुतियो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (२)

"पुन च परं, आनन्द, यदा बोधिसत्तो तुसितकाया चवित्वा सतो सम्पजानो [B.91] मातुकुच्छिं ओक्कमति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं ततियो हेतु, ततियो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (३)

"पुन च परं, आनन्द, यदा बोधिसत्तो सतो सम्पजानो मातुकुच्छिस्मा निक्खमति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं चतुत्थो हेतु, चतुत्थो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (४)

बैठ गये। एक तरफ बैठकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की— "आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कि इतना उग्र एवं भीषण भूचाल आया। इसका क्या हेतु क्या प्रत्यय हो सकता है?"

४१. "आनन्द! ऐसे भीषण भूकम्प आने के आठ कारण या आठ प्रत्यय हुआ करते हैं। कौन से आठ? (१) आनन्द! यह महापृथ्वी जल पर ठहरी हुई है। जल वायु पर ठहरा हुआ है। वायु आकाश में स्थित है। आनन्द! एक समय ऐसा आता है कि जब तूफान (महावात) चलने लगता है, इस तूफान के आने पर जल कम्पित होने लगता है। इस जल–कम्पन से भूकम्पन का भी होना स्वाभाविक है; क्योंकि यह पृथ्वी जल पर ही स्थित है। आनन्द! इस भीषण भूकम्प का यह प्रथम हेतु प्रथम प्रत्यय है।

(२) "और फिर, आनन्द! कोई श्रमण–ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्व (योगबल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्य बलधारी (महानुभाव) देवता होता है, उसने पृथ्वी संज्ञा की स्वल्प भावना (थोड़ी सी साधना) की हो और जल संज्ञा की अधिक, वह अपने योगबल से इस पृथ्वी को कम्पित, प्रकम्पित, सम्प्रकम्पित सम्प्रवेधित करता है— आनन्द! यह इस भीषण भूकम्प का द्वितीय हेतु का प्रत्यय है।

(३) "और फिर, आनन्द! कोई बोधिसत्त्व तुषित लोक से च्युत हो, स्मृति–सम्प्रजन्य रखता हुआ, माता की कोंख में आता है, तब भी यह पृथ्वी काँपती है....। आनन्द! यह इस भीषण भूकम्प का तृतीय हेतु या प्रत्यय है।

(४) "और फिर, आनन्द! जब कोई बोधिसत्त्व माता की कोंख से बाहर आता है, तब यह पृथ्वी....।...चतुर्थ हेतु...।

"पुन च परं, आनन्द, यदा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं पञ्चमो हेतु, पञ्चमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (५)

"पुन च परं, आनन्द, यदा तथागतो अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं छट्ठो हेतु, छट्ठो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (६)

"पुन च परं, आनन्द, यदा तथागतो सतो सम्पजानो आयुसङ्खारं ओस्सज्जति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं सत्तमो हेतु, सत्तमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (७)

[R.109] "पुन च परं, आनन्द,यदा तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति, तदायं पथवी कम्पति सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति। अयं अट्ठमो हेतु, अट्ठमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। (८)

इमे खो, आनन्द, अट्ठ हेतू, अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातुभावाया" ति।

१२. अट्ठ परिसा

[N.86] ४२. "अट्ठ खो इमा, आनन्द, परिसा। कतमा अट्ठ? १. खत्तियपरिसा, २. ब्राह्मणपरिसा, [B.92] ३. गहपतिपरिसा, ४. समणपरिसा, ५. चातुमहाराजिकपरिसा, ६. तावतिंसपरिसा, ७. मारपरिसा, ८. ब्रह्मपरिसा। अभिजानामि खो पनाहं, आनन्द, अनेकसतं खत्तियपरिसं उपसङ्कमिता। तत्र पि मया सन्निसिन्नपुब्बं चेव सल्लपितपुब्बं च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा। तत्थ यादिसको तेसं वण्णो होति तादिसको मय्हं वण्णो होति। यादिसको तेसं सरो होति तादिसको मय्हं सरो होति। धम्मिया कथाय सन्दस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि सम्पहंसेमि।

---

(५) "....जब कोई बोधिसत्त्व अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि को प्राप्त होता है, तब यह पृथ्वी...।.... पञ्चम हेतु....।

(६) " ....जब कोई तथागत अद्वितीय धर्मचक्र का प्रवर्तन (प्रथम धर्मोपदेश) करते हैं, तब यह पृथ्वी....। ...षष्ठ हेतु....।

(७) " ...तथागत अपना आयुः संस्कार त्यागता है तब यह पृथ्वी....। ... सप्तम हेतु....।

(८) " ....तथागत समग्र परिनिर्वाण को प्राप्त होते है तब यह पृथ्वी काँपती है....। अष्टम हेतु ....है।

"आनन्द! इस महान् भूचाल के प्रादुर्भाव के आठ हेतु या आठ प्रत्यय होते हैं।

१२. आठ परिषद्

४२. "आनन्द! ये आठ तरह की परिषदें कहलाती हैं। कौन सी आठ? क्षत्रिय परिषद्, ब्राह्मण परिषद्, गृहपतिपरिषद्, श्रमणपरिषद्, चातुर्महाराजिकपरिषद्, त्रायस्त्रिंशपरिषद्, मारपरिषद् एवं ब्रह्मपरिषद्। (१) आनन्द! मुझे अपना सैकड़ों क्षत्रिय-परिषदों में जाना स्मृत है। तब मुझे ऐसा लगता था कि मैं वहाँ पहले भी बैठा हूँ, मैंने वहाँ लोगों से पहले भी संवाद किया है, उनसे साक्षात्कार किया है। वहाँ जैसा उनका वर्ण था, वैसा ही मेरा भी था। जैसा उन का स्वर था वैसा ही मेरा भी था। उन्हें मैं नाना प्रकार की धार्मिक कथाओं से धर्माराधनाहेतु उत्साहित करता था, समुत्तेजित करता था, सम्प्रहृष्ट करता था, सन्तुष्ट करता था। उस समय उस परिषद् में बैठे लोग यह नहीं समझ पाते थे कि यह कोई देवता बोल रहा है या

एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति। इदं अट्ठमं अभिभायतनं। (८)

"इमानि खो, आनन्द अट्ठ अभिभायतनानि॥

१४. अट्ठ विमोक्खा

४४. "अट्ठ खो इमे, आनन्द, विमोक्खा। कतमे अट्ठ? (१) रूपी रूपानि पस्सति, अयं पठमो विमोक्खो। (२) अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति, अयं [R.112] दुतियो विमोक्खो। (३) सुभंतेव अधिमुत्तो होति, अयं ततियो विमोक्खो। (४) सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं चतुत्थो विमोक्खो। (५) सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं पञ्चमो विमोक्खो। (६) सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्चि' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं छट्ठो विमोक्खो। (७) सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं सत्तमो विमोक्खो। सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति, अयं अट्ठमो विमोक्खो। (८) इमे खो, आनन्द, अट्ठ विमोक्खा॥

१५. मारयाचनकथा

४५. "एकमिदाहं, आनन्द, समयं उरुवेलायं विहरामि नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपाल-

---

(८) "...बाहर श्वेत, शुक्रतारा या काशी के बने वस्त्र के जैसे श्वेतवर्ण, श्वेतनिदर्शन, श्वेतनिभास रूपों को देखता है। 'उन्हें दबाकर जानूँ, देखूँ'– ऐसे विचार वाला होता है। यह अष्टम अभिभ्वायतन है।

"आनन्द! इस प्रकार ये आठ अभिभ्वायतन हैं।

१४. आठ विमोक्ष

४४. "आनन्द! ये आठ विमोक्ष होते हैं। कौन से आठ? (१) स्वयं रूपवान् (होता हुआ) दूसरे रूपों को भी देखता है– यह प्रथम विमोक्ष है। (२) स्वयं आन्तरिक रूपरहित (अरूप) संज्ञा वाला होता हुआ बाहर के रूपों को भी देखता है। यह द्वितीय विमोक्ष है। (३) 'शुभ्र (या 'शुभ है')– इस से विमुक्त होता रहता है– यह तृतीय विमोक्ष है। (४) रूप संज्ञा का सर्वथा अतिक्रमण कर, पटिघसंज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञा को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'– इस अनन्त आकाश के आयतन को प्राप्त होकर साधना करता है– यह चतुर्थ विमोक्ष है। (५) अनन्त आकाश के आयतन (क्षेत्र) का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'– इस विज्ञानानन्त्यायन को प्राप्त कर साधना करता है– यह पञ्चम विमोक्ष है। (६) वह विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'– इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर साधना करता है– यह षष्ठ विमोक्ष है। (७) वह (साधना करते–करते) इस आकिञ्चन्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की स्थिति को प्राप्त कर साधना करता है– यह सप्तम विमोक्ष है। (८) और इसी तरह आगे चलकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर, संज्ञा की वेदना (अनुभव) के निरोध (संज्ञावेदितनिरोध) को प्राप्त कर साधना करता है– यह अष्टम विमोक्ष है। आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं।

१५. मारयाच्ञा कथा

४५. "आनन्द! बुद्धत्व–प्राप्ति के तत्काल बाद ही मैं उरुवेला की नेरञ्जरा नदी के तट पर खड़े

निग्रोधे पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो, आनन्द, मारो पापिमा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, आनन्द, मारो पापिमा मं एतदवोच—'परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो' ति।

[B.95] "एवं वुत्तं, अहं, आनन्द, मारं पापिमन्तं एतदवोचं—'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा [R.113] धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानी- [N.89] करिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

" 'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

" 'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

" 'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

" 'न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे इदं ब्रह्मचरियं न इद्धञ्चेव भविस्सति फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं, याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं' ति।

अजपाल नामक वटवृक्ष के नीचे बैठा हुआ साधना (विहार) कर रहा था। आनन्द! तब पापी मार मेरे पास आया और एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उस पापी मार ने मुझसे यह कहा— 'भन्ते! अब आप (भगवान्) परिनिर्वाण को प्राप्त हों; सुगत! अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों; क्योंकि आप के परिनिर्वाण का समय आ गया है।' उस (मार) द्वारा मुझको ऐसा कहे जाने पर मैंने उत्तर दिया—

"पापी मार! मैं तब तक परिनिर्वृत नहीं होऊँगा जब तक मेरे भिक्षु श्रावक...पूर्ववत्....खण्डित कर प्रातिहार्य के साथ धर्मोपदेश न करने लगेंगे।

"पापी मार! ....जब तक मेरी भिक्षुणी श्राविकाएँ....धर्मोपदेश न करने लगेंगी।

"पापी मार! ....जब तक मेरे उपासक श्रावक....।

४६. ''इदानेव खो, आनन्द, अज्ज चापाले चेतिये मारो पापिमा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, आनन्द, मारो पापिमा मं एतदवोच— 'परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। भासिता खो पनेसा, भन्ते, भगवता वाचा—न तावाहं, पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति ....पे०.... याव मे भिक्खुनियो न साविका [B.96, R.114] भविस्सन्ति....पे०.... याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति....पे०....याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति ....पे०.... याव मे इदं ब्रह्मचरियं न इद्धञ्चेव भविस्सति फीतं च [N.90] वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं, याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं' ति। एतरहि खो पन, भन्ते, भगवतो ब्रह्मचरियं इद्धञ्चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं, याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं। परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो' ति।

४७. ''एवं वुत्ते, अहं, आनन्द, मारं पापिमन्तं एतदवोचं—'अप्पोस्सुक्को त्वं, पापिम, होहि। नचिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती' ति। इदानेव खो, आनन्द, अज्ज चापाले चेतिये तथागतेन सतेन सम्पजानेन आयुसङ्खारो ओस्सट्ठो' ति।

१६. आनन्दयाचनकथा

४८. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''तिट्ठतु, भन्ते, भगवा [R.115] कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'' ति।

''अलं दानि, आनन्द, मा तथागतं याचि। अकालो दानि, आनन्द, तथागतं याचनाया'' ति। दुतियं पि खो आयस्मा आनन्दो....पे०....ततियं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं

''पापी मार! .....जब तक मेरी उपासिका श्राविकाएँ....।

''पापी मार! .... जब तक मेरे द्वारा उपदिष्ट यह धर्म ऋद्ध (उन्नत)....देवता और मनुष्य—सभी भलीभाँति समझ न लें।

४६. ''और, आनन्द! आज अभी चापाल चैत्य में वह पापी मार फिर मेरे पास आया। आकर, एक ओर खड़े होकर वह बोला— ''भन्ते! अब भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हों....पूर्ववत्.... *(यहाँ इसी सूत्र के अनुबन्ध सं० ३८ के अनुसार विस्तार करें)।*

४७. ....आज से तीन मास के बाद तथागत परिनिर्वृत होंगे। आनन्द! अभी इस चापाल चैत्य में तथागत ने पूर्ण स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपनी जीवनशक्ति (आयु:संस्कार) को छोड़ दिया।''

१६. आनन्दयाच्ञा–कथा

४८. (भगवान् के) ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह निवेदन किया— ''भन्ते! भगवान् बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देवता एवं मनुष्यों के अर्थ–हित–सुख के लिये कल्प भर यहाँ ठहरें।''

''बस, आनन्द! तथागत से ऐसा निवेदन न करो। आनन्द! तथागत से ऐसा निवेदन करने के

एवदवोच—"तिट्ठतु, भन्ते भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं" ति।

"सद्दहसि, आनन्द, तथागतस्स बोधिं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"अथ किं चरहि त्वं, आनन्द, तथागतं यावततियकं अभिनिप्पीळेसी" ति?

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'यस्स कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा [B.97] भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' " ति।

[N.91] "सद्दहसि त्वं, आनन्दा" ति? "एवं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं, यं त्वं तथागतेन एवं ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि—'तिट्ठतु, भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। सचे त्वं, आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

४९. "एकमिदाहं, आनन्द, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते। तत्रा पि खो [R.116] ताहं, आनन्द, आमन्तेसिं—'रमणीयं, आनन्द, राजगहं, रमणीयो, आनन्द, गिज्झकूटो पब्बतो। यस्स कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता

लिये तुम्हारा समय नहीं रहा।" दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द ने....पूर्ववत्....। तीसरी बार भी आनन्द ने....पूर्ववत्.... यहाँ ठहरें।

"आनन्द! तथागत की बोधि पर विश्वास करते हो?"

"हाँ, भन्ते।"

"तो, आनन्द! क्यों तीसरी बार भी तथागत पर दबाव डाल रहे हो?"

"भन्ते! मैंने यह आपके श्रीमुख से ही सुना है, सुनकर ग्रहण किया है— 'जिस किसी साधक ने चारों ऋद्धिपादों की भावना कर ली है....पूर्ववत्....*(द्र० अनुबन्ध सं० ३७)* या कल्प के अवशिष्ट समय तक ही ठहरे।'

"क्या आनन्द! तुम मेरे कथन पर विश्वास (श्रद्धा) करते हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो, आनन्द! यह तुम्हारे ही दुष्कृत (पाप) का फल है, तुम्हारे ही अपराध का परिणाम है कि तथागत द्वारा स्पष्ट संकेत करने पर भी, स्पष्ट सम्भावना दिखाये जाने पर भी, तुम तथागत से उस समय यह अभियाच्या नहीं कर पाये कि 'भन्ते, भगवान्....कल्पान्त तक ठहरें।' यदि आनन्द! तुम तथागत से इस विषय में आग्रह करते तो तथागत तुम्हारा यह आग्रह दो बार टालकर भी तीसरी बार (आग्रह करने पर तुम्हारी बात) मान ही जाते। इसलिये, आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, अपराध है।

अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। एवं पि खो त्वं, आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि—'तिट्ठतु, भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वे ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं। (१)

५०. ''एकमिदाहं, आनन्द, समयं तत्थेव राजगहे विहरामि गोतमनिग्रोधे ....पे० .... तत्थेव राजगहे विहरामि चोरपपाते ....तत्थेव राजगहे विहरामि वेभारपस्से सत्तपण्णिगुहायं ....तत्थेव राजगहे विहरामि इसिगिलिपस्से काळसिलायं....तत्थेव राजगहे विहरामि सीतवने सप्पसोण्डिकपब्भारे....तत्थेव राजगहे विहरामि तपोदारामे....तत्थेव राजगहे विहरामि वेळुवने कलन्दकनिवापे....तत्थेव राजगहे विहरामि जीवकम्बवने....तत्थेव राजगहे विहरामि मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये। तत्रा पि खो ताहं, आनन्द, आमन्तेसिं—'रमणीयं, आनन्द, [B.98] राजगहं, रमणीयो गिज्झकूटो पब्बतो, रमणीयो गोतमनिग्रोधो, रमणीयो चोरपपातो, रमणीया वेभारपस्से सत्तपण्णिगुहा, रमणीया इसिगिलिपस्से काळसिला, रमणीयो [N.92, R.117] सीतवने सप्पसोण्डिकपब्भारो, रमणीयो तपोदारामो, रमणीयो वेळुवने कलन्दकनिवापो, रमणीयं जीवकम्बवनं, रमणीयो मद्दकुच्छिस्मिं मिगदायो। यस्स कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा....पे०.... आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। एवं पि खो त्वं, आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। सचे त्वं, आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं। (२)

५१. ''एकमिदाहं, आनन्द, समयं इधेव वेसालियं विहरामि उदेने चेतिये। तत्रापि खो ताहं, आनन्द, आमन्तेसिं—'रमणीया, आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनचेतियं। यस्स

---

४९. ''आनन्द! एक बार मैं राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु ठहरा हुआ था। वहाँ भी, आनन्द! मैंने तुमको बताया था....पूर्ववत्....तुम्हारा ही अपराध है।

५०. ''एक बार मैं आनन्द! उसी राजगृह के गौतमन्यग्रोध के नीचे....चौरप्रपात में....वैभारपर्वत के पार्श्वस्थ सप्तपर्णी गुफा में....ऋषिगिलि पर्वत के पास कालशिला में....शीतवन के सर्पशौण्डिक पर्वत पर.... तपोदाराम में....वेणुवन के कलन्दकनिवाप में....जीवक के आम्रवन में....मद्रकुक्षि मृगारण्य में साधनाहेतु ठहरा हुआ था। वहाँ भी, आनन्द! मैंने तुम को बताया था....चारों ऋद्धिपाद....तुम्हारा ही अपराध है।

कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। एवं पि खो त्वं, आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं। (३)

[B.99, R.118] ५२. "एकमिदाहं, आनन्द, समयं इधेव वेसालियं विहरामि गोतमके चेतिये....पे०....इधेव वेसालियं विहरामि सत्तम्बे चेतियं....इधेव वेसालियं विहरामि बहुपुत्ते चेतिये....इधेव वेसालियं विहरामि सारन्ददे चेतिये....इदानेव खो ताहं, आनन्द, अज्ज चापाले चेतिये आमन्तेसिं—'रमणीया, आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं [N.93] चेतियं, रमणीयं सत्तम्बं चेतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं, रमणीयं सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं। यस्स कस्सचि, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। एवं पि खो त्वं, आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। सचे त्वं, आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं। (४)

५३. "ननु एतं, आनन्द, मया पटिकच्चेव अक्खातं—सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो, विनाभावो, अञ्ञथाभावो। तं कुतेत्थ, आनन्द, लब्भा! यं तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं तं वत मा पलुज्जी ति नेतं ठानं विज्जति। यं खो पनेतं, आनन्द, तथागतेन चत्तं

---

५१. "एक बार, आनन्द! इसी वैशाली के उदयनचैत्य में....वैशाली अत्यन्त रमणीय है....पूर्ववत्.... तुम्हारा ही अपराध है।

५२." एक बार, आनन्द! मैं इसी वैशाली के गौतमक चैत्य में....सप्ताम्र चैत्य में....बहुपुत्र चैत्य में....सारन्दद चैत्य में....। आज अभी चापाल चैत्य में बताया था कि वैशाली अत्यन्त रमणीय है....चार ऋद्धिपाद....पूर्ववत्....यह तुम्हारा ही अपराध है।

५३. "क्या, आनन्द! मैंने तुमको पहले ही नहीं बता दिया है कि अपने सभी प्रिय एवं मनोहर पदार्थों से एक न एक दिन विरह, वियोग या उनका अन्यथाभाव होता ही है, सो वे तुम्हें निरन्तर कैसे मिलते रह सकते हैं! जो उत्पन्न हुआ है, भूत (अस्तित्व में) है, संस्कृत (कृत्रिम) है, नाशवान् है, वह कभी

वन्तं मुत्तं पटिनिस्सट्ठं, ओस्सट्ठो आयुसङ्खारो। एकंसेन वाचा तथागतेन भासिता— [R.119] 'नचिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती' ति। तं च 'तथागतो जीवितहेतु पुन पच्चागमिस्सती' ते नेतं ठानं विज्जति।

आयामानन्द, येन महावनं कूटागारसाला तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति। ''एवं, [B.100] भन्ते'' ते खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

१७. महावने धम्मदेसना

५४. अथ खो भगवा आयस्मता आनन्देन सद्धिं येन महावनं कूटागारसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''गच्छ त्वं, आनन्द, यावतिका भिक्खू वेसालिं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेही'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा यावतिका भिक्खू वेसालिं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—[N.94] ''सन्निपतितो, भन्ते, भिक्खुसङ्घो। यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती'' ति।

५५. अथ खो भगवा येनुपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''तस्मातिह, भिक्खवे, ये ते मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता ते वो साधुकं उग्गंहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमे च ते, भिक्खवे, धम्मा मया अभिञ्ञा देसिता ये वो साधुकं उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं

न कभी नष्ट न हो— यह कैसे सम्भव है! आनन्द! तथागत ने यह जो आयु:संस्कार छोड़ा, त्यागा, प्रहीण एवं प्रतिनि:सृष्ट किया तो समझो छोड़ ही दिया। जब तथागत ने एक बार कह दिया कि— 'तीन मास के बाद तथागत परिनिर्वृत हो जायँगें', तो यह कथमपि सम्भव नहीं है कि तथागत वमन किये हुए को निगलने के समान इस तुच्छ जीवन के लिये कोई हीन कामना करें! ''आओ, जहाँ महावन की कूटागारशाला है, वहाँ चलें।'' ''अच्छा, भन्ते'' कहकर आनन्द ने भगवान् की आज्ञा मान ;ली।

१७. महावन में धर्मदेशना

५४. भगवान् आयुष्मान् आनन्द के साथ जहाँ महावन की कूटागारशाला थी, वहाँ जाकर विराजे। वहाँ विराज कर आयुष्मान् आनन्द से बोले— ''जाओ, आनन्द! वैशाली के आस–पास जितने भी भिक्षु साधनाहेतु ठहरे हुए हैं, उन सब को उपस्थानशाला (सभाभवन) में एकत्र करो।'' ''अच्छा, भन्ते''— यों उत्तर देकर, आनन्द वैशाली के आस–पास साधना करने वाले सभी भिक्षुओं को उपस्थानशाला में एकत्र करने के बाद पुनः भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर प्रणाम कर यों बोले— ''भन्ते! आपके आदेशानुसार भिक्षुसङ्घ उपस्थानशाला में एकत्र हो गया है। अब जैसा आप उचित समझें।''

५५. तब भगवान् उपस्थानशाला गये, और वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। विराज कर भिक्षुओं से बोले— ''इसलिये, भिक्षुओ! मैंने तुमको जो उपदेश किया है, उसे तुम अच्छी तरह सीख कर उसका अभ्यास करो, उसकी भावना करो, उसे बढ़ावो। जिससे तुम्हारी यह धर्माराधना चिरस्थायिनी रहे और यह बहुजन-हितार्थ...हित–सुख के लिये हो। भिक्षुओ! वे कौन से धर्म तुमको उपदिष्ट किये हैं जिन्हें

[R.120] अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं, सेय्यथिदं–चत्तारो सतिपट्ठाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा मया अभिञ्ञा देसिता ये वो साधुकं उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'' ति।

५६. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''हन्द, दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो—वयधम्मा सङ्खारा; अप्पमादेन सम्पादेथ। नचिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो [B.101] तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती'' ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''परिपक्को वयो मय्हं, परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि, कतं मे सरणमत्तनो॥
''अप्पमत्ता सतीमन्तो, सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहितसङ्कप्पा, सचित्तमनुरक्खथ॥
[N.95, R.121] ''यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती''॥ ति॥

ततियो भाणवारो॥

पच्छिमकं वेसालीदस्सनं

[R.122] ५७. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो नागापलोकितं वेसालिं

तुम अच्छी तरह सीख कर....बढ़ाओगे? जैसे कि १. चार स्मृतिप्रस्थान, २. चार सम्यक्प्रधान, ३. चार ऋद्धिपाद, ४. पाँच इन्द्रिय, ५. पाँच बल, ६. सात बोध्यङ्ग, ७. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। भिक्षुओ! ये धर्म मैंने तुमको उपदिष्ट किये हैं, जिन्हें अभ्यास कर.... बढ़ाओ।

५६. भगवान् ने फिर कहा– ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें फिर बताता हूँ। अरे! ये संस्कार (संसार के सभी पदार्थ) नष्ट होने वाले हैं, अतः तुम प्रमादरहित होकर अपना लक्ष्य पूर्ण करो। बहुत शीघ्र ही अब तथागत का परिनिर्वाण होगा। (यह समझ लो कि) आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वृत हो जायँगें।''– भगवान् ने यह कहा। सुगत शास्ता ने फिर कहा–

''मेरी आयु परिपक्व (पूर्ण) हो गयी। अब मेरा जीवन थोड़ा ही है। अब मैं तुम्हें छोड़कर जाऊँगा। मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया।।

''भिक्षुओ! तुम निरलस, सावधान और सुशील बनो। सङ्कल्पों का भलीभाँति समाधान कर स्वचित्त का निग्रह करो।।

''जो इस धर्म में अप्रमत्त होकर उद्योग करेगा वही इस भव में पुनः पुनः आगमन छोड़कर अपने दुःखों का समूल नाश कर पायगा।।

तृतीय भाणवार समाप्त।।

अपलोकेत्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इदं पच्छिमकं, आनन्द, तथागतस्स वेसालिया दस्सनं भविस्सति। आयामानन्द, येन भण्डगामो तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

५८. अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन भण्डगामो तदवसरि। [B.102] तत्र सुदं भगवा भण्डगामे विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चतुन्नं, भिक्खवे, धम्मानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। कतमेसं चतुन्नं? अरियस्स, भिक्खवे, सीलस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियस्स, भिक्खवे, समाधिस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियाय, भिक्खवे, पञ्ञाय अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियाय, भिक्खवे, विमुत्तिया अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। तयिदं, भिक्खवे, अरियं सीलं अनुबुद्धं पटिविद्धं, अरियो समाधि [R.123] अनुबुद्धो पटिविद्धो, अरिया पञ्ञा अनुबुद्धा पटिविद्धा, अरिया विमुत्ति अनुबुद्धा पटिविद्धा, उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति, नत्थि दानि पुनब्भवो" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"सीलं समाधि पञ्ञा च, विमुति च अनुत्तरा।
अनुबुद्धा इमे धम्मा, गोतमेन यसस्सिना॥
"इति बुद्धो अभिञ्ञाय, धम्ममक्खासि भिक्खुनं।
दुक्खस्सन्तकरो सत्था, चक्खुमा परिनिब्बुतो" ति॥

तत्रापि सुदं भगवा भण्डगामे विहरन्तो एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं [N.96]

अन्तिम वैशाली–दर्शन

५७. तब भगवान् तैयार होकर, पात्र–चीवर ले, वैशाली में भिक्षाकर्म के लिये चल पड़े। वैशाली में भिक्षाकृत्य कर, भोजन कार्य से निवृत होने के बाद, हाथी की तरह समग्र शरीर को घुमाकर पीछे देखते हुए वैशाली की रमणीयता निहार कर, भगवान् आयुष्मान् आन्द से यों बोले– 'आनन्द! आज यह हमारा वैशाली को देखना अन्तिम होगा। अब चलो, आनन्द! जहाँ भण्डग्राम है वहाँ चलें।'' अच्छा, भन्ते!'' कहकर आनन्द ने भगवान् की आज्ञा मान ली।

भण्डग्राम– ५८. तब भगवान् विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ जहाँ भण्डग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राम में साधनाहेतु विराजे। वहाँ (भी) भगवान् ने भिक्षुओं को यह उपदेश किया– ''भिक्षुओ! चार धर्मों का ज्ञान तथा साक्षात्कार न कर पाने के कारण ही इतने दीर्घ काल से इस संसार में हमारा–तुम्हारा यह भटकना हो रहा है। किन चार धर्मों का? भिक्षुओ! आर्यजनोचित शील....आर्यजनोचित समाधि....आर्यजनोचित प्रज्ञा....आर्यजनोचित विमुक्ति के ज्ञान एवं साक्षात्कार के इतने दीर्घ काल से इस संसार में हमारा–तुम्हारा भटकना हो रहा है। अब क्योंकि हमने इन चारों धर्मों को भलीभाँति जान लिया है, अतः हमारी भवतृष्णा नष्ट हो चुकी है, पुनर्जन्म की इच्छा समाप्त हो चुकी है, अतः अब हमारा पुनर्जन्म नहीं होगा।'' यह कहकर सुगत ने पुनः ये धर्ममूलक गाथाएँ भी कहीं–

''यशस्वी गौतम ने शील, समाधि, प्रज्ञा और चित्तविमुक्ति– इन चारों धर्मों का ज्ञान एवं प्रत्यक्ष

करोति—"इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

१८. चत्तारो महापदेसा

५९. अथ खो भगवा भण्डगामे विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "आयामानन्द, येन हत्थिगामो येन अम्बगामो येन जम्बुगामो येन भोगनगरं तेनुपसङ्कमिस्सामा" [B.103] ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन भोगनगरं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा भोगनगरे विहरति आनन्दे चेतिये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चत्तारोमे, भिक्खवे, महापदेसे देसेस्सामि, तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो [R.124] पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

६०. "इध, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'सम्मुखा मेतं, आवुसो, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो अयं विनयो इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओसारेतब्बानि विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओसरन्ति न च विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं; इमस्स च भिक्खुनो दुग्गहितं'

अनुभव कर लिया है। इन धर्मों को भलीभाँति जानकर बुद्ध ने भिक्षुओं को इनका उपदेश किया है। अब वे स्वयं तथा दूसरों के दु:खों के नाशक चक्षुष्मान् (ज्ञानी) शास्ता परिनिर्वृत होने जा रहे हैं।"

उस भण्डग्राम में भी भगवान् ने भिक्षुओं को एतन्मूलक ही धर्मोपदेश किया कि ऐसा शील होता है, ऐसी समाधि होती है, ऐसे प्रज्ञा होती है, ऐसे चित्तविमुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसी क्रमिक साधना से साधक का चित्त आश्रवविमुक्त हो सकता है।

१८. चार महापदेश[1] (निकष=कसौटी)

५९. तदनन्तर भगवान् मण्डग्राम में यथानुकूल समय तक साधना कर आयुष्मान् आनन्द से बोले— "आओ! आनन्द! जहाँ हस्तिग्राम है, जहाँ आम्रग्राम है, जहाँ जम्बुग्राम है, जहाँ भोगनगर है उधर चलें।" "अच्छा, भन्ते!" आनन्द ने उत्तर दिया। तब भगवान् महान् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ भोगनगर था, वहाँ पहुँचे। भोगनगर पहुँच कर भगवान् आनन्द चैत्य में ठहरे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को धर्मचर्चा-प्रसङ्ग में यों सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! मैं तुम्हें चार महा-अपदेशों के विषय में बताऊँगा, उसे तुम ध्यान देकर सुनो, और मन में बैठा लो।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान् बोले—

६०. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यों कहे— 'आयुष्मानो! यह मैंने भगवान् के श्रीमुख से सुना और उन्हीं के सामने ग्रहण किया है, अतः यही धर्म है, यही विनय है, यही शास्ता का उपदेश है', तो भिक्षुओ! उस समय उस भिक्षु के कथन का न अभिनन्दन करना, न तिरस्कार; अपितु उसके कथन को अच्छी

---

१. अपदेश का अर्थ है अकाट्य तर्क। जैसे निकष (कसौटी) पर घिसने के बाद सुवर्णशुद्धि प्रमाणित होती है, उसी तरह किसी सिद्धान्त की प्रामाणिकता भी अकाट्य तर्क के बल पर ही की जा सकती है।

ति। इतिहेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओसरन्ति विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं; इमस्स च भिक्खुनो सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं महापदेसं धारेय्याथ। (१)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे सङ्घो विहरति सथेरो सपामोक्खो। तस्स मे सङ्घस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो अयं विनयो इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं [N.97] नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओसारेतब्बानि विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओसरन्ति न च विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं; तस्स च सङ्घस्स दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओसरन्ति विनयं [B.104] च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं; तस्स च सङ्घस्स [R.125] सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं महापदेसं धारेय्याथ। (२)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे सम्बहुला थेरा भिक्खू विहरन्ति बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा। तेसं मे थेरानं सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'अयं धम्मो अयं विनयो इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं....पे०....न च विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं; तेसं च थेरानं दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि....पे०....विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं; तेसं च थेरानं सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं महापदेसं धारेय्याथ। (३)

तरह समझ कर, उसकी सूत्र से तुलना करना, विनय में देखना। यदि ऐसा करने पर उसका वह कथन न सूत्र से मेल खाये, न विनय से, तो निश्चय कर लेना कि भिक्षु का यह कथन भगवद्वचन नहीं हैं, अपितु इसके द्वारा मिथ्यागृहीत है। और यदि उसका वह कथन सूत्र से भी मेल खा जाय और उसी तरह विनय से भी, तो समझना कि यह भगवद्ववचन है, और इसे इस भिक्षु ने भी सम्यग् गृहीत किया है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महा-अपदेश समझो। (१)

"और फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह कहे- 'अमुक ग्राम या अमुक आवास में स्थविर एवं प्रमुख सहित भिक्षुसङ्घ विहार-हेतु ठहरा हुआ है। मैंने उस सङ्घ के मुख से सुना और ग्रहण किया है, अतः यही धर्म है, यही विनय है, यही शास्ता का अनुशासन है...पूर्ववत्....। उस सङ्घ ने भी सुगृहीत किया है। भिक्षुओ! इसे द्वितीय महा-अपदेश समझो। (२)

"भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु ऐसा कहे- 'अमुक आवास में बहुत से स्थविर भिक्षु साधनाहेतु ठहरे हुए हैं, जो कि बहुश्रुत भी हैं, आगमज्ञ भी हैं, धर्मधर, विनयधर एवं मातृकाधर भी हैं। उनके मुख से मैंने यह सुना है, उन्हीं के सम्मुख इसे ग्रहण किया है, अतः यह धर्म है, यह विनय है एवं यह भगवदुक्त उपदेश है।.... पूर्ववत्....उस स्थविर भिक्षुओं ने सुगृहीत किया है। भिक्षुओ! इसे तृतीय महा-अपदेश जानो। (३)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खू एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे एको थेरो भिक्खु विहरति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो। तस्स मे थेरस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'अयं धम्मो अयं विनयो इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं; अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओसारितब्बानि विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओसरन्ति न च विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं; तस्स च थेरस्स दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि च सुत्ते ओसारियमानानि विनये [R.126] सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओसरन्ति विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं; तस्स च थेरस्स सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं महापदेसं धारेय्याथ। (४)

''इमे खो भिक्खवे, चत्तारो महापदेसे धारेय्याथा'' ति।

[N.98] ६१. तत्र पि सुदं भगवा भोगनगरे विहरन्तो आनन्दे चेतिये एतदेव बहुलं भिक्खूनं [B.105] धम्मिं कथं करोति—''इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा, सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो, समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा, पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं— कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा'' ति।

१९. कम्मारपुत्तचुन्दवत्थु

६२. अथ खो भगवा भोगनगरे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— ''आयामानन्द, येन पावा तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन पावा तदवसरि। तत्र सुदं भगवा पावायं विहरति चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स अम्बवने। अस्सोसि खो चुन्दो कम्मारपुत्तो— ''भगवा किर पावं अनुप्पत्तो, पावायं विहरति मय्हं अम्बवने'' ति। अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो

''भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे– 'अमुक आवास में एक स्थविर भिक्षु साधनाहेतु ठहरे हुए हैं, वे बहुश्रुत भी हैं....पूर्ववत्.... उस स्थविर भिक्षु ने सुगृहीत किया है। भिक्षुओ! इसे चतुर्थ महा–अपदेश समझो। (४)

भिक्षुओ! इस तरह इन चार महा–अपदेशों के विषय में जानना–समझना चाहिये।

६१. वहाँ भोगनगर में ठहरे हुए भगवान् ने धर्मचर्चा के समय उपर्युक्त शील, समाधि, प्रज्ञा एवं चेतोविमुक्ति विषयों पर ही धर्मोपदेश किया।

१९. सुवर्णकारपुत्र चुन्द

६२. तब भोगनगर से, यथानुकूल विहरण (साधना) कर आयुष्मान् आनन्द से बोले– ''आओ, आनन्द! जहाँ पावा नगरी है, वहाँ जलें।'' ''अच्छा, भन्ते'' कहकर आनन्द भगवान् का आदेश मान लिया। तब भगवान् बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ जहाँ पावा नगरी थी वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे चुन्द नामक कर्मार (सुनार) पुत्र के आम्रवन में विराजे। चुन्द कर्मारपुत्र ने सुना कि 'भगवान् पावा में आये हुए हैं और मेरे

येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चुन्दं कम्मारपुत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो चुन्दो [R.127] कम्मारपुत्तो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा पहूतं च सूकरमद्दवं[१] भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—"यं ते, चुन्द, सूकरमद्दवं, तेन मं परिविस; यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं तेन भिक्खुसङ्घं परिविसा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं पटियत्तं तेन भगवन्तं [B.106] परिविसि; यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं तेन भिक्खुसङ्घं परिविसि। अथ [N.99]

ही आम्रवन में ठहरे हुए हैं'। तब वह चुन्द कर्मारपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मारपुत्र को भगवान् ने धार्मिक कथा (दानकथा, शीलकथा आदि) से समुत्तेजित सम्प्रहृष्ट एवं सन्तुष्ट किया। उस चुन्द कर्मारपुत्र ने भगवान् की कही धार्मिक कथाओं से समुत्तेजित....सन्तुष्ट होकर यों निवेदन किया— "भन्ते! अपने भिक्षुसङ्घ के साथ भगवान् कल का भोजन मेरे घर स्वीकार करें।" भगवान् ने मौन भाव से इसे स्वीकार कर लिया। तब चुन्द कर्मारपुत्र ने भगवान् द्वारा भोजनविषयक स्वीकृति जानकर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर अपने घर को प्रस्थान किया।

तब चुन्द कर्मारपुत्र ने उस रात्रि के व्यतीत होने पर अपने ही घर पर सुन्दर सुन्दर एवं प्रिय खाद्य सामग्री एवं प्रभूत (अति मात्रा में) शूकरमार्दव व्यञ्जन बनवाकर भगवान् को भोजनकाल सूचित किया— "भन्ते! भोजन तय्यार है। अब आप जैसा उचित समझें।" तब भगवान् पूर्वाह्ण समय वस्त्र पहनकर, पात्र-चीवर ले, भिक्षुसङ्घ के साथ चुन्द कर्मारपुत्र के आवास की तरफ चल पड़े। वहाँ जाकर विछे आसन पर विराजे। विराजकर भगवान् ने चुन्द कर्मारपुत्र से कहा— "चुन्द! मुझे केवल शूकरमार्दव ही परोसना। बाकी बना हुआ भोजन भिक्षुसङ्घ को दो।" "अच्छा, भन्ते! कहकर, चुन्द कर्मारपुत्र ने तय्यार शूकरमार्दव

---

१. *एत्थायं सुमङ्गलविलासिनी अट्ठकथा—*

सूकरमद्दवं ति नातितरुणस्स नातिजिण्णस्स एकजेट्ठकसूकरस्स पवत्तमंसं। तं किर मुदु चेव सिनिद्धं च होति, तं पटियादापेत्वा साधुकं पचापेत्वा ति अत्थो।

एके भणन्ति— "सूकरमद्दवं ति पन मुदुओदनस्स पञ्च गोरसयूसपाचनविधानस्स नामेतं। यथा गवपानं नाम पाकनामं" ति।

केचि भणन्ति— "सूकरमद्दवं नाम रसायनविधि। तं पन रसायनसत्थे आगच्छति। तं चुन्देन— 'भगवतो परिनिब्बानं न भवेय्या' ति रसायनं पटियत्तं" ति। तत्थ पन द्विसहस्सदीपपरितारेसु चतूसु महादीपेसु देवता ओजं पक्खिपिंसू ति। (सुमङ्गलविलासिनी अट्ठ०, द्वि० भा०, २७५तमपिट्ठे)

खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—'यं ते, चुन्दं सूकरमद्दवं अवसिट्ठं तं सोब्भे निखणाहि। नाहं तं, चुन्द, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्स तं परिभुत्तं सम्मा परिणामं गच्छेय्य, अञ्ञत्र तथागतस्सा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं अवसिट्ठं तं सोब्भे निखणित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चुन्दं कम्मारपुत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

६३. अथ खो भगवतो चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स भत्तं भुत्ताविस्स खरो आबाधो उप्पज्जि। लोहितपक्खन्दिका पबाळ्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो [R.128] अधिवासेसि अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— ''आयामानन्द, येन कुसिनारा तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

चुन्दस्स भत्तं भुञ्जित्वा, कम्मारस्सा ति मे सुतं।
आबाधं सम्फुसी धीरो, पबाळ्हं मरणन्तिकं॥
भुत्तस्स च सूकरमद्दवेन, ब्याधिप्पबाळ्हो उदपादि सत्थुनो।
विरेचमानो भगवा अवोच, गच्छामहं कुसिनारं नगरं ति॥

२०. तथागतस्स महिद्धिकता

६४. अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म येन अञ्ञतरं रुक्खमूलं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा

भगवान् को परोसा, और अवशिष्ट भोजन भिक्षुसङ्घ को। तब भगवान् ने चुन्द कर्मारपुत्र को आदेश दिया— 'चुन्द! अब जो यह अवशिष्ट शूकरमार्दव बचा है इसे किसी गड्ढे या जलाशय (श्वभ्र) में गाड़ दो। क्योंकि मैं नहीं समझता कि इस शूकरमार्दव को इस लोक में देवता, मार, ब्रह्मा सहित समग्र जनसमूह में से कोई भी खा कर पचा सके केवल तथागत को छोड़कर।'' ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर चुन्द कर्मारपुत्र ने उस अवशिष्ट शूकरमार्दव को गड्ढा खोदकर गाड़ दिया। और भगवान् के पास आकर एक तरफ बैठ गया। तब एक ओर बैठे चुन्द कर्मारपुत्र को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ सुनाकर समुत्तेजित....सम्प्रहृष्ट एवं सन्तुष्ट किया। फिर आसन से उठकर चल पड़े।

६३. तब भगवान् को चुन्द कर्मारपुत्र के यहाँ बना भोजन खाने के बाद, भयङ्कर रोग हुआ, जिससे उनको खून मिला मलोत्सर्ग होने लगा और मृत्यु–तुल्य कष्टदायक भयङ्कर वेदनाएँ उत्पन्न हुईं। उस वेदना को स्मृति–सम्प्रजन्य के बल पर किसी तरह सहन किया। तब भगवान् आयुष्मान् आनन्द से यों बोले— ''आओ! आनन्द! अब कुसिनारा की तरफ चलें।'' ''अच्छा! भन्ते!'' कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की आज्ञा का पालन किया।

''ऐसा मैंने सुना है कि चुन्द कर्मारपुत्र के यहाँ बना भोजन करने के बाद भयङ्कर रोग से मरणान्तक कष्टप्रद वेदना उत्पन्न हुईं और उन्हें भयानक अतिसार हो गया। तभी भगवान् ने कुसीनारा नगर चलने का आदेश दिया[1]।''

---

१. ये दोनों गाथाएँ बाद में धर्मसंग्राहकों ने यहाँ लिखी है। ये मूल त्रिपिटक में नहीं थीं— ऐसी श्रुतिपरम्परा है। — अट्ठकथा।

आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, आनन्द, चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञपेहि। किलन्तोस्मि, आनन्द, निसीदिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञपेसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा [B.107] आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, आनन्द, पानीयं आहर। पिपासितोस्मि, आनन्द, पिविस्सामी" ति। एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"इदानि, भन्ते, [N.100] पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि। तं चक्कच्छिन्नं उदकं परित्तं लुळितं आविलं [R.129] सन्दति। अयं, भन्ते, ककुधा नदी अविदूरे अच्छोदका सातोदका सीतोदका सेतोदका सुप्पतित्था रमणीया। एत्थ भगवा पानीयं च पिविस्सति गत्तानि च सीतीकरिस्सती" ति।

दुतियं पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, आनन्द, पानीयं आहर। पिपासितोस्मि, आनन्द, पिविस्सामी" ति। दुतियं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"इदानि, भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि। तं चक्कच्छिन्नं उदकं परित्तं लुळितं आविलं सन्दति। अयं, भन्ते, ककुधा नदी अविदूरे अच्छोदका सतोदका सीतोदका सेतोदका सुप्पतित्था रमणीया। एत्थ भगवा पानीयं च पिविस्सति गत्तानि च सीतीकरिस्सती" ति।

ततियं पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, आनन्द, पानीयं आहर। पिपासितोस्मि, आनन्द, पिविस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा पत्तं गहेत्वा येन सा नदिका तेनुपसङ्कमि। अथ खो सा नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला सन्दमाना, आयस्मन्ते आनन्दे उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत भो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता! अयं हि सा नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला

तथागत की महर्धिकता

६४. तब भगवान्, मार्ग से थोड़ा दूर हटकर, एक वृक्ष के नीचे पहुँचे और आयुष्मान् आनन्द से कहा– आनन्द! "मेरे लिये सङ्घाटी को चौहरा (चतुर्गुण) कर विछा दो। मैं थक गया हूँ, कुछ देर बैठूँगा' "अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के लिये सङ्घाटी को चौहरा कर बिछा दिया। भगवान् उस पर बैठे। तब भगवान् ने कहा– "आनन्द! मेरे लिये (कहीं से) जल लाओ! प्यास लगी है, जल पीऊँगा।" ऐसा कहने पर, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले– "भन्ते! अभी अभी इस नदी से होकर पाँच सौ गाड़ियाँ (शकट) निकली हैं, जिससे उनके पहिये घूमने से इस नदी का जल गन्दला (मटमैला) हो गया है। भन्ते! कुछ देर में समीप ही बह रही इस ककुधा नदी का जल पुनः स्वच्छ हो जायगा तो मैं आप के लिये वह (जल) ले आऊँगा।"

दूसरी बार भी भगवान् ने....।

तीसरी बार भी भगवान् ने आनन्द को कहा– "आनन्द! प्यास लगी है, कहीं से जल लाओ।" तब आनन्द! "अच्छा, भन्ते!" कहकर, पात्र लेकर, जहाँ वह क्षुद्र नदी थी वहाँ गये। उस समय वह नदी, जिसका कि कुछ ही समय पूर्व पाँच सौ गाड़ियाँ निकलने के कारण उनके चक्रों से मथा जाने के कारण जल मटमैला हो गया था, आनन्द के पहुँचते ही वह अपने में स्वच्छ जल प्रवाहित करती हुई दिखलायी दी। तब आयुष्मान् आनन्द को यह विचार हुआ– "अरे,बड़े आश्चर्य की बात है कि अभी–अभी इस क्षुद्र

सन्दमाना, मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दती'' ति! पत्तेन पानीयं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता! इदानि सा, भन्ते, नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला सन्दमाना, मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ! पिवतु भगवा पानीयं, पिवतु सुगतो पानीयं'' ति। अथ खो भगवा पानीयं अपायि।

२१. पुक्कुसमल्लपुत्तवत्थु

[B.108, R.130] ६५. तेन खो पन समयेन पुक्कुसो मल्लपुत्तो आळारस्स कालामस्स सावको कुसिनाराय पावं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति। अद्दसा खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं [N.101] रुक्खमूले निसिन्नं। दिस्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! सन्तेन वत, भन्ते, पब्बजिता विहारेन विहरन्ति! भूतपुब्बं, भन्ते, आळारो कालामो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो मग्गा ओक्कम्म अविदूरे अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो, भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि आळारं कालामं निस्साय निस्साय अतिक्कमिंसु। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरो पुरिसो तस्स सकटसत्थस्स पिट्ठितो पिट्ठितो आगच्छन्तो येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोच—'अपि, भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि अद्दसा' ति?

'न खो अहं, आवुसो, अद्दसं' ति।

'किं पन, भन्ते, सद्दं अस्सोसी' ति?

नदी से पाँच सौ गाड़ियाँ निकलकर पार गयी हैं, जिनके चक्कों से मथा जाने के कारण इस का जल अत्यधिक मटमैला हो गया। परन्तु अब इतना जल्दी इसका जल पूर्ण स्वच्छता लिये हुए पूर्ववत् बह रहा है।'' यों आश्चर्यचकित हुए आनन्द पात्र में जल लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् से बोले– ''आश्चर्य है, भन्ते! आप की महर्धिकता (महानुभावता) के कारण इस क्षुद्र नदी का जल, जो कि अभी कुछ क्षण पूर्व अत्यधिक मटमैला था अब इतना शीघ्र पूर्ण स्वच्छ हुआ सा बह रहा है! अच्छा, भन्ते! यह लीजिये, जल पीवें! सुगत जल पीवें।'' तब भगवान् ने जल पी लिया।

२१. पुक्कस मल्लपुत्र

६५. उस समय आळार कालाम का शिष्य पुक्कस (पुक्कुस) मल्लपुत्र कुसीनारा और पावा के बीच रास्ते पर जा रहा था। उसने भगवान् को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। देखकर वह जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को अभिवादन (नामग्रहणपूर्वक प्रणाम) कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पुक्कस मल्लपुत्र ने भगवान् से यह कहा– ''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! सभी प्रव्रजित लोग शान्ततर विधि से ही साधनारत रहते हैं। भन्ते! एक बार (पहले कभी) आडार कालाम रास्ता चलते-चलते रास्ते से हटकर पास में ही किसी वृक्ष के नीचे दिन की साधना करते हुए समाधिरत हो गये। उस समय पाँच सौ गाड़ियाँ आडार कालाम के पास से ही निकल गयीं। तब उन गाड़ियों के समूह के पीछे आ रहे एक पुरुष ने आळार कालाम के पास आकर उनसे पूछा–''भन्ते! क्या आपने पाँच सौ गाड़ियाँ निकलते देखा है?''

''आयुष्मन्! मैंने तो नहीं देखा।''

''क्या, भन्ते! आपने जाती हुई उनकी ध्वनि भी नहीं सुनी?''

'न खो अहं, आवुसो, सद्दं अस्सोसिं' ति।

'किं पन, भन्ते, सुत्तो अहोसी' ति?

'न खो अहं, आवुसो, सुत्तो अहोसिं' ति।

'किं पन, भन्ते, सञ्ञी अहोसी' ति? 'एवमावुसो' ति।

'सो त्वं, भन्ते, सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव अद्दस न पन सद्दं अस्सोसि; अपिस्सु ते, भन्ते, सङ्घाटि रजेन ओकिण्णा' ति? 'एवमावुसो' ति।

''अथ खो, भन्ते, तस्स पुरिसस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, सन्तेन वत भो पब्बजिता विहारेन विहरन्ति, यत्र हि नाम सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव दक्खति न पन सद्दं सोस्सती' ति! [R.131] आळारे कालामे उळारं पसादं पवेदेत्वा पक्कामी'' ति।

६६. ''तं किं मञ्ञसि, पुक्कुस, कतमं नु खो दुक्करतरं वा दुरभिसम्भवतरं वा—यो वा सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव [B.109] पस्सेय्य न पन सद्दं सुणेय्य, यो वा सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गळ-[N.102] गळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव पस्सेय्य न पन सद्दं सुणेय्या'' ति?

''किञ्हि, भन्ते, करिस्सन्ति पञ्च वा सकटसतानि छ वा सकटसतानि सत्त वा सकटसतानि अट्ठ वा सकटसतानि नव वा सकटसतानि सकटसहस्सं वा सकटसतसहस्सं वा,

---

''नहीं आयुष्मन्! मैंने तो उनकी ध्वनि भी नहीं सुनी।''

''क्या, भन्ते! आप सो गये थे?''

''नहीं, आयुष्मन्! मैं सोया तो नहीं था।''

''क्या, भन्ते! आप को उस समय संज्ञा (होश) थी?'' ''हाँ, आयुष्मन्!''

''तो, भन्ते! आपने संज्ञा रहते हुए भी पास से निकली एक दो नहीं, पाँच सौ गाड़ियों को न देखा, न उनकी ध्वनि ही सुनी', किन्तु यह जो आप की सङ्घाटी पर धूल पड़ी है?'' ''हाँ, आयुष्मन्! धूल तो पड़ी है।''

''तो, भन्ते! उस पुरुष को यह हुआ— 'आश्चर्य है, अद्भुत है! अरे प्रव्रजित लोग इतनी शान्ततर विधि से साधनारत रहते हैं कि इन्होंने संज्ञा में रहते, जागते हुए भी पाँच सौ गाड़ियों को न देखा, न उनकी चलने की ध्वनि ही सुनी,' कहकर वह पुरुष श्रीमान् आडार कालाम के प्रति अत्यधिक श्रद्धा प्रकट करता हुआ चला गया।''

६६. (भगवान् बोले—) ''तो क्या मानते हो, पुक्कस! कौन दुष्कर है, कौन दुःसम्भव है— कि संज्ञा रहते, जागते हुए, पाँच सौ गाड़ियों को न देखना, न उनके चलते चक्कों की ध्वनि सुनना; या संज्ञा रहते, जागते हुए, जल बरसाते मेघों की गड़गड़ाहट, उनसे बिजली निकलते, बिजली (अशनि) के गिरने के समय भी न चमक देखे, न उसकी ध्वनि सुने?''

''क्या हैं, भन्ते! पाँच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ, हजार, लाख गाड़ियाँ और क्या उनकी ध्वनि! मुझे तो यही दुष्कर एवं दुःसम्भव प्रतीत होता है कि संज्ञा रहते, जागते हुए भी जल बरसाते मेघों

अथ खो एतदेव दुक्करतरं च दुरभिसम्भवतरं च यो सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव पस्सेय्य न पन सद्दं सुणेय्या'' ति।

''एकमिदाहं, पुक्कुस, समयं आतुमायं विहरामि भुसागारे। तेन खो पन समयेन देवे वस्सन्ते देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया अविदूरे भुसागारस्स द्वे कस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा। अथ खो, पुक्कुस, आतुमाय महाजनकायो निक्खमित्वा येन ते द्वे कस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा तेनुपसङ्कमि। तेन खो पनाहं, पुक्कुस, समयेन भुसागारा निक्खमित्वा भुसागारद्वारे अब्भोकासे चङ्कमामि। अथ खो, पुक्कुस, अञ्ञतरो पुरिसो तम्हा महाजनकाया येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो अहं, पुक्कुस, तं पुरिसं एतदवोचं–'किं नु खो एसो, आवुसो, महाजनकायो सन्निपतितो' ति?

[R.132] 'इदानि, भन्ते, देवे वस्सन्ते देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया द्वे कस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा। एत्थेसो महाजनकायो सन्निपतितो। त्वं पन, भन्ते, क्व अहोसी' ति?

'इधेव खो अहं, आवुसो,अहोसिं' ति।

'किं पन, भन्ते, अद्दसा' ति?

'न खो अहं, आवुसो, अद्दसं' ति।

'किं पन, भन्ते, सद्दं अस्सोसी' ति?

'न खो अहं, आवुसो, सद्दं अस्सोसिं' ति।

'किं पन, भन्ते, सुत्तो अहोसी' ति।

की गड़गड़ाहट और उनसे बिजली के गिरने के समय भी न उसकी भयानक चमक देखे न उसकी ध्वनि ही सुने!''

''पुक्कस! एक समय मैं आतुमा के बुसागार (खलशाला) में साधनाहेतु ठहरा हुआ था। वहाँ कभी भयानक जलवृष्टि के समय, बिजली गिरने से उस बुसागार के पास ही दो किसान (परस्पर भ्राता) एवं उनके चार बैल मर गये। तब आतुमा से मनुष्यों की भीड़ निकलकर वहाँ पहुँची जहाँ वे दो भाई, चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कस! मैं उस बुसागार से निकलकर द्वार पर टहल रहा था। पुक्कस! उस भीड़ से निकलकर एक पुरुष मेरे पास आया। और....बोला– 'भन्ते! भयानक जलवृष्टि के समय बिजली गिरने से यहाँ दो किसान एवं उनके चार बैल मर गये। उन्हें देखने के लिये यह भीड़ इकट्ठा हुई है। आप, भन्ते! उस समय कहाँ थे?'

'आयुष्मन्! मैं यहीं था।'

'क्या भन्ते! आपने देखा?'

'नहीं, आयुष्मन्! मैंने नहीं देखा।'

'क्या, भन्ते! शब्द भी नहीं सुना?'

'नहीं आयुष्मन्!'

'क्या,भन्ते! उस समय सो रहे थे?'

'न खो अहं, आवुसो, सुत्तो अहोसिं' ति।

'किं पन, भन्ते, सञ्ञी अहोसी' ति? 'एवमावुसो' ति।

[N.103, B.110] 'सो त्वं, भन्ते, सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव अद्दस न पन सद्दं अस्सोसी' ति? 'एवमावुसो' ति।

"अथ खो, पुक्कुस, पुरिसस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, सन्तेन वत भो पब्बजिता विहारेन विहरन्ति, यत्र हि नाम सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव दक्खति न पन सद्दं सोस्सती' ति! मयि उळारं पसादं पवेदेत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामी" ति।

एवं वुत्ते, पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"एसाहं, भन्ते, यो मे आळारे कालामे पसादो तं महावाते वा ओफुणामि सीघसोताय वा नदिया पवाहेमि। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि [R.133] धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

६७. अथ खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, भणे, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं आहरा" ति। "एवं, भणे" ति खो सो पुरिसो पुक्कुसस्स मल्लपुत्तस्स पटिस्सुत्वा तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं आहरि। अथ खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो उपनामेसि—"इदं, भन्ते, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं। तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया" ति।

"तेन हि, पुक्कुस्स, एकेन मं अच्छादेहि एकेन आनन्दं" ति।

'नहीं, आयुष्मन्! मैं सोया तो नहीं था।'

'क्या, भन्ते! उस समय आप को चेतना (संज्ञा) थी?' 'हाँ, आयुष्मन्!'

'तो, भन्ते! आपने सचेत रहते हुए भी वह मेघों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली का गिरना नहीं देखा, न उसकी ध्वनि ही सुनी ।' 'हाँ, आयुष्मन्!'

"तब, पुक्कस! उस आदमी को विचार हुआ—'आश्चर्य है, अद्भुत है कि प्रव्रजित लोग....सुनायी नहीं पड़ता।' और वह मुझ में अत्यधिक श्रद्धा प्रकट करता हुआ वापस चला गया।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, पुक्कस मल्लपुत्र ने यह कहा— "भन्ते! यह मैं, आडार कालाम में मेरी जो श्रद्धा थी, उसे हवा में उड़ा देता हूँ या फिर तीव्र धार वाली नदी में उसे बहा देता हूँ। आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे औंधे (उलटे) पात्र को सीधा कर दे....पूर्ववत्....आज से मेरे जीवनपर्यन्त मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

६७. तब उस पुक्कस मल्लपुत्र ने अपने एक अनुचर से कहा— "अरे भाई! जाओ, मेरा सुनहला दुशाला लेते आओ।" "अच्छा, जी!" कहकर उस अनुचर ने वह सुनहरा दुशाला लाकर पुक्कस मल्लपुत्र को दे दिया। तब पुक्कस मल्लपुत्र ने सुनहरा दुशाला भगवान् को भेंट किया और निवेदन किया कि "भन्ते! आप इसे धारण करने की कृपा करें।"

"एवं, भन्ते" ति खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा एकेन भगवन्तं अच्छादेसि, एकेन आयस्मन्तं आनन्दं। अथ खो भगवा पुक्कुसं मल्लपुत्तं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि [N.104] समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

[B.111] ६८. अथ खो आयस्मा आनन्दो अचिरपक्कन्ते पुक्कुसे मल्लपुत्ते तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो कायं उपनामेसि। तं भगवतो कायं उपनामितं हतच्चिकं विय खायति। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते, याव परिसुद्धो, [R.134] भन्ते, तथागतस्स छविवण्णो परियोदातो! इदं, भन्ते, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो कायं उपनामितं हतच्चिकं विय खायती" ति।

"एवमेतं, आनन्द, एवमेतं, आनन्द। द्वीसु कालेसु अतिविय तथागतस्स परिसुद्धो कायो होति छविवण्णो परियोदातो। कतमेसु द्वीसु? यं च, आनन्द, रत्तिं तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, यं च रत्तिं अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति—इमेसु खो, आनन्द, द्वीसु कालेसु अतिविय तथागतस्स कायो परिसुद्धो होति छविवण्णो परियोदातो। अज्ज खो पनानन्द, रत्तिया पच्छिमे यामे कुसिनारायं उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। आयामानन्द, येन ककुधा नदी तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति।

"एवं,भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

"तो, पुक्कस! इनमें से एक मुझे ओढ़ा दे और एक आनन्द को।"

"अच्छा, भन्ते!" कहकर, उस पुक्कस मल्लपुत्र ने उस दुशाले में से एक शाल भगवान् को ओढ़ा दिया और एक आनन्द को। तब भगवान् ने पुक्कस मल्लपुत्र को धार्मिक कथाएँ कहकर धर्म–पालनहेतु समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। इस तरह वह पुक्कस मल्लपुत्र सन्तुष्ट होकर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर चला गया।

६८. उस पुक्कस मल्लपुत्र के चले जाने के कुछ ही देर बाद, आयुष्मान् आनन्द ने वह अपना शाल भी भगवान् को ओढ़ा दिया। भगवान् के शरीर पर ओढ़ाये जाने के बाद उस सुनहरी शोभा भगवान् के शरीर की शोभा के सामने फीकी (हतच्चिकं) पड़ गयी। (यह देखकर) आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया— "भन्ते! आश्चर्य है कि इस सुन्दर सुनहरे दुशाले की स्पृहणीय शोभा भी आप के शरीर के छविवर्ण की तुलना में फीकी–सी लग रही है!"

(भगवान् बाले–) "आनन्द! यही बात है, यह जैसा तुम कह रहे हो वैसी ही बात है; क्योंकि तथागत के शरीर की आभा (छविवर्ण) दो ही समय अत्यधिक प्रस्फुटित होती है— १. जब तथागत अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि का साक्षात्कार करते हैं, या फिर २. तथागत का जिस रात्रि में महापरिनिर्वाण होता है। आनन्द! इन दो समयों में तथागत का यह शरीर अन्य समय की अपेक्षा अधिक शोभित होता है। आनन्द! आज रात्रि के पिछले पहर में कुशीनारा के उपवर्तन नामक मल्लों के शालवन में दो शालवृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ! आनन्द! जहाँ ककुधा नदी है वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की आज्ञा स्वीकार की।

सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं, पुक्कुसो अभिहारयि।
तेन अच्छादितो सत्था, हेमवण्णो असोभथा[१] ति॥

६९. अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन ककुधा नदी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ककुधं नदिं अज्झोगाहेत्वा न्हत्वा पिवित्वा च पच्चुत्तरित्वा येन अम्बवनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं चुन्दकं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, चुन्दक, चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञपेहि। किलन्तोस्मि, चुन्दक, निपज्जिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा चुन्दको भगवतो पटिस्सुत्वा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञपेसि। अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसिकरित्वा। [R.135] आयस्मा पन चुन्दको तत्थेव भगवतो पुरतो निसीदि।

गन्त्वान बुद्धो नदिकं ककुधं, अच्छोदकं सातुदकं विप्पसन्नं। [N.105, B.112]
ओगाहि सत्था अकिलन्तरूपो, तथागतो अप्पटिमो च लोके॥
न्हात्वा पिवित्वा चुदतारि सत्था, पुरक्खतो भिक्खुगणस्स मज्झे।
वत्ता पवत्ता भगवा इध धम्मे, उपागमि अम्बवनं महेसि॥
आमन्तयि चुन्दकं नाम भिक्खुं, चतुग्गुणं सन्थर मे निपज्जं।
सो चोदितो भावितत्तेन चुन्दो, चतुग्गणं सन्थरि खिप्पमेव।
निपज्जि सत्था अकिलन्तरूपो, चुन्दो पि तत्थ पमुखे निसीदी ति॥

पुक्कस मल्लपुत्र ने एक दुशाला भगवान् को अर्पित किया। यह दुशाला ओढ़ने पर भगवान् के शरीर की और भी अधिक सुवर्ण वर्ण वाली कान्ति हो गयी[१]।

६९. तब भगवान् भिक्षुसङ्घ को साथ लेकर वहाँ ककुधा नदी थी वहाँ पधारे। वहाँ जाकर भगवान् ककुधा नदी में उतर कर, स्नान कर, कुछ जल पीकर तब नदी के उस पार जाकर जहाँ आम्रवन था वहाँ पहुँचे। पहुँचकर आयुष्मान् चुन्दक को आज्ञा दी– 'चुन्दक! अब यहाँ मेरी सङ्घाटी चोहरा (चतुर्गुण) करके बिछाओ; क्योंकि मैं थक गया हूँ अतः कुछ देर लेटूँगा।"

"अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् चुन्दक ने भगवान् के लिये चौहरा कर सङ्घाटी बिछा दी। तब भगवान् पैर पर पैर रख कर, स्मृति–सम्प्रजन्य के साथ मन में उत्थान–संज्ञा करके दाहिनी करवट (पार्श्व) से सिंहशय्या[२] की तरह लेट गये। आयुष्मान् चुन्दक वही भगवान् के सामने बैठ गये।

बुद्ध ने उत्तम, सुन्दर, स्वच्छ जल वाली ककुधा नदी पर जाकर लोक में अद्वितीय उस शास्ता ने अक्लान्त (अपने को कुछ स्वस्थ अनुभव करते हुए) होकर नदी का अवगाहन किया।

वहाँ स्नान, पान कर, चुन्द को आगे कर भिक्षुसङ्घ के बीच धर्म का प्रवचन करने वाले महर्षिसम भगवान् इस आम्रवन में पहुँचे।।

तब भगवान् ने चुन्दक को बुलाकर उसे चौहरा सङ्घाटी बिछाने की आज्ञा दी। उसने सङ्घाटी बिछा दी। भगवान् उस पर लेटे। चुन्द भी सामने बैठ गया।

---

१. यह गाथा बाद में, धर्मसंग्रहाकारों ने यहाँ प्रक्षिप्त कर दी है। मूल पालिपाठ में नहीं थी। — सु०वि०अट्ठकथा।

२. सिंहशय्या— दक्षिण पार्श्व से लेट कर बाँया पैर आधा उठाकर उसके गोड़े पर दाहिने पैर को रखकर दाहिनी भुजा से ग्रीवा को सहारा देते हुए यह आसन लगाया जाता है। सिद्धों का यह अत्यधिक प्रिय आसन है; क्योंकि यह शरीर के लिये अतीव सुखदायी है।

२२. द्वे पिण्डपाता समसमफला

७०. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"सिया खो पनानन्द, चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स कोचि विप्पटिसारं उप्पादेय्य—'तस्स ते, आवुसो चुन्द, अलाभा, तस्स ते दुल्लद्धं, यस्स ते तथागतो पच्छिमं पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा परिनिब्बुतो' ति। चुन्दस्स, आनन्द, कम्मारपुत्तस्स एवं विप्पटिसारो पटिविनेतब्बो—'तस्स ते, आवुसो चुन्द, लाभा, तस्स ते सुलद्धं, यस्स ते तथागतो पच्छिमं पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा परिनिब्बुतो। सम्मुखा मेतं, आवुसो चुन्द, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—

[R.136] 'द्वेमे पिण्डपाता समसमफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा च महानिसंसतरा च। कतमे द्वे? यं च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं [B.113] अभिसम्बुज्झति, यं च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति—इमे द्वे पिण्डपाता समसमफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि [N.106] महप्फलतरा च महानिसंसतरा च। आयुसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं, वण्णसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं, सुखसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं, यससंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं, सग्गसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं, आधिपतेय्यसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं' ति।

"चुन्दस्स, आनन्द, कम्मारपुत्तस्स एवं विप्पटिसारो पटिविनेतब्बो" ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

---

२२. समान फल वाली दो भिक्षाएँ

७०. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहना प्रारम्भ किया— "हो सकता है आनन्द! कि चुन्द कर्मारपुत्र के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो और वह पश्चात्ताप करने लगे— 'ओह! मुझसे कितना बड़ा पाप हो गया, मैंने कितना बड़ा दुष्कर्म कर डाला कि भगवान् मेरे द्वारा कराये भोजन से परिनिर्वाण (देहपात) को प्राप्त हो गये।' आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्त का यह सन्देह यह पश्चात्ताप मिटना चाहिये। इसके लिये (तुम्हें) उसको बताना चाहिये— 'चुन्द! तुमने तो पुण्य कमाया है, तुम्हें तो अत्यधिक पुण्यलाभ ही हुआ है; क्योंकि तुम्हारे द्वारा दिया गया भोजन करके ही तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। आयुष्मन् चुन्द! मैंने स्वयं भगवान् को यह कहते हुए सुना है और भगवान् के कहने से ही मैंने इसे ग्रहण किया है कि—

'ये दो पिण्डपात (भोजन) समान फल वाले एवं समान विपाक (परिणाम) वाले, दूसरे पिण्डपातों की अपेक्षा अत्यधिक फलप्रद एवं अधिक माहात्म्य वाले होते हैं। कौन से दो? पहला वह पिण्डपात जिसे खाकर तथागत अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि (परमज्ञान) का साक्षात्कार करते हैं; और दूसरा वह जिसे खाकर तथागत महापरिनिर्वाण प्राप्त करते हैं। अतः ये दोनों पिण्डपात समान फलवाले ....अधिक माहात्म्य वाले होते हैं। चुन्द कर्मारपुत्र ने अपने लिये आयु बढ़ाने वाले सत्कर्म का सञ्चय किया है। ....वर्ण बढ़ाने वाले....सुख....यश.... स्वर्ग का सुख.... लोक का आधिपत्य (स्वामित्व) प्राप्त कराने वाले सत्कर्म का संचय किया है।'

"आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्र का वह सन्देह या पश्चात्ताप यह कहकर मिटाना चाहिये।"

तब भगवान् ने इस विषय की गम्भीरता समझते हुए, उसी समय अपना यह स्वाभाविक हृदयोद्गार प्रकट किया—

"ददतो पुञ्ञं पवड्ढति, संयमतो वेरं न चीयति।
कुसलो च जहाति पापकं, रागदोसमोहक्खया सनिब्बुतो" ति॥

चतुत्थभाणवारो॥

२३. परिनिब्बानमञ्चनिपन्नो भगवा

७१. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"आयामानन्द, येन [R.137] हिरञ्ञवतिया नदिया पारिमं तीरं येन कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन हिरञ्ञवतिया नदिया पारिमं तीरं येन कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इङ्घ मे त्वं, आनन्द, अन्तरेन यमकसालानं उत्तरसीसकं मञ्चकं पञ्ञपेहि। किलमन्तोस्मि, आनन्द, निपज्जिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा अन्तरेन यमकसालानं उत्तरसीसकं मञ्चकं पञ्ञपेसि। अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो।

तेन खो पन समयेन यमकसाला सब्बफालिफुल्ला होन्ति अकालपुप्फेहि। ते [B.114] तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि मन्दारवपुप्फानि अन्तलिक्खा पपतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झो-[N.107] किरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि चन्दनचुण्णानि अन्तलिक्खा पपतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। [R.138]

"(दान) देने वाले का पुण्य बढ़ता है और इन्द्रियसंयम से वैर नहीं संगृहीत नहीं होता। कुशल (सत्कर्म) करने में चतुर आदमी पापकर्मों को छोड़े रहता है। और (वह अपने) राग–द्वेष–मोह को क्षीण कर (अन्त में) निर्वाण को पा लेता है।।

चतुर्थ भाणवार समाप्त।।

२३. भगवान् के जीवन का अन्तिम समय=परिनिर्वाणमञ्च

७१. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा– 'आओ! आनन्द! इस हिरण्यवती नदी के उस पार जहाँ कुसीनारा के मल्लों का शालवन उपवन है वहाँ चलें।'' ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। तब भगवान् उस बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ हिरण्यवती नदी के उस किनारे पर कुसीनारा मल्लों का शालवन उपवत्तन था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द से यों बाले– ''आनन्द! इन जुड़वाँ शालवृक्षों के बीच में मेरे लिये उत्तर की तरफ सिरहाना कर शयन हेतु मञ्च बना दे। थका हूँ, आनन्द, लेटूँगा।'' ''अच्छा, भन्ते''– कहकर उन दानों जुड़वाँ शालवृक्षों के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना कर, आनन्द ने, भगवान् के लिये शयन–हेतु मञ्च बना दिया। तब भगवान् उस मञ्च पर सिंहशय्या आसन लगाकर लेट गये।

उस समय वे दोनों शालवृक्ष असमय में ही फूलों से लद गये थे। तथागत की पूजा हेतु उन के फूल तथागत के शरीर पर बिखर रहे थे। ....दिव्य मन्दारपुष्पों की आकाश से वृष्टि हो रही थी। ....दिव्य चन्दनचूर्ण भी आकाश से तथागत के शरीर पर (देवताओं द्वारा) बिखेरा जा रहा था। आकाश में बजते

दिब्बानि पि तूरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय, दिब्बानि पि सङ्गीतानि अन्तलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय।

७२. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"सब्बफालिफुल्ला खो, आनन्द, यमकसाला अकालपुप्फेहि। ते तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि मन्दारवपुप्फानि अन्तलिक्खा पतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि चन्दनचुण्णानि अन्तलिक्खा पपतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि तूरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय, दिब्बानि पि सङ्गीतानि अन्तलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय। न खो, आनन्द, एत्तावता तथागतो सक्कतो वा होति गरुकतो वा मानितो वा पूजितो वा अपचितो वा। यो खो, आनन्द, भिक्खु वा भिक्खुनी वा उपासको वा उपासिका वा धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरति सामीचिप्पटिपन्नो आनुधम्मचारी, सो तथागतं सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति अपचियति परमाय पूजाय। तस्मातिहानन्द 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना विहरिस्साम सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो' ति—एवं हि वो, आनन्द, सिक्खितब्बं" ति।

उपवाणत्थेरं अपसारेसि

७३. तेन खो पन समयेन आयस्मा उपवाणो भगवतो पुरतो ठितो होति भगवन्तं बीजयमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेसि—"अपेहि, भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी" ति। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अयं खो आयस्मा उपवाणो [B.115, R.139] दीघरत्तं भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी। अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि, भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी' ति।

हुए दिव्य तूर्य वाद्यों की सुमधुर ध्वनि सुनायी दे रही थी। और दिव्य, मनोमोहक सङ्गीतों से वहाँ का वायुमण्डल झंकृत हो रहा था।

७२. तब भगवान् ने आनन्द से यों कहा– "आनन्द! ये दोनों शालवृक्ष असमय में फूलों से लद गये हैं जो तथागत की पूजाहेतु तथागत के शरीर पर स्वयं ही बिखर रहे हैं। दिव्य मन्दारव (पारिजातक) फूल भी तथागत के शरीर पर....दिव्य चन्दनचूर्ण.... दिव्यतूर्य (बाद्य).... आकाश में दिव्य सङ्गीत भी तथागत के शरीर की पूजा के अवसर पर, वहाँ की वायुमण्डल झंकृत करने में सहायक हो रहे हैं। (यद्यपि इस तरह के कर्मों से तथागत का लोकोत्तर सम्मान हो रहा है, उनका गौरव बढ़ाया जा रहा है, उन की पूजा व सम्मान बढ़ाया जा रहा है परन्तु) इन सबसे बढ़कर मैं अपना सम्मान, सत्कार, गौरव व पूजा तब अधिक सन्तोषप्रद समझूँगा जब मेरे भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, या उपासिकाएँ मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म का यथाविधि आचरण करेंगे, उसका पालन करेंगे, उसे बढ़ायेंगे। वही मेरी सर्वोत्तम पूजा होगी। इसी से मैं परम सन्तुष्ट होऊँगा। इसलिये, आनन्द! तुम लोग धर्म का यथाविधि आचरण करो, उसका पालन करो और उस धर्म की मर्यादा में चलने वाले बनो– ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये।

उपवाणस्थविर का अपसारण– ७३. उस समय आयुष्मान् उपवाण स्थविर भगवान् के आगे खड़े होकर उन्हें पङ्खा झल रहे थे। तब भगवान् ने उपवाण स्थविर से कहा– "ओ भिक्षु! तूँ यहाँ से दूर हट जा। मेरे सामने न खड़ा रह।" यह सुनकर आयुष्मान् आनन्द को यह विचार हुआ– "ये आयुष्मान् उपवाण तो

को नु खो हेतु, को पच्चयो, यं भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि, भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी' " ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अयं, [N.108] भन्ते, आयस्मा उपवाणो दीघरत्तं भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी। अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि, भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी' ति। को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो, यं भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि, भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी''' ति?

"येभुय्येन, आनन्द, दससु लोकधातूसु देवता सन्निपतिता तथागतं दस्सनाय। यावता, आनन्द, कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं समन्ततो द्वादस योजनानि, नत्थि सो पदेसो वालग्गकोटिनितुदनमत्तो पि महेसक्खाहि देवताहि अप्फुटो। देवता, आनन्द, उज्झायन्ति—'दूरा च वतम्ह आगता तथागतं दस्सनाय। कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अयं च महेसक्खो भिक्खु भगवतो पुरतो ठितो ओवारेन्तो। न मयं लभाम पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया' ति!!

७४. "कथम्भूता पन, भन्ते, भगवा देवता मनसिकरोती" ति?

"सन्तानन्द, देवता आकासे पथवीसञ्ञिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा [R.140] पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरधायिस्सती' ति।

"सन्तानन्द, देवता पथवियं पथवीसञ्ञिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति, विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरधायिस्सती' ति।

बहुत समय से भगवान् की सेवा में अनुचर रूप में रह रहे थे। आज इनको भगवान् ने यह कैसे कह दिया कि 'उपवाण! यहाँ से दूर हट। मेरे सामने न खड़ा रह। इसमें क्या कारण या क्या प्रत्यय हुआ कि भगवान् ने आयुष्मान् उपवाण को यों झटक दिया?' तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछा– "भन्ते! यह आयुष्मान् उपबाण तो बहुत समय से आपकी सेवा में आपके पास अनुचर के रूप में रहते थे। आज क्या कारण हुआ कि आज आपने उनको अपनी सेवा से अचानक अलग कर दिया?"

"आनन्द! अनेक लोकधातुओं से एकत्र होकर, तथागत के दर्शनों के लिये देवतासमूह यहाँ आ रहे हैं। इस समय आनन्द! इस मल्लों के शालवन के चारों और बारह योजन तक सूई की नोक गड़ाने भर को भी ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ प्रभावशाली देवता न हों। आनन्द! वे देवता परेशान हो रहे हैं– 'हम तथागत के दर्शन हेतु इतने दूर से आये हैं। लोक में तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध कभी कभी तो अवतरित होते हैं। आज की रात्रि के अन्तिम प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा और इधर यह महानुभाव स्थविर भिक्षु भगवान् को ढकते हुए उनके सामने खड़ा है, इसलिए हमें तथागत का अन्तिम दर्शन नहीं मिल पा रहा है।"

७४. "भन्ते! उन देवताओं को आप इस समय कैसा देख रहे है?"

"आनन्द! वे देवता आकाश को पृथ्वी समझकर....आनन्द! वे देवता पृथ्वी को पृथ्वी समझकर बाल बिखेर कर रो रहे हैं। बाहु पकड़–पकड़ कर (विवशता से) चिल्ला रहे हैं। कटे वृक्ष की भाँति भूमि

[B.116] "या पन ता देवता वीतरागा ता सता सम्पजाना अधिवासेन्ति—'अनिच्चा सङ्खारा, तं कुतेत्थ लब्भा'" ति।

चत्तारि संवेजनीयट्ठानानि

७५. "पुब्बे, भन्ते, दिसासु वस्सं वुत्था भिक्खू आगच्छन्ति तथागतं दस्सनाय। ते मयं लभाम मनोभावनीये भिक्खू दस्सनाय, लभाम पयिरुपासनाय। भगवतो पन मयं, भन्ते, अच्चयेन न लभिस्साम मनोभावनीये भिक्खू दस्सनाय न लभिस्साम पयिरुपासनाया" ति। [N.109] "चत्तारिमानि, आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि संवेजनीयानि ठानानि। कतमानि चत्तारि? (१) इध तथागतो जातो ति, आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। (२) इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति, आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। (३) इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं ति, आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। (४) इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो ति, आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। इमानि [R.141] खो, आनन्द, चत्तारि सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि संवेजनीयानि ठानानि।

"आगमिस्सन्ति खो, आनन्द, सद्धा भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो—इध तथागतो जातो ति पि, इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पि, इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं ति पि, इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो ति पि। ये हि केचि, आनन्द, चेतियचारिकं आहिण्डन्ता पसन्नचित्ता कालं करिस्सन्ति, सब्बे ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सन्ती" ति।

पर गिर रहे हैं और यह कहते कहते लोट-पोट हो रहे हैं- 'बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चक्षुष्मान् बुद्ध लोक से अन्तर्हित हो रहे हैं।'

"और जो देवता कुछ सचेत (संज्ञावान्) हैं, वीतराग हैं, वे स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ इस कष्ट को यह सोचकर सह रहे हैं- 'सभी संस्कृत पदार्थ अनित्य हैं, उनका निरन्तर मिलना असम्भव है।'

चार संवेजनीय (वैराग्यप्रद) स्थान

७५. "भन्ते! पहले सभी दिशाओं से वर्षावास (चातुर्मास्य व्रत) पूर्णकर भिक्षु भगवान् के दर्शनार्थ आते रहते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन और सत्सङ्ग हम लोगों को भी मिलता रहता था। अब भन्ते! भगवान् के बाद हमें उन मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन कैसे मिलेगा?"

"आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये ये चार संवेजनीय (वैराग्यबोधक) स्थान हैं। कौन से चार? (१) 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुए'- आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये यह दर्शनीय एवं संवेजनीय स्थान है। (२) 'यहाँ तथागत ने सम्बोधि प्राप्त की'- आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये यह दर्शनीय एवं संवेजनीय स्थान है। (३) 'यहाँ तथागत ने धर्मचक्रप्रवर्तन (प्रथम धर्मोपदेश) किया'- यह श्रद्धालु....स्थान है। (४) 'यहाँ तथागत ने भव में आवागमन रहित (अनुपाधि शेष) निर्वाण प्राप्त किया-यह श्रद्धालु....स्थान है। आनन्द! यह चार स्थान श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये दर्शनीय एवं संवेजनीय स्थान है।

"आनन्द! 'तथागत यहाँ उत्पन्न हुए', 'तथागत ने यहाँ सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की', 'तथागत ने यहाँ धर्मचक्र प्रवर्तित किया', 'तथागत ने यहाँ अनुपाधिशेष निर्वाण धातु प्राप्त की'- यह देखने के लिये भी श्रद्धालु भिक्षु-भिक्षुणियाँ, उपासक एवं उपासिकाएँ आयेंगी ही। इस तरह, आनन्द! जो भी कोई

आनन्दपुच्छा

७६. "कथं मयं, भन्ते, मातुगामे पटिपज्जामा" ति?

"अदस्सनं, आनन्दा" ति।

"दस्सने, भगवा, सति कथं पटिपज्जितब्बं" ति?

"अनालापो, आनन्दा" ति। [B.117]

"आलपन्तेन पन, भन्ते, कथं पटिपज्जितब्बं" ति?

"सति, आनन्द, उपट्ठापेतब्बा" ति (१)

७७. "कथं मयं, भन्ते, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जामा" ति?

"अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाय। इङ्घ तुम्हे, आनन्द, सारत्थे घटथ अनुयुञ्जथ; सारत्थे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथ। सन्तानन्द, खत्तियपण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि तथागते अभिप्पसन्ना। ते तथागतस्स सरीरपूजं करिस्सन्ती" ति। (२)

७८. "कथं पन, भन्ते, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं" ति?

"यथा खो, आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं" ति। (३)

"कथं पन, भन्ते, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ती" ति?

प्रसन्नचित्त होकर इन चैत्यों की चारिका करते हुए घूमेंगे, वे इस देहपात के बाद, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होंगे।"

आनन्द की जिज्ञासाएँ

स्त्रियों के साथ व्यवहार– ७६. "भन्ते! स्त्रियों के साथ हम कैसा व्यवहार करें?"

"आनन्द! उन का अदर्शन" (उन्हें न देखना)।

"भन्ते! उनके दिखायी दे जाने पर कैसा व्यवहार करेंगे?"

"आनन्द! उनसे बात न (अनालाप) करना।"

"भन्ते! यदि उनसे बात भी करनी पड़े तो कैसा करना चाहिये?"

"आनन्द! उस समय अपनी स्मृति बनाये रखनी चाहिये।"

तथागत के शरीर के साथ भिक्षुओं का व्यवहार– ७७. "भन्ते! (निर्वाणोत्तर) तथागत के शरीर को हम क्या करें?"

"आनन्द! तुम (भिक्षुगण) तथागत की शरीर–पूजा के विषय में निरपेक्ष (अब्यावट) रहना। आनन्द! तुम्हें सत्य की खोज करनी चाहिये। सद्धर्म के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सद्धर्म को पाने के लिये अप्रमत्त रहते हुए उद्योग करना चाहिये। आनन्द! यहाँ कुछ समझदार क्षत्रिय भी हैं, समझदार ब्राह्मण भी हैं, समझदार गृहपति भी हैं जो तथागत में श्रद्धा रखते हैं। यह उनका कर्तव्य है कि वे तथागत के शरीर की पूजा (सम्मान) करें।

तथागत के शरीर का क्या करना चाहिये? – ७८. "भन्ते! तथागत के शरीर को कैसे करना चाहिये?"

"जैसे चक्रवर्ती राजा के शरीर के प्रति जो कर्तव्य किया जाता है वही तथागत के शरीर के प्रति भी करना चाहिये।" (३)

"रञ्ञो, आनन्द, चक्कवत्तिस्स सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेन्ति, अहतेन वत्थेन वेठेत्वा [R.142] विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति, विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति, एतेनुपायेन पञ्चहि युगसतेहि रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा सब्बगन्धानं चितकं करित्वा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं झापेन्ति। चातुमहापथे रञ्ञो चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति। एवं खो, आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति। (४)

यथा खो, आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं। चातुमहापथे तथागतस्स थूपो कातब्बो। तत्थ ये मालं वा गन्धं वा चुण्णकं वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्तं वा पसादेस्सन्ति तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाय।"

थूपारहपुग्गला

७९. "चत्तारोमे, आनन्द, थूपारहा। कतमे चत्तारो? (१) तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो, (२) पच्चेकसम्बुद्धो थूपारहो, (३) तथागतस्स सावको थूपारहो, (४) राजा चक्कवत्ती थूपारहो ति।

[B.118] "किं चानन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो? 'अयं तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स थूपो' ति, आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो, आनन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो। (१)

[R.143] "किं चानन्द, अत्थवसं पटिच्च पच्चेकसम्बुद्धो थूपारहो? 'अयं तस्स भगवतो

"भन्ते! राजा चक्रवर्ती के शरीर के साथ क्या किया जाता है?"

"आनन्द! राजा चक्रवर्ती के शरीर को नये (अ-हत) वस्त्र से लपेटते हैं, अहत वस्त्र से लपेटकर धुनी (विहत) रूई से लपेटते हैं, विहत रूई से लपेटकर फिर अहत वस्त्र से लपेटते हैं। इस तरह इस रूई और कपड़े को पाँच सौ बार लपेटकर राजा चक्रवर्ती के शरीर को सुवर्ण की तैल से भरी द्रोणी (नौका की तरह बनी) में डाल कर और दूसरी खाली द्रोणी से ढक कर सभी चन्दन आदि गन्ध काष्ठों की चिता राजा चक्रवर्ती के शरीर को जलाते हैं। जला कर बड़े चौराहे पर उस का स्तूप (स्मृति-स्तम्भ) बनाते हैं। आनन्द! जैसे राजा चक्रवर्ती के शरीर के मरणोत्तर कर्तव्य पूर्ण किये जाते हैं उसी प्रकार तथागत के शरीर के प्रति भी मरणोत्तर कर्तव्य पूरे करने चाहिये। चौराहे पर तथागत का स्तूप बनाना चाहिये। उस पर माला गन्ध-द्रव्य, गन्ध-विलेपन, एवं गन्धचूर्ण चढ़ाना चाहिये। यह कर्तव्य उनके चिर काल के लिये सुखदायी होगा।

स्तूपार्ह पुद्गल– ७९. "आनन्द! ये चार पुद्गल (मरणोत्तर) स्तूप बनाने योग्य होते हैं। कौन से चार? (१) तथागत.... स्तूपार्ह होते हैं, (२) प्रत्येकसम्बुद्ध.... (३) तथागत का शिष्य.... (४) एवं चक्रवर्ती राजा भी स्तूपार्ह होता है।

"ऐसा किसलिये आनन्द! कि तथागत का स्तूप बनाना चाहिये? 'यह उस भगवान् का स्मृतिस्तूप है'– यह सोचकर बहुत से लोग अपने मन में प्रीति-सौमनस्य पैदा करेंगे। इसके प्रभाव से वे मरने के बाद सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होंगे। इसलिये तथागत का स्तूप बनाना चाहिये।

पच्चेकसम्बुद्धस्स थूपो'ति, आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो, आनन्द, अत्थवसं पटिच्च पच्चेकसम्बुद्धो थूपारहो। (२)

"किं चानन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतस्स सावको थूपारहो? 'अयं तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सावकस्स थूपो'ति, आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो, आनन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतस्स सावको थूपारहो। (३)

"किं चानन्द, अत्थवसं पटिच्च राजा चक्कवत्ती थूपारहो? 'अयं तस्स [N.111] धम्मिकस्स धम्मरञ्ञो थूपो'ति, आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो, आनन्द, अत्थवसं पटिच्च राजा चक्कवत्ती थूपारहो। (४)

इमे खो, आनन्द चत्तारो थूपारहा" ति।

आनन्दे अच्छरियधम्मा

८०. अथ खो आयस्मा आनन्दो विहारं पविसित्वा कपिसीसं आलम्बित्वा रोदमानो अट्ठासि—"अहं च वतम्हि सेखो सकरणीयो, सत्थु च मे परिनिब्बानं भविस्सति यो मम अनुकम्पको" ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"कहं नु खो, भिक्खवे, आनन्दो" ति?

"एसो, भन्ते, आयस्मा आनन्दो विहारं पविसित्वा कपिसीसं आलम्बित्वा रोदमानो ठितो—'अहं च वतम्हि सेखो सकरणीयो, सत्थु च मे परिनिब्बानं भविस्सति यो मम अनुकम्पको' " ति। अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—"एहि त्वं, [B.119] भिक्खु, मम वचनेन आनन्दं आमन्तेहि—'सत्था तं, आवुसो आनन्द, आमन्तेती" ति। "एवं,

---

"आनन्द! प्रत्येकसम्बुद्ध का....पूर्ववत्....स्तूप बनाना चाहिये।

"आनन्द! तथागत के श्रावक का....पूर्ववत्....स्तूप बनाना चाहिये।

"आनन्द! चक्रवर्ती का....पूर्ववत्....स्तूप बनाना चाहिये।

"इस तरह, आनन्द! ये चार पुद्गल स्मृतिस्तम्भ के योग्य हैं।

आनन्द के अद्भुत धर्म (गुण)

८०. तब आयुष्मान् आनन्द विहार में जाकर विहार के द्वार-कपाट का अर्गलाकाष्ठ (=कपिशीर्ष) पकड़कर खड़े हुए रोने लगे— "अरे! मैं अभी शैक्ष्य (सकरणीय) ही रह गया; जबकि शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है, जो मुझ पर अनुकम्पक (दयालु) हैं।" इसी बीच भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा— "भिक्षुओ! आनन्द कहाँ है?"

(तब किसी ने बताया—) "आयुष्मान् आनन्द तो विहार में जाकर द्वारकाष्ठ पकड़कर खड़े-खड़े रो रहे हैं कि 'मैं तो अभी कर्तव्यावशिष्ट (सकरणीय) शैक्ष्य ही रह गया; जब कि मुझ पर दयालु शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है।" तब भगवान् ने किसी भिक्षु को बुलाकर आदेश दिया कि 'जाओ, भिक्षु! मेरे कहने से आनन्द को बुलाकर लाओ। उससे कहना कि आयुष्मन् आनन्द! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं'।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वह भिक्षु जहाँ आनन्द थे वहाँ गया। और जाकर कहा— "आयुष्मन् आनन्द!

[R.144] भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''सत्था तं, आवुसो आनन्द, आमन्तेती'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा आनन्दो तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—''अलं, आनन्द, मा सोचि, मा परिदेवि। ननु एतं, आनन्द, मया पटिकच्चेव अक्खातं—सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो; तं कुतेत्थ, आनन्द, लब्भा! यं तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं तं वत तथागतस्सा पि सरीरं मा पलुज्जी ति नेतं ठानं विज्जति। दीघरत्तं खो ते, आनन्द, तथागतो पच्चुपट्ठितो मेत्तेन कायकम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन, मेत्तेन वचीकम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन, मेत्तेन मनोकम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन। कतपुञ्ञोसि त्वं, आनन्द, पधानमनुयुञ्ज, खिप्पं होहिसि अनासवो'' ति।

८१. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''ये पि ते, भिक्खवे, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा तेसं पि भगवन्तानं एतप्परमायेव उपट्ठाका अहेसुं, सेय्यथापि मय्हं [N.112] आनन्दो। ये पि ते, भिक्खवे, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, तेसं पि भगवन्तानं एतप्परमायेव उपट्ठाका भविस्सन्ति, सेय्यथापि मय्हं आनन्दो। पण्डितो, भिक्खवे, आनन्दो; मेधावी, भिक्खवे, आनन्दो। जानाति अयं कालो तथागतं दस्सनाय [R.145] उपसङ्कमितुं भिक्खूनं, अयं कालो भिक्खुनीनं, अयं कालो उपासकानं, अयं कालो उपासिकानं, अयं कालो रञ्ञो राजमहामत्तानं तित्थियानं तित्थियसावकानं ति।

८२. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे। कतमे चत्तारो? (१)

आपको शास्ता बुला रहे हैं।'' ''अच्छा, आयुष्मन्!''– आनन्द उस भिक्षु को यह उत्तर देकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने यों शान्त्वना दी– ''आनन्द! किसी प्रकार का शोक या विलाप न कर। आनन्द! क्या मैंने पहले ही तुम को अनेक बार नहीं समझाया कि सभी प्रिय पदार्थों से एक न एक दिन वियोग, पृथक् होना या अन्यथाभाव होगा ही। उनके साथ निरन्तर संयोग कहाँ मिलने वाला है! क्योंकि जो कुछ यह सांसारिक वस्तुजात दिखायी दे रहा है, वह एक न एक दिन नष्ट होगा ही। तब 'तथागत का शरीर नष्ट न हो'– यह कैसे सम्भव है! अरे आनन्द! तुमने तो बहुत काल तक हितमय सुखमय एवं अपरिमित मैत्रीपूर्ण कायक्रम से मैत्रीपूर्ण वाक्कर्म से एवं मैत्रीपूर्ण मनःकर्म से एकान्ततः तथागत की सेवा–परिचर्या की है। यों, तुमने अत्यधिक पुण्य–संग्रह कर लिया है। निर्वाण–साधना में एकान्ततः लगो, शीघ्र ही अनाश्रव (मुक्त) हो जाओगे।''

८१. तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया– भिक्षुओ! जो तथागत....भगवान् अतीत काल में हुए उन भगवानों के भी उपस्थायक इतने ही उत्तम थे जितना मेरा यह आनन्द। भिक्षुओ! जो तथागत भविष्यत् (अनागत) काल में होंगे उनके ....पूर्ववत्.....। भिक्षुओ! आनन्द पण्डित है....मेधावी है। वह जानता है कि यह काल भिक्षुओं का तथागत के दर्शनार्थ जाने का है, यह भिक्षुणियों का....उपासकों का....उपासिकाओं का....राजाओं का....महामात्यों का....तीर्थिकों का....तीर्थिक–श्रावकों का तथागत के दर्शनार्थ जाने का समय है।

सचे, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना [B.120] होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। (२) सचे, भिक्खवे, भिक्खुनीपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुनीपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। (३) सचे, भिक्खवे, उपासकपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, उपासकपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। (४) सचे, भिक्खवे, उपासिकापरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे, आनन्दो, धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, उपासिकापरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे।

"चत्तारोमे, भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा रञ्ञे चक्कवत्तिम्हि। कतमे चत्तारो? (१) सचे, भिक्खवे, खत्तियपरिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, खत्तियपरिसा होति, अथ खो राजा चक्कवत्ती तुण्ही होति। (२) सचे, भिक्खवे, ब्राह्मणपरिसा....पे०....। (३) गहपतिपरिसा....पे०....। (४) समणपरिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, समणपरिसा होति, अथ खो [N.113, R.146] राजा चक्कवत्ती तुण्ही होति। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारोमे अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे। (१) सचे, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। (२) सचे भिक्खुनीपरिसा ....पे०....। (३) उपासकपरिसा....पे०....। (४) उपासिकापरिसा आनन्दं दस्सनाय [B.121]

---

८२. "भिक्षुओ! यदि भिक्षुपरिषद् आनन्द के दर्शनहेतु आती है तो उसके दर्शन कर सन्तुष्ट हो जाती है। यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो भिक्षुपरिषद् उसे सुन कर सन्तुष्ट हो जाती है। हाँ, वह भिक्षुपरिषद् तब असन्तुष्ट रहती है, जब भाषण करने के बाद वह चुप हो जाता है। (२) यदि भिक्षुणी परिषद्....। (३) यदि उपासकपरिषद्....। (४) यदि उपासिका परिषद्.... चुप हो जाता है। भिक्षुओ! ये चार अद्भुत गुण आनन्द में हैं।

"भिक्षुओ! चक्रवर्ती राजा में ये चारी अद्भुत बातें होती हैं। जैसे– (१) यदि कोई क्षत्रियसमूह चक्रवर्ती राजा के दर्शन हेतु जाता है ता वह समूह उसके दर्शन कर सन्तुष्ट हो जाता है। वह चक्रवर्ती उससे जो कुछ सम्भाषण करता है उससे भी वह समूह सन्तुष्ट रहता है। हाँ! वह समूह तब कुछ असन्तुष्ट अवश्य दिखायी देता है जब वह चक्रवर्ती राजा चुप रहता है। (२) यदि भिक्षुओ! कोई ब्राह्मणसमूह....। (३) ...कोई गृहपतिसमूह....। (४) कोई श्रमणसमूह....। इसी तरह भिक्षुओ! आनन्द में भी ये चारों अद्भुत गुण

उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, उपासिकापरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे'' ति।

महासुदस्सनकथा

८३. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''मा, भन्ते, भगवा इमस्मिं खुद्दकनगरके उज्जङ्गलनगरके साखानगरके परिनिब्बायि। सन्ति, भन्ते, अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथिदं—चम्पा, राजगहं, सावत्थी, साकेतं, कोसम्बी, बाराणसी, एत्थ भगवा परिनिब्बायतु। एत्थ बहू खत्तियमहासाला ब्राह्मणमहासाला गहपतिमहासाला तथागते अभिप्पसन्ना। ते तथागतस्स सरीरपूजं करिस्सन्ती'' ति।

''माहेवं, आनन्द, अवच; माहेवं, आनन्द, अवच—'खुद्दकनगरकं उज्जङ्गलनगरकं साखानगरकं' ति। भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो नाम अहोसि चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनप्पदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी अहोसि पुरत्थिमेन च पच्छिमेन च द्वादसयोजनानि आयामेन, उत्तरेन च दक्खिणेन च सत्तयोजनानि वित्थारेन। कुसावती, आनन्द, राजधानी इद्धा चेव अहोसि फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च। सेय्यथापि, [R.147] आनन्द, देवानं आळकमन्दा नाम राजधानी इद्धा चेव होति फीता च बहुजना च आकिण्णयक्खा च सुभिक्खा च; एवमेव खो, आनन्द, कुसावती राजधानी इद्धा चेव अहोसि फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च। कुसावती, आनन्द, राजधानी दसहि सद्देहि अविवित्ता अहोसि दिवा चेव रत्तिं च, सेय्यथिदं—(१) हत्थिसद्देन, (२) अस्ससद्देन,

---

हैं। वह यदि भिक्षुपरिषद्....., भिक्षुणीपरिषद्....., उपासकपरिषद्....., उपासिकापरिषद्....चुप हो जाता है। भिक्षुओ! ये चार अद्भुत गुण आनन्द में हैं।''

महासुदर्शन राजा की कथा

८३. तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया— ''भन्ते! भगवान् इस क्षुद्र नगरक (नगला), जंगलों से भरे नगरक में परिनिर्वाण को न प्राप्त होवें। भन्ते! और भी तो महानगर हैं; जैसे— चम्पा है, राजगृह है, श्रावस्ती है, साकेत है, कौसाम्बी है या वाराणसी है; इनमें से कहीं भी भगवान् परिनिर्वृत होवें। यहाँ बड़े-बड़े धनाढ्य क्षत्रिय हैं, बड़े-बड़े धनाढ्य ब्राह्मण हैं, बड़े-बड़े धनाढ्य गृहपति हैं जो तथागत के प्रति प्रीति-सौमनस्य एवं श्रद्धा रखते हैं। वे तथागत के शरीर की यथोचित पूजा करेंगे।''

(भगवान् बोले-) ''आनन्द! ऐसा न कहो; आनन्द! ऐसा न कहो— 'यह स्थान क्षुद्र नगरक है या यह जंगलों से घिरा हुआ नगरक है।' आनन्द! प्राचीन काल में यहाँ महासुदर्शन नाम का राजा हुआ था, जो कि चक्रवर्ती धार्मिक, धर्मराज, समुद्रपर्यन्त चारों दिशाओं में विजयपताका फहराने वाला, जनपदों में अपने शासन से स्थिरता लाने वाला तथा सातों रत्नों से युक्त था। उस राजा महासुदर्शन की यह कुशावती राजधानी थी, जो कि पूर्व-पश्चिम दिशाओं में बारह योजन एवं उत्तर-दक्षिण दिशाओं में सात योजन विस्तृत थी। यह कुशावती राजधानी उस समय समृद्ध, धनधान्यसम्पन्न जनाकीर्ण, और सुभिक्षमय थी। जैसे कि आनन्द! देवताओं की आलकमंदा नाम की नगरी समृद्ध, धन-धान्यसम्पन्न....है। इसी तरह यह

(३) रथसद्देन, (४) भेरिसद्देन, (५) मुदिङ्गसद्देन, (६) वीणासद्देन, (७) गीतसद्देन, [N.114] (८) सङ्खसद्देन, सम्मसद्देन, (९) पाणिताळसद्देन (१०) अस्नाथ पिवथ खादथा ति दसमेन सद्देन।

"गच्छ त्वं, आनन्द। कुसिनारं पविसत्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेहि—[B.122] 'अज्ज खो, वासेट्ठा, रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अभिक्कमथ, वासेट्ठा, अभिक्कमथ, वासेट्ठा। मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'अम्हाकं च नो गामक्खेत्ते तथागतस्स परिनिब्बानं अहोसि, न मयं लभिम्हा पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया' " ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय अत्तदुतियो कुसिनारं पाविसि।

मल्लानं वन्दना

८४. तेन खो पन समयेन कोसिनारका मल्ला सन्थागारे सन्निपतिता होन्ति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन कोसिनारकानं मल्लानं सन्थागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेसि—"अज्ज खो, वासेट्ठा, रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अभिक्कमथ, वासेट्ठा, अभिक्कमथ, वासेट्ठा। मा [R.148] पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'अम्हाकं च नो गामक्खेत्ते तथागतस्स परिनिब्बानं अहोसि, न मयं लभिम्हा पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया' " ति।

इदमायस्मतो आनन्दस्स सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतोदुक्खसमप्पिता अप्पेकच्चे केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं

कुशावती नगरी भी समृद्ध....थी। आनन्द! इस नगरी में चौबीस घण्टे ये दस तरह के शब्द निरन्तर गूँजते रहते थे; जैसे— १. हाथियों की चिङ्घाड़; २. घोड़ों की हिनहिनाहट; ३. रथों की खनखनाहट; ४. भेरी; ५. मृदङ्ग; ६. वीणा; ७. गीत; ८. शङ्ख; ९. लयबद्ध हाथों की ताल और दशम 'स्नान कीजिये', 'खाइये', 'पीजिये'— आदि शब्द।

(अतः) आनन्द! तुम (कुसीनारा) जाओ और कुशीनारा में प्रवेश कर वहाँ रहने वाले मल्लों से कहो— "वासिष्ठो! आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। चलो, वासिष्ठो! चलो! बाद में यह कहकर पश्चात्ताप न करना कि हमारे ग्रामसीमा-क्षेत्र में तथागत का परिनिर्वाण हुआ, और हमें सूचना तक न मिली! और यों हम तथागत के अन्तिम दर्शन भी न कर पाये।" "अच्छा, भन्ते"— कहकर और तय्यार होकर पात्र–चीवर ले आनन्द एकाकी (आत्मद्वितीय) ही कुशीनारा में प्रविष्ट हुए।

मल्लों की वन्दना

८४. उस समय कुशीनारावासी मल्ल किसी आवश्यक कार्य से कुशीनारा के संस्थागार (पञ्चायत भवन) में एकत्र थे। तब आयुष्मान् आनन्द उस संस्थागार में गये और वहाँ एकत्र (सन्निपतित) हुए कुशीनारावासी मल्लों को बताया— "वासिष्ठो! आज रात्रि के अन्तिम प्रहर तथागत का परिनिर्वाण होगा....पूर्ववत्....अन्तिम दर्शन भी न कर पाये!"

आयुष्मान् आनन्द से यह सुनकर वे मल्ल, उन के पुत्र–पौत्र, सास–बहुएँ, दुःखित एवं शोकमग्न हृदय से,बाल विखेर बिखेर कर, बाँहें, पकड़–पकड़कर, कटे वृक्ष की तरह पछाड़ खा खाकर, भूमि पर

सुगतो परिनिब्बायिस्सति, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरधायिस्सती' ति। अथ खो मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतोदुक्खसमप्पिता येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु।

अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"सचे खो अहं कोसिनारके मल्ले एकमेकं भगवन्तं वन्दापेस्सामि, अवन्दितो भगवा कोसिनारकेहि मल्लेहि भविस्सति अथायं रत्ति विभायिस्सति। यन्नूनाहं कोसिनारके मल्ले कुलपरिवत्तसो कुलपरिवत्तसो ठपेत्वा भगवन्तं वन्दापेय्यं—'इत्थन्नामो, भन्ते, मल्लो सपुत्तो सभरियो सपरिसो समच्चो भगवतो पादे सिरसा [N.115, B.123] वन्दती' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो कोसिनारके मल्ले कुलपरिवत्तसो कुलपरिवत्तसो ठपेत्वा भगवन्तं वन्दापेसि—'इत्थन्नामो, भन्ते, मल्लो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो एतेन उपायेन पठमेनेव यामेन कोसिनारके मल्ले भगवन्तं वन्दापेसि।

सुभद्दपरिब्बाजकवत्थु

८५. तेन खो पन समयेन सुभद्दो नाम परिब्बाजको कुसिनारायं पटिवसति। अस्सोसि खो सुभद्दो परिब्बाजको—"अज्ज किर रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं [R.149] भविस्सती" ति। अथ खो सुभद्दस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"सुतं खो पन मेतं परिब्बाजकानं वुड्ढानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा' ति। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खाधम्मो उप्पन्नो—'एवं पसन्नो अहं समणे

लोट-पोट हो होकर, रोते हुए यों विलाप करने लगे— "अरे! भगवान् बहुत जल्दी ही परिनिर्वृत हो रहे हैं! बहुत जल्दी ही सुगत का यह परिनिर्वाण (देहपात) हो रहा है! बहुत जल्दी ही ये लोक-चक्षु (मार्गदर्शक) अन्तर्धान (हम से दूर) हो रहे हैं! तब वे दुःखित एवं शोकमग्न कुशीनारावासी जहाँ मल्लों का उपवत्तन शालवन था, वहाँ गये।

तब आयुष्मान् आनन्द को यह विचार मन में हुआ— "यदि मैं कुशीनारा के इन मल्लों को एक एक कर तथागत की वन्दना करने भेजूँ तो भगवान् बहुत से मल्लों द्वारा अपूजित ही रह जाँयगें। और रात्रि भी बीत जायगी तो क्यों न मैं इन मल्लों को इनके कुलक्रम से भगवान् की वन्दना कराऊँ— 'भन्ते अमुक नाम का यह मल्लपुत्र अपने पुत्र, भार्या, परिषद् एवं अमात्यों सहित भगवान् के चरणों की वन्दना करता है' "। तब आयुष्मान् आनन्द ने उन कुशीनारा मल्लों को एक एक कुलक्रम से भगवान् की वन्दना करवाई....। इस उपाय से उस रात्रि के प्रथम प्रहर में ही उन मल्लों का यह भगवान् को वन्दना करने का क्रम पूर्ण हो गया।

सुभद्र परिव्राजक

८५ उस समय एक सुभद्र नामक परिव्राजक कुसीनारा में रहता था। उस सुभद्र परिव्राजक ने जब सुना कि "आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में भगवान् का परिनिर्वाण होगा" तो उसके मन में यह विचार उठा— "मैंने बड़े-बूढ़े आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकों से यह सुना है कि ये तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध इस लोक में कभी-कभी ही अवतरित हुआ करते हैं। आज ही रात्रि के अन्तिम प्रहर में श्रमण गौतम का परिनिर्वाण होगा। और आज ही मेरे मन में यह धर्मविषयक सन्देह (=कङ्खाधम्म) उठ खड़ा हुआ है। मैं

गोतमे। पहोति मे समणो गोतमो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं' '' ति। अथ खो सुभद्दो परिब्बाजको येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''सुतं मेतं, भो आनन्द, परिब्बाजकानं वुड्ढानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा' ति। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खाधम्मो उप्पन्नो—'एवं पसन्नो अहं समणे गोतमे, पहोति मे समणो गोतमो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं' ति। साधाहं, भो आनन्द, लभेय्यं समणं गोतमं दस्सनाया'' ति। एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदवोच—''अलं, आवुसो सुभद्द, मा तथागतं विहेठेसि। किलन्तो भगवा'' ति। दुतियं पि खो सुभद्दो परिब्बाजको....पे०....ततियं पि खो सुभद्दो परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''सुतं मेतं, भो आनन्द, परिब्बाजकानं वुड्ढानं महल्लकानं आचरियपाचरियकानं [B.124] भासमानानं —'कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा' ति। [R.150] अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खाधम्मो उप्पन्नो—एवं पसन्नो अहं समणे गोतमे, पहोति मे समणो गोतमो तथा [N.116] धम्मं देसेतुं यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं' ति। साधाहं, भो आनन्द, लभेय्यं समणं गोतमं दस्सनाया'' ति। ततियं पि खो आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदवोच—''अलं, आवुसो सुभद्द, मा तथागतं विहेठेसि। किलन्तो भगवा'' ति।

८६. अस्सोसि खो भगवा आयस्मतो आनन्दस्स सुभद्देन परिब्बाजकेन सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''अलं, आनन्द, मा सुभद्दं वारेसि। लभतं, आनन्द, सुभद्दो तथागतं दस्सनाय। यं किञ्चि मं सुभद्दो पुच्छिस्सति सब्बं तं अञ्ञापेक्खो व पुच्छिस्सति, नो विहेसापेक्खो। यं चस्साहं पुट्ठो ब्याकरिस्सामि, तं खिप्पमेव आजानिस्सती'' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदवोच—''गच्छावुसो सुभद्द, करोति ते भगवा ओकासं'' ति। अथ खो सुभद्दो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि;

श्रमण गौतम से इतना प्रसन्न (श्रद्धावान्) हूँ कि (मुझे विश्वास है कि) उनकी धर्मदेशना से ही मेरा यह सन्देह दूर हो सकेगा।'' तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लों का शालवन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर वह आनन्द से बोला– ''भो आनन्द! मैंने बड़े–बूढ़े आचार्य–प्राचार्य....पूर्ववत्.... सन्देह दूर हो सकेगा। अतः कोई ऐसी व्यवस्था करें कि मैं श्रमण गौतम के दर्शन पा सकूँ। सुभद्र परिव्राजक के ऐसा कहने पर, आयुष्मान् आनन्द ने कहा– ''जाने दो, सुभद्र! तथागत को त्रस्त न करो। भगवान् इस समय रोगाक्रान्त हैं।'' दूसरी बार भी.....तीसरी बार भी सुभद्र ने आनन्द से कहा– ''भो आनन्द! मैंने बड़े–बूढ़े....सन्देह दूर हो सकेगा....रोगाक्रान्त हैं।''

८६. भगवान् ने सुभद्र परिव्राजक का आनन्द के साथ हो रहा यह कथोपकथन सुन लिया। तब आयुष्मान् आनन्द को कहा– ''नहीं, आनन्द! सुभद्र को निषेध न करो। सुभद्र को तथागत का दर्शन पाने दो। उसका सन्देह परम ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही होगा, मुझे कष्ट देने के लिये नहीं। मुझसे पूछने पर जो मैं उसे बताऊँगा वह उसे तत्काल समझ लेगा।'' तब आयुष्मान् आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा–

उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"येमे, भो गोतम, समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं— पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, अजितो केसकम्बलो, पकुधो कच्चायनो, [R.151] सञ्चयो बेलट्ठपुत्तो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सब्बेते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु? सब्बेव न अब्भञ्ञिंसु? उदाहु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु एकच्चे न अब्भञ्ञिंसु" ति?

"अलं, सुभद्द; तिट्ठतेतं— सब्बेते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु, सब्बेव न अब्भञ्ञिंसु, उदाहु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु एकच्चे न अब्भञ्ञिंसू ति। धम्मं ते, सुभद्द, देसेस्सामि, तं सुणाहि, साधुकं मनसिकरोहि, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

८७. "यस्मिं खो, सुभद्द, धम्मविनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो न उपलब्भति, समणो पि तत्थ न उपलब्भति। दुतियो पि तत्थ समणो न उपलब्भति। ततियो पि तत्थ समणो [B.125] न उपलब्भति। चतुत्थो पि तत्थ समणो न उपलब्भति। यस्मिं च खो, सुभद्द, धम्मविनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो उपलब्भति, समणो पि तत्थ उपलब्भति। दुतियो पि तत्थ [N.117] समणो उपलब्भति। ततियो पि तत्थ समणो उपलब्भति। चतुत्थो पि तत्थ समणो उपलब्भति। इमस्मिं खो, सुभद्द, धम्मविनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो उपलब्भति। इधेव, सुभद्द, समणो, इध दुतियो समणो, इध ततियो समणो, इथ चतुत्थो समणो। सुञ्ञा परप्पवादा समणेभि अञ्ञेहि। इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा" ति।

"जाओ, आयुष्मन् सुभद्र! भगवान् आपको बुला रहे हैं।" तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् से कुशल–मङ्गल पूछा। यह सब पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से प्रश्न किया– "भो गौतम! सभी श्रमण–ब्राह्मण, गणी, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी (ख्यातिलब्ध) तीर्थंकर, समाज में सम्मानप्राप्त, जैसे– पूरण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, प्रक्रुध कात्यायन, सञ्जय वेलट्ठिपुत्र एवं निगण्ठ नाटपुत्र, क्या ये सभी अपने उपदेश में बताये गये (प्रतिज्ञात) सिद्धान्तों को स्वयं साक्षात्कार करके जानते हैं? या सभी नहीं जानते? या इनमें से कुछ जानते हैं? कुछ नहीं भी जानते?"

सुभद्र का सन्देह-निराकरण– "जाने दो, सुभद्र! कि वे लोग अपने कहे हुए प्रतिज्ञा–सिद्धान्तों को जानते हैं?....या कुछ नहीं भी जानते? मैं तुम्हें स्वतन्त्र रूप से धर्म (का गूढ़ रहस्य) बताऊँगा, तू उसे ध्यान से सुन और मन में बैठा ले।"

"अच्छा भन्ते!" कहकर सुभद्र ने भगवान् की आज्ञा मान ली। भगवान् ने कहा–

८७. "जिस (आचार्य के) धर्मानुशासन में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता वहाँ प्रथम श्रमण (स्रोतआपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता। दूसरा (सकृदागामी) एवं तीसरा (अनागामी) श्रमण भी नहीं मिलता। और चतुर्थ श्रमण (अर्हत्) तो मिलेगा ही क्या! और सुभद्र! जिस (आचार्य के धर्मानुशासन में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग उपलब्ध है (उसके सहारे धर्मसाधना की जाती है) वहाँ प्रथम श्रमण.... द्वितीय....तृतीय....चतुर्थ श्रमण भी मिलता है। सुभद्र! क्योंकि मेरे धर्मानुशासन में अष्टाङ्गिक मार्ग के सहारे साधना की जाती है,

एकूनतिंसो वयसा सुभद्द, यं पब्बजिं किंकुसलानुएसी।
वस्सानि पञ्ञास समाधिकानि, यतो अहं पब्बजितो, सुभद्द!
ञायस्स धम्मस्स पदेसवत्ती, इतो बहिद्धा समणो पि नत्थि॥

"दुतियो पि समणो नत्थि। ततियो पि समणो नत्थि। चतुत्थो पि समणो [R.152] नत्थि। सुञ्ञा परप्पवादा समणेहि अञ्ञेहि। इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा" ति।

८८. एवं वुत्ते, सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते भगवतो सन्तिके पब्बज्जं लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

"यो खो, सुभद्द, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनयं आकङ्खति पब्बज्जं [B.126] आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता" ति।

"सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मि धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति

अतः इसी में प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ (सभी प्रकार के) श्रमण (बाहुल्येन) उपलब्ध होते हैं। दूसरे आचार्यों के मतों में ऐसे श्रमण नहीं मिलते। (सुञ्ञा परप्पवादा)। सुभद्र! मेरे इस धर्मविनय को मानने वाले भिक्षु यदि ठीक ढंग से धर्माराधना करें तो इस लोक में कभी ज्ञानियों अभाव न रहे।

"सुभद्र! उनतीस वर्ष की आयु में मैं 'क्या कुशल है'— इस बात की खोज में जब निकला था, तब से आज इकावन वर्ष हुए।

'न्याययुक्त (तर्कसंगत=तर्क की कसौटी पर खरा उतरने वाला आर्य सत्य) धर्म एक अंश में भी शुद्ध, मेरे बताये धर्म से अन्य कोई धर्म नहीं है। अन्य धर्मों में न कोई प्रथम कोटि का श्रमण मिलता है, न द्वितीय....तृतीय....एवं न चतुर्थ कोटि का श्रमण ही मिलता है। दूसरों के मत तो श्रमणों) से शून्य हैं। मेरा तो यही कहना है कि मेरे बताये धर्म के अनुसार यदि कोई आराधना करता रहे तो यह पृथ्वी अर्हतों (ज्ञानियों) से कभी शून्य न हो।"

सुभद्र की प्रव्रज्या—८८. भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर, वह सुभद्र परिव्राजक भगवान् से विनयपूर्वक यह बोला— "आश्चर्य है, भन्ते!....पूर्ववत्....भिक्षुसङ्घ की शरण में जाता हूँ। क्या ही अच्छा हो भन्ते! मैं भगवान् से प्रवज्या एवं उपसम्पदा पा जाऊँ।"

"सुभद्र! मेरे धर्म विनय में (प्रव्रज्या—दीक्षाप्राप्ति का) यह विशेष नियम है कि पहले किसी अन्य धर्म में दीक्षित परिव्राजक यदि मेरे धर्म में दीक्षित होना चाहता है तो उसे चार महीने तक प्रतीक्षा करते हुए विशेष नियमों के साथ रहना पड़ता है। इन महीनों के बीत जाने के बाद, यदि भिक्षु उसके व्यवहार से सन्तुष्ट हों तो वे उसे भिक्षु होने के लिये प्रव्रज्या देंगे उपसम्पदा देंगे। यहाँ मेरा प्रत्येक प्रव्रज्याकांक्षी में भेद करना सबको विदित है।"

"यदि, भन्ते! आप के धर्मविनय यह विशेष नियम है— कि....पूर्ववत्....तो मैं चार मास नहीं चार

उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय; अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया'' ति।

[N.118] अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''तेनहानन्द, सुभद्दं पब्बाजेही'' ति।''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो सुभद्दो परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''लाभा वो, आवुसो आनन्द; सुलद्धं वो, आवुसो आनन्द, ये [R.153] एत्थ सत्थु सम्मुखा अन्तेवासिकाभिसेकेन अभिसित्ता'' ति। अलत्थ खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा सुभद्दो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव --यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि।''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा सुभद्दो अरहतं अहोसि। सो भगवतो पच्छिमो सक्खिसावको अहोसी ति॥

पञ्चमो भाणवारो॥

तथागतस्सपच्छिमावाचा

[R.154] ८९. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''सिया खो पनानन्द, तुम्हाकं एवमस्स—'अतीतसत्थुकं पावचनं। नत्थि नो सत्था' ति। न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं।

वर्ष तक भी प्रतीक्षा कर सकता हूँ। चार वर्ष बीतने के बाद ही भिक्षु मुझे प्रव्रज्या उपसम्पदा देंगे– यही मेरे लिये हर्ष की बात होगी।"

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आदेश दिया कि "सुभद्र को प्रव्रजित (दीक्षाहेतु व्यवस्था) करो।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया।

तब सुभद्र परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द से यों कहा– "आयुष्मन् आनन्द! तुम्हें बहुत अधिक लाभ मिला है, तुम्हें बहुत अच्छा सुयोग मिला है कि तुम सब शास्ता के सम्मुख अन्तेवासी (=शिष्य) के रूप में अभिषिक्त हो चुके हो।"

सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से प्रव्रज्या पायी, उपसम्पदा पायी। उपसम्पन्न होने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् सुभद्र....आत्मसंयमी होकर साधना करते हुए शीघ्र ही, जिसके लिये कुलपुत्र....प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफल को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, साधना में रत रहे। अन्त में ये सुभद्र भी ज्ञानियों में से एक हुए। ये सुभद्र भगवान् सबसे अन्तिम (=पश्चिम) साक्षात् श्रावक (सक्खिसावक[1]) हुए।।

पञ्चम भाणवार समाप्त।।

तथागत की अन्तिम वाणी (देशना)

८९. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा– (१) "आनन्द! सम्भवतः तुम्हें यह लगे– 'यह वचन तो अतीत शास्ता (चले गये गुरु) का है, (अब) हमारा कोई शास्ता नहीं है।' आनन्द! ऐसा विचार

---

१. अट्ठकथा के अनुसार 'सक्खिसावक' का अर्थ है– जो भगवान् के रहते (परिनिर्वाण से पूर्व) उनके सम्मुख ही अर्हत् प्राप्त कर ले।

***विशेष :** ये सुभद्र परिव्राजक अञ्ञासिकोण्डञ्ञ (धर्मचक्रप्रवर्तन के समय बने पाँच भिक्षुओं में एक) स्थविर के सहोदर भ्राता थे– ऐसा अट्ठकथाकार बतलाते हैं।*

यो वो, आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था। [B.127] यथा खो पनानन्द, एतरहि भिक्खू अञ्ञमञ्ञं आवुसोवादेन समुदाचरन्ति, न खो ममच्चयेन एवं समुदाचरितब्बं। थेरतरेन, आनन्द, भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गोत्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु 'भन्ते' ति वा 'आयस्मा' ति वा समुदाचरितब्बो। आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतु। छन्नस्स, आनन्द, भिक्खुनो ममच्चयेन ब्रह्मदण्डो दातब्बो'' ति।

''कतमो पन, भन्ते, ब्रह्मदण्डो'' ति?

''छन्नो, आनन्द, भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो न ओवदितब्बो न अनुसासितब्बो'' ति।

९०. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे, एकभिक्खुस्सा पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, [R.155] भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि, [N.119] न मयं सक्खिम्हा भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं' '' ति। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। दुतियं पि खो भगवा....पे०....ततियं पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे, एकभिक्खुस्सा पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि, न मयं सक्खिम्हा भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं' '' ति। ततियं पि खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे, सत्थुगारवेन पि न पुच्छेय्याथ। सहायको पि, भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू'' ति। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं।

मन में न लाना। मैंने जो तुम्हें अब तक धर्म और विनय के जो उपदेश किये हैं प्रज्ञप्त किये हैं, वही मेरे बाद, तुम्हारे शास्ता (गुरु) होंगे। (२) आनन्द! भिक्षु जैसे आज कल (मेरे सामने) एक दूसरे को 'आयुष्मन्' कहकर सम्बोधन करते हैं, मेरे परिनिर्वाण के बाद, ऐसा न करें। अपितु आनन्द! स्थविर भिक्षु अपनी अपेक्षा नये भिक्षु को नाम, गोत्र या 'आयुष्मन्' कहकर सम्बोधन करें और नये भिक्षु अपने से अपेक्षाकृत 'स्थविर' को 'भन्ते' या 'आयुष्मन्' कहकर सम्बोधन करें। (३) इच्छा हाने पर सङ्घ मेरे बाद छोटे–छोटे (क्षुद्र–अनुक्षुद्र) शिक्षापदों (भिक्षुनियमों) को छोड़ दे। (४) और आनन्द! मेरे बाद छन्न नामक भिक्षु को ब्रह्मदण्ड करना चाहिये।''

''भन्ते! यह 'ब्रह्मदण्ड' क्या है?''

''आनन्द! छन्न भिक्षु अन्य भिक्षुओं को जो कुछ भी कहे; परन्तु भिक्षुओं को उसके उत्तर में न कुछ बोलना चाहिये, न कुछ अनुशासन या आदेश ही करना चाहिये।''

९०. तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया— ''भिक्षुओ! यदि तुम में किसी एक को भी बुद्ध, धर्म या सङ्घ, मार्ग या उपाय के विषय में कोई सन्देह हो, आकांक्षा हो, शङ्का हो तो उसका अभी मुझसे पूछकर निराकरण कर लो। बाद में तुम्हें यह पश्चात्ताप न हों कि 'शास्ता हमारे सम्मुख भी थे, परन्तु उनसे हम कुछ पूछ न सके'।'' भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर सभी भिक्षु चुप रहे। (किसी ने कुछ नहीं पूछा।) भगवान् ने दूसरी बार भी....तीसरी बार भी....चुप रहे। तब भगवान् ने भिक्षुओं से कहा–''तुम में से

अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! एवं पसन्नो अहं, भन्ते, इमस्मिं भिक्खुसङ्घे, नत्थि एकभिक्खुस्सा पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा" ति।

"पसादा खो त्वं, आनन्द, वदेसि। ञाणमेव हेत्थ, आनन्द, तथागतस्स। नत्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्सा पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा। इमेसं हि, आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिमको भिक्खु सो सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो" ति।

[B.128, R.156] ९१. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"हन्द दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो—वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथा" ति। अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

परिनिब्बुतकथा

९२. अथ खो भगवा पठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतियज्झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि।

[N.120] अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—"परिनिब्बुतो, भन्ते अनुरुद्ध, भगवा" ति।

कोई भिक्षु स्वयं मुझसे सङ्कोच करता हो तो अपने साथी की सहायता से पूछ कर अपना सन्देह निवृत्त कर ले।" भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर भी सभी भिक्षु चुप रहे।

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान् से यों निवेदन करने लगे— "भन्ते! आज मुझे इस सङ्घ के प्रति यह देखकर अत्यन्त श्रद्धा हो रही है कि इस (इतने बड़े) भिक्षुसङ्घ में एक भी भिक्षु ऐसा नहीं है जिसे बुद्ध, धर्म, सङ्घ, मार्ग या उपाय के विषय में कोई शङ्का, सन्देह या वैमत्य (मतभेद) हो।"

"आनन्द! तुम तो श्रद्धापूर्वक ऐसा कह रहे हो; परन्तु तथागत इसे प्रत्यक्ष जानते हैं कि इस भिक्षुसङ्घ में उपस्थित एक भी भिक्षु को बुद्ध, धर्म, सङ्घ, मार्ग या आचरण के विषय में कोई भी, शङ्का, सन्देह, आकांक्षा या वैमत्य नहीं है। इन पाँच सौ भिक्षुओं में पश्चिमक (सबसे अन्त में प्रव्रज्या प्राप्त) भिक्षु भी स्रोतआपन्न, दुर्गति में न पड़ने वाला, नियत सम्बोधि प्राप्त करने वाला होगा।"

९१. तब भगवान् ने अन्तिम उपदेश किया— "भिक्षुओ! सभी संस्कार व्यय-स्वभाव वाले (नाश वाले) हैं अतः उनके लिये न दौड़कर उनसे छुटकारा पाने के लिये अप्रमाद (सावधानता) पूर्वक प्रयत्न करो।" यही तथागत की अन्तिम वाणी (उपदेश) है।

परिनिर्वाण

९२. तब भगवान् प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए। फिर प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए। ...तृतीय ध्यान को....। ....चतुर्थ ध्यान को....। ...आकाशानन्त्यायतन को....। ...विज्ञानानन्त्यायतन को....। ....आकिञ्चन्यायतन को....। ....नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को....। .... संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हुए।

''नावुसो आनन्द, भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो'' ति।

अथ खो भगवा सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतियज्झाना वुट्ठहित्वा पठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतियज्झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि।

९३. परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, महाभूमिचालो अहोसि भिंसनको सलोमहंसो। देवदुन्दुभियो च फलिंसु। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना, ब्रह्मा [R.157] सहम्पति इमं गाथं अभासि—

''सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं। [B.129]
यत्थ एतादिसो सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो।
तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो'' ति॥

९४. परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि—

''अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो'' ति।

९५. परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि—

तब आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा— ''क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये?'' ''नहीं, आयुष्मन् आनन्द! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए। वे तो संज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति (सभी ध्यानों से ऊपर की समाधि) से समापन्न हैं।''

तब भगवान् प्रतिलोम क्रम से संज्ञावेदयितनिरोधसमापत्ति से उठ कर पुनः नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हुए। फिर वे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से उठकर ....। ....आकिञ्चन्यायतन....। ....विज्ञानानन्त्यायतन....। ....आकाशानन्त्यायतन....। ....चतुर्थ ध्यान....। ....तृतीय ध्यान....। ...द्वितीय ध्यान....। ....प्रथम ध्यान को....। द्वितीय ध्यान को....। तृतीय ध्यान को....। ....चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए। वे चतुर्थ ध्यान से उठने के अनन्तर (तत्काल ही) परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

९३. भगवान् के परिनिर्वृत हाने के साथ ही भीषण, लोमहर्षक महान् भूकम्प हुआ। दिव्य दुन्दुभियाँ बज उठीं। (क)

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही, ब्रह्मा सहम्पति ने यह गाथा कही—

''संसार के सभी लोभ (एक न एक दिन) जीवन की ऊँचाई से (नीचे की तरफ) गिरेंगे ही। जबकि लोक में ऐसे अद्वितीय पुरुष बलप्राप्त तथागत शास्ता बुद्ध भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।'' (ख)

९४. भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही—

'अरे! सभी संस्कार (= उत्पन्न वस्तुएँ) उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। जो उत्पन्न होकर नष्ट (निरुद्ध) होते हैं, उनका उपशान्त रहना ही सुख है। (ग)

"नाहु अस्सासपस्सासो, ठितचित्तस्स तादिनो।
अनेजो सन्तिमारब्भ, यं कालमकरी मुनि॥
"असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो चेतसो अहू" ति॥

९६. परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि–

[N.121] "तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं।
सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते" ति॥

९७. परिनिब्बुते भगवति, ये ते तत्थ भिक्खू अवीतरागा अप्पेकच्चे बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति–"अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो [R.158] परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो" ति। ये पन ते भिक्खू वीतरागा ते सता सम्पजाना अधिवासेन्ति–"अनिच्चा वत सङ्खारा, तं कुतेत्थ लब्भा" ति।

९८. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो भिक्खू आमन्तेसि–"अलं, आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। ननु एतं, आवुसो, भगवता पटिकच्चेव अक्खातं–'सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो'। ते कुतेत्थ, आवुसो, लब्भा। यं तं जातं भूतं सङ्खतं [B.130] पलोकधम्मं तं वत मा पलुज्जी ति नेतं ठानं विज्जति। देवता, आवुसो, उज्झायन्ती" ति।

---

९५. भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही, आयुष्मान् अनुरुद्ध ने यह गाथा कही–

"स्थिरचित्त तथागत को अब श्वास–प्रश्वास नहीं रहा। शान्ति के लिये, बिना किसी कम्पन के, मुनि ने यह देहपात किया।।

अनासक्त चित्त से मुनि ने देवताओं को शान्त किया। तैल के न रहने पर दीपक के निर्वाण (बुझना) की तरह मुनि की चित्तविमुक्ति हो गी।।" (घ)

९६. भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही, आयुष्मान् आनन्द ने यह गाथा कही–

"उस सर्वविधरूपसम्पन्न तथागत के परिनिर्वृत होने पर भयानक रोमहर्ष हुआ।।" (ङ)

९७. भगवान् के परिनिवृत होने पर वहाँ उपस्थित कुछ भिक्षु, जिनका राग पूर्णतः क्षीण नहीं हो पाया था, अपनी भुजाएँ पकड़–पकड़ कर रोने लगे, भूमि पर पछाड़ खा–खा कर गिरने लगे, वहीं लोट–पोट हाते हुए यह कह–कहकर बिलखने लगे कि भगवान् बहुत जल्दी चले गये! सुगत बहुत शीघ्र कालकवलित हो गये! हमारा धर्मचक्षु (धर्ममार्गोपदेशक) हम से बहुत शीघ्र बिछुड़ गया! परन्तु जो भिक्षु वीतराग थे वे स्मृति–सम्प्रजन्य के साथ यही विचार कर भगवान् के वियोग के लिये अपने को सन्तोष देने लगे कि "ये संस्कार तो सर्वथा अनित्य हैं, उनका सातत्य किसे कब सुलभ रहा है!"

९८. तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को समझाना प्रारम्भ किया– "रहने दो, भिक्षुओ! अधिक शोक–विलाप न करो। आयुष्मानो! भगवान् ने तो यह पहले ही कह दिया था– 'सभी प्रिय वस्तुओं से एक न एक दिन वियोग होना ही है, उनसे अन्यथाभाव होना ही है। वे सदा हमें कैसे मिलती रहेंगी'। जो कुछ भी उत्पन्न है, संस्कृत (कृत्रिम) है विनाशशील है वह एक न एक दिन नष्ट न हो– यह कैसे सम्भव है! हम अपनी बात छोड़ें। भगवान् के परिनिर्वाण से तो इस समय देवता भी खिन्न हैं।"

"कथम्भूता पन, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो देवता मनसि करोती" ति?

"सन्तावुसो आनन्द, देवता आकासे पथवीसञ्ञिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टान्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो' ति। सन्तावुसो आनन्द, देवता पथविया पथवीसञ्ञिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो' ति। या पन ता देवता वीतरागा ता सता सम्पजाना अधिवासेन्ति—'अनिच्चा सङ्खारा, तं कुतेत्थ लब्भा' " ति। अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो आयस्मा च आनन्दो तं रत्तावसेसं धम्मिया कथाय वीतिनामेसुं।

९९. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"गच्छावुसो आनन्द, कुसिनारं पविसित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेहि—'परिनिब्बुतो, वासेट्ठा, भगवा। यस्स दानि कालं मञ्ञथा' " ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो [R.159] अनुरुद्धस्स पटिस्सुत्वा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय अत्तदुतियो कुसिनारं पाविसि। तेन खो पन समयेन कोसिनारका मल्ला सन्धागारे सन्निपतिता होन्ति तेनेव करणीयेन। [N.122] अथ खो आयस्मा आनन्दो येन कोसिनारकानं मल्लानं सन्धागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेसि—"परिनिब्बुतो, वासेट्ठा, भगवा। यस्स दानि कालं मञ्ञथा" ति। इदमायस्मतो आनन्दस्स वचनं सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतोदुक्खसमप्पिता अप्पेकच्चे केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खु लोके अन्तरहितो' ति।

(आनन्द ने पूछा—) "भन्ते! आप अनुरुद्ध उन देवताओं को कैसी स्थिति में देख रहे हैं?"

"आयुष्मन् आनन्द! हैं वहाँ कुछ ऐसे भी देवता जो भगवान् के वियोग में आकाश को पृथ्वी समझ कर वहाँ अपने शिर के बाल बिखेरकर, बाँह पकड़कर रो रहे हैं, कटे वृक्ष की तरह गिर रहे हैं, इधर उधर लोट–पोट हो रहे हैं और कह रहे हैं कि– 'भगवान् इतना शीघ्र क्यों चले गये! सुगत इतना शीघ्र क्यों लुप्त हो गये! धर्मचक्षु इतना शीघ्र क्यों अन्तर्हित हो गया'। आयुष्मन् आनन्द! इस पृथ्वी पर भगवान् के दर्शन हेतु आगत देवताओं में से भी कुछ अवीतराग अपने बाल बिखेर कर....अन्तर्हित हो गया! ....। इस तरह आयुष्मान् अनुरुद्ध एवं आयुष्मान् आनन्द ने अवशिष्ट रात्रिपर्यन्त धार्मिक कथाएँ कहते–सुनते वह समय बिताया।

९९. तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने आयुष्मान् आनन्द से कहा– "आयुष्मन् आनन्द! जाओ और कुशीनारा में प्रवेश कर वहाँ के निवासी मल्लों से कहा– 'वासिष्ठो! भगवान् का परिनिर्वाण हो गया है, अब जैसा लोग उचित समझें।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर आनन्द ने, आयुष्मान् अनुरुद्ध को उत्तर देते हुए, प्रातःकाल ही तय्यार होकर पात्र–चीवर ले, एकाकी ही कुशीनारा में प्रविष्ट हुए। उस समय कुशीनारा के प्रायः सभी मल्ल किसी कार्यविशेष से कुशीनारा के पञ्चायत–भवन में एकत्र थे। तब आयुष्मान् आनन्द उस पञ्चायत–भवन गये और वहाँ पहुँचकर उन एकत्र मल्लों से कहा– "वासिष्ठो! भगवान् परिनिर्वृत हो गये हैं।

२४. बुद्धसरीरपूजा

[B.131] १००. अथ खो कोसिनारका मल्ला पुरिसे आणापेसुं—"तेन हि, भणे, कुसिनारायं गन्धमालं च सब्बं च ताळावचरं सन्निपातेथा" ति। अथ खो कोसिनारका मल्ला गन्धमालं च सब्बं च ताळावचरं पञ्च च दुस्सयुगसतानि आदाय येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं येन भगवतो सरीरं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डलमाळे पटियादेन्ता एकदिवसं वीतिनामेसुं।

अथ खो कोसिनारकानं मल्लानं एतदहोसि—"अतिविकालो खो अज्ज भगवतो सरीरं झापेतुं। स्वे दानि मयं भगवतो सरीरं झापेस्सामा" ति। अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डलमाळे पटियादेन्ता दुतियं पि दिवसं वीतिनामेसुं.... ततियं पि दिवसं वीतिनामेसुं.... चतुत्थं पि दिवसं वीतिनामेसुं.... पञ्चमं पि दिवसं वीतिनामेसुं.... छट्ठं पि दिवसं वीतिनामेसुं।

[R.160] अथ खो सत्तमं दिवसं कोसिनारकानं मल्लानं एतदहोसि—"मयं भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता दक्खिणेन दक्खिणं नगरस्स हरित्वा बाहिरेन बाहिरं दक्खिणतो नगरस्स भगवतो सरीरं झापेस्सामा" ति।

१०१. तेन खो पन समयेन अट्ठ मल्लपामोक्खा सीसंन्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था

अब आप लोग जैसा उचित समझें।" आयुष्मान् आनन्द से यह सुनकर वहाँ एकत्र मल्ल, मल्लपुत्र, मल्लों की सास एवं बहुएँ सभी दुःखी हो....पूर्ववत्....धर्मचक्षु बहुत शीघ्र अन्तर्हित हो गये।

२४. बुद्धशरीर–पूजा

१००. तब कुशीनारा के मल्लों ने कुछ पुरुषों को आज्ञा दी– "तो, भाइयो! तुम जाओ, और कुशीनारा से एकत्र हो सकने योग्य सभी गन्ध–द्रव्य (घृत चन्दन आदि), माल्य एवं वाद्य एकत्र करो।" तब कुशीनारा के वे पुरुष कुशीनारा में (प्राप्य) सभी गन्धद्रव्य, मालाएँ एवं वाद्ययन्त्र तथा पाँच सौ दुशालों को लेकर जहाँ उपवत्तन (वर्तमान–माथा कुँअर) शालवन था, जहाँ भगवान् का शरीर रखा हुआ ता; वहाँ पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने भगवान् के शरीर का नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गन्ध-विलेपन से सत्कार करते, गौरव करते, मानते–पूजते, रंग–बिरंगे वस्त्रों का वितान (चँदवा) बनाते हुए, मण्डप बनाते समग्र दिन बिता दिया।

तब कुसीनारा के उन मल्लों को यह विचार हुआ– "आज तो भगवान् के शरीर की दाहक्रिया के लिये बहुत कुसमय (विकाल) हो गया। अब कल यह दाह–संस्कार होगा।" तब दूसरे दिन भी कुशीनारा वासी उन मल्लों ने भगवान् के शरीर नृत्य, गीत, वाद्य....पूर्ववत्....अब कल यह दाह-क्रिया होगी। तीसरा दिन भी...चतुर्थ दिन भी...पञ्चम दिन भी...षष्ठ दिन भी...दाह–संस्कार होगी।"

तब सातवें दिन कुसीनारा मल्लों ने विचार किया– "हम भगवान् के शरीर को नृत्य, गीत वाद्य से...मानते–पूजते हुए दक्षिणदिशा से बाहर ही बाहर जाकर नगर की दक्षिण दिशा में ले जाकर इस शरीर का दाह–संस्कार करें।"

१०१. उस समय उन मल्लों के आठ प्रमुख पुरुष शिर से स्नान कर नये वस्त्र पहन कर "हम

"मयं भगवतो सरीरं उच्चारेस्सामा" ति न सक्कोन्ति उच्चारेतुं। अथ खो कोसिनारका [N.123] मल्ला आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोचुं—"को नु खो, भन्ते अनुरुद्ध, हेतु, को पच्चयो, येनिमे अट्ठ मल्लपामोक्खा सीसंन्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था, 'मयं भगवतो सरीरं उच्चारेस्सामा' ति, न सक्कोन्ति उच्चारेतुं" ति?

"अञ्ञथा खो, वासेट्ठा, तुम्हाकं अधिप्पायो, अञ्ञथा देवतानं अधिप्पायो" ति।

"कथं पन, भन्ते, देवतानं अधिप्पायो" ति?

"तुम्हाकं खो, वासेट्ठा, अधिप्पायो—'मयं भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि [B.132] वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता दक्खिणेन दक्खिणं नगरस्स हरित्वा बाहिरेन बाहिरं दक्खिणतो नगरस्स भगवतो सरीरं झापेस्सामा' ति; देवतानं खो, वासेट्ठा, अधिप्पायो—'मयं भगवतो सरीरं दिब्बेहि नच्चेहि गीतेहि वादितेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं एत्थ भगवतो सरीरं झापेस्सामा'" ति।

"यथा, भन्ते, देवतानं अधिप्पायो तथा होतू" ति।

१०२. तेन खो पन समयेन कुसिनारा याव सन्धिसमलसङ्कटीरा जण्णुमत्तेन [R.161] ओधिना मन्दारपुप्फेहि सन्थता होति। अथ खो देवता च कोसिनारका च मल्ला भगवतो सरीरं दिब्बेहि च मानुसकेहि च नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा मज्झेन मज्झं

भगवान् के शरीर को उठायेंगे"— यह निश्चय कर उसे उठाने लगे। परन्तु (बहुत शक्ति लगाने पर भी) वे उसे उठा न सके। तब उन मल्लों ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा— "भन्ते अनुरुद्ध! क्या कारण है, क्या प्रत्यय है कि हम आठ मल्ल पुरुष शीर्ष स्नान कर नये वस्त्र पहनकर शुद्धता से मिलकर. पूरी शक्ति लगाकर चाह कर भी इस शरीर को उठा नहीं पा रहे हैं?

"वासिष्ठो! तुम्हारे मन में कुछ और है, देवताओं के मन में कुछ और। तब यह शरीर तुम से कैसे उठेगा?"

"भन्ते! देवताओं के मन में क्या है?"

"वासिष्ठो! तुम चाहते हो कि हम भगवान् के शरीर को नगर के दक्षिण दक्षिण ले जाकर बाहर बाहर नगर के दक्षिण तरफ भगवान् के शरीर का दाह–संस्कार करें। उधर देवताओं का विचार है कि हम भगवान् के शरीर को दिव्य नृत्य, वाद्य....के साथ सत्कार करते....मानते–पूजते नगर के उत्तर उत्तर ले जाकर उत्तर द्वार से नगर में प्रवेश कर नगर के मध्य में घुमाते हुए पूर्व द्वार से निकल कर पूर्व दिशा की ओर मुकुटबन्धन नामक मल्लों के चैत्य (देवस्थान) में भगवान् के शरीर का दाह–संस्कार करें।"

(मल्लों ने कहा–) "तो, भन्ते! देवताओं का चाहा हुआ (इच्छा) ही पूर्ण हो।"

१०२. उस समय कुशीनारा के घरों के सन्धि स्थान, मैला फेंकने के स्थान, कूड़ा फेंकने के स्थान के साथ गली–सड़कों पर सभी जगह घुटने भर ऊँचे मन्दारव (पारिजात) फूलों की राशि बिछ गयी। तब देवता और कुशीनारा के मल्ल– सबने मिलकर भगवान् के शरीर को गीत, वाद्य, माला, गन्धद्रव्यों से सत्कार करते....मानते–पूजते, उत्तर से उत्तर नगर में ले जाकर, सम्पूर्ण नगर में घुमा कर

नगरस्स हरित्वा पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं एत्थ च भगवतो सरीरं निक्खिपिंसु।

१०३. अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचु—"कथं मयं, भन्ते आनन्द, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जामा" ति?

"यथा खो, वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं" ति।

[N.124] "कथं पन, भन्ते आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ती' ति?

"रञ्ञो, वासेट्ठा, चक्कवत्तिस्स सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेन्ति, अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति, विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति। एतेन उपायेन पञ्चहि युगसतेहि रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं वेठेत्वा, आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा, सब्बगन्धानं चितकं करित्वा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं झापेन्ति। चातुमहापथे रञ्ञो चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति। एवं खो, वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे [B.133] पटिपज्जन्ति। यथा खो, वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं। चातुमहापथे तथागतस्स थूपो कातब्बो। एत्थ ये मालं वा गन्धं वा चुण्णकं वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्तं वा पसादेस्सन्ति, तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

१०४. अथ खो कोसिनारका मल्ला पुरिसे आणापेसुं—"तेन हि, भणे, मल्लानं [R.162] विहतं कप्पासं सन्निपातेथा" ति। अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरं अहतेन

फिर पूर्वी द्वार से निकल कर नगर की पूर्व दिशा में मुकुटबन्धन नामक मल्लों के चैत्य पर लाकर रख दिया।

१०३. तब कुशीनारा के मल्लों ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा– "अब, आयुष्मान् आनन्द! भगवान् के शरीर का दाह–संस्कार कैसे करें?"

"वासिष्ठो! जैसे चक्रवर्ती राजाओं के शरीर का दाह–संस्कार किया जाता है, वैसे ही आप भगवान् के इस शरीर का भी दाह–संस्कार करें।"

"तो, भन्ते! चक्रवर्ती राजा के शरीर का दाह–संस्कार कैसे किया जाता है?

"वासिष्ठो! राजा चक्रवर्ती शरीर को लोग नये (अहत) वस्त्र से लपेटते हैं, अहत वस्त्र से लपेटकर धुनी हुई रूई से लपेटते हैं, यों, इस रूई और कपड़े को पाँच सौ बार लपेटकर राजा चक्रवर्ती के शरीर को तैल से भरी आयस (सोने, ताम्बे या लोहे की) द्रोणी (नौका की तरह बनी हुई) में रखकर, दूसरी खाली द्रोणी से ढककर, सभी (चन्दन आदि) गन्ध–द्रव्यों की चिता पर रखकर उसे जलाते हैं। जलाने के बाद (नगर के) बड़े चौराहे पर उस चक्रवर्ती का स्तूप (स्मृति–स्तम्भ) बनाते हैं। वासिष्ठो! जैसे राजा चक्रवर्ती के शरीर के साथ ये मरणोत्तर सत्कार–क्रियाएँ की जाती हैं, वैसे ही तथागत के शरीर के साथ भी वही मरणोत्तर सत्कार–क्रियाएँ पूर्ण करनी चाहिये। चौराहे पर तथागत का स्तूप बनना चाहिये। उस पर जो श्रद्धालु जन माला, गन्ध, द्रव्य, गन्धचूर्ण आदि चढ़ायेंगे, उसको प्रणाम करेंगे, मन से श्रद्धा करेंगे उनके लिये यह सत्कर्म बहुत काल तक सुख देने वाला तथा हितकारक होगा।"

१०४. तब उन कुशीनारावासी मल्लों ने कुछ पुरुषों को आज्ञा दी– "तो, आप लोग जाओ और

वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेसुं, विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेसुं। एतेन उपायेन पञ्चहि युगसतेहि भगवतो सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा सब्बगन्धानं चितकं करित्वा भगवतो सरीरं चितकं आरोपेसुं।

२५. महाकस्सपत्थेरवत्थु

१०५. तेन खो पन समयेन आयस्मा महाकस्सपो पावाय कुसिनारं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो आजीवको कुसिनाराय मन्दारपुप्फं गहेत्वा पावं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति। अद्दसा खो आयस्मा महाकस्सपो तं आजीवकं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वा तं आजीवकं एतदवोच—"अपावुसो, अम्हाकं सत्थारं जानासी" ति?

"आमावुसो, जानामि—अज्ज सत्ताहपरिनिब्बुतो समणो गोतमो। ततो मे इदं मन्दारपुप्फं गहितं" ति। तत्थ ये ते भिक्खू अवीतरागा अप्पेकच्चे बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, [N.125] छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो' ति। ये पन ते भिक्खू वीतरागा ते सता सम्पजाना अधिवासेन्ति—'अनिच्चा सङ्खारा, तं कुतेत्थ लब्भा' " ति।

१०६. तेन खो पन समयेन सुभद्दो नाम वुड्ढपब्बजितो तस्सं परिसायं [B.134] निसिन्नो होति। अथ खो सुभद्दो वुड्ढपब्बजितो ते भिक्खू एतदवोच—"अलं, आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन। उपद्दुता च होम—'इदं वो कप्पति,

---

धुनी हुई रूई एकत्र करके लाओ।" (यों रूई एकत्र करने के बाद) कुशीनारा के मल्लों ने भगवान् के शरीर को नये वस्त्र से लपेटा, नये वस्त्र से लपेटने के बाद उसे धुनी हुई रूई से लपेटा। इस पद्धति (उपाय) से पाँच सौ दुहरे बन्धनों से भगवान् के शरीर को लपेटकर, ताम्बे या सोने या लोहे की तैल भरी द्रोणी में उस शरीर को रखकर ऊपर से वैसा ही द्रोणी पर ढक्कन ढककर, सभी गन्धमय द्रव्यों (काष्ठों) की चिता बनाकर, उस पर भगवान् के शरीर (वाली द्रोणी) को रख दिया।

२५. महाकाश्यप स्थविर

१०५. उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महासङ्घ के साथ पावा नगरी से कुशीनारा के रास्ते पर चारिका कर रहे थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप एक स्थान पर, रास्ते से हटकर एक तरफ किसी वृक्ष के नीचे बैठे थे। उस समय कोई आजीवक कुशीनारा से मन्दारपुष्प लेकर पावा की तरफ रास्ते से जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस आजीवक को दूर रास्ते पर आते हुए देखा। देखकर (पास आने पर) उस आजीवक से पूछा— "आयुष्मन्! क्या तुम हमारे शास्ता के विषय में भी कुछ जानते हो? "हाँ , आयुष्मन्! जानता हूँ। श्रमण गौतम को परिनिर्वृत हुए आज सात दिन बीत चुके हैं। वहीं से मुझे यह मन्दार-पुष्प मिला है।" यह सुनकर वहाँ जो भिक्षु अवीतराग थे वे....कहाँ मिलने वाला है!

१०६. उस समय बुढ़ापे में श्रमण बना सुभद्र नामक कोई भिक्षु बैठा था। उस बुढ़ापे में श्रमण बने सुभद्र ने उन शोकाकुल भिक्षुओं को यों समझाना प्रारम्भ किया— "आयुष्मानो! शोक न करो, न किसी प्रकार का विलाप ही करो। (तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये कि) अब हम उस महाश्रमण (!) से

इदं वो न कप्पती' ति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम, यं न इच्छिस्साम न तं करिस्सामा'' ति। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो भिक्खू आमन्तेसि—''अलं, आवुसो, मा [R.163] सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। ननु एतं, आवुसो, भगवता पटिकच्चेव अक्खातं—'सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो। तं कुतेत्थ, आवुसो, लब्भा। यं तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं तं तथागतस्सा पि सरीरं मा पलुज्जी ति नेतं ठानं विज्जती' '' ति।

१०७. तेन खो पन समयेन चत्तारो मल्लपामोक्खा सीसंन्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था—''मयं भगवतो चितकं आळिम्पेस्सामा'' ति न सक्कोन्ति आळिम्पेतुं। अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोचुं—''को नु खो, भन्ते अनुरुद्ध, हेतु, को पच्चयो, येनिमे चत्तारो मल्लपामोक्खा सीसंन्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था—'मयं भगवतो चितकं आळिम्पेस्सामा' ति न सक्कोन्ति आळिम्पेतुं'' ति?

''अञ्ञथा खो, वासेट्ठा, देवतानं अधिप्पायो'' ति।

''कथं पन, भन्ते, देवतानं अधिप्पायो'' ति?

''देवतानं खो, वासेट्ठा, अधिप्पायो—'अयं आयस्मा महाकस्सपो पावाय कुसिनारं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि, न ताव भगवतो चितको पज्जलिस्सति यावायस्मा महाकस्सपो भगवतो पादे सिरसा न वन्दिस्सती' '' ति।

''यथा, भन्ते, देवतानं अधिप्पायो तथा होतू'' ति।

१०८. अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन कुसिनारा मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं

छुटकारा पा गये हैं। उसने तो हमें सभी समय यह कहकर त्रस्त कर रखा था कि– 'यह करो, यह न करो! यह कर्म तुम्हें उचित है, यह कर्म उचित नहीं।' अब हम जो चाहेंगे वह करेंगे; जो न चाहेंगे वह न करेंगे।'' तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने अपने उन साथी भिक्षुओं को समझाया– ''आयुष्मानो! शोक या विलाप न करो! आयुष्मानो! भगवान् ने तो पहले ही कह दिया था कि सभी प्रिय वस्तुओं से एक न एक दिन वियोग होने वाला है ही। .... वे निरन्तर कहाँ उपलब्ध रहने वाली हैं! जो शरीर संस्कृत है....वह नष्ट न हो– यह सम्भव नहीं है।''

१०७. उस समय शिर तक स्नान किये नये वस्त्र धारण किये कुशीनारा के चार मल्ल प्रमुख ये सोचकर कि हम भगवान् की चिता जलायेंगे', परन्तु वे प्रत्येक सम्भव उपाय करके भी उस चिता को नहीं जला पा रहे थे। तब कुशीनारा के उन मल्लो ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा– ''भन्ते! यहाँ क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि ये चार मल्ल प्रमुख सिर से स्नान कर,नये वस्त्र पहन कर (पूर्णतः परिशुद्ध हो) चिता जलाने का निश्चय कर (उनके द्वारा सब तरह का प्रयास करने पर भी) वे चिता नहीं जला पा रहे हैं?

''वासिष्ठो! देवताओं का कुछ दूसरा ही विचार है।''

''भन्ते! देवताओं का क्या विचार है?''

''वासिष्ठो! देवताओं का विचार है कि आयुष्मान् महाकाश्यप बड़े भिक्षुसङ्घ के साथ पावा से कुशीनारा की ओर रास्ते में आ रहे हैं। यह चिता तब तक नहीं जलना प्रारम्भ होगी जब तक वे आयुष्मान् महाकाश्यप भगवान् के चरणों में अपना मस्तक नहीं रख देंगे।

(मल्ल बोले–) ''ठीक है, भन्ते! तब वही होगा जो देवता चाहते हैं।''

येन भगवतो चितको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं [N.126] पणामेत्वा तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं कत्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दि। तानि पि खो पञ्चभिक्खुसतानि एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं [R.164] कत्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दिंसु। वन्दिते च पनायस्मता महाकस्सपेन तेहि च पञ्चहि भिक्खुसतेहि सयमेव भगवतो चितको पज्जलि।

१०९. झायमानस्स खो पन भगवतो सरीरस्स यं अहोसि छवी ति वा चम्मं [B.135] ति वा मंसं ति वा न्हारू ति वा लसिका ति वा, तस्स नेव छारिका पञ्ञायित्थ न मसि; सरीरानेव अवसिस्सिंसु। सेय्यथापि नाम सप्पिस्स वा तेलस्स वा झायमानस्स नेव छारिका पञ्ञायति न मसि, एवमेव भगवतो सरीस्स झायमानस्स यं अहोसि छवी ति वा चम्मं ति वा मंसं ति वा न्हारू ति वा लसिका ति वा तस्स नेव छारिका पञ्ञायित्थ न मसि, सरीरानेव अवसिस्सिंसु। तेसं च पञ्चन्नं दुस्सयुगसतानं द्वेव दुस्सानि न डय्हिंसु यं च सब्बअब्भन्तरिमं यं च बाहिरं। दड्ढे च खो पन भगवतो सरीरे अन्तलिक्खा उदकधारा पातुभवित्वा भगवतो चितकं निब्बापेसि। उदकसालतो पि अब्भुन्नमित्वा भगवतो चितकं निब्बापेसि। कोसिनारका पि मल्ला सब्बगन्धोदकेन भगवतो चितकं निब्बापेसुं। अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरानि सत्ताहं सन्धागारे सत्तिपञ्जरं करित्वा धनुपाकारं परिक्खिपापेत्वा नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करिंसु गरुं करिंसु मानेसुं पूजेसुं।

२६. सरीरधातुविभजनं

११०. अस्सोसि खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदहिपुत्तो—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदहिपुत्तो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं

---

१०८. तब आयुष्मान् महाकाशयप, जहाँ कुशीनारा में मल्लों का मुकुटबन्धन चैत्य था, जहाँ कि भगवान् की चिता रखी हुई थी, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर चीवर को एक कन्धे पर कर, दोनों हाथ जोड़कर, चिता को तीन बार परिक्रमा कर उसमें के चरण खोल कर उन्हें शिर से वन्दना की। उन पाँच सौ भिक्षुओं ने भी एक कन्धे पर चीवर कर करबद्ध प्रणाम कर चिता को तीन बार प्रदक्षिणा कर भगवान् के चरणों में शिर से वन्दना की। आयुष्मान् महाकाश्यप एवं पाँच सौ भिक्षुओं द्वारा प्रणाम करते ही चिता जल उठी।

१०९. चिता में रखे भगवान् के उस शरीर के जल उठने पर उसमें जो छवि (झिल्ली), चर्म, मांस, स्नायु या लसिका थीं वे सब ऐसी जल गयीं कि न उन की राख दिखायी दी न कोयला ही; जैसे कि जलते हुए घी या तैल की न तो राख (छारिका) दिखायी पड़ती है, न कोयला (मसी), इसी तरह....। भगवान् के शरीर पर लपेटे गये उन एक हजार वस्त्रों में से केवल सब से पहला और सब से अन्त का ही वस्त्र नहीं जल पाया। यों, भगवान् का शरीर जल जाने पर, आकाश से दिव्य जलधारा गिरने लगी जिससे वह चिता ठण्ढी हो गयी। उदकशाला से भी जलने स्वयं उठकर चिता को ठण्डा किया। इधर कुशीनारा के मल्लों ने भी सर्वगन्धमिश्रित जल से उस चिता को ठण्ढा किया। तब कुशीनारा के मल्लों ने भगवान् के शरीर की अस्थियों (के अवशेष) को संस्थागार में भाला और धनुष हाथ में लिये पुरुषों का घेरा (वृत्त) बनाकर उसके संरक्षण में रखा। और नृत्य, गीत, वाद्य...द्वारा सत्कार करते रहे....मानते पूजते रहे।

२६. स्तूपनिर्माणहेतु अस्थ्यवशेष का विभजन

११०. राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने सुना कि भगवान् कुशीनारा में परिनिर्वृत हो गये हैं,

पाहेसि—"भगवा पि खत्तियो, अहं पि खत्तियो, अहं पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं, अहं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामी" ति। (१)

अस्सोसुं खो वेसालिका लिच्छवी—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। [R.165] अथ खो वेसालिका लिच्छवी कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—"भगवा पि खत्तियो, मयं पि खत्तिया, मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, मयं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामा" ति। (२)

[N.127] अस्सोसुं खो कपिलवत्थुवासी सक्या—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" [B.136] ति। अथ खो कपिलवत्थुवासी सक्या कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—"भगवा अम्हाकं ञातिसेट्ठो, मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, मयं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामा" ति। (३)

अस्सोसुं खो अल्लकप्पका बुलयो—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। अथ खो अल्लकप्पका बुलयो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—"भगवा पि खत्तियो, मयं पि खत्तिया, मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, मयं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामा" ति। (४)

अस्सोसुं खो रामगामका कोळिका—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। अथ खो रामगामका कोळिका कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—"भगवा पि खत्तियो, मयं पि खत्तिया, मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, मयं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामा" ति। (५)

अस्सोसि खो वेट्ठदीपको ब्राह्मणो—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। अथ खो वेट्ठदीपको ब्राह्मणो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि—"भगवा पि खत्तियो, अहं पिस्मि ब्राह्मणो, अहं पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं, अहं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्साम" ति। (६)

अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला—"भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो" ति। अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि—"भगवा पि खत्तियो, मयं पि खत्तिया,

---

तो उसने कुशीनारा के मल्लों के पास अपने दूत भेजकर उनसे कहलाया– "भगवान् भी जाति से क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ, (अत:) मुझे भी भगवान् के शरीर का अस्थ्यवशेष चाहिये। मैं भी भगवान् के उस अस्थ्यवशेष पर स्तूप (स्मृतिस्तम्भ) बनवाकर महोत्सव करवाऊँगा।" (१)

वैशाली के लिच्छवियों ने सुना...पूर्ववत्....महोत्सव करेंगे। (२)

कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना....तो उन्होंने कुशीनारो के मल्लों के पास दूत भेजकर कहलवाया– 'भगवान् हमारे कुल में श्रेष्ठ थे हम भी भगवान् के शरीर पर....महोत्सव करेंगे। (३)

अल्लकप्प के बुलियों ने सुना....महोत्सव करेंगे। (४)

रामग्रामवासी कोलियों ने सुना....महोत्सव करेंगे। (५)

वेठद्वीप के ब्राह्मण ने सुना....महोत्सव करूँगा। (६)

पावा के मल्लों ने सुना....महोत्सव करायेंगे। (७)

मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, अहं पि भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामी'' ति। (७)

१११. एवं वुत्ते, कोसिनारका मल्ला ते सङ्घे गणे एतदवोचुं—''भगवा अम्हाकं [R.166] गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो, न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं'' ति।

११२. एवं वुत्ते, दोणो ब्राह्मणो ते सङ्घे गणे एतदवोच—

''सुणन्तु भोन्तो मम एकवाचं, अम्हाकं बुद्धो अहु खन्तिवादो। [B.137]
न हि साधु यं उत्तमपुग्गलस्स, सरीरभागे सिया सम्पहारो॥
सब्बेव भोन्तो सहिता समग्गा, सम्मोदमाना करोमट्ठभागे॥ [N.128]
वित्थारिका होन्तु दिसासु थूपा, बहू जना चक्खुमतो पसन्ना'' ति॥

११३. ''तेन हि, ब्राह्मण, त्वञ्ञेव भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सविभत्तं विभजाही'' ति। ''एवं, भो'' ति खो दोणो ब्राह्मणो तेसं सङ्घानं गणानं पटिस्सुत्वा भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सविभत्तं विभजित्वा ते सङ्घे गणे एतदवोच—''इमं मे भोन्तो तुम्बं ददन्तु, अहं पि तुम्बस्स थूपं च महं च करिस्सामी'' ति। अदंसु खो ते दोणस्स ब्राह्मणस्स तुम्बं।

११४. अस्सोसुं खो पिप्पलिवनिया मोरिया—''भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो'' ति। अथ खो पिप्पलिवनिया मोरिया कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—''भगवा पि खत्तियो, मयं पि खत्तिया, मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं, भगवतो सरीरानं थूपं च महं च करिस्सामा'' ति।

---

१११. (उन दूतों द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, कुशीनारा के मल्लों ने उन सभी सङ्घराज्यों एवं गणराज्यों (के दूतों) को यह उत्तर दिया– ''भगवान् हमारी ग्रामसीमा में परिनिर्वृत हुए हैं, अतः हम भगवान् के शरीर का यह अस्थ्यवशेष किसी अन्य को नहीं देंगे। (अपितु हम ही इस अस्थ्यवशेष पर स्तूप बनाकर इसका सत्कार...मान, पूजा करेंगे।) (८)

११२. (मल्लों द्वारा) ऐसा कहे जाने पर द्रोण ब्राह्मण ने उन सभी सङ्घों एवं गणों के प्रतिनिधियों से निवेदन किया–

''आप सभी मेरी एक नम्र वाणी (विनति) सुनें– हमारे बुद्ध तो क्षान्ति (क्षमा=सहिष्णुता) वादी थे। (उनके लिये या उनके कारण) हम लोगों का यह उचित कर्म नहीं होगा कि उनके इस अस्थ्यवशेष के लिये हम लोग परस्पर कलह या द्वन्द्व करें। यह हमारी सज्जनता पर एक प्रकार का कलङ्क ही होगा।

''अतः आप सब लोक मिल–बैठकर प्रसन्नतापूर्वक कोई उचित निर्णय करते हुए इसके आठ भाग इस तरह कर लें कि प्रदेश के सभी भागों में ये स्तूप बन सकें और उपासकगण भविष्य में भी इनके दर्शन कर पुण्यलाभ कर सकें। उस पुण्य के प्रभाव से वे सुखी (प्रसन्न) रह सकें।''

११३. ''तो, ब्राह्मण! आप ही इन अस्थ्यवशेषों का यथोचित विभाजन कर दें।'' ''अच्छा, जी!'' कहकर उस द्रोण ब्राह्मण ने भगवान् के उन अस्थ्यवशेषों को आठ समान भागों में सुविभक्त कर उन उपस्थित सङ्घों एवं गणों के प्रतिनिधियों से कहा– ''आप इस तूम्बे को मुझे दे दें, मैं इस तूम्बे पर स्मृतिस्तम्भ बनाकर इसका सत्कार....मान, पूजा करूँगा।''

११४. (इस घटना–अस्थ्यवशेष के विभाजन के बाद) पिप्पलीवन के मौर्यों ने सुना कि भगवान् का परिनिर्वाण हो गया है, तो उन पिप्पलीवन के मौर्यों ने अपने दूत यह कर दौड़ाये– ''भगवान् भी क्षत्रिय

''नत्थि भगवतो सरीरानं भागो। विभत्तानि भगवतो सरीरानि। इतो अङ्गारं हरथा'' ति। ते ततो अङ्गारं हरिंसु।

धातुथूपपूजा

११५. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजगहे भगवतो सरीरानं थूपं [R.167] च महं च अकासि। वेसालिका पि लिच्छवी वेसालियं भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। कपिलवत्थुवासी पि सक्या कपिलवत्थुस्मिं भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। अल्लकप्पका पि बुलयो अल्लकप्पे भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। रामगामका [B.138] पि कोळिया रामगामे भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। वेट्ठदीपको पि ब्राह्मणो वेट्ठदीपे भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकासि। पावेय्यका पि मल्ला पावायं भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। कोसिनारका पि मल्ला कुसिनारायं भगवतो सरीरानं थूपं च महं च अकंसु। दोणो पि ब्राह्मणो तुम्बस्स थूपं च महं च अकासि। पिप्पलिवनिया पि मोरिया पिप्पलिवने अङ्गारानं थूपं च महं च अकंसु। इति अट्ठ सरीरथूपा, नवमो, तुम्बथूपो, दसमो अङ्गारथूपो। एवमेतं भूतपुब्बं ति।

[N. 129] ११६. अट्ठदोणं चक्खुमतो सरीरं, सत्तदोणं जम्बुदीपे महेन्ति।
एकं च दोणं पुरिसवरुत्तमस्स, रामगामे नागराजा महेति॥
एका हि दाठा तिदिवेहि पूजिता, एका पन गन्धारपुरे महीयति।
कालिङ्गरञ्ञो विजिते पुनेकं, एकं पन नागराजा महेति॥

थे, हम भी क्षत्रिय है; हम भी चाहते हैं भगवान् अस्थ्यवशेष (के कुछ अंश).... हम उन पर स्मृतिस्तम्भ बनाकर उसका सत्कार....मान, पूजा करते रहें।''

(मल्लों ने उत्तर दिया–) ''अस्थ्यवशेष का तो विभाजन हो चुका है, अब उसमें से कुछ नहीं बचा है। हाँ, ये चिता के बुझे हुए कोयले अवश्य अवशिष्ट हैं, इन्हें आप चाहें तों ले जा सकते हैं।'' वे (मौर्य) वहाँ से कोयले ही ले गये।

धातुस्तूपपूजा

११५. तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने राजगृह में,..... वैशाली के लिच्छवियों ने वैशाली में....। कपिलवस्तु के शाक्यों ने कपिलवस्तु में....। अल्लकप्पक बुलियों ने अल्लकप्प में....। रामग्राम के कोलियों ने रामग्राम में....। वेठ द्वीप के ब्राह्मण ने वेठद्वीप में....पावा नगरी के वासी मल्लों ने पावा नगरी में....। तथा कुसीनारा के मल्लों ने कुसीनारा में भगवान् के अस्थ्यवशेषों पर स्तूप बनवाकर महोत्सव किया। द्रोण ब्राह्मण ने तूम्बे पर और पिप्पलीवन के मौर्यों ने अङ्गारों पर ही स्तूप बनवा कर उत्सव मनाया।

यों भगवान् के अस्थ्यवशेषों पर बने आठ स्तूप और एक तुम्बस्तूप तथा एक अङ्गारस्तूप– ये दश स्तूप (८+१+१=१०) पूर्वकाल में थे।

११६. चक्षुष्मान् (मार्गोपदेशक तथागत) के अस्थ्यवशेष आठ द्रोणों (इस माप के घड़ों) में भर कर रखे गये। इनमें सात द्रोणों की जम्बुद्वीप में पूजा होती है। और उस पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामग्राम में नागराजा द्वारा पूजित होता है।

(भगवान् के उन्हीं अस्थ्यवशेषों में से) एक दाढा स्वर्ग में देवताओं द्वारा पूजित होती है, एक गान्धारपुर में, एक कलिङ्गराज के देश में तथा एक दाढा नागराज द्वारा पूजित होती है।

तस्सेव तेजेन अयं वसुन्धरा, आयागसेट्ठेहि मही अलङ्कता।
एवं इमं चक्खुमतो सरीरं, सुसक्कतं सक्कतसक्कतेहि॥
देविन्दनागिन्दनरिन्दपूजितो, मनुस्सिन्दसेट्ठेहि तथेव पूजितो। [R.168]
तं वन्दथ पञ्जलिका लभित्वा, बुद्धो हवे कप्पसतेहि दुल्लभो'' ति॥
चत्तालीस समा दन्ता, केसा लोमा च सब्बसो।
देवा हरिंसु एकेकं, चक्कवाळपरम्परा[१] ति॥

महापरिनिब्बानसुत्तं निट्ठितं ततियं॥

उन्हीं के तेज से यह धन-धान्य समलंकृत पृथ्वी अलंकृत है। इस तरह चक्षुष्मान् (=बुद्ध) का यह शरीर सत्कृतों से भी सत्कृत पुरुषों द्वारा भलीभाँति सत्कृत (पूजित=सम्मानित) हुआ।

वह तो देवेन्द्रों, नागेन्द्रों एवं नरेन्द्रों तथा समाज में प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा भी पूजित है। उस को सामने पाकर, उसे हाथ जोड़कर प्रणाम करो; क्योंकि बुद्ध का होना या मिलना सौ कल्प में भी दुर्लभ है।

उसके चालीस दाँत, केश, लोभ— सभी को एक-एक कर देवताओं ने ब्रह्माण्डों में सर्वत्र पहुँचा दिया॥

तृतीय महापरिनिर्वाणसूत्र समाप्त॥

---

१. ये पाँचों गाथाएँ त्रिपिटिक-संग्रह के बाद ताम्रपर्णी द्वीप वासी महास्थविरों ने यहाँ प्रक्षिप्त की हैं— ऐसा अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष का मन्तव्य है। —सं०।

४. महासुदस्सनसुत्तं

[N.130, B.139, R.169] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं परिनिब्बानसमये। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच–"मा, भन्ते, भगवा इमस्मिं खुद्दकनगरके उज्जङ्गलनगरके साखानगरे परिनिब्बायि। सन्ति, भन्ते, अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथिदं– चम्पा, राजगहं, सावत्थि, साकेतं, कोसम्बी, बाराणसी। एत्थ भगवा परिनिब्बायतु। एत्थ बहू खत्तियमहासाला ब्राह्मणमहासाला गहपतिमहासाला तथागते अभिप्पसन्ना। ते तथागतस्स सरीरपूजं करिस्सन्ती" ति।

"मा हेवं, आनन्द, अवच; मा हेवं, आनन्द, अवच–'खुद्दकनगरकं उज्जङ्गलनगरकं साखानगरकं' ति।

१. कुसावती राजधानी

२. "भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो नाम अहोसि खत्तियो मुद्धावसित्तो चातुरन्तो [R.170] जनपदत्थावरियप्पत्तो। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी अहोसि, पुरत्थिमेन च पच्छिमेन च द्वादसयोजनानि आयामेन, उत्तरेन च दक्खिणेन च सत्तयोजनानि वित्थारेन। कुसावती, आनन्द, राजधानी इद्धा चेव अहोसि, फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च। सेय्यथापि, आनन्द, देवानं आळकमन्दा

---

४. महासुदर्शनसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) कुसीनारा के उपवत्तन मल्लों के शालवन में परिनिर्वाण के समय दो युगल शाल वृक्षों के बीच में लेटे हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् लेटे हुए थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया– "भन्ते ! भगवान् इस क्षुद्र नगले में, जंगली नगले में, साधारण से दीखने वाले छोटे से नगले में परिनिर्वाण न लें। भन्ते! और भी बहुत से नगर हैं; जैसे– चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौसाम्बी और वाराणसी। इन में से किसी भी नगर में भगवान् परिनिर्वाण स्वीकार करें। यहाँ बहुत से क्षत्रिय धनपति हैं, ब्राह्मण गृहपति हैं, गृहपति धनपति भी हैं, जो तथागत में श्रद्धा रखते हैं। वे तथागत के शरीर की पूजा तथा सत्कार करेंगे।"

भगवान् बोले– "आनन्द! ऐसा न कहो, ऐसा न बोलो कि यह (उपवत्तन मल्लों का शालवन) क्षुद्र, जंगली या साधारण सा दीखने वाला, (वह भी स्वतन्त्र नहीं) किसी दूसरे छोटे नगले से जुड़ा हुआ नगला है।"

१. कुशावती राजधानी

२. "आनन्द! पहले कभी महासुदर्शन नामक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था, जिसने समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर सभी नगरों एवं जनपदों में दृढ़ शासन से स्थिरता प्रदान की थी। आनन्द! उस राजा महासुदर्शन की यह (कुसीनारा) कुशावती राजधानी थी। जो कि पूर्व–पश्चिम की दिशाओं में आयाम (लम्बाई) में बारह योजन एवं उत्तर–दक्षिण दिशा में विस्तार (चौड़ाई) में सात योजन थी। आनन्द! यह

नाम राजधानी इद्धा चेव होति फीता च बहुजना आकिण्णयक्खा च सुभिक्खा च; एवमेव खो, आनन्द, कुसावती राजधानी इद्धा चेव अहोसि फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च। कुसावती, आनन्द, राजधानी दसहि सद्देहि अविवित्ता अहोसि [N.131, B.140] दिवा चेव रत्तिं च, सेय्यथिदं— हत्थिसद्देन अस्ससद्देन रथसद्देन भेरिसद्देन मुदिङ्गसद्देन वीणासद्देन गीतसद्देन सम्मसद्देन पाणिताळसद्देन सङ्खसद्देन अस्नाथ पिवथ खादथा ति दसमेन सद्देन।

"कुसावती, आनन्द, राजधानी सत्तहि पाकारेहि परिक्खित्ता अहोसि—एको पाकारो सोवण्णमयो, एको रूपियमयो, एको वेळुरियमयो, एको फलिकमयो, एको लोहितङ्कमयो, एको मसारगल्लमयो, एको सब्बरतनमयो। कुसावतिया, आनन्द, राजधानिया चतुन्नं वण्णानं द्वारानि अहेसुं—एकं द्वारं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं [R.171] फलिकमयं। एकेकस्मिं द्वारे सत्त एसिका निखाता अहेसुं तिपोरिसङ्गा तिपोरिसनिखाता द्वादसपोरिसा उब्बेधेन—एका एसिका सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया, एका लोहितङ्कमया, एका मसारगल्लमया, एका सब्बरतनमया।

"कुसावती, आनन्द, राजधानी सत्तहि तालपन्तीहि परिक्खित्ता अहोसि—एका तालपन्ति सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया, एका लोहितङ्कमया, एका मसारगल्लमया, एका सब्बरतनमया। सोवण्णमयस्स तालस्स सोवण्णमयो खन्धो अहोसि, रूपियमयानि पत्तानि च फलानि च। रूपियमयस्स तालस्स रूपियमयो खन्धो अहोसि,

---

कुशावती राजधानी सब तरह से समृद्ध, उन्नत, अच्छी तरह बसी हुई, जनाकीर्ण एवं सुभिक्षसम्पन्न थी। आनन्द! जैसे देवों की राजधानी सर्वथा समृद्ध, उन्नत.... है, उसी तरह कुशावती भी सर्वतः समृद्ध....सुभिक्षसम्पन्न थी। आनन्द! कुशावती राजधानी में ये दस शब्द दिन-रात निरन्तर सुनायी देते रहते थे; जैसे— हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की किङ्किणीक का बजते रहना, भेरी, मृदङ्ग, वीणा, गीत, लयबद्ध हाथों की तालियों, शङ्खों के शब्द एवं 'स्नान करो, खाओ, पीओ'— आदि सम्मान व स्वागत-सूचक शब्द।

"आनन्द! कुशावती नगरी सात प्राकारों (ऊँची दीवारों) से घिरी हुई थी; जिन में पहला सुवर्ण, दूसरा रजत, तीसरा वैदूर्यमणि, चौथा स्फटिक, पाँचवाँ पद्मराग (=लोहितङ्क), छठा मसारगल्ल (मणिरत्न के समान ही मँहगा पत्थर) तथा सातवाँ सभी रत्नों से मिश्रित बना था। आनन्द! कुसावती राजधानी के चार वर्णों के द्वार थे; जिनमें एक सुवर्ण से, एक रजत से, एक वैदूर्यमणि से तथा एक स्फटिक से निर्मित था। प्रत्येक द्वार में सात खम्भे (एसिका) गड़े हुए थे, जो तीन पोरसा (एक पोरसा=पाँच हाथ) खड़े, तीन पोसरा गड़े हुए सब मिलाकर एक एक बारह पोरसा लम्बे थे। उनमें एक खम्भा सोने का, एक चान्दी का, एक वैदूर्य का, एक स्फटिक का, एक पद्मराग का, एक मसारगल्ल का तथा एक सर्वरत्नमिश्रित था।

"आनन्द! वह कुशावती राजधानी सात ताड़पंक्तियों से घिरी हुई थी— जिन में एक ताड़पंक्ति सोने की, दूसरी चान्दी की, तीसरी वैदूर्यमणि की, चौथी स्फटिक की, पाँचवीं पद्मराग की, छठीं मसारगल्ल की एवं सातवीं सर्वरत्नमिश्रित थी। (१) सुवर्णनिर्मित ताड़वृक्ष का स्कन्ध सोने का था तो उसके पत्ते और फल चान्दी के थे। (२) रजतनिर्मित ताड़ वृक्ष का स्कन्ध रजत का था तो उसके पत्ते और फल सोने के बने थे। (३) वैदूर्यनिर्मित ताड़ का स्कन्ध वैदूर्य मणि से बना था तो उसके पत्ते और फल स्फटिक के थे। (४) स्फटिकनिर्मित ताड़वृक्ष का स्कन्ध स्फटिकमणि से बना था और उसके पत्ते और फल वैदूर्यमणि के बने थे। (५) पद्मराग मणि से निर्मित ताड़वृक्ष का स्कन्ध यदि पद्मरागमणि का था तो उसके पत्ते और

सोवण्णमयानि पत्तानि च फलानि च। वेळुरियमयस्स तालस्स वेळुरियमयो खन्धो अहोसि, फलिकमयानि पत्तानि च फलानि च। फलिकमयस्स तालस्स फलिकमयो खन्धो अहोसि, वेळुरियमयानि पत्तानि च फलानि च। लोहितङ्कमयस्स तालस्स लोहितङ्कमयो खन्धो अहोसि, मसारगल्लमयानि पत्तानि च फलानि च। मसारगल्लमयस्स तालस्स मसारगल्लमयो खन्धो अहोसि, लोहितङ्कमयानि पत्तानि च फलानि च। सब्बरतनमयस्स तालस्स सब्बरतनमयो खन्धो अहोसि, सब्बरतनमयानि पत्तानि च फलानि च। तासं खो पनान्द, तालपन्तीनं वातेरितानं सद्दो अहोसि वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च। सेय्यथापि, आनन्द, पञ्चङ्गिकस्स तूरियस्स सुरियस्स सुविनीतस्स सुप्पटिताळितस्स सुकुसलेहि समन्नाहतस्स सद्दो होति वग्गु च रजनीयो च खमनीयो च मदनीयो च; एवमेव खो, आनन्द, तासं तालपन्तीनं वातेरितानं सद्दो अहोसि [B.141, .R.172] वग्गु च रजनीयो च खमनीयो च मदनीयो च। ये खो पनानन्द, तेन [N.132] समयेन कुसावतिया राजधानिया धुत्ता अहेसुं सोण्डा पिपासा, ते तासं तालपन्तीनं वातेरितानं सद्देन परिचारेसुं।

२. चक्करतनं

३. "राजा, आनन्द, महासुदस्सनो सत्तहि रतनेहि समन्नागतो अहोसि चतूहि च इद्धीहि। कतमेहि सत्तहि? इधानन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुरहोसि सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं। दिस्वा रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'सुतं खो पनेतं—यस्स रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुभवति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं, सो होति राजा चक्कवत्ती ति। अस्सं नु खो अहं राजा चक्कवत्ती' ति?

फल मसारगल्ल से निर्मित थे। (६) मसारगल्ल से बने ताड़ वृक्ष का स्कन्ध यदि मसारगल्ल से बना था तो उसके पत्ते और फल पद्मरागमणि के बने थे। (७) सभी रत्नों के मिश्रण से निर्मित ताड़वृक्ष यदि सर्वरत्नों के मिश्रण से बना था तो उसके पत्ते और फल भी सभी रत्नों के मिश्रण से ही बने थे। आनन्द! उस ताड़पंक्ति के वायु द्वारा कम्पित होने पर उनसे निकलने वाला शब्द अत्यधिक सुन्दर, प्रसन्नतादायक, प्रिय एवं मदनीय (मोहक) होता था। आनन्द! जैसे कोई वाद्य-विद्या में दक्ष पुरुष जब अच्छी तरह सजे हुए और ताल-सुर से मिलाये गये पाँच अङ्गों से युक्त वाद्य को बजाते हैं, तब उससे जो सुन्दर प्रसन्नतादायक, प्रिय एवं मोहक स्वर निकलता है, वैसे ही सुनने में सुमधुर शब्द उन ताड़पंक्तियों से भी निकल रहे थे। आनन्द! औरों की तो बात ही क्या! उस समय उस कुशावती राजधानी में जो गुण्डे, जुआरी या शराबी घूमते थे (जिन की साधारणतः वाद्यसङ्गीत सुनने में कोई रुचि नहीं होती) वे भी उन हवा से हिलती ताड़पंक्तियों से निकली मधुर ध्वनि के प्रभाव से नाचते-गाते, खेलते रहते थे।

२. चक्ररत्न

३." आनन्द! राजा महासुदर्शन के पास सातों रत्न एवं चारों ऋद्धियाँ थी। कौन से सात (रत्न)? यहाँ, आनन्द! राजा महासुदर्शन उपोसथ-पूर्णिमा की एक रात्रि को उपोसथ व्रत रखने का संकल्प कर जब अपने प्रासाद के सब से ऊपर के तल पर था तो उस के सामने सहस्रों अरों (दाँतों) वाला नाभि नेमि से युक्त तथा सर्वाकारपरिपूर्ण एक दिव्य चक्ररत्न प्रकट हुआ। उसे देखकर राजा के मन में ऐसा विचार

४. "अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा, वामेन हत्थेन सुवण्णभिङ्कारं गहेत्वा, दक्खिणेन हत्थेन चक्करतनं अब्भुक्किरि—'पवत्ततु भवं चक्करतनं, अभिविजिनातु भवं चक्करतनं' ति। अथ खो तं, आनन्द, चक्करतनं पुरत्थिमं [R.173] दिसं पवत्ति, अन्वदेव राजा महासुदस्सनो सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पनानन्द, पदेसे चक्करतनं पतिट्ठासि तत्थ राजा महासुदस्सनो वासं उपगच्छि सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पनानन्द, पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'एहि खो, महाराज; स्वागतं ते, महाराज; सकं ते, महाराज; अनुसास, महाराजा' ति। राजा महासुदस्सनो एवमाह—'पाणो न हन्तब्बो, अदिन्नं न आदातब्बं, कामेसु मिच्छा न [B.142] चरितब्बा, मुसा न भणितब्बा, मज्जं न पातब्बं। यथाभुत्तं च भुञ्जथा' ति। ये खो पनानन्द, पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते रञ्ञो महासुदस्सनस्स अनुयन्ता अहेसुं। अथ खो तं, आनन्द, चक्करतनं पुरत्थिमं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा दक्खिणं दिसं पवत्ति....पे०.... दक्खिणं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा पच्छिमं दिसं पवत्ति....पे०....पच्छिमं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा उत्तरं दिसं पवत्ति, अन्वदेव राजा महासुदस्सनो सद्धिं [N.133] चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पनानन्द, पदेसे चक्कतनं पतिट्ठासि तत्थ राजा महासुदस्सनो वासं उपगच्छि सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पनानन्द, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'एहि खो, महाराज; स्वागतं ते, महाराज; सकं ते, महाराज; अनुसास, महाराजा' ति। राजा महासुदस्सनो एवमाह—'पाणो न [R.174] हन्तब्बो, अदिन्नं न आदातब्बं, कामेसु मिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भणितब्बा, मज्जं न पातब्बं। यथाभुत्तं च भुञ्जथा' ति। ये खो पनानन्द, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते रञ्ञो महासुदस्सनस्स अनुयन्ता अहेसुं।

हुआ– "ऐसा सुना है कि जिस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय– जिसने शीर्षस्नान कर पूर्णिमा की रात्रि में उपोसथ व्रत का सङ्कल्प ले रखा हो, के सम्मुख सहस्र अरों वाला दिव्य चक्ररत्न प्रादूर्भूत होता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। क्या मैं भी चक्रवर्ती राजा होऊँगा?"

४. "आनन्द! तब वह महासुदर्शन राजा, आसन से उठ कर, चादर को एक कन्धे पर कर, बाँये हाथ में सोने की झारी लेकर, दाहिने हाथ से उस चक्ररत्न का अभिषेक करने लगा– "हे चक्ररत्न! आपका आगमन शुभ हो, आपकी विजय हो। तब आनन्द! वह चक्ररत्न पूर्व दिशा की तरफ चल पड़ा। राजा महासुदर्शन भी अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ उस के पीछे–पीछे चल पड़ा। आनन्द! जिस प्रदेश में वह चक्ररत्न ठहरता वहीं राजा भी अपनी सेना के साथ पड़ाव डाल देता। आनन्द! जो पूर्व दिशा के राजा थे वे राजा महासुदर्शन के पास आये, और बोले– 'महाराज! आपका स्वागत है। हम सब आपके अधीन हैं। महाराज! आप आज्ञा करें'। 'राजा महासुदर्शन ने यह कहा– 'आप लोगों को जीव–हत्या नहीं करनी चाहिये, दूसरे का न दिया हुआ नहीं लेना चाहिये, कामभोगों की आसक्ति में पड़कर मिथ्याचार नहीं करना चाहिये, मिथ्याभाषण नहीं करना चाहिये, मद्य नहीं पीना चाहिये तथा उचित भोगों का ही सेवन करना चाहिये'। आनन्द! इस प्रकार पूर्व दिशा का राजसमूह राजा महासुदर्शन का अनुवर्तक (अनुयन्ता=अधीन) हो गया। आनन्द! तब वह चक्ररत्न पूर्व दिशा के समुद्र में डुबकी लगाकर, वहाँ से निकल कर दक्षिण दिशा की तरफ चल पड़ा....पश्चिम दिशा की तरफ....उत्तर दिशा की तरफ चल पड़ा।

५. ''अथ खो तं, आनन्द, चक्करतनं समुद्दपरियन्तं पथविं अभिविजिनित्वा, कुसावतिं राजधानिं पच्चागन्त्वा, रञ्ञो महासुदस्सनस्स अन्तेपुरद्वारे अत्थकरणपमुखे अक्खाहतं मञ्ञे अट्ठासि, रञ्ञो महासुदस्सनस्स अन्तेपुरं उपसोभयमानं। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं चक्करतनं पातुरहोसि।

३. हत्थिरतनं

६. ''पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स हत्थिरतनं पातुरहोसि सब्बसेतो सत्तप्पतिट्ठो इद्धिमा वेहासङ्गमो उपोसथो नाम नागराजा। तं दिस्वा रञ्ञो महासुदस्सनस्स चित्तं पसीदि—'भद्दकं वत भो हत्थियानं, सचे दमथं उपेय्या' ति। अथ खो तं, आनन्द, हत्थिरतनं—सेय्यथापि नाम भद्दो हत्थाजानियो दीघरत्तं सुपरिदन्तो एवमेव—दमथं उपगच्छि। भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तमेव हत्थिरतनं वीमंसमानो पुब्बण्हसमयं अभिरुहित्वा समुद्दपरियन्तं पथविं अनुयायित्वा, कुसावतिं राजधानिं पच्चागन्त्वा पातरासमकासि। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं हत्थिरतनं पातुरहोसि।

४. अस्सरतनं

[B.143] ७. ''पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स अस्सरतनं पातुरहोसि सब्बसेतो काळसीसो मुञ्जकेसो इद्धिमा वेहासङ्गमो वलाहको नाम अस्सराजा। तं दिस्वा रञ्ञो महा-
[R.175] सुदस्सनस्स चित्तं पसीदि—'भद्दकं वत भो अस्सयानं, सचे दमथं उपेय्या' ति। अथ खो तं, आनन्द, अस्सरतनं—सेय्यथापि नाम भद्दो अस्साजानियो दीघरत्तं सुपरिदन्तो

पीछे–पीछे राजा महासुदर्शन की चतुरङ्गिणी सेना थी। आनन्द! पृथ्वी के जिस भूभाग में वह चक्ररत्न ठहरा, वहीं राजा ने भी अपनी सेना के साथ पड़ाव डाला। ....वहाँ के राजा अनुवर्तक हुए।

५. ''आनन्द! तब वह चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर, कुशावती राजधानी में लौटकर, राजा महासुदर्शन के अन्तःपुर के द्वार के पास न्यायालय के आंगण में स्थिर (कीले में ठोका हुआ) सा कठोर हो गया। उससे राजा का अन्तःपुर अत्यधिक शोभायमान हुआ। इस प्रकार आनन्द! राजा महासुदर्शन को ऐसा चक्ररत्न प्रादुर्भूत हुआ। (१)

३. हस्तिरत्न

६. ''फिर, आनन्द! उस राजा महासुदर्शन को सर्वथा श्वेत महाबलशाली, ऋद्धिमान्, आकाश में भी विचरण करने वाला उपोसथ नाम का हस्तिराज 'हस्तिरत्न' के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। उसे देखकर राजा ने प्रसन्न चित्त से यों सोचा–'यह हाथी सवारी के लिये तो बहुत अच्छा है, यदि इसे कुछ सिखा लिया जाय।' परन्तु आनन्द! वह हस्तिरत्न तो पहले से उत्तम जाति का, बहुत दिनों से शिक्षित हुआ ही लगता था। एक बार आनन्द! वह राजा उस हाथी की परीक्षा लेने के लिये उस पर चढ़ा तो वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का चक्कर लगाकर प्रातराश के समय कुशावती राजधानी वापस लौट आया। आनन्द! राजा महासुदर्शन को ऐसा 'हस्तिरत्न' मिला। (२)

४. अश्वरत्न

७. ''फिर, आनन्द! उस राजा को एक सर्वथा श्वेत काले शिर एक मूंज के समान केशों वाला, ऋद्धिसम्पन्न, आकाशचारी बलाहक नाम का श्रेष्ठ अश्व 'अश्वरत्न' के रूप में मिला। उसे देखकर राजा....राजधानी वापस लौट आया। इस तरह, आनन्द! राजा महासुदर्शन को ऐसा 'अश्वरत्न' मिला। (३)

एवमेव दमथं उपगच्छि। भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तमेव अस्सरतनं [N.134] वीमंसमानो पुब्बण्हसमयं अभिरुहित्वा समुद्दपरियन्तं पथविं अनुयायित्वा कुसावतिं राजधानिं पच्चागन्त्वा पातरासमकासि। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं अस्सरतनं पातुहोसि।

५. मणिरतनं

८. ''पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स मणितरनं पातुरहोसि। सो अहोसि मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो सब्बाकारसम्पन्नो। तस्स खो पनानन्द, मणिरतनस्स आभा समन्ता योजनं फुटा अहोसि। भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तमेव मणिरतनं वीमंसमानो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा मणिं धजग्गं आरोपेत्वा रत्तन्धकारतिमिसाय पायासि। ये खो पनानन्द, समन्ता गामा अहेसुं ते तेनोभासेन कम्मन्ते पयोजेसुं दिवा ति मञ्ञमाना। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं मणिरतनं पातुरहोसि।

६. इत्थिरतनं

९. ''पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स इत्थिरतनं पातुरहोसि अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता नातिदीघा नातिरस्सा नातिकिसा नातिथूला नातिकाळिका नाच्चोदाता अतिक्कन्ता मानुसिवण्णं अप्पत्ता दिब्बवण्णं। तस्स खो पनानन्द, इत्थितरनस्स एवरूपो कायसम्फस्सो होति, सेय्यथापि नाम तूलपिचुनो वा कप्पासपिचुनो वा। तस्स खो पनानन्द, इत्थितरनस्स सीते उण्हानि गत्तानि होन्ति, [B.144] उण्हे सीतानि। तस्स खो पनानन्द, इत्थिरतनस्स कायतो चन्दनगन्धो वायति, मुखतो [R.176] उप्पलगन्धो। तं खो पनानन्द, इत्थिरतनं रञ्ञो महासुदस्सनस्स पुब्बुट्ठायिनी अहोसि

---

५. मणिरत्न

८. ''और फिर, आनन्द! राजा को मणिरत्न प्रादुर्भूत हुआ। वह शुभ्र, स्वच्छ, अच्छी जाति का, आठ पहलुओं वाला, अच्छा खरादा हुआ, देखने में प्रिय, सुन्दर, मोहक एवं सर्वाकारसम्पन्न वैदूर्य मणि था। आनन्द! उस मणिरत्न का प्रकाश (आभा) चारों तरफ एक योजन तक फैलती थी। आनन्द! राजा ने उस मणिरत्न की परीक्षा के विचार से, चतुरङ्गिणी सेना सजाकर, उस मणिरत्न को ऊँची लम्बी पताका में बाँधकर, काली अन्धेरी रात्रि में प्रस्थान किया। आनन्द! उस प्रस्थान के समय चारों और पड़ने वाले ग्रामों के निवासियों ने, उस मणिरत्न के प्रकाश से 'दिन हो गया'— ऐसा समझकर अपना–अपना दिवस–कृत्य प्रारम्भ कर दिया। आनन्द! राजा महासुदर्शन को ऐसा अद्भुतप्रकाश सम्पन्न 'मणिरत्न' प्रादुर्भूत हुआ। (४)

६. स्त्रीरत्न

९. ''फिर, आनन्द! उस राजा महासुदर्शन को एक ऐसा स्त्रीरत्न प्रादुर्भूत हुआ; जो सर्वथा अभिरूप, दर्शनीय, चित्त को लुभावनी, परम सौन्दर्यमयी, न अधिक लम्बी न अधिक नाटी, न अधिक दुबली न अधिक मोटी, न बहुत काली न अधिक उजली (गौरी–अवदात), मनुष्यों के वर्ण को अतिक्रान्त करने वाली परन्तु देवताओं की सुन्दरता से कुछ ही कम थी। आनन्द! उस श्रेष्ठ स्त्री की काया का स्पर्श ऐसा लगता था मानो मुलायम रूई या कपास का स्पर्श कर रहे हों। आनन्द! उस (स्त्री) का शरीर शीत ऋतु में उष्ण एवं ग्रीष्म ऋतु में शीतल रहता था। आनन्द! उसके समग्र शरीर से चन्दन की एवं मुख से कमल जैसी गन्ध निकलती थी। आनन्द! वह स्त्री राजा महासुदर्शन से पहले उठ जाती थी और उनके

पच्छानिपातिनी किङ्कारपटिस्साविनी मनापचारिनी पियवादिनी। तं खो पनानन्द, इत्थिरतनं राजानं महासुदस्सनं मनसा पि नो अतिचरि, कुतो पन कायेन! रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं इत्थिरतनं पातुरहोसि।

७. गहपतिरतनं

१०. "पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स गहपतिरतनं पातुरहोसि। तस्स [N.135] कम्मविपाकजं दिब्बचक्खु पातुरहोसि, येन निधिं पस्सति सस्सामिकं पि अस्सामिकं पि। सो राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अप्पोस्सुक्को त्वं, देव, होहि। अहं ते धनेन धनकरणीयं करिस्सामी' ति। भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तमेव गहपतिरतनं वीमंसमानो नावं अभिरुहित्वा मज्झे गङ्गाय नदिया सोतं ओगाहित्वा गहपतिरतनं एतदवोच—'अत्थो मे, गहपति, हिरञ्ञसुवण्णेना' ति। 'तेन हि, महाराज, एकं तीरं नावं उपेतू' ति। 'इधेव मे, गहपति, अत्थो हिरञ्ञसुवण्णेना' ति। अथ खो तं, आनन्द, गहपतिरतनं उभोहि हत्थेहि उदकं ओमसित्वा पूरं हिरञ्ञसुवण्णस्स कुम्भिं उद्धरित्वा राजानं महासुदस्सनं एतदवोच—'अलमेत्तावता, महाराज; कतमेत्तावता, महाराज; पूजितमेत्तावता, महाराजा' ति? [R.177] राजा महासुदस्सनो एवमाह—'अलमेत्तावता, गहपति। कतमेत्तावता, गहपति। पूजितमेत्तावता, गहपती' ति। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं गहपतिरतनं पातुरहोसि।

८. परिणायकरतनं

[B.145] ११. "पुन च परं, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स परिणायकरतनं पातुरहोसि पण्डितो

बाद सोती थी। राजा की प्रत्येक आज्ञा को सुनने के लिये प्रतिक्षण सन्नद्ध रहती थी। राजा के मनोनुकूल आचरण करने वाली तथा प्रियवादिनी थी। उस श्रेष्ठ स्त्री ने मन से भी राजा का कभी नहीं (अन्य पुरुष के प्रति राग प्रकट करते हुए) छोड़ा, शरीर से छोड़ने की तो बात ही क्या कही जाय! आनन्द! राजा....को ऐसा स्त्रीरत्न....। (५)

७. गृहपतिरत्न

१०. "फिर आनन्द! राजा महासुदर्शन को एक गृहपतिरत्न उत्पन्न हुआ। उसके प्रारब्धवश उसे दिव्य चक्षु उत्पन्न हुआ, जिससे वह स्वामित्व या बिना स्वामित्व वाले गड़े खजानों (निधि) को देख लेता था। वह (गृहपतिरत्न) राजा के पास जाकर बोला— 'राजन्! आप निश्चिन्त रहिये! मैं आपके लिये धन की इतनी व्यवस्था कर दूँगा कि उसके विना आपका बड़े से बड़ा कार्य भी कभी नहीं रुकेगा।' राजा ने उसकी परीक्षा हेतु नाव पर चढ़कर गङ्गा नदी के बीच धारा में जाकर उस गृहपतिरत्न से कहा— 'गृहपति! मुझे इसी समय सोने–चान्दी की आवश्यकता है।' आनन्द! तब गृहपति ने कहा— 'नाव को किसी किनारे पर ले चलें।' राजा ने कहा— 'नहीं, मुझे तो वह यहीं चाहिये।' आनन्द! तब वह गृहपतिरत्न दोनों हाथ जल में डालकर वहाँ से सोने–चान्दी से भरे घड़े निकाल राजा....से बोला— "राजन्! इतना पर्याप्त होगा कि और अधिक निकालूँ? इतने से आप का कार्य सम्पन्न हो जायगा? क्या इतने से आप सन्तुष्ट हैं?' राजा ने कहा— 'बस, गृहपति! इतना पर्याप्त है। मैं सन्तुष्ट हूँ।' यों आनन्द! उस राजा....को गृहपतिरत्न प्रादुर्भूत हुआ। (६)

८. परिणायकरत्न

११. "आनन्द! फिर उस राजा....को एक परिणायकरत्न (परामर्शदाता) प्रादूर्भूत हुआ; जोकि

वियत्तो मेधावी पटिबलो, राजानं महासुदस्सनं उपयापेतब्बं उपयापेतुं, अपयापेतब्बं अपयापेतुं, ठपेतब्बं ठपेतुं। सो राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अप्पोस्सुक्को त्वं, देव, होहि। अहमनुसासिस्सामी' ति। रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स एवरूपं परिणायकरतनं पातुरहोसि।

''राजा, आनन्द, महासुदस्सनो इमेहि सत्तहि रतनेहि समन्नागतो अहोसि।

९. चतुइद्धिसमन्नागतो महासुदस्सनो

१२. ''राजा, आनन्द, महासुदस्सनो चतूहि इद्धीहि समन्नागतो अहोसि। कतमाहि चतूहि इद्धीहि ? इधानन्द, राजा महासुदस्सनो अभिरूपो अहोसि दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो इमाय पठमाय इद्धिया समन्नागतो अहोसि। (१)

''पुन च परं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो दीघायुको अहोसि चिरट्ठितिको अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो इमाय दुतियाय इद्धिया समन्नागतो [N.136] अहोसि। (२)

''पुन च परं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो अप्पाबाधो अहोसि अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो इमाय ततियाय इद्धिया समन्नागतो अहोसि। (३)

''पुन च परं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो ब्राह्मणगहपतिकानं पियो अहोसि [R.178] मनापो। सेय्यथापि, आनन्द, पिता पुत्तानं पियो होति मनापो; एवमेव खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो ब्राह्मणगहपतिकानं पियो अहोसि मनापो। रञ्ञो पि, आनन्द, महासुदस्सनस्स ब्राह्मणगहपतिका पिया अहेसुं मनापा। सेय्यथापि, आनन्द, पितु पुत्ता पिया होन्ति मनापा; एवमेव खो, आनन्द, रञ्ञो पि महासुदस्सनस्स ब्राह्मणगहपतिका पिया अहेसुं मनापा। (४)

पण्डित कुशल, मेधावी, राजा का मनोवाञ्छित दिलाने या दूर हटाने तथा अभीप्सित को उपस्थित करने में सर्वथा समर्थ था। राजा....को ऐसा परिणायकरत्न प्रादुर्भूत हुआ। (७)

९. महासुदर्शन की चार ऋद्धियाँ

१२. ''और फिर, आनन्द! वह राजा चार ऋद्धियों से भी सम्पन्न था। किन चार ऋद्धियों से? (१) यहाँ, आनन्द! वह राजा....अन्य मनुष्यों की अपेक्षा अभिरूप (दर्शनीय), मनोरम (प्रासादिक), अत्यधिक चित्ताकर्षक रूपवर्ण वाला था।

(२) ''वह राजा.... दीर्घायु, अन्य पुरुषों की अपेक्षा चिरायु। राजा....इस ऋद्धि से सम्पन्न था।

(३) ''फिर आनन्द! वह राजा....नीरोग, स्वस्थ एवं खाये-पीये को सही ढंग से पचा लेने वाला था। अन्य पुरुषों से विशिष्ट न शीत न उष्ण (=समान) प्रकृति का था। आनन्द! राजा....इस तीसरी ऋद्धि से युक्त था।

(४) ''आनन्द! राजा....ब्राह्मण और गृहस्थ, सभी को प्रिय एवं आकर्षक था। आनन्द! वे ब्राह्मण तथा गृहस्थ भी राजा को प्रिय थे। आनन्द! जैसे पुत्र पिता को प्रिय एवं मोहक होते हैं, उसी तरह वे ब्राह्मण तथा गृहपति राजा को प्रिय थे।

"भूतपुब्बं, आनन्द, राजा महासुदस्सनो चतुरङ्गिनिया सेनाय उय्यानभूमिं निय्यासि। अथ खो, आनन्द, ब्राह्मणगहपतिका राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'अतरमानो, देव, याहि, यथा तं मयं चिरतरं पस्सेय्यामा' ति। राजा पि, आनन्द, महासुदस्सनो सारथिं आमन्तेसि—'अतरमानो, सारथि, रथं पेसेहि, यथा अहं ब्राह्मणगहपतिके चिरतरं पस्सेय्यं' ति। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो इमाय चतुत्थिया इद्धिया समन्नागतो अहोसि। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो चतूहि इद्धीहि समन्नागतो अहोसि।

१०. पोक्खरणी

१३. "अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं इमासु तालन्तरिकासु धनुसते धनुसते पोक्खरणियो मापेय्यं' ति।

"मापेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तासु तालन्तरिकासु धनुसते धनुसते पोक्खरणियो। ता खो पनानन्द, पोक्खरणियो चतुन्नं वण्णानं इट्ठकाहि चिता अहेसुं—एका इट्ठका सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया।

"तासु खो पनानन्द, पोक्खरणीसु चत्तारि चत्तारि सोपानानि अहेसुं चतुन्न वण्णानं—[R.179] एकं सोपानं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं फलिकमयं। [N.137] सोवण्णमयस्स सोपानस्स सोवण्णमया थम्भा अहेसुं, रूपियमया सूचियो च उण्हीसं च। रूपियमयस्स सोपानस्स रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च। वेळुरियमयस्स सोपानस्स वेळुरियमया थम्भा अहेसुं, फलिकमया सूचियो च उण्हीसं च। फलिकमयस्स सोपानस्स फलिकमया थम्भा अहेसुं, वेळुरियमया सूचियो च उण्हीसं च। ता खो पनानन्द, पोक्खरणियो द्वीहि वेदिकाहि परिक्खित्ता अहेसुं—एका वेदिका सोवण्णमया, एका रूपियमया। सोवण्णमयाय वेदिकाय सोवण्णमया थम्भा अहेसुं रूपियमया सूचियो च

"पहले कभी आनन्द! एक बार राजा....चतुरङ्गिणी सेना के साथ उद्यानभूमि की तरफ निकला। उस समय (मार्ग में) ब्राह्मण एवं गृहपतियों ने राजा से निवेदन किया– 'राजन्! आप शान्त होकर जाँय। हम आपकी सदा रक्षा करेंगे।' तब राजा ने सारथि से कहा– 'सारथि! निर्भय होकर रथ चलाओ। ये ब्राह्मण भी हमारे रक्षा–हेतु सन्नद्ध हैं।' यों, राजा....आनन्द! इस चतुर्थ ऋद्धि से सम्पृक्त था। आनन्द! राजा.... इन चार ऋद्धियों से समन्वागत था।

१०. पुष्करिणी

१३. "तब, आनन्द! राजा....को यह हुआ– "इन ताड़वृक्ष–पंक्तियों में खाली पड़ी जगहों पर सौ सौ धनुष् की दूरी पर एक एक पुष्करिणी बनवाऊँ।"

"आनन्द! राजा....ने उन ताड़ वृक्षों की पंक्तियों के बीच–बीच में सौ सौ धनुषों की दूरी पर पुष्करिणियाँ खुदवायीं। आनन्द वे पुष्कणियाँ चार रंगों की ईटों से बनी थीं। उनमें कुछ ईंटें सोने की, दूसरी चांदी की, कुछ वैदूर्यमणि की तथा कुछ स्फटिक की थीं।

"आनन्द! उन पुष्करिणियों में चार चार सीढ़ियाँ चार चार रंगों की थीं। एक सीढ़ी सोने की....एक सीढ़ी स्फटिक की थी। सोने की सीढ़ी में सोने का खम्भा और चान्दी की काँटियाँ (कीलें) और छत थीं। चान्दी की सीढ़ी में चान्दी का खम्भा एवं सोने की काँटियाँ और छत थीं। वैदूर्य की सीढ़ी में.... स्फटिक की काँटियाँ....। एवं स्फटिक की सीढ़ी में.... वैदूर्य की काँटियाँ और छत थी। आनन्द! वे

उण्हीसं च। रूपियमयाय वेदिकाय रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च। अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं इमासु पोक्खरणीसु एवरूपं मालं रोपापेय्यं—उप्पलं पदुमं कुमुदं पुण्डरीकं सब्बोतुकं सब्बजनस्स अनावटं' ति। रोपापेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तासु पोक्खरणीसु एवरूपं मालं—उप्पलं [B.147] पदुमं कुमुदं पुण्डरीकं सब्बोतुकं सब्बजनस्स अनावटं।

१४. "अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं इमासं पोक्खरणीनं तीरे न्हापके पुरिसे ठपेय्यं, ये आगतागतं जनं न्हापेस्सन्ती' ति। ठपेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तासं पोक्खरणीनं तीरे न्हापके परिसे, ये आगतागतं जनं न्हापेसुं।

"अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं इमासं पोक्खरणीनं तीरे एवरूपं दानं पट्ठपेय्यं—अन्नं अन्नत्थिकस्स, पानं पानत्थिकस्स, वत्थं वत्थत्थिकस्स, यानं यानत्थिकस्स, सयनं सयनत्थिकस्स, इत्थिं इत्थित्थिकस्स, हिरञ्ञं हिरञ्ञत्थिकस्स, [R.180] सुवण्णं सुवण्णत्थिकस्सा' ति। पट्ठपेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तासं पोक्खरणीनं तीरे एवरूपं दानं—अन्नं अन्नत्थिकस्स, पानं पानत्थिकस्स, वत्थं वत्थत्थिकस्स, यानं यानत्थिकस्स, सयनं सयनत्थिकस्स, इत्थिं इत्थिं त्थिकस्स हिरञ्ञं हिरञ्ञत्थिकस्स, सुवण्णं सुवण्णत्थिकस्सा ति।

१५. "अथ खो, आनन्द, ब्राह्मणगहपतिका पहूतं सापतेय्यं आदाय राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'इदं, देव, पहूतं सापतेय्यं देवस्सेव उद्दिस्स आभतं। तं देवो [N.138] पटिग्गण्हतू' ति। 'अलं भो, ममपिदं पहूतं सापतेय्यं धम्मिकेन बलिना अभिसङ्खतं, तं च वो होतु, इतो च भिय्यो हरथा' ति। ते रञ्ञा पटिक्खित्ता एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं—'न खो एतं अम्हाकं पतिरूपं यं इमानि सापतेय्यानि पुनदेव सकानि घरानि पटिहरेय्याम।

पुष्करिणियाँ दो दो वेदिकाओं से घिरी थीं। एक वेदिका सोने की तथा एक चाँदी की थी। सोने की वेदिका में सोने के खम्भे, चाँदी की काँटियाँ और छत थीं। चाँदी की वेदिका में....छत थी। तब आनन्द! राजा....को यह हुआ– 'क्यों न मैं इन पुष्करिणियों में ऐसी मालाएँ बनवाऊँ, जिनमें जगह–जगह पद्म, उत्पल, कुमुद, पुण्डरीक के फूल बने हुए हों जो सब ऋतुओं में सब जनों को प्रिय लगें।' तब राजा ने जगह–जगह उत्पल, पद्म...पूर्ववत्...प्रिय लगें।

१४. "तब राजा....के मन में यह विचार आया– 'क्यों न मैं इन पुष्करिणियों पर नहलाने वाले पुरुषों की व्यवस्था कर दूँ जो यहाँ आने वाले पुरुषों को स्नान करवा सकें।' राजा ने....स्नान करवा सकें।

"तब, आनन्द! राजा...के मन में यह हुआ– 'क्यों न मैं इन पुष्करिणियों के तीर पर ऐसे दानस्थल स्थापित करूँ कि जिससे अन्न चाहने वालों को अन्न मिल सके, पान चाहने वालों को पान मिल सके, वस्त्र....यान...शय्या...स्त्री....सुवर्ण चाहने वाले को सुवर्ण मिल सके।' राजा ने वहाँ ऐसी दानशालाएँ स्थापित कीं....सुवर्ण मिल सके।

१५. "तब, आनन्द! कुछ समृद्ध ब्राह्मणगृहपति बहुत सा धन ले कर राजा...के पास आये और बोले– 'देव! यह बहुत सा धन हम लोग आपको भेंट करने के लिये लाये हैं। इसे आप स्वीकार करें। (राजा ने उत्तर दिया–) 'नहीं, जी! जाने दो! मेरे पास भी बहुत सा धन धर्मपूर्वक कर लेकर अर्जित किया हुआ पड़ा है। अतः यदि आप लोग चाहें तो यहीं से और धन ले जाँय'। यों राजा द्वारा उनका वह धन लेना

यन्नून मयं रञ्ञो महासुदस्सनस्स निवेसनं मापेय्यामा' ति। ते राजानं महासुदस्सनं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'निवेसनं ते, देव, मापेस्सामा' ति। अधिवासेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तुण्हीभावेन।

धम्मप्पासादो

१६. ''अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो रञ्ञो महासुदस्सनस्स चेतसा चेतो-[B.148] परिवितक्कमञ्ञाय विस्सकम्मं देवपुत्तं आमन्तेसि—'एहि त्वं, सम्म विस्सकम्म, [R.181] रञ्ञो महासुदस्सनस्स निवेसनं मापेहि धम्मं नाम पासादं' ति। 'एवं भद्दन्तवा' ति खो, आनन्द, विस्सकम्मो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—देवेसु तावतिंसेसु अन्तरहितो रञ्ञो महासुदस्सनस्स पुरतो पातुरहोसि। अथ खो, आनन्द, विस्सकम्मो देवपुत्तो राजानं महासुदस्सनं एतदवोच—'निवेसनं ते, देव, मापेस्सामि धम्मं नाम पासादं' ति। अधिवासेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो तुण्हीभावेन।

''मापेसि खो, आनन्द, विस्सकम्मो देवपुत्तो रञ्ञो महासुदस्सनस्स निवेसनं धम्मं नाम पासादं। धम्मो, आनन्द, पासादो पुरत्थिमेन पच्छिमेन च योजनं आयामेन अहोसि, उत्तरेन दक्खिणेन च अड्ढयोजनं वित्थारेन। धम्मस्स, आनन्द, पासादस्स तिपोरिसं उच्चतरेन वत्थु चितं अहोसि चतुन्नं वण्णानं इट्ठकाहि—एका इट्ठका सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया।

''धम्मस्स, आनन्द, पासादस्स चतुरासीतिथम्भसहस्सानि अहेसुं चतुन्नं वण्णानं—एको थम्भो सोवण्णमयो, एको रूपियमयो, एको वेळुरियमयो, एको फलिकमयो। धम्मो,

---

स्वीकार न करने पर, उन ब्राह्मणों ने विचारा— 'यह हम लोगों के लिये उचित न होगा कि दान के लिये लाया हुआ धन हम लोग वापस अपने घर ले जाँय। अतः चलो, इसी धन से राजा के लिये एक नया प्रासाद (महल) निर्मित करा दें।' ब्राह्मणों ने अपना यह सङ्कल्प राजा को बताया। आनन्द! राजा ने ब्राह्मणों का सङ्कल्प (प्रासादनिर्माण) मौन भाव से स्वीकार कर लिया।

धर्मप्रासाद—१६. ''तब, आनन्द! देवेन्द्र शक्र ने राजा....के मन का विचार स्वचित्त से जानकर देवपुत्र विश्वकर्मा को बुलाकर आदेश दिया— 'सौम्य विश्वकर्मन्! जाओ और तुम राजा....का निवास— 'धर्म' नामक प्रासाद बनाओ।' 'अच्छा, श्रीमन्' कहकर, आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा ने देवराज शक्र की आज्ञा स्वीकार कर, जैसे कोई बलवान् पुरुष अनायास सिकुड़ी बाहों को पसार दे....त्रायस्त्रिंश लोक से अन्तर्हित होकर राजा....के सामने प्रकट हुआ। आनन्द! तब देवपुत्र ने राजा....से कहा— 'देव! धर्म नामक प्रासाद आप के (वास के) लिये तय्यार करूँगा।' राजा ने मौन भाव से स्वीकार कर लिया। आनन्द! तब देवपुत्र विश्वकर्मा ने राजा के लिये (वास हेतु) प्रासाद-निर्माण किया।

''आनन्द! वह धर्मप्रासाद पूर्व से पश्चिम की तरफ लम्बाई में एक योजन और उत्तर दक्षिण की तरफ चौड़ाई में आधा योजन था। आनन्द! धर्मप्रासाद का वह भवन ऊँचाई में तीन पोरसा था और उस के निर्माण में चार प्रकार की ईंटें लगायी गयी थीं। जैसे— कुछ सोने की, कुछ चाँदी की, कुछ वैदूर्यमणि की और कुछ स्फटिक शिला की।

''आनन्द! उस धर्म-प्रासाद के चार रंग के चौरासी हजार खम्भे थे। उनमें कोई सुनहरा, कोई

आनन्द, पासादो चतुन्नं वण्णानं फलकेहि सन्थतो अहोसि—एकं फलकं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं फलिकमयं।

"धम्मस्स, आनन्द, पासादस्स चतुवीसति सोपानानि अहेसुं चतुन्नं वण्णानं [N.139] —एकं सोपानं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं फलिकमयं। सोवण्णमयस्स सोपानस्स सोवण्णमया थम्भा अहेसुं, रूपियमया सूचियो च उण्हीसं च। रूपिय-[R.182] मयस्स सोपानस्स रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च। वेळुरियमयस्स सोपानस्स वेळुरियमया थम्भा अहेसुं, फलिकमया सूचियो च उण्हीसं च। फलिकमयस्स सोपानस्स फलिकमया थम्भा अहेसुं, वेळुरियमया सूचियो च उण्हीसं च।

"धम्मे, आनन्द, पासादे चतुरासीति कूटागारसहस्सानि अहेसुं चतुन्नं वण्णानं[B.149] —एकं कूटागारं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं फलिकमयं। सोवण्णमये कूटागारे रूपियमयो पल्लङ्को पञ्ञत्तो अहोसि। रूपियमये कूटागारे सोवण्णमयो पल्लङ्को पञ्ञत्तो अहोसि। वेळुरियमये कूटागारे दन्तमयो पल्लङ्को पञ्ञत्तो अहोसि। फलिकमये कूटागारे सारमयो पल्लङ्को पञ्ञत्तो अहोसि। सोवण्णमयस्स कूटागारस्स द्वारे रूपियमयो तालो ठितो अहोसि; तस्स रूपियमयो खन्धो सोवण्णमयानि पत्तानि च फलानि च। रूपियमानस्स कूटागारस्स द्वारे सोवण्णमयो तालो ठितो अहोसि; तस्स सोवण्णमयो खन्धो रूपियमयानि पत्तानि च फलानि च। वेळुरियमयस्स कूटागारस्स द्वारे फलिकमयो तालो ठितो अहोसि; तस्स फलिकमयो खन्धो वेळुरियमयानि पत्तानि च फलानि च। फलिकमयस्स कूटागारस्स द्वारे वेळुरियमयो तालो ठितो अहोसि; तस्स वेळुरियमयो खन्धो फलिकमयानि पत्तानि च फलानि च।

१७. "अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं महावियूहस्स कूटागारस्स द्वारे सोवण्णमयं तालवनं मापेय्यं, यत्थ दिवाविहारं निसीदिस्सामी' ति। मापेसि

रुपहला, कोई वैदूर्यमणि की तरह लाल या फिर कोई स्फटिकशिला की तरह श्वेत था। आनन्द वह धर्मप्रासाद चार फलकों (खाली स्थान=आंगण) से सुशोभित था। उनमें से एक में सोने की, दूसरे में चाँदी की, तीसरे में वैदूर्य की और चौथे में स्फटिकशिला की भूमि (फर्स) थी।

"आनन्द! उस धर्मप्रासाद पर चढ़ने के लिये चौबीस सीढ़ियाँ थीं। एक सोने की, एक चान्दी की, एक वैदूर्य की एक स्फटिक शिला की। जिनमें सोने की सीढ़ी में सोने के खम्भे तथा चाँदी के कील और छत।.... स्फटिक वाली सीढ़ी में वैदूर्य की कील एवं छत थीं।

"आनन्द! उस प्रासाद में चौरासी हजार कूटागार (कोठे=कमरे) बने हुए थे, जो चार वर्णों के थे– एक सोना, एक चाँदी, एक वैदूर्य एवं एक स्फटिक की तरह श्वेत। वहाँ सुवर्ण वर्ण के कमरे में चाँदी का पलंग बिछा हुआ था, चाँदी के कमरे में सोने का पलंग, वैदूर्य के बने कमरे में हाथी दाँत का पलंग एवं स्फटिकनिर्मित कमरे में मसारगल्ल के पलंग बिछे थे। सुवर्णनिर्मित कमरे के द्वार पर (भित्ति–चित्र के रूप में) चान्दी का ताड़वृक्ष, उसके पत्ते और फल सुवर्ण से अंकित थे। चाँदी के कमरे के दरवाजे पर सुवर्ण वर्ण का ताड़ वृक्ष, चाँदी के पत्ते और फल अंकित थे। वैदूर्य के कमरों के द्वार पर स्फटिक का ताड़वृक्ष तथा उसके पत्ते और फल वैदूर्य के थे तथा स्फटिकमय कूटागार के द्वार पर वैदूर्य का ताड़ वृक्ष तथा उसके पत्ते एवं फल स्फटिक वर्ण के थे।

१७. "तब, आनन्द! राजा....के मन में यह हुआ– 'क्यों न मैं इस बड़े कोठे के द्वार पर एक

खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो महावियूहस्स कूटागारस्स द्वारे सब्बसोवण्णमयं तालवनं, [R.183] यत्थ दिवाविहारं निसीदि। धम्मो, आनन्द, पासादो द्वीहि वेदिकाहि परिक्खित्तो अहोसि—एका वेदिका सोवण्णमया, एका रूपियमया। सोवण्णमयाय वेदिकाय सोवण्णमया थम्भा अहेसुं, रूपियमया सूचियो च उण्हीसं च। रूपियमयाय वेदिकाय रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च।

[N.140] १८. "धम्मो, आनन्द, पासादो द्वीहि किङ्किणिकजालेहि परिक्खित्तो अहोसि—एकं जालं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं। सोवण्णमयस्स जालस्स रूपियमया किङ्किणिका अहेसुं। रूपियमयस्स जालस्स सोवण्णमया किङ्किणिका अहेसुं। तेसं खो पनानन्द, किङ्किणिकजालानं वातेरितानं सद्दो अहोसि वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च। सेय्यथापि, [B.150] आनन्द, पञ्चङ्गिकस्स तुरियस्स सुविनीतस्स सुप्पटिताळितस्स सुकुसलेहि समन्नाहतस्स सद्दो होति वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च, एवमेव खो, आनन्द, तेसं किङ्किणिकजालानं वातेरितानं सद्दो अहोसि वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च। ये खो पनानन्द, तेन समयेन कुसावतिया राजधानिया धुत्ता अहेसुं सोण्डा पिपासा, ते तेसं किङ्किणिकजालानं वातेरितानं सद्देन परिचारेसुं। निट्ठितो खो पनानन्द, धम्मो पासादो दुद्दिक्खो [R.184] अहोसि मुसति चक्खूनि। सेय्यथापि, आनन्द, वस्सानं पच्छिमे मासे सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे आदिच्चो नभं अब्भुग्गममानो दुद्दिक्खो होति मुसति चक्खूनि; एवमेव खो, आनन्द, धम्मो पासादो दुद्दिक्खो अहोसि मुसति चक्खूनि।

१९. "अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं धम्मस्स

सुवर्णमय ताड़वृक्ष–वन बनवाऊँ, जहाँ दिन में उसके शोभा–दर्शन हेतु बैठा करूँगा।' राजा ने वैसा ही ताड़–वन वहाँ बड़े कमरे के सामने बनवाया, जहाँ वह उसकी शोभा देखने के लिये दिन में घण्टों बैठकर भी सन्तुष्ट नहीं होता था। आनन्द! वह धर्मप्रासाद दो वेदिकाओं से घिरा हुआ था। एक वेदिका सुवर्णमय थी तो दूसरी रजतमय। उन वेदिकाओं में से एक में सुवर्णमय स्तम्भ थे तो कील और छत चाँदी की, तथा दूसरी में रजतमय स्तम्भ थे तो कील एवं छत सुवर्ण की।

१८. "आनन्द! वह धर्मप्रासाद दो घुँघरू (छोटी घंटियों) के जालों से आवृत था। उनमें एक जाल सुवर्णनिर्मित था तो दूसरा रजतनिर्मित। वहाँ सुवर्णमय जाल के घुँघरू चाँदी के बने थे तो रजतमय जाल में सोने के। उन घुँघरुओं के जालों से, हवा चलने पर, प्रिय एवं लुभावनी एवं मत्त करने वाली ध्वनि निकलती थी। जैसे, आनन्द! पञ्चाङ्गिक तूर्य वाद्य किसी सुशिक्षित वादक द्वारा कलात्मक ढंग से बजाये जाने पर प्रिय, मनोमोहक एवं मस्त कर देने वाली सुरीली आवाज करता है उसी तरह हवा से हिलने पर उन घुँघरुओं से प्रिय लगने वाली ध्वनि निकलती थी। उसे सुनकर राह चलते, जुआड़ी, शराबी एवं असामाजिक (गुण्डे) पुरुष भी वहाँ ठहर कर उस सुरीली आवाज का आनन्द लेते थे। आनन्द! वह धर्मप्रासाद इतना चमकीला बना था कि साधारण आदमी की आँखें उस पर ठहर नहीं पाती थीं, उसकी आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। आनन्द! जैसे वर्षा के अन्तिम दिनों में शरत्काल आ जाने पर, मेघरहित आकाश में चढ़ते सूर्य पर आँखें नहीं ठहरतीं; उसी तरह अत्यधिक चमक वाले उस प्रासाद पर मनुष्यों की आँखें नहीं ठहरती थीं।

१९. "आनन्द! तब राजा....के मन में यह विचार उठा– 'क्यों न मैं इस धर्मप्रासाद के सम्मुख

पासादस्स पुरतो धम्मं नाम पोक्खरणिं मापेय्यं' ति। मापेसि खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो धम्मस्स पासादस्स पुरतो धम्मं नाम पोक्खरणिं। धम्मा, आनन्द, पोक्खरणी पुरत्थिमेन पच्छिमेन च योजनं आयामेन अहोसि, उत्तरेन दक्खिणेन च अड्ढयोजनं वित्थारेन। धम्मा, आनन्द, पोक्खरणी चतुन्नं वण्णानं इट्ठकाहि चिता अहोसि—एका इट्ठका सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया।

"धम्माय, आनन्द, पोक्खरणिया चतुवीसति सोपानानि अहेसुं चतुन्नं वण्णानं—एकं सोपानं सोवण्णमयं, एकं रूपियमयं, एकं वेळुरियमयं, एकं फलिकमयं। सोवण्णमयस्स सोपानस्स सोवण्णमया थम्भा अहेसुं, रूपियमया सूचियो च उण्हीसं च। रूपियमयस्स सोपानस्स रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च। वेळुरियमयस्स सोपानस्स वेळुरियमया थम्भा अहेसुं, फलिकमया सूचियो च उण्हीसं च। फलिकमयस्स सोपानस्स फलिकमया थम्भा अहेसुं, वेळुरियमया सूचियो च उण्हीसं च।

"धम्मा, आनन्द, पोक्खरणी द्वीहि वेदिकाहि परिक्खित्ता अहोसि—एका [N.141] वेदिका सोवण्णमया, एका रूपियमया। सोवण्णमयाय वेदिकाय सोवण्णमया थम्भा [B.151] अहेसुं, रूपियमया सूचियो च उण्हीसं च। रूपियमयाय वेदिकाय रूपियमया थम्भा अहेसुं, सोवण्णमया सूचियो च उण्हीसं च।

"धम्मा, आनन्द, पोक्खरणी सत्तहि तालपन्तीहि परिक्खित्ता अहोसि—एका तालपन्ति सोवण्णमया, एका रूपियमया, एका वेळुरियमया, एका फलिकमया, एका लोहितङ्कमया, एका मसारगल्लमया, एका सब्बरतनमया। सोवण्णमयस्स तालस्स सोवण्णमयो खन्धो [R.185] अहोसि, रूपियमयानि पत्तानि च फलानि च। रूपियमयस्स तालस्स रूपियमयो खन्धो अहोसि, सोवण्णमयानि पत्तानि च फलानि च। वेळुरियमयस्स तालस्स वेळुरियमयो खन्धो अहोसि, फलिकमयानि पत्तानि च फलानि च। फलिकमयस्स तालस्स फलिकमयो खन्धो अहोसि, वेळुरियमयानि पत्तानि च फलानि च। लोहितङ्कमयस्स तालस्स लोहितङ्कमयो खन्धो अहोसि, मसारगल्लमयानि पत्तानि च फलानि च। मसारगल्लमयस्स तालस्स मसारगल्लमयो खन्धो अहोसि, लोहितङ्कमयानि पत्तानि च फलानि च। सब्बरतनमयस्स तालस्स सब्बरतनमयो खन्धो अहोसि, सब्बरतनमयानि पत्तानि च फलानि च । तासं खो पनानन्द, तालपन्तीनं वातेरितानं सद्दो अहोसि, वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च। सेय्यथापि, आनन्द, पञ्चङ्गिकस्स तूरियस्स सुविनीतस्स सुप्पटिताळितस्स सुकुसलेहि समन्नाहतस्स सद्दो होति वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च; एवमेव खो, आनन्द, तासं तालपन्तीनं वातेरितानं सद्दो अहोसि वग्गु च रजनीयो च कमनीयो च मदनीयो च। ये खो पनानन्द, तेन समयेन

एक धर्मपुष्करिणी बनवाऊँ।' आनन्द! तब उस राजा.... ने उस प्रासाद के सम्मुख एक धर्मपुष्करिणी का निर्माण करवाया। यह पुष्करिणी पूर्व से पश्चिम....योजन थी।.... चार रंग की ईंटों से....स्फटिक से बनी हुई थी। ....चार रंग की चौबीस सीढ़ियों से....दो वेदिकाओं से....सात तालपंक्तियों से घिरी हुई....उन तालपंक्तियों में घुँघरू की घँटियाँ....सुरीली आवाज का आनन्द लेते थे।

कुसावतिया राजधानिया धुत्ता अहेसुं सोण्डा पिपासा, ते तासं तालपन्तीनं वातेरितानं सद्देन परिचारेसुं।

''निट्ठिते खो पनानन्द, धम्मे पासादे निट्ठिताय धम्माय च पोक्खरणिया, राजा महासुदस्सनो ये तेन समयेन समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, ते सब्बकामेहि सन्तप्पेत्वा धम्मं पासादं अभिरुहि।

पठमभाणवारो॥

११. झानसम्पत्ति

[B.152] २०. ''अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'किस्स नु खो मे इदं कम्मस्स फलं? किस्स कम्मस्स विपाको येनाहं एतरहि एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो' ति? [N.142, R.186] अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि—'तिण्णं खो मे इदं कम्मानं फलं, तिण्णं कम्मानं विपाको येनाहं एतरहि एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो, सेय्यथिदं—दानस्स, दमस्स, संयमस्सा' ति।

''अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो येन महावियूहं कूटागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा महावियूहस्स कूटागारस्स द्वारे ठितो उदानं उदानेसि—'तिट्ठ, कामवितक्क! तिट्ठ, ब्यापादवितक्क! तिट्ठ, विहिंसावितक्क! एत्तावता कामवितक्क, एत्तावता ब्यापादवितक्क, एत्तावता विहिंसावितक्का' ति!

२१. ''अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो महावियूहं कूटागारं पविसित्वा सोवण्णमये पल्लङ्के निसिन्नो, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासि। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहासि। पीतिया

''आनन्द! राजा महासुदर्शन ने, उस धर्मप्रासाद एवं धर्मपुष्करिणी के निर्मित हो जाने पर, श्रमण एवं श्रमणों में श्रद्धालु सज्जन ब्राह्मण थे, उन सभी को सर्वथा (अन्न–पान–वस्त्रादि से) सन्तुष्ट कर उस धर्मप्रासाद में प्रवेश किया।।

प्रथम भाणवार समाप्त॥

११. ध्यानसम्पत्ति

२०. ''तब, आनन्द! राजा महासुदर्शन के मन में यह विचार आया– 'किस कर्म का फल एवं परिणाम है कि इस समय मैं इतना समृद्ध एवं वैभवशाली हूँ।' आनन्द! तब उस राजा....के मन में हुआ– 'अवश्य ही यह सब कुछ मेरे दान, दम एवं इन्द्रियनिग्रह– इन तीन कर्मों का फल है।'

''आनन्द! तब राजा.... (उस प्रासाद में) जहाँ बड़ा कूटागार (कमरा) था वहाँ गया। जाकर उस कूटागार के द्वार पर खड़े होकर उसने यह उद्गार प्रकट किया– 'अरे कामवितर्क! अब तूँ यहाँ बाहर ही रुक जा; अब मुझको तुझ से कोई कार्य (प्रयोजन) नहीं है! अरे द्रोहवितर्क! .... अरे विहिंसाविर्तक! अब तूँ यहीं रुक! अब मेरा तुझ से कोई प्रयोजन नहीं है'।

२१. ''आनन्द! तब राजा....उस बड़े कूटागार में प्रविष्ट होकर सुवर्णनिर्मित पलंग पर बैठकर, कामभोग एवं अकुशल कर्मों का चित्त से परित्याग कर वितर्क विचारसहित प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करने लगा। (कुछ समय बाद, साधना करते–करते) वितर्क–विचारों के भी शान्त हो

च विरागा उपेक्खको च विहासि सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेसि यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहासि। सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासि।

२२. "अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो महावियूहा कूटागारा निक्खमित्वा सोवण्णमयं कूटागारं पविसित्वा रूपियमये पल्लङ्के निसिन्नो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन [B.153] अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहासि। करुणासहगतेन चेतसा....पे०....मुदितासहगतेन चेतसा ....पे०.... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा [R.187] ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहासि।

१२. चतुरासीतिनगरसहस्सानि

२३. "रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स चतुरासीति नगरसहस्सानि अहेसुं [N.143] कुसावतीराजधानिप्पमुखानि, चतुरासीति पासादसहस्सानि अहेसुं धम्मपासादप्पमुखानि, चतुरासीति कूटागारसहस्सानि अहेसुं महावियूहकूटागारप्पमुखानि, चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि अहेसुं सोवण्णमयानि रूपियमयानि दन्तमयानि सारमयानि गोनकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिगपवरपच्चत्थरणानि सउत्तरच्छदानि उभतोलोहितकूपधानानि,

---

जाने के बाद, वितर्क–विचाररहित समाधिजन्य प्रीति–सुखमय द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करने लगा। तब (कुछ समय बाद) वह उस प्रीति से भी वैराग्य (त्याग) हो जाने के कारण उसके प्रति उपेक्षा एवं स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ साधना का वह सुख अपनी काया में अनुभव करने लगा, जिस के विषय में आर्यजन यह कहकर प्रशंसा करते हैं– 'यह उपेक्षायुक्त, स्मृतिमान् सुख का अनुभव करने वाला है'; इस प्रकार ऐसा तृतीय ध्यान प्राप्त कर साधना करने लगा। धीरे धीरे (अभ्यास करते करते) वह उस सुख–दुःख के प्रहाण से, और इससे पूर्व ही (कामभोगों के प्रति) सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त होने से दुःख–सुखरहित उपेक्षा एवं स्मृतिपरिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होकर साधना करने लगा।

२२. "तब, आनन्द, वह राजा....उस विशाल कूटागार से निकलकर, सुवर्णनिर्मित कूटागार में प्रविष्ट होकर, चाँदी के पलंग पर बैठकर, एक दिशा को पूर्ण कर साधना करने लगा, दूसरी दिशा को.... तीसरी दिशा को....चौथी दिशा को....इसी प्रकार ऊपर....नीचे....आड़े–तिरछे सम्पूर्ण मन से सब के लिये मैत्रीभावयुक्त, विपुल, महान्, अप्रमाण, निर्वैर, द्रोहरहित चित्त से सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करता हुआ साधना करने लगा। करुणायुक्त चित्त से....मुदितासहगत चित्त से....उपेक्षाभावयुक्त चित्त से विपुल महान् अप्रमाण.... चित्त से स्पर्श करता हुआ साधना करने लगा।

१२. चौरासी हजार नगर

२३. "आनन्द! उस समय राजा महासुदर्शन के शासन में कुशावती राजधानी सहित चौरासी हजार नगर थे। धर्मप्रासाद आदि चौरासी हजार प्रासाद थे। महाव्यूह कूटागार सहित चौरासी हजार कूटागार थे। उनमें चौरासी हजार पलंग थे जो कि सोने–चान्दी–हाथी दाँत–मसारगल्ल से बने थे। जिन

चतुरासीति नागसहस्सानि अहेसुं सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि उपोसथनागराजप्पमुखानि, चतुरासीति अस्ससहस्सानि अहेसुं सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहकअस्सराजप्पमुखानि, चतुरासीति रथसहस्सानि अहेसुं सीहचम्मपरिवारानि ब्यग्घचम्मपरिवारानि दीपिचम्मपरिवारानि पण्डुकम्बलपरिवारानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वेजयन्तरथप्पमुखानि, चतुरासीति मणिसहस्सानि अहेसुं [R.188] मणिरतनप्पमुखानि, चतुरासीति इत्थिसहस्सानि अहेसुं सुभद्दादेविप्पमुखानि, चतुरासीति गहपतिसहस्सानि अहेसुं गहपतिरतनप्पमुखानि, चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अहेसुं अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि, चतुरासीति धेनुसहस्सानि अहेसुं दुहसन्दनानि कंसूपधारणानि, चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि अहेसुं खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखुमानं कम्बलसुखुमानं, रञ्ञो, आनन्द, महासुदस्सनस्स चतुरासीति थालिपाकसहस्सानि अहेसुं; सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियित्थ।

[B.154] २४. "तेन खो, पनानन्द, समयेन रञ्ञो महासुदस्सनस्स चतुरासीति नागसहस्सानि सायं पातं उपट्ठानं आगच्छन्ति। अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स एतदहोसि– 'इमानि खो मे चतुरासीति नागसहस्सानि सायं पातं उपट्ठानं आगच्छन्ति। यन्नून वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन द्वेचत्तालीसं नागसहस्सानि सकिं सकिं उपट्ठानं आगच्छेय्युं' ति। अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो परिणायकरतनं आमन्तेसि–'इमानि खो मे, सम्म परिणा- [N.144] यकरतन, चतुरासीति नागसहस्सानि सायं पातं उपट्ठानं आगच्छन्ति। तेन हि, सम्म [R.189] परिणायकरतन, वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन द्वेचत्तालीसं द्वेचत्तालीसं नागसहस्सानि सकिं सकिं उपट्ठानं आगच्छन्तू" ति। "एवं, देवा" ति खो, आनन्द, परिणायकरतनं रञ्ञो महासुदस्सनस्स पच्चस्सोसि। अथ खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स अपरेन समयेन

पर लम्बे बालों वाले, सफेद ऊनी, फूल–बूटे वाले, कदली मृग की चर्म के बने बिछौने बिछे हुए थे। मसहरियाँ लगी हुई थीं। दोनों तरफ लाल तकिये लगे हुए थे। उपोसथ हस्तिराज सहित, सुवर्णालङ्कारों से सजे हुए, सुवर्णध्वजयुक्त, सोने की जालियों से आच्छन्न चौरासी हजार हाथी थे। बलाहक अश्वराज सहित सुवर्णालङ्कारों से आच्छन्न चौरासी हजार अश्व थे। सिंहचर्म से ढके, व्याघ्र....चीते की चर्म से ढके पाण्डुकम्बल से परिवृत सुवर्णालङ्कारों....आच्छन्न वैजयन्तरथ सहित चौरासी हजार रथ थे। मणिरत्न सहित चौरासी हजार मणिरत्न थे। सुभद्रादेवी (स्त्रीरत्न) सहित चौरासी हजार स्त्रियाँ थीं। गृहपतिरत्न सहित चौरासी हजार गृहपति थे। परिणायकरत्न सहित चौरासी हजार क्षत्रिय उस के अनुगामी थे। गले में काँसे की घण्टियाँ पहने हुई, चादर उढायी हुई, चौरासी हजार दुधारू गायें थीं। उसके पास चौरासी हजार करोड़ अलसी (क्षौम), कपास, कौषेय तथा ऊन के बने सूक्ष्म (महीन) वस्त्र एवं कम्बल थे। आनन्द! राजा....के पास चौरासी हजार भोजन बनाने–खाने के पात्र थे, जिन में प्रातः–सायं भोजन बनाया तथा खाया जाता था।

२४. "आनन्द! उस समय राजा....के पास चौरासी हजार हाथी थे जो प्रातः–सायं राजा की सेवा में आते थे। तब कभी राजा....को यह विचार हुआ– 'ये मेरे चौरासी हजार हाथी प्रातःसायं मेरी सेवा में उपस्थित होते हैं। ये आज से सौ–सौ वर्ष बीतने पर ही बयालीस–बयालीस हजार हाथी ही अपनी अपनी सेवा करने आया करें'। तब राजा ने परिणायकरत्न को आदेश दिया– 'ये मेरे चौरासी हजार हाथी....सेवा

वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन द्वेचत्तालीसं द्वेचत्तालीसं नागसहस्सानि सकिं सकिं उपट्ठानं आगमंसु।

१३. सुभद्दादेविउपसङ्कमनं

२५. "अथ खो, आनन्द, सुभद्दाय देविया बहुन्नं वस्सानं बहुन्नं वस्ससहस्सानं अच्चयेन एतदहोसि—'चिरं दिट्ठो खो मे राजा महासुदस्सनो, यन्नूनाहं राजानं महासुदस्सनं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं' ति। अथ खो, आनन्द, सुभद्दा देवी इत्थागारं आमन्तेसि—'एथ तुम्हे सीसानि न्हायथ, पीतानि वत्थानि पारुपथ। चिरं दिट्ठो नो राजा महासुदस्सनो। राजानं महासुदस्सनं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामा' ति। 'एवं, अय्ये' ति खो, आनन्द, इत्थागारं सुभद्दाय देविया पटिस्सुत्वा सीसानि न्हायित्वा पीतानि वत्थानि पारुपित्वा येन सुभद्दा देवी तेनुपसङ्कमि। अथ खो, आनन्द, सुभद्दा देवी परिणायकरतनं आमन्तेसि—'कप्पेहि, सम्म परिणायकरतन, चतुरङ्गिनिं सेनं। चिरं दिट्ठो नो राजा महासुदस्सनो। राजानं महासुदस्सनं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामा' ति। 'एवं, देवी' ति खो, आनन्द, परिणायकरतनं सुभद्दाय देविया पटिस्सुत्वा चतुरङ्गिनिं सेनं कप्पापेत्वा सुभद्दाय देविया पटिवेदेसि—'कप्पिता खो, देवि, चतुरङ्गिनी सेना। यस्स दानि कालं मञ्ञसी' ति।

"अथ खो, आनन्द, सुभद्दा देवी चतुरङ्गिनिया सेनाय सद्धिं इत्था-[R.190, B 155] गारेन येन धम्मो पासादो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा धम्मं पासादं अभिरुहित्वा येन महावियूहं कूटागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा महावियूहस्स कूटागारस्स द्वारबाहं आलम्बित्वा अट्ठासि। अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो सद्दं सुत्वा—'किं नु खो महतो विय जनकायस्स सद्दो' ति महावियूहा कूटागारा निक्खमन्तो अद्दस सुभद्दं देविं द्वारबाहं आलम्बित्वा ठितं। दिस्वान

करने आया करें'। आनन्द! परिणायकरत्न ने 'अच्छा देव' कहकर आज्ञा स्वीकार कर ली और तब से सौ सौ वर्ष के बाद बयालीस-बयालीस हजार हाथी प्रातः-सायं राजा की सेवा में आने लगे।

१३. सुभद्रा देवी का राजा के पास जाना

२५. "आनन्द! तब बहुत से हजारों वर्ष बीतने के बाद एक दिन सुभद्रा देवी के मन में यह हुआ— 'राजा को देखे मुझे बहुत समय बीत गया, तो आज उनके दर्शनहेतु उनके पास चलूँ।' आनन्द! तब सुभद्रा देवी ने अपनी अनुचारिका स्त्रियों से कहा— 'आप लोग सिर से स्नान कर पीले कपड़े पहन लें। राजा का दर्शन किये बहुत दिन हो गये। आज हमलोग राजा के दर्शनहेतु उनके पास चलें।' आनन्द! 'अच्छा आर्ये' कहकर उन स्त्रियों ने सुभद्रा देवी की आज्ञा को स्वीकार किया। तब शिर से स्नान कर....सुभद्रा देवी के पास गयीं। तब सुभद्रा देवी ने परिणायकरत्न को बुलाकर कहा— 'भद्र परिणायकरत्न! चतुरङ्गिणी सेना को सजाओ!.... राजा के दर्शनार्थ जाना है।' आनन्द! तब परिणायकरत्न ने 'अच्छा, देवि'— यों उत्तर देकर चतुरङ्गिणी सेना सन्नद्ध कर पुनः सुभद्रा देवी से आकर निवेदन किया— 'देवि! चतुरङ्गिणी सेना तय्यार है। अब आप जैसा उचित समझें।'

"तब आनन्द! सुभद्रा देवी चतुरङ्गिणी सेना की रक्षा में, अनुचर स्त्रियों के साथ धर्मप्रासाद पहुँचकर, वहाँ ऊपर चढ़कर, महाव्यूह नामक कूटागार में प्रविष्ट होकर कूटागार का दरवाजा पकड़कर खड़ी हो गयी। तब, आनन्द! राजा ने वह शब्द सुनकर 'यह किसी बड़ी भीड़ का कैसा कोलाहल है?' उस महाव्यूह कूटागार से निकलते ही सुभद्रा देवी को खड़ी देखा। उसे देखकर राजा....बोले— 'देवि!

सुभद्दं देविं एतदवोच—'एत्थेव, देवि, तिट्ठ, मा पाविसी' ति। अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—'एहि त्वं, अम्भो पुरिस, महावियूहा कूटागारा सोवण्णमयं पल्लङ्कं नीहरित्वा सब्बसोवण्णमये तालवने पञ्ञपेही' ति। 'एवं, देवा' ति खो, [N.145] आनन्द, सो पुरिसो रञ्ञो महासुदस्सनस्स पटिस्सुत्वा महावियूहा कूटागारा सोवण्णमयं पल्लङ्कं नीहरित्वा सब्बसोवण्णमये तालवने पञ्ञपेसि। अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो।

२६. "अथ खो, आनन्द, सुभद्दाय देविया एतदहोसि—'विप्पसन्नानि खो रञ्ञो महासुदस्सनस्स इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो, मा हेव खो राजा महासुदस्सनो कालमकासी' ति राजानं महासुदस्सनं एतदवोच—

[R.191] 'इमानि ते, देव, चतुरासीति नगरसहस्सानि कुसावतीराजधानिप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पासादसहस्सानि धम्मपासादप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति कूटागारसहस्सानि महावियूहकूटागारप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि सोवण्णमयानि रूपियमयानि दन्तमयानि सारमयानि गोनकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिगपवर-पच्चत्थरणानि सउत्तरच्छदानि उभतोलोहितकूपधानानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति नागसहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि [B.156] हेमजालपटिच्छन्नानि उपोसथनागराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति अस्ससहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहकअस्सराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति रथसहस्सानि सीहचम्मपरिवारानि ब्यग्घचम्मपरिवारानि दीपिचम्मपरिवारानि पण्डुकम्बलपरिवारानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजाल-पटिच्छन्नानि वेजयन्तरथप्पमुखानि। एत्थ, देव छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति मणिसहस्सानि मणिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते

कुछ क्षण यहीं खड़ी रहो। अन्दर न आओ'। आनन्द! तब राजा ने किसी भृत्य को बुलाकर कहा— 'सुनो, महाव्यूह कूटागार से सोने का पलंग निकालकर सर्वथा सुवर्णमय तालवन में बिछाओ।' 'अच्छा, देव!' कह....बिछा दिया। आनन्द तब राजा वहाँ दाहिनी करवट से लेट कर पैर पर पैर रखकर स्मृति और सम्प्रजन्य के साथ सिंहशय्या आसन से विराजे।

२६. "तब, आनन्द! राजा को देखकर सुभद्रा देवी के मन में यह विचार उठा— 'राजा... की सभी इन्द्रियाँ सुप्रसन्न तथा इनके शरीर की आभा परिशुद्ध एवं पर्यवदात दिखायी दे रही हैं, ऐसा न हो कि राजा का अब देहपात हो जाय।' यह सोचकर राजा महासुदर्शन से यों बोली—

"देव! कुशावती राजधानी सहित आप के पास चौरासी हजार नगर हैं, आप इन पर शासन करते हुए अपना मन बहलावें और जीवित रहने का प्रयास करें। धर्मप्रासादसहित चौरासी हजार प्रासाद.... महाव्यूह कूटागार सहित चौरासी हजार कूटागार....सोने चाँदी हाथी दाँत, मसारगल्ल....दोनों

अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति इत्थिसहस्सानि इत्थिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति गहपतिसहस्सानि गहपतिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, [N.146] देव, चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, [R.192] छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति धेनुसहस्सानि दुहसन्दनानि कंसूपधारणानि। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्य-सुखुमानं कम्बलसुखुमानं। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि। इमानि ते, देव, चतुरासीति थालिपाकसहस्सानि सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियति। एत्थ, देव, छन्दं जनेहि, जीविते अपेक्खं करोहि' ति।

२७. "एवं वुत्ते, आनन्द, राजा महासुदस्सनो सुभद्दं देविं एतदवोच–

'दीघरत्तं खो मं त्वं, देवि, इट्ठेहि कन्तेहि पियेहि मनापेहि समुदाचरित्थ; अथ च पन मं त्वं पच्छिमे काले अनिट्ठेहि अकन्तेहि अप्पियेहि अमनापेहि समुदाचरसी' ति।

'कथं चरहि तं, देव, समुदाचरामी' ति? 'एवं खो मं त्वं, देवि, समुदाचर–

सब्बेहेव, देव, पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो। मा [B.157] खो त्वं, देव, सापेक्खो कालमकासि। दुक्खा सापेक्खस्स कालङ्किरिया, गरहिता च सापेक्खस्स कालङ्किरिया। इमानि ते, देव, चतुरासीति नगरसहस्सानि कुसावतीराजधानिप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पासाद-[R.193] सहस्सानि धम्मपासादप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति कूटागारसहस्सानि महावियूहकूटागारप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि सोवण्णमयानि रूपियमयानि दन्तमयानि सारमयानि गोनकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिग-पवरपच्चत्थरणानि सउत्तरच्छदानि उभतोलोहितकूपधानानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते

तरफ तकिया लगे चौरासी हजार पलंग....उपोसथ हस्तिराज सहित....चौरासी हजार हाथी....बलाहक अश्वराज सहित....चौरासी हजार घोड़े....वैजयन्त रथ सहित....चौरासी हजार रथ....मणिरत्नसहित चौरासी हजार मणिरत्न.... स्त्रीरत्नसहित....चौरासी हजार स्त्रियाँ....गृहपतिरत्न सहित चौरासी हजार गृहपति....परिणायकरत्न सहित चौरासी हजार अनुगामी क्षत्रिय....चौरासी हजार दुधारू गौएँ....चौरासी हजार करोड़ वस्त्र एवं कम्बल....चौरासी हजार भोजन बनाने-खाने के पात्र हैं, इन में भोजन बनवाकर उसे खाते हुए अपना मन प्रसन्न रखिये और अपने इस देहपात से अपना मन हटाइये।'

२७. "सुभद्रा देवी द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर, राजा ने सुभद्रा देवी को यों उत्तर दिया–

'देवि! बहुत समय तक आपने मेरे साथ इष्ट, कान्त, प्रिय, मनाप आचरण किये हैं; अब आप अन्तिम समय में ये अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनाप समुदाचरण (कथन) क्यों कर रही हैं?'

'तो देव! मैं कैसे समुदाचरण (कथन) कर रही हूँ?' 'देवि! आप ऐसा समुदाचरण कीजिये–

देव! सभी प्रियों, मनापों से वियोग, विनाभाव या अन्यथाभाव होता है। देव! आप किसी कामना के साथ प्राण न त्यागें; क्योंकि कामनायुक्त मृत्यु दुःखदायिनी होती है। कामनायुक्त मृत्यु विद्वानों द्वारा

अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति नागसहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि उपोसथनागराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति अस्ससहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहकअस्सराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं [N.147] माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति रथसहस्सानि सीहचम्मपरिवारानि ब्यग्घचम्मपरिवारानि दीपिचम्मपरिवारानि पण्डुकम्बलपारिवारानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वेजयन्तरथप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति मणिसहस्सानि मणिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति इत्थिसहस्सानि सुभद्दादेविप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति गहपतिसहस्सानि गहपतिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति धेनुसहस्सानि दुहसन्दनानि कंसूपधारणानि। [R.194] एत्थ देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखुमानं कम्बलसुखुमानं। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते देव चतुरासीति थालिपाकसहस्सानि सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियति। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासी' ति।

[B.158] २८. "एवं वुत्ते, आनन्द, सुभद्दा देवी परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि। अथ खो, आनन्द, सुभद्दा देवी अस्सूनि पुञ्छित्वा राजानं महासुदस्सनं एतदवोच—'सब्बेहेव, देव, पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो। मा खो त्वं, देव, सापेक्खो कालमकासि। दुक्खा सापेक्खस्स कालंकिरिया, गरहिता च सापेक्खस्स कालंकिरिया। इमानि ते, देव, चतुरासीति नगरसहस्सानि कुसावतीराजधानिप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पासादसहस्सानि धम्मपासादप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति कूटागारसहस्सानि महावियूहकूटागारप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि सोवण्णमयानि रूपियमयानि दन्तमयानि सारमयानि गोनकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिगपवरपच्चत्थरणानि सउत्तरच्छदानि उभतोलोहितकूपधानानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव,

---

निन्दनीय होती है। देव! कुशावती जैसे आपके चौरासी हजार नगर हैं; देव! उनमें आप लिप्त न होवें, जीवित रहने की कामना मन में न करें।....पूर्ववत्....भोजन बनाने-खाने के पात्र हैं उनमें लिप्त न होवें; जीवित रहने की कामना न करें।'

२८. "आनन्द! (राजा द्वारा) ऐसा कहने पर, सुभद्रा देवी रोने लगी, आँसू बहाने लगी। कुछ देर बाद आँसू पोंछकर उसने राजा से यों कहना प्रारम्भ किया— 'देव! सभी प्रियों मनापों से वियोग, विनाभाव

चतुरासीति नागसहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि [N.148] उपोसथनागराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति अस्ससहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहक-अस्सराजप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, [R.195] देव, चतुरासीति रथसहस्सानि सीहचम्मपरिवारानि ब्यग्घचम्मपरिवारानि दीपिचम्मपरिवारानि पण्डुकम्बलपरिवारानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वेजयन्तरथ-प्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति मणिसहस्सानि मणिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति इत्थिसहस्सानि इत्थिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, [B.159] जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति गहपतिसहस्सानि गहपतिरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति धेनुसहस्सानि दुहसन्दनानि कंसूपधारणानि। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखमानं कम्बलसुखुमानं। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासि। इमानि ते, देव, चतुरासीति थालिपाकसहस्सानि सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियति। एत्थ, देव, छन्दं पजह, जीविते अपेक्खं माकासी' ति।

१४. सङ्खारानं अनिच्चभावो

२९. "अथ खो, आनन्द, राजा महासुदस्सनो नचिरस्सेव कालमकासि। सेय्यथापि, आनन्द, गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा मनुञ्ञं भोजनं भुत्ताविस्स भत्तसम्मदो होति; [R.196] एवमेव खो, आनन्द, रञ्ञो महासुदस्सनस्स मारणन्तिका वेदना अहोसि। कालङ्कतो च, आनन्द, राजा महासुदस्सनो सुगतिं ब्रह्मलोकं उपपज्जि। राजा, आनन्द, महासुदस्सनो चतुरासीति वस्ससहस्सानि कुमारकीळं कीळि, चतुरासीति वस्ससहस्सानि ओपरज्जं कारेसि, चतुरासीति वस्ससहस्सानि रज्जं कारेसि, चतुरासीति वस्ससहस्सानि गिहिभूतो धम्मे पासादे [N.149] ब्रह्मचरियं चरि। सो चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मलोकूपगो अहोसि।

या नानाभाव होना अनिवार्य है। देव! आप कामनायुक्त होकर प्राण न त्यागें।....पूर्ववत्....भोजन बनाने खाने के पात्र हैं उनमें लिप्त न होवें। उनमें कामनायुक्त होकर प्राण न त्यागें।

१४. संस्कारों की अनित्यता

२९. "तब, आनन्द! कुछ ही काल बाद राजा...का देहपात (मृत्यु) हो गया। जैसे, आनन्द! गृहपति या गृहपतिपुत्र को अच्छे अच्छे स्वादिष्ट भोजन कर लेने के बाद भक्तसम्मर्द (भोजन करने के बाद का आलस्य) होता है, वैसे ही राजा....को मरणकाल में पीड़ा हुई। आनन्द! राजा....मरणानन्तर सुगति को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। आनन्द! राजा महासुदर्शन ने चौरासी हजार वर्षों तक बालक्रीड़ा की, चौरासी हजार वर्षों तक वे युवराज रहे; चौरासी हजार वर्षों तक राज्य करते रहे; चौरासी हजार वर्षों

३०. "सिया खो पनानन्द, एवमस्स—'अञ्ञो नून तेन समयेन राजा महासुदस्सनो अहोसी' ति, न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं। अहं तेन समयेन राजा महासुदस्सनो अहोसिं। मम तानि चतुरासीति नगरसहस्सानि कुसावतीराजधानिप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति पासादसहस्सानि धम्मपासादप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति कूटागारसहस्सानि महावियूह-कूटागारप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि सोवण्णमयानि रूपियमयानि दन्तमयानि सारमयानि गोनकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिगपवरपच्चत्थर-[B.160] णानि सउत्तरच्छदानि उभतोलोहितकूपधानानि, मम तानि चतुरासीति नागसहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि उपोसथनागराजप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति अस्ससहस्सानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णधजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहक-[R.197] अस्सराजप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति रथसहस्सानि सीहचम्मपरिवारानि ब्यग्घचम्मपरिवारानि दीपिचम्मपरिवारानि पण्डुकम्बलपरिवारानि सोवण्णालङ्कारानि सोवण्ण-धजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वेजयन्तरथप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति मणिसहस्सानि मणिरतनप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति इत्थिसहस्सानि सुभद्दादेविप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति गहपतिसहस्सानि गहपतिरतनप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि, मम तानि चतुरासीति धेनुसहस्सानि दुहसन्दनानि कंसूपधारणानि, मम तानि चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखुमानं कम्बलसुखुमानं, मम तानि चतुरासीति थालिपाकसहस्सानि सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियित्थ।

३१. " तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिनगरसहस्सानं एकञ्ञेव तं नगरं होति, यं तेन समयेन अज्झावसामि—यदिदं कुसावती राजधानी। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिपासादसहस्सानं एको येव सो पासादो होति, यं तेन समयेन अज्झावसामि—यदिदं धम्मो पासादो। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिकूटागारसहस्सानं एकञ्ञेव तं कूटागारं होति, यं तेन समयेन अज्झावसामि—यदिदं महावियूहं कूटागारं। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिपल्लङ्कसहस्सानं एको येव सो पल्लङ्को [N.150] होति, यं तेन समयेन परिभुञ्जामि—यदिदं सोवण्णमयो वा रूपियमयो वा दन्तमयो वा सारमयो वा। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिनागसहस्सानं एको येव सो नागो होति, [R.198] यं तेन समयेन अभिरुहामि—यदिदं उपोसथो नागराजा। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीति-अस्ससहस्सानं एको येव सो अस्सो होति, यं तेन समयेन अभिरुहामि—यदिदं वलाहको

तक गृहस्थ रहते हुए भी उन्होंने प्रासाद में ब्रह्मचर्य का पालन (धर्मसाधना) किया। वे मैत्री आदि चारों ब्रह्मविहारों की साधना करके शरीर का त्याग कर मरणानन्तर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

बुद्ध ही राजा महासुदर्शन थे– ३०. "आनन्द! सम्भवतः तुम्हें ऐसा लगे कि ये राजा महासुदर्शन कोई अन्य ही थे? तो आनन्द! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं ही उस समय राजा महासुदर्शन था। मेरे ही वे कुशावती राजधानीप्रमुख चौरासी हजार नगर थे।.... पूर्ववत् ....मेरे ही वे चौरासी हजार भोजन बनाने-खाने के पात्र थे, जिस में मैं प्रातः-सायं भोजन करता था।

३१. "आनन्द! उस समय चौरासी हजार नगरों में वही एक कुशावती राजधानी थी जहाँ कि मैं

अस्सराजा। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिरथसहस्सानं एको येव सो रथो होति, यं [B.161] तेन समयेन अभिरूहामि—यदिदं वेजयन्तरथो। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीति इत्थिसहस्सानं एका येव सा इत्थी होति, या तेन समयेन पच्चुपट्ठाति—खत्तियानी वा वेस्सिनी वा। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिवत्थकोटिसहस्सानं एकं येव तं दुस्सयुगं होति, यं तेन समयेन परिदहामि—खोमसुखुमं वा कप्पासिकसुखुमं वा कोसेय्यसुखुमं वा कम्बलसुखुमं वा। तेसं खो पनानन्द, चतुरासीतिथालिपाकसहस्सानं एको येव सो थालिपाको होति, यतो नाळिकोदनपरमं भुञ्जामि तदुपियं च सूपेय्यं।

३२. "पस्सानन्द, सब्बेते सङ्खारा अतीता निरुद्धा विपरिणता। एवं अनिच्चा खो, आनन्द, सङ्खारा; एवं अद्धुवा खो, आनन्द, सङ्खारा; एवं अनस्सासिका खो, आनन्द, सङ्खारा! यावञ्चिदं, आनन्द, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं।

"छक्खत्तुं खो पनाहं, आनन्द, अभिजानामि इमस्मिं पदेसे सरीरं निक्खिपितं, तं च खो राजाव समानो चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियपत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। अयं सत्तमो सरीरनिक्खेपो। न खो पनाहं, आनन्द, तं पदेसं समनुपस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यत्थ [R.199] तथागतो अट्ठमं सरीरं निक्खिपेय्या" ति।

इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो" ति॥

महासुदस्सनसुत्तं निट्ठितं चतुत्थं॥

रहता था। आनन्द! उस समय चौरासी हजार प्रासादों में वही एक धर्म प्रासाद था जहाँ मैं रहता था। .... पूर्ववत्....।

३२ "देखो, आनन्द! वे सभी संस्कार (कृत्रिम वस्तुएँ) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत हो गये (बदल गये)। आनन्द! इसी तरह सभी संस्कार अनित्य हैं; सभी संस्कार अध्रुव (विनाशी, अस्थायी) हैं; सभी संस्कार अविश्वसनीय हैं। आनन्द! इसलिये इन संस्कारों की कामना (चाह, तृष्णा) व्यर्थ है। उन में राग करना व्यर्थ है, उनमें आसक्त होना व्यर्थ है। उनसे तो मुक्त होना ही उचित है।

"आनन्द! मैं जानता हूँ कि इसी स्थान पर मेरा छह बार देहपात हो चुका है। उन सभी समयों में भी मैं राजा, चक्रवर्ती, धर्माचरण तथा धर्मपूर्वक राज्य करने वाला चतुर्दिगन्त विजय-पताका फहराने वाला, सभी जनपदों में (अपने शासन से) स्थिरता लाने वाला एवं सातों रत्नों से समन्वित था। यहाँ यह मेरा सातवाँ शरीरनिक्षेप (देहपात) है। आनन्द! मैं देवताओं सहित समग्र लोक में....पूर्ववत्....ऐसा कोई दूसरा स्थान नहीं देखता, जहाँ तथागत का आठवाँ देहपात हो सके।"

भगवान् ने यह कहा। तथा (अन्त में अपने उपदेश में दृढ़ता लाने के लिये) यह भी कहा—

"सभी संस्कार अनित्य हैं। इन का उत्पाद एवं नाश होता रहता है। ये उत्पन्न होकर निरुद्ध (विनष्ट) हो जाते हैं। अतः इनका सर्वथा शान्त हो जाना ही कल्याणकर (सुखमय) है"॥

चतुर्थ महासुदर्शनसूत्र समाप्त॥

५. जनवसभसुत्तं

१. मागधके आरब्भ आनन्दस्स परिकथा

[N.151, B.162, R.200] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे। तेन खो पन समयेन भगवा परितो परितो जनपदेसु परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति कासिकोसलेसु वज्जिमल्लेसु चेतियवंसेसु कुरुपञ्चालेसु सूरसेनेसु—"असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो। परोपञ्ञास नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका; साधिका नवुति नातिकिया परिचारिका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति; सातिरेकानि पञ्चसतानि नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा" ति।

[R.201] २. अस्सोसुं खो नातिकिया परिचारका— "भगवा किर परितो परितो जापदेसु परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति कासिकोसलेसु वज्जिमल्लेसु चेतियवंसेसु कुरुपञ्चालेसु मज्झसूरसेनेसु—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो। परोपञ्ञास नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका; साधिका नवुति नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो सकिदेव [B.163] इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति; सातिरेकानि पञ्चसतानि नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा

---

५. जनवृषभसूत्र

१. मगध के मृत उपासकों की गति का चिन्तन

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) नातिका के गिञ्जकावसथ में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् चारों ओर के जनपदों में बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ की सेवा करने वाले मृत परिचारकों (उपासकों) के परलोकगमन का व्याकरण (अदृष्टकथन)कर रहे थे; जैसे काशी और कोसल में, वज्जि और मल्ल में, चेदि और वत्स में, कुरु और पञ्चाल एवं शूरसेन प्रदेश में— अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ और अमुक वहाँ। पचास से अधिक नातिका ग्रामवासी परिचारक अतीतकाल में मर कर अवरभागीय संयोजनों (बन्धनों) के क्षय होने के कारण औपपातिक (देव) योनि में उत्पन्न होकर उस लोक से पुनः प्रत्यावर्तित नहीं होंगे। नब्बे (९०) से अधिक नातिकावासिनी उपासिकाएँ अतीत काल में मरणानन्तर तीनों संयोजनों के क्षय होने एवं राग-द्वेष-मोह के तनु (कृश, अल्प) होने के कारण सकृदागामी हो गयी हैं; अतः वे एक ही बार इस लोक में आकर अपने दुःखों का अन्त करेंगी। पाँच सौ से अधिक नातिकावासी परिचारक पूर्वकाल में मरकर तीनों संयोजनों के परिक्षय से स्रोतआपन्न हो गये हैं, अब उनका वहाँ से पुनः पतन नहीं हो सकता। उनको तो सम्बोधि प्राप्त होना अवश्यम्भावी है।"

२. तब नातिका के रहने वाले वर्तमान परिचारकों को यह विचार हुआ— "भगवान् चारों ओर के पूर्वकाल में मृत परिचारकों की आगामी उत्पत्ति के विषय में अदृश्य कथन कर रहे हैं; जैसे काशी और

नियता सम्बोधिपरायणा'' ति। तेन च नातिकिया परिचारका अत्तमना अहेसुं पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा।

३. अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो—''भगवा किर परितो परितो जनपदेसु [N.152] परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उप्पत्तीसु ब्याकरोति कासिकोसलेसु वज्जिमल्लेसु चेतियवंसेसु कुरुपञ्चालेसु मज्झसूरसेनेसु—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो। परोपञ्ञास नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका; साधिका नवुति नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति; सातिरेकानि पञ्चसतानि नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा' ति। तेन च नातिकिया परिचारका अत्तमना अहेसुं पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा'' ति।

४. अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—''इमे खो पना पि अहेसुं [R.202] मागधका परिचारका बहू चेव रत्तञ्ञू च अब्भतीता कालङ्कता। सुञ्ञा मञ्ञे अङ्गमगधा अङ्गमागधकेहि परिचारकेहि अब्भतीतेहि कालङ्कतेहि। ते खो पना पि अहेसुं बुद्धे पसन्ना धम्मे पसन्ना सङ्घे पसन्ना सीलेसु परिपूरकारिनो, ते अब्भतीता कालङ्कता भगवता अब्याकता; तेसं पिस्स साधु वेय्याकरणं, बहुजनो पसीदेय्य, ततो गच्छेय्य सुगतिं। अयं खो पना पि अहोसि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो धम्मिको धम्मराजा हितो ब्राह्मणगहपतिकानं [B.164] नेगमानं चेव जनपदानं च। अपिस्सुदं मनुस्सा कित्तयमानरूपा विहरन्ति—'एवं नो सो धम्मिको धम्मराजा सुखापेत्वा कालङ्कतो। एवं मयं तस्स धम्मिकस्स धम्मरञ्ञो विजिते फासु विहरिम्हा' ति। सो खो पना पि अहोसि बुद्धे पसन्नो धम्मे पसन्नो सङ्घे पसन्नो सीलेसु परिपूरकारी। अपिस्सुदं मनुस्सा एवमाहंसु—'याव मरणकाला पि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवन्तं कित्तयमानरूपो कालङ्कतो' ति। सो अब्भतीतो कालङ्कतो भगवता अब्याकतो; तस्स पिस्स

कोसल में .... पूर्ववत्.... सम्बोधि प्राप्त होना अवश्यम्भावी है।'' भगवान् के द्वारा कथित इस अदृष्ट कथन से नातिका ग्रामवासी परिचारक अत्यधिक प्रमुदित, प्रीति–सौमनस्ययुक्त एवं सन्तुष्ट हुए।

३. आयुष्मान् आनन्द ने भी सुना– ''भगवान् चारों ओर के....पूर्ववत्...सन्तुष्ट हुए।''

४. तब आयुष्मान् आनन्द के मन में यह विचार हुआ– ''ये अङ्ग एवं मगध देश के वासी भी बहुत अधिक मर चुके हैं। ऐसा तो है नहीं कि कोई आज तक मरा ही न हो! उन मृतकों में से भी बहुत से बुद्ध धर्म सङ्घ के प्रति अनुरक्त रहे ही होंगे। ऐसा तो नहीं ही है कि सारा अङ्ग–मगध प्रदेश बुद्ध....उपासकों से शून्य रहा हो! परन्तु भगवान् ने इन का कुछ भी व्याख्यान नहीं किया। उनके विषय में भी भगवान् का ऐसा व्याख्यान करना उचित ही होगा, क्योंकि इससे भी बहुत से लोग प्रसन्न होंगे और सुगति को प्राप्त होंगे। मगधराज सेनिय बिम्बिसार भी तो धार्मिक धर्मपूर्वक राज्य चलाने वाला, ब्राह्मणों, गृहस्थों का, नगरों जनपदों तथा देश का हितकारक ही था। सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं– 'वह इस तरह का धार्मिक धर्मराजा था, जो दूसरों को सुखी कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ था। उस धार्मिक धर्मराजा के राज्य में हम लोग भी सुखपूर्वक धर्मचारिका करते रहते थे।' वह भी रत्नत्रय में प्रसन्न....शीलाचार को

साधु वेय्याकरणं, बहुजनो पसीदेय्य, ततो गच्छेय्य सुगतिं। भगवतो खो पन सम्बोधि मगधेसु। यत्थ खो भगवतो सम्बोधि मगधेसु, कथं तत्र भगवा मागधके परिचारके अब्भतीते कालङ्कते [N.153] उपपत्तीसु न ब्याकरेय्य। भगवा चे खो पन मागधके परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु न ब्याकरेय्य, दीनमना तेनस्सु मागधका परिचारका; येन खो पनस्सु दीनमना [R.203] मागधका परिचारका—कथं ते भगवा न ब्याकरेय्या'' ति?

५. इदमायस्मा आनन्दो मागधके परिचारके आरब्भ एको रहो अनुविचिन्तेत्वा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भन्ते—'भगवा किर परितो परितो जनपदेसु परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति कासिकोसलेसु वज्जिमल्लेसु चेतियवंसेसु कुरुपञ्चालेसु मज्झसूरसेनेसु—असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो; परोपञ्ञास नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका; साधिका नवुति नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति; सातिरेकानि पञ्चसतानि नातिकिया परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा ति। तेन च नातिकिया परिचारका अत्तमना [B.165] अहेसुं पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा' ति। इमे खो पना पि, भन्ते, अहेसुं मागधका परिचारका बहू चेव रत्तञ्ञू च अब्भतीता कालङ्कता। सुञ्ञा मञ्ञे अङ्गमागधा अङ्गमागधकेहि परिचारकेहि अब्भतीतेहि कालङ्कतेहि। ते खो पना पि, भन्ते, अहेसुं बुद्धे पसन्ना धम्मे पसन्ना सङ्घे पसन्ना सीलेसु परिपूरकारिनो, ते अब्भतीता कालङ्कता भगवता अब्याकता; तेसं पिस्स साधु वेय्याकरणं, बहुजनो पसीदेय्य, ततो गच्छेय्य सुगतिं। अयं खो पना पि, भन्ते, अहोसि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो धम्मिको धम्मराजा [R.204] हितो ब्राह्मणगहपतिकानं नेगमानं चेव जनपदानं च। अपिस्सुदं मनुस्सा कित्तयमानरूपा विहरन्ति—'एवं नो सो धम्मिको धम्मराजा सुखापेत्वा कालङ्कतो। एवं मयं तस्स धम्मिकस्स

परिपूर्ण करने वाला था। हमने कुछ पुरुषों को यह कहते सुना है— 'राजा मागध सेनिय बिम्बिसार अपनी मृत्यु के समय भी भगवान् का ही नामकीर्तन कर रहा था।' उस की मृत्यु का भी भगवान् ने कोई व्याख्यान नहीं किया। इसका व्याख्यान करना भी उचित होगा, इससे बहुत लोग प्रसन्न होंगे। भगवान् को बुद्धत्वप्राप्ति (सम्बोधि) भी मगध में ही हुई है, तो भी भगवान् ने अतीत काल में मगध में मृत पुरुषों के विषय में उनके ज्ञान, गति और पुण्य की उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कहा। क्योंकि भगवान् ने इस विषय में कुछ नहीं कहा, इसलिये मगध के लोग मुँह लटकाये (दीनमना) अप्रसन्न एवं खिन्न हैं!''

५. यों आयुष्मान् आनन्द मगध में उत्पन्न उपासकों के विषय में अकेले एकान्त स्थान में विचार कर, रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकाल जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया— ''भन्ते! मैंने सुना है कि आप पूर्वकाल में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में मृत उपासकों का भविष्य बता रहे हैं; जैसे— काशी, कौसल में...। वे

धम्मरञ्ञो विजिते फासु विहरिम्हा' ति। सो खो पना पि, भन्ते, अहोसि बुद्धे पसन्नो धम्मे पसन्नो सङ्घे पसन्नो सीलेसु परिपूरकारी। अपिस्सुदं मनुस्सा एवमाहंसु—'याव मरणकाला पि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवन्तं कित्तयमानरूपो कालङ्कतो' ति। सो [N.154] अब्भतीतो कालङ्कतो भगवता अब्याकतो; तस्स पिस्स साधु वेय्याकरणं, बहुजनो पसीदेय्य, ततो गच्छेय्य सुगतिं। भगवतो खो पन, भन्ते, सम्बोधि मागधेसु। यत्थ खो पन, भन्ते, भगवतो सम्बोधि मागधेसु, कथं तत्र भगवा मागधके परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु न ब्याकरेय्य! भगवा चे खो पन, भन्ते, मागधके परिचारके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु न ब्याकरेय्य, दीनमना तेनस्सु मागधका परिचारका; येन खो पनस्सु दीनमना मागधका परिचारका—कथं ते भगवा न ब्याकरेय्या'' ति।

इदमायस्मा आनन्दो मागधके परिचारके आरब्भ भगवतो सम्मुखा परिकथं कत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

२. जनवसभयक्खस्स पातुभावो

६. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते आनन्दे पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय नातिकं पिण्डाय पाविसि। नातिके पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपात-पटिक्कन्तो पादे पक्खालेत्वा गिञ्जकावसथं पविसित्वा मागधके परिचारके आरब्भ [B.166] अट्ठिकत्वा मनसिकत्वा सब्बं चेतसा समन्नाहरित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि—''गतिं नेसं जानिस्सामि अभिसम्परायं, यङ्गतिका ते भवन्तो यंअभिसम्पराया'' ति। अद्दसा खो [R.205] भगवा मागधके परिचारके यङ्गतिका ते भवन्तो यंअभिसम्पराया ति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो गिञ्जकावसथा निक्खमित्वा विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने निसीदि।

७. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं

नातिकावासी यह व्याकरण सुन–सुनकर बहुत प्रमुदित...हैं। भन्ते! ये मगध में रहने वाले भी तो पूर्वकाल में मरे हैं। इनमें भी बहुत से उपासक रहे होंगे।....पूर्ववत्....मगध के लोग अप्रसन्न एवं खिन्नमना हैं।''

यों आयुष्मान् आनन्द मृत मागध उपासकों के विषय में भगवान् से चर्चा कर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर चले गये।

२. जनवृषभ यक्ष का प्रादुर्भाव

६. तब भगवान् आयुष्मानं आनन्द के जाने के बाद पूर्वाह्णकाल में तय्यार होकर, पात्र–चीवर लेकर नातिका में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। नातिका में भिक्षा कर, भोजन क्रिया के बाद, पैर धोकर, गिञ्जकावसथ में प्रविष्ट होकर आसन पर बैठकर मगधवासी उपासकों के विषय में जानने के लिये उन्होंने अपने चित्त को सब तरफ से खींचा जिससे कि उनकी परलोक–गति को जानें, परलोक में वे किस गति को प्राप्त हुए हैं। भगवान् ने मगध के उपासकों के लोक को देखा। तब भगवान् सायङ्काल ध्यान से उठकर गिञ्जकावसथ से निकल कर विहार के पिछले भाग में छाया में बिछे आसन पर विराजे।

७. तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे।....एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया– ''भन्ते! भगवान् आज बहुत शान्त दिखायी दे रहे हैं! भगवान् की आकृति और

अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच– "उपसन्तपदिस्सो, भन्ते भगवा, भातिरिव भगवतो मुखवण्णो विप्पसन्नत्ता इन्द्रियानं। सन्तेन नूनज्ज, भन्ते, भगवा विहारेन विहासी" ति।

"यदेव खो मे त्वं, आनन्द, मागधके परिचारके आरब्भ सम्मुखा परिकथं कत्वा उट्ठायासना पक्कन्तो, तदेवाहं नातिके पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो पादे पक्खालेत्वा गिञ्जकावसथं पविसित्वा मागधके परिचारके आरब्भ अट्ठिं कत्वा मनसिकत्वा [N.155] सब्बं चेतसा समन्नाहरित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिं–'गतिं नेसं जानिस्सामि अभिसम्परायं यङ्गतिका ते भवन्तो यंअभिसम्पराया' ति। अद्दसं खो अहं, आनन्द, मागधके परिचारके यङ्गतिका ते भवन्तो यंअभिसम्पराया ति।

८. "अथ खो, आनन्द, अन्तरहितो यक्खो सद्दमनुस्सावेसि–'जनवसभो अहं, भगवा, जनवसभो अहं, सुगता' ति। अभिजानासि नो त्वं, आनन्द, इतो पुब्बे एवरूपं नामधेय्यं सुतं यदिदं जनवसभो" ति?

"न खो अहं, भन्ते, अभिजानामि इतो पुब्बे एवरूपं नामधेय्यं सुतं यदिदं जनवसभो ति। अपि च मे, भन्ते, लोमानि हट्ठानि 'जनवसभो' ति नामधेय्यं सुत्वा। तस्स मय्हं, भन्ते, [R.206] एतदहोसि–'न हि नून सो ओरको यक्खो भविस्सति यदिदं एवरूपं नामधेय्यं सुपञ्ञत्तं यदिदं जनवसभो' " ति।

[B.167] "अनन्तरा खो, आनन्द, सद्दपातुभावा उळारवण्णो मे यक्खो सम्मुखे पातुरहोसि। दुतियं पि सद्दमनुस्सावेसि–'बिम्बिसारो अहं, भगवा, बिम्बिसारो अहं, सुगता ति। इदं सत्तमं खो अहं, भन्ते, वेस्सवणस्स महाराजस्स सहब्यतं उपपज्जामि, सो ततो चुतो मनुस्सराजा भवितुं पहोमि।

सभी इन्द्रियाँ अत्यधिक विप्रसन्न दिखायी दे रही हैं। ज्ञात होता है, आज भगवान् ने बहुत शान्त भाव से साधना की है"।

जनवृषभ यक्ष से संवाद– "आनन्द! तुम्हारे मगध उपासकों के विषय में मुझसे निवेदन कर चले जाने के बाद, मैंने नातिका में भिक्षाकर्म करके पिण्डपातकर्म के बाद पैर धोकर गिञ्जकावसथ में प्रविष्ट होकर मगधवासी मृत उपासकों की गति के विषय में ध्यान लगाकर देखा। तब मैंने उन मगधवासियों की गति एवं पुण्य प्राप्ति का ज्ञान कर लिया।

८. "तब आनन्द! किसी अन्तर्हित यक्ष का शब्द सुनायी दिया– "मैं, भगवन्! जनवृषभ हूँ। मैं, सुगत! जनवृषभ हूँ। आनन्द! क्या तुमने जनवृषभ नाम सुना है?"

(आनन्द ने कहा–) "भन्ते! इससे पूर्व मैंने 'जनवृषभ'– यह नाम नहीं सुना। अपितु, भन्ते! 'जनवृषभ'– ऐसा नाम सुनकर मुझे रोमाञ्च हो रहा है। मुझे ऐसा लग रहा है कि जब उस का नाम ही 'जनवृषभ' है तो वह यक्ष कुछ विशिष्ट ही होगा,सामान्य (=ओरक, अवरक) नहीं।"

"आनन्दशब्द सुनाने के बाद वह यक्ष अतिकान्तिमय रूप में मेरे सामने प्रकट हुआ। दूसरी बार फिर उसने मुझको सुनाकर कहा– "भगवन् मैं बिम्बिसार हूँ, सुगत! मैं बिम्बिसार हूँ। भन्ते! यह मैं सातवीं बार वैश्रवण महाराज (=यक्षाधिपति) के मित्र के रूप में इस यक्षयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ। यहाँ से च्युत होने पर मनुष्यों का राजा हो सकता हूँ।

'इतो सत्त ततो सत्त, संसारानि चतुद्दस।
निवासमभिजानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे॥

'दीघरत्तं खो अहं, भन्ते, अविनिपातो अविनिपातं सञ्जानामि, आसा च पन मे सन्तिट्ठति सकदागामिताया' ति।

९. "अच्छरियमिदं आयस्मतो जनवसभस्स यक्खस्स, अब्भुतमिदं आयस्मतो जनवसभस्स यक्खस्स। 'दीघरत्तं खो अहं, भन्ते, अविनिपातो अविनिपातं सञ्जानामी', ति च वदेसि 'आसा च पन मे सन्तिट्ठति सकदागामिताया' ति च वदेसि। कुतोनिदानं पनायस्मा जनवसभो यक्खो एवरूपं उळारं विसेसाधिगमं सञ्जानाती" ति?

'न अञ्ञत्र, भगवा, तव सासना; न अञ्ञत्र, सुगत, तव सासना। यदग्गे अहं, भन्ते, भगवति एकन्तिकतो अभिप्पसन्नो तदग्गे अहं, भन्ते, दीघरत्तं अविनिपातो अविनिपातं [R.207] सञ्जानामि, आसा च पने मे सन्तिट्ठति सकदागामिताय। इधाहं, भन्ते, वेस्सवणेन महाराजेन पेसितो विरूळ्हकस्स महाराजस्स सन्तिके केनचिदेव करणीयेन अद्दसं भगवन्तं अन्तरामग्गे गिञ्जकावसथं पविसित्वा मागधके परिचारके आरब्भ अट्ठिं कत्वा मनसिकत्वा सब्बं [N.156] चेतसा समन्नाहरित्वा निसिन्नं—गतिं नेसं जानिस्सामि अभिसम्परायं यङ्गतिका ते भगवन्तो यंअभिसम्पराया ति। अच्छरियं खो पनेतं, भन्ते, यं वेस्सवणस्स महाराजस्स तस्सं परिसायं भासतो सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—यङ्गतिका ते भवन्तो यंअभिसम्पराया ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—भगवन्तं च दक्खामि, इदं च भगवतो आरोचेस्सामी ति। इमे खो मे, भन्ते, द्वेपच्चया भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

'उधर से सात और उधर से भी सात–यों अपने चौदह जन्मों को, जिनमें कि पहले वास किया है, अच्छी तरह जानता हूँ।।

'भन्ते! मैं जानता हूँ कि बहुत समय पहले भी मैंने चतुर्विध अपायों (नरकों) में कभी नहीं जन्म लिया। सकृदागामी होने की मुझे आशा भी है।"

९. "आयुष्मन्! तुम्हारा (जनवृषभ का) यह आश्चर्यजनक कृत्य है, अद्भुत कृत्य है कि तुम यह कहरहे हो– बहुत समय से तुम्हारा नरक में पतन नहीं हुआ है, और तुम यह भी कहते हो कि तुम्हें यह भी आशा है कि तुम सकृदागामी हो जाओगे! आयुष्मन् जनवृषभ! तुम कैसे इस महान् विशेष लाभ को प्राप्त कर पाये?"

'भगवन्! आपके धर्म (–शासन) को छोड़कर किसी दूसरी तरह से नहीं। सुगत! आपके धर्म.... दूसरी तरह से नहीं। भन्ते! जब से मैं एकान्ततः भगवान् में श्रद्धालु बना तब से, भन्ते! इतने दीर्घकाल से कभी मैं हीनयोनि में नहीं गिरा। अपितु मुझे अब यह आशा है कि अब सकृदागामी ही होऊँगा। भन्ते! अभी तो मुझे वैश्रवण महाराज (यक्षाधिपति) ने विरूढक महाराज के पास किसी कार्यविशेष से भेजा था। वहाँ जाते हुए मैंने, बीच में गिञकावसथ में प्रविष्ट होकर मगधवासी उपासकों के विषय में, 'इनकी गति जानूँगा'– एतदर्थ स्वचित्त को झुकाकर, विचार करते हुए भगवान् को देखा। आश्चर्य की कोई बात नहीं कि जो बातें कुबेर महाराज द्वारा सामने बोलते हुए सुनी थी वही बातें आप भी देख रहे थे कि क्या उनकी गति है? क्या उनके परलोक हैं? भन्ते! तब मेरे मन में हुआ– 'चलो, भगवान् का दर्शन भी हो जायगा, और उन्हें ये बातें बता भी आऊँगा। इस समय भगवान् के दर्शनार्थ मेरे आने के ये ही दो कारण हैं।'

३. सुधम्माय सभाय वण्णना

[B.168] १०. 'पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि तदहुपोसथे पन्नरसे वस्सूपनायिकाय पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया केवलकप्पा च देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतिता, महती च दिब्बा परिसा समन्ततो निसिन्ना होन्ति, चत्तारो च महाराजानो चतुद्दिसा निसिन्ना होन्ति। पुरत्थिमाय दिसाय धतरट्ठो महाराजा पच्छिमाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; दक्खिणाय दिसाय विरूळ्हको महाराजा उत्तराभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; पच्छिमाय दिसाय विरूपक्खो महाराजा पुरत्थाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; उत्तराय [R.208] दिसाय वेस्सवणे महाराजा दक्खिणाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा। यदा, भन्ते, केवलकप्पा च देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतिता, महती च दिब्बा परिसा समन्ततो निसिन्ना होन्ति, चत्तारो च महाराजानो चतुद्दिसा निसिन्ना होन्ति; इदं नेसं होति आसनस्मिं, अथ पच्छा अम्हाकं आसनं होति। ये ते, भन्ते, देवा भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा अधुनूपपन्ना तावतिंसकायं ते अञ्ञे देवे अतिरोचन्ति वण्णेन चेव यससा च। तेन सुदं, भन्ते, देवा तावतिंसा अत्तमना होन्ति पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता; दिब्बा वत भो काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया ति। अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं सम्पसादं विदित्वा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

मोदन्ति वत भो देवा, तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं॥
नवे देवे च पस्सन्ता, वण्णवन्ते यसस्सिने।
सुगतस्मिं ब्रह्मचरियं चरित्वान इधागते॥

---

३. सुधर्मा सभा का वर्णन

१०. ''भन्ते! पहले कभी बीते उपोसथ की वैशाख मास की चाँदनी रात्रि में सभी स्वयम्प्रभ (केवलकप्प) त्रायस्त्रिंश देवगण एक विशाल सभा में एकत्र होकर बैठे थे। चारों और बहुत बड़ा देवसमूह बैठा हुआ था। चारों दिशाओं के चारों चातुर्महाराजिक देवता भी बैठे हुए थे। पूर्व दिशा में महाराज धृतराष्ट्र देवताओं को सम्मुख कर पश्चिम की तरफ मुख किये बैठे थे। दक्षिण दिशा में विरूढक महाराज....उत्तराभिमुख बैठे थे। पश्चिम दिशा में विरूपाक्ष महाराज....पूर्वाभिमुख एवं उत्तर दिशा में वैश्रवण महाराज...दक्षिणाभिमुख होकर बैठे थे। उन देवताओं की और उस सभा का आसन (=बैठने की पद्धति) ऐसा था और हम लोग उनके पीछे बैठे थे। भन्ते! जो देवता भगवान् के धर्म का ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर अभी कुछ ही समय पूर्व त्रायस्त्रिंश लोक में उत्पन्न हुए हैं, वे दूसरे देवताओं से अपेक्षाकृत कान्ति और यश में बढ़–चढ़कर हैं। भन्ते! इस कारण वे त्रायस्त्रिश देवता सन्तुष्ट हैं, प्रमुदित एवं प्रीति सौमनस्य से युक्त हैं कि देवलोक भरा हुआ है और असुर लोक क्षीण हो रहा है। तब देवराज शक्र ने उन त्रायस्त्रिंश देवों की उस अतिशय प्रसन्नता को जानकर उनका इन गाथाओं से अनुमोदन किया–

''इन्द्रसहित हम सभी त्रायस्त्रिश देवता तथागत एवं उनके धर्म की सुधर्मता को देखते हुए उन्हें प्रणाम करके अतिप्रसन्न हैं।।

'सुगत के शासन में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर यहाँ आये नव देवों को कान्तियुक्त और यशस्वी देख अतिप्रसन्न हैं। भूरिप्रज्ञ बुद्ध के वे श्रावक यहाँ महत्त्वप्राप्त हैं। वे कान्ति और यश में दूसरों से बढ़ चढ़कर हैं।।

ते अञ्ञे अतिरोचन्ति, वण्णेन यससायुना। [N.157]
सावका भूरिपञ्ञस्स, विसेसूपगता इधे॥
इदं दिस्वान नन्दन्ति, तावतिंसा सहिन्दका। [B.169]
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं ति॥

'तेन सुदं, भन्ते, देवा तावतिंसा भिय्योसोमत्ताय अत्तमना होन्ति पमुदिता [R.209] पीतिसोमनस्सजाता; दिब्बा वत, भो, काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया ति। अथ खो, भन्ते, येनत्थेन देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतिता तं अत्थं चिन्तयित्वा तं अत्थं मन्तयित्वा वुत्तवचना पि तं चत्तारो महाराजानो तस्मिं अत्थे होन्ति, पच्चानुसिट्ठवचना पि तं चत्तारो महाराजानो तस्मिं अत्थे होन्ति सकेसु सकेसु आसनेसु ठिता अविपक्कन्ता।

'ते वुत्तवाक्या राजानो, पटिग्गय्हानुसासनिं।
विप्पसन्नमना सन्ता, अट्ठंसु सम्हि आसने ति॥

११. 'अथ खो, भन्ते, उत्तराय दिसाय उळारो आलोको सञ्जायि, ओभासो पातुरहोसि अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि— यथा खो, मारिसा, निमित्तानि दिस्सन्ति, उळारो आलोको सञ्जायति, ओभासो पातुभवति, ब्रह्मा पातुभविस्सति। ब्रह्मुनो हेतं पुब्बनिमित्तं पातुभावाय यदिदं आलोको सञ्जायति, ओभासो पातुभवती ति।

'यथा निमित्ता दिस्सन्ति, ब्रह्मा पातुभविस्सति।
ब्रह्मुनो हेतं निमित्तं, ओभासो विपुलो महा ति॥

१२. 'अथ खो, भन्ते, देवा तावतिंसा यथासकेसु आसनेसु निसीदिंसु—ओभासमेतं

उन्हें देखकर तथागत और उनके धर्म की सुधर्मता को नमस्कार करते हुए इन्द्र के साथ सभी त्रायस्त्रिंश देव भी आनन्दित हो रहे हैं।।

'भन्ते! त्रायस्त्रिंश देवता, यह सोचकर, अत्यधिक प्रसन्न, सन्तुष्ट, प्रमुदित थे कि देवलोक बढ़ रहा है, और असुरलोक क्षीण हो रहा है। भन्ते! तब जिस कार्य के लिये वे त्रायस्त्रिंश देव सुधर्मा सभा में एकत्र हुए थे, उस कार्य का स्मरण कर उसके विषय में उन्होंने मन्त्रणा की। महाराजिक देवों ने भी उस पर अपनी सम्मति प्रकट की और समर्थन किया। वे चातुर्महाराजिक देव वहाँ से पुनः न लौटकर अपने आसन पर ही बैठे रहे।

'वे राजा लोग अपनी अपनी बात कहकर, आज्ञा लेकर, प्रसन्न मन से शान्त होकर अपने-अपने आसन पर ही बैठे रहे।

ब्रह्मा का प्रादुर्भाव– ११. ''तब, भन्ते! उत्तर दिशा में देवों के देवानुभाव से बढ़कर (अपेक्षाकृत अधिक) दिव्य प्रकाश वहाँ प्रादुर्भूत हुआ। तब देवराज शक्र ने त्रायस्त्रिंश देवों को सम्बोधित किया– मार्ष! जैसा यह दिव्य प्रकाश दिखायी दे रहा है, उससे यह अनुमान होता है कि यहाँ इसी समय ब्रह्मा प्रकट होंगे। ब्रह्मा के प्रकट होने का ही यह (दिव्य प्रकाश) पूर्व निमित्त है।

'इस समय जैसे पूर्व निमित्त दिखायी दे रहे हैं, उन से यही अनुमान होता है कि (अनुपद में ही) ब्रह्मा प्रकट होंगे, क्योंकि यह अत्युग्र विपुल तेज ब्रह्मा के प्रकट होने का ही पूर्वनिमित्त है।'

१२. 'भन्ते! तब सभी त्रायस्त्रिंश देव अपने अपने आसन पर बैठे रहे कि यह कैसा प्रकाश है?

ञस्साम यंविपाको भविस्सति, सच्छिकत्वाव नं गमिस्सामा ति। चत्तारो पि महाराजानो यथासकेसु [R.210] आसनेसु निसीदिंसु—ओभासमेतं ञस्साम यंविपाको भविस्सति, सच्छिकत्वाव नं [B.170] गमिस्सामा ति। इदं सुत्वा देवा तावतिंसा एकग्गा समापज्जिंसु—ओभासमेतं ञस्साम यंविपाको भविस्सति, सच्छिकत्वाव नं गमिस्सामा ति?

'यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातुभवति, ओळारिकं अत्तभावं अभिनिम्मिनित्वा पातुभवति। यो खो पन, भन्ते, ब्रह्मुनो पकतिवण्णो, अनभिसम्भवनीयो सो [N.158] देवानं तावतिंसानं चक्खुपथस्मिं। यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातुभवति, सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। सेय्यथापि, भन्ते, सोवण्णो विग्गहो मानुसं विग्गहं अतिरोचति; एवमेव खो, भन्ते, यदा ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातुभवति, सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातुभवति, न तस्सं परिसायं कोचि देवो अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेति। सब्बेव तुण्हीभूता पञ्जलिका पल्लङ्केन निसीदन्ति—यस्सदानि देवस्स पल्लङ्कं इच्छिस्सति ब्रह्मा सनङ्कुमारो तस्स देवस्स पल्लङ्के निसीदिस्सती ति।

'यस्स खो पन, भन्ते, देवस्स ब्रह्मा सनङ्कुमारो पल्लङ्के निसीदति, उळारं सो लभति देवो वेदपटिलाभं; उळारं सो लभति देवो सोमनस्सपटिलाभं। सेय्यथापि, भन्ते, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो अधुनाभिसित्तो रज्जेन, उळारं सो लभति वेदपटिलाभं, उळारं सो लभति सोमनस्सपटिलाभं; एवमेव खो, भन्ते, यस्स देवस्स ब्रह्मा सनङ्कुमारो पल्लङ्के निसीदति, उळारं [R.211] सो लभति देवो वेदपटिलाभं, उळारं सो लभति देवो सोमनस्सपटिलाभं। अथ, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो ओळारिकं अत्तभावं अभिनिम्मिनित्वा कुमारवण्णी हुत्वा पञ्चसिखो

यह कौन प्रकट हो रहा है?– इसका परिणाम जान कर ही यहाँ से जायँगें। चातुर्महाराजिक देवों ने भी....देखकर ही यहाँ से जायँगें। तब सभी त्रायस्त्रिंश देव एकाग्रचित्त होकर उधर ही ध्यान लगाकर बैठ गये कि इस प्रकाश का क्या परिणाम होता है– देखा जाय। इसे देखकर ही हम यहाँ से जायँगे।

'भन्ते! जब ये ब्रह्मा सनत्कुमार इन त्रायस्त्रिंश देवों के बीच प्रकट होते हैं तो अपने अत्युग्र तेजस्वी शरीर को कुछ संवृत कर लेते हैं; क्योंकि उन ब्रह्मा का स्वाभाविक तेजोरूपी शरीर देवताओं की आँखों को चकाचौंध करने लगता है। वे चाहते हैं कि त्रायस्त्रिंश देव उनकी दुर्लभ कान्ति को सुगमतया देख सकें। भन्ते! वह ब्रह्मा सनत्कुमार अन्य त्रायस्त्रिंश आदि देवों की अपेक्षा वर्ण और यश में अधिक ही होते हैं। भन्ते! जैसे सुवर्णमय मूर्ति मानव के प्राकृतिक शरीर की अपेक्षा अधिक कान्तिमयी होती है उसी तरह ब्रह्मा सनत्कुमार अन्य देवों की अपेक्षा अधिक रूपवान् तथा कान्तिमान् होते हैं। जब ब्रह्मा उस देवसभा में प्रकट होते हैं, तब ब्रह्मा सनत्कुमार के सम्मुख न तो कोई देवता उन्हें अभ्युत्थान से, न अभिवादन क्रिया से, न आसन देकर उस का सत्कार करने का साहस करता है; अपितु उनके आने पर सभी देवता चुपचाप अपने पर्यङ्क (आसन) पर हाथ जोड़कर बैठे रहते हैं। ब्रह्मा सनत्कुमार जिस देवता के पर्यङ्क बैठने की इच्छा करता है उसी पर जाकर बैठ जाते हैं। भन्ते! वह ब्रह्मा जिस देवता के पर्यङ्क पर बैठते हैं वह देवता स्वयं को अन्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगता है और इस के लिये अत्यधिक सौमनस्य (प्रसन्नता, सुख) मानता है। जैसे, भन्ते! तत्काल राज्याभिषेक प्राप्त कोई क्षत्रिय युवक राजा अन्यों की अपेक्षा स्वयं को श्रेष्ठ समझता है और इससे प्रमुदित होता है; उसी तरह वह देवता, उसके पर्यङ्क पर ब्रह्मा

देवानं तावतिंसानं पातुरहोसि। सो वेहासं अब्भुग्गन्त्वा आकासे अन्तलिक्खे पल्लङ्केन निसीदि। सेय्यथापि, भन्ते, भगवा पुरिसो सुपच्चत्थते वा पल्लङ्के समे वा भूमिभागे पल्लङ्केन निसीदेय्य; एवमेव खो, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो वेहासं अब्भुग्गन्त्वा आकासे अन्तलिक्खे पल्लङ्केन निसीदित्वा देवानं तावतिंसानं सम्पसादं विदित्वा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

मोदन्ति वत भो देवा, तावतिंसा सहिन्दका। [B.171]
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं॥
नवे देवे च पस्सन्ता, वण्णवन्ते यसस्सिने।
सुगतस्मिं ब्रह्मचरियं, चरित्वान इधागते॥
ते अञ्ञे अतिरोचन्ति, वण्णेन यससायुना।
सावका भूरिपञ्ञस्स, विसेसूपगता इध॥
इदं दिस्वान नन्दन्ति, तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं ति॥

१३. 'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मुनो [N.159] सनङ्कुमारस्स भासतो अट्ठङ्गसमन्नागतो सरो होति—विस्सट्ठो च विञ्ञेय्यो च मञ्जु च सवनीयो च बिन्दु च अविसारी च गम्भीरो च निन्नादी च। यथापरिसं खो पन, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो सरेन विञ्ञापेति; न चस्स बहिद्धा परिसाय घोसो निच्छरति। यस्स खो पन, भन्ते, एवं अट्ठङ्गसमन्नागतो सरो होति, सो वुच्चति ब्रह्मस्सरो ति।

के बैठने से बहुत प्रमुदित होता है और अपने में गौरव का अनुभव करता है। तब, भन्ते! वह ब्रह्मा सनत्कुमार अपने स्वाभाविक रूप को छिपाते हुए, पाँच शिखाओं वाले एक बालक का रूप धारण कर उन त्रायस्त्रिंश देवों के सम्मुख प्रकट हुए। वह आकाश में उड़कर वहीं पलथी (पद्मासन) लगाकर बैठ गये। भन्ते! जैसे कोई बलवान् पुरुष ठीक से बिछे आसन या समतल भूमि पर पलथी लगाकर बैठता है; उसी तरह वह ब्रह्मा सनत्कुमार आकाश में उड़कर वहाँ पद्मासन लगाकर बैठ गये। और त्रायस्त्रिंश देवों का मन जान कर उन्हीं के अनुकूल इन गाथाओं से उनके मन्तव्य का अनुमोदन किया—

'अरे! इन्द्रसहित त्रायस्त्रिंश देवगण तथागत एवं उनके उपदिष्ट धर्म की अच्छाइयों (सुधर्मता) का वर्णन करते हुए प्रसन्न हो रहा है।।

अन्य ऐसे देवों को देखकर, जो रूप और यश में अन्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, तथा भूरिप्रज्ञ सुगत द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन करके यहाँ आये हैं, इन्द्र सहित (=सहिन्दका) देवता उनका अभिवादन कर रहे हैं तथा सुगत एवं उनके धर्म की प्रशंसा कर रहे हैं।

१३. 'वहाँ भन्ते! इस आशय की गाथाएँ ब्रह्मा सनत्कुमार ने कहीं। इन गाथाओं कहते समय, ब्रह्मा सनत्कुमार का स्वर आठ अङ्गों (गुणों) से युक्त था; जैसे— १. स्पष्ट (सुमुक्त, उचित रीति से उच्चारित), २. उसका अर्थ समझने योग्य (विज्ञेय), ३. मञ्जु (सुनने में आकर्षक), ४. श्रवणयोग्य, ५. एकघन (बिन्दु की तरह सब तरफ से जुड़ा हुआ), ६. क्रमानुकूल (सुविशद), ७. गम्भीर (नाभिमूल से उठा हुआ), ८. ऊँचा (निन्नादी)। भन्ते! ब्रह्मा सनत्कुमार उस समय उस सभा में इतना ही ऊँचा बोल रहे थे कि उन का स्वर उस सभा में तो सुनायी दे, परन्तु सभा के बाहर वह न जाय। भन्ते! ऐसा आठ अङ्गों से युक्त स्वर ही 'ब्रह्मस्वर' कहलाता है।

४. देवसभायं ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स देसना

१४. 'अथ खो, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो तेतत्तिंसे अत्तभावे अभिनिम्मिनित्वा देवानं [R.212] तावतिंसानं पच्चेकपल्लङ्केसु पच्चेकपल्लङ्केन निसीदित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, यावं च सो भगवा बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं; ये हि केचि, भो, बुद्धं सरणं गता धम्मं सरणं गता सङ्घं सरणं गता, सीलेसु परिपूरकारिनो, ते कायस्स भेदा परं मरणा अप्पेकच्चे परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति, अप्पेकच्चे निम्मानरतीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति, अप्पेकच्चे तुसितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति, अप्पेकच्चे यामानं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति, अप्पेकच्चे तावतिंसानं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति, अप्पेकच्चे चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जन्ति; ये सब्बनिहीनं कायं परिपूरेन्ति ते गन्धब्बकायं परिपूरेन्ती ति।

[B.172] १५: 'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स भासतो घोसोयेव देवा मञ्ञन्ति—य्वायं मम पल्लङ्के स्वायं एकोव भासती ति।

एकस्मिं भासमानस्मिं, सब्बे भासन्ति निम्मिता।
एकस्मिं तुण्हिमासीने, सब्बे तुण्ही भवन्ति ते॥
तदासु देवा मञ्ञन्ति, तावतिंसा सहिन्दका।
य्वायं मम पल्लङ्कस्मिं, स्वायं एकोव भासती ति॥

चत्तारो इद्धिपादा

१६. 'अथ खो, भन्ते, ब्रह्मा, सनङ्कुमारो एकत्तेन अत्तानं उपसंहरति एकत्तेन अत्तानं [N.160, R.213] उपसंहरित्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पल्लङ्के पल्लङ्केन निसीदित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

---

४. देवसभा में ब्रह्मा का उपदेश

१४. 'भन्ते! तब ब्रह्मा....ने त्रायस्त्रिशीय देवशरीर धारण कर त्रायस्त्रिश देवों के प्रत्येक पर्यङ्क पर बैठकर उन त्रायस्त्रिश देवों को सम्बोधित किया– 'तो क्या आप नहीं जानते हो त्रायस्त्रिशलोकवासी देवगण! कि वे भगवान् जनता के हित में लगे हैं....सुख में लगे हैं...., देवमनुष्यों के हित–सुख में लगे हैं। आज तक जो भी बुद्ध की शरण में गये....धर्म की शरण....सङ्घ की शरण में गये, जिन्होंने शील (सदाचार) का पालन किया, उनमें से कुछ इस काया के नाश के बाद परनिर्मितवशवर्ती देवों में उत्पन्न हुए.... कुछ निर्माणरति देवों में....कुछ तुषित देवों में....कुछ यामदेवों में....कुछ त्रायस्त्रिश देवों में...कुछ चातुर्महाराजिक देवों में उत्पन्न हुए। उनमें सबसे हीन (तुच्छ) शरीर पाने वाला भी गन्धर्व शरीर पा गया।

१५. यह बात ब्रह्मा....ने (देवों से) कहीं। भन्ते! ब्रह्मा....के उपदेश को सभी देवों ने यही समझा कि मानो यह उपदेश उसी के पर्यङ्क पर बैठकर ब्रह्मा.... ने किया है।

'एक के भाषण करने पर, (दिव्य शक्ति से) निर्मित सभी शरीर भाषण करते (हुए लगते) हैं। तथा एक के चुप बैठने पर सभी चुप बैठ जाते हैं।।

'इन्द्रसहित सभी त्रायस्त्रिश देवता यह समझ रहे थे कि ब्रह्मा....उन्हीं के पर्यङ्क पर बैठे हैं, और वहीं से भाषण (उपदेश) कर रहे हैं।।

चार ऋद्धिपाद– १६. तब, भन्ते! ब्रह्मा....एक ओर से अपने को समेटने लगे। एक ओर से समेटकर

तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, याव सुपञ्ञत्ता चिमे तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो इद्धिपादा पञ्ञत्ता इद्धिपहुताय इद्धिविसविताय इद्धिविकुब्बनताय। कतमे चत्तारो? इध, भो, भिक्खु छन्दसमाधिप्पधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति; विरियसमाधिप्पधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति; चित्तसमाधिप्पधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति; वीमंसासमाधिप्पधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। इमे खो, भो, तेन भगवता जनता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो इद्धिपादा पञ्ञत्ता इद्धिपहुताय इद्धिविसविताय इद्धिविकुब्बनताय। ये हि केचि, भो, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोसुं, सब्बे ते इमेसंयेव चतुन्नं इद्धिपादानं भावितत्ता बहुलीकतत्ता। ये पि हि केचि, भो, अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोस्सन्ति, सब्बे ते इमेसंयेव चतुन्नं इद्धिपादानं बहुलीकतत्ता। ये पि हि केचि, भो, एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोन्ति, सब्बे ते इमेसंयेव [B.173] चतुन्नं इद्धिपादानं भावितत्ता बहुलीकतत्ता। पस्सन्ति नो भोन्तो देवा तावतिंसा ममपिमं एवरूपं इद्धानुभावं ति?

एवं महाब्रह्मे ति।

अहं पि खो भो, इमेसंयेव चतुन्नं च इद्धिपादानं भावितत्ता बहुलीकतत्ता एवं-[R.214] महिद्धिको एवंमहानुभावो ति।

तयो ओकासाधिगमा

'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

ब्रह्मा सनत्कुमार शक्र देवराज के पर्यङ्क पर पद्मासन लगाकर उन त्रायस्त्रिंश देवों को यों उपदेश करने लगे—

'आप त्रायस्त्रिंश देवगण! क्या यह नहीं मानते हैं कि उन भगवान् ज्ञानी, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ सम्यक्सम्बुद्ध को ऋद्धियों के आधिक्य से, ऋद्धियों की विशदता से, ऋद्धियों के नाना प्रकार से देखने से ये चारों ऋद्धिपाद सिद्ध हुए हैं: कौन से चार? (१) साधक भिक्षु छन्द को अधिपति करके प्राप्त प्रधानभूत संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद (ऋद्धिराशि) की भावना करता है; (२) ....वीर्य को अधिपति करके प्राप्त प्रधानभूत संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद (ऋद्धिराशि) की भावना करता है; (३) ....चित्त को अधिपति कर...., (४)....मीमांसा को अधिपति करके प्राप्त हुए प्रधानभूत संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है। ये चारों ऋद्धिपाद उन भगवान्....को....प्राप्त हुए हैं। अतीत काल में जो श्रमण ब्राह्मण अनेक प्रकार की ऋद्धियों को सिद्ध कर चुके हैं, वे इन्हीं चारों ऋद्धिपादों की भावना और अभ्यास करके सिद्ध कर सके हैं। अनागत (भविष्य) काल में जो....सिद्ध करेंगे वे भी इन्हीं....सिद्ध कर सकेंगे। वर्तमान काल में जो....सिद्ध कर रहे हैं। आप जो त्रायस्त्रिंश देव मेरे ऋद्धिबल को देख रहे हैं— ऐसे महाब्रह्मा हैं— मैं भी इन्हीं चारों ऋद्धिपादों की भावना एवं अभ्यास से इस प्रकार का महर्धिसम्पन्न महानुभाव हो पाया हूँ?'

हाँ, महाब्रह्मन्!

हाँ, आप लोग ठीक कह रहे हैं। मैं भी इन्हीं चारों ऋद्धिपादों की भावना एवं अभ्यास से ही ऐसा ऋद्धिसम्पन्न,ऐसा महानुभाव (तेजस्वी) बना हूँ'।

१७. तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन तयो ओकासाधिगमा अनुबुद्धा सुखस्साधिगमाय। कतमे तयो? इध भो एकच्चो संसट्ठो विहरति कामेहि संसट्ठो अकुसलेहि धम्मेहि। सो अपरेन समयेन अरियधम्मं सुणाति, योनिसो मनसि करोति, धम्मानुधम्मं पटिपज्जति। सो अरियधम्मस्सवनं आगम्म योनिसोमनसिकारं धम्मानुधम्मपटिपत्तिं असंसट्ठो विहरति कामेहि असंसट्ठो अकुसलेहि धम्मेहि। [N.161] तस्स असंसट्ठस्स कामेहि असंसट्ठस्स अकुसलेहि धम्मेहि उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। सेय्यथापि, भो, पमुदा पामोज्जं जायेथ, एवमेव खो, भो, असंसट्ठस्स कामेहि असंसट्ठस्स अकुसलेहि धम्मेहि उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। अयं खो, भो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पठमो ओकासाधिकमो अनुबुद्धो सुखस्साधिगमाय। (१)

पुन च परं, भो, इधेकच्चस्स ओळारिका कायसङ्खारा अप्पटिप्पस्सद्धा होन्ति, ओळारिका वचीसङ्खारा अप्पटिप्पस्सद्धा होन्ति, ओळारिका चित्तसङ्खारा अप्पटिप्पस्सद्धा होन्ति। सो अपरेन समयेन अरियधम्मं सुणाति, योनिसो मनसि करोति, धम्मानुधम्मं पटिपज्जति। तस्स अरियधम्मस्सवनं आगम्म योनिसोमनसिकारं धम्मानुधम्मप्पटिपत्तिं ओळारिका कायसङ्खारा [R.215] पटिप्पस्सम्भन्ति, ओळारिका वचीसङ्खारा पटिप्पस्सम्भन्ति, ओळारिका चित्तसङ्खारा [B.174] पटिप्पस्सम्भन्ति। तस्स ओळारिकानं कायसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया, ओळारिकानं वचीसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया, ओळारिकानं चित्तसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। सेय्यथापि, भो, पमुदा पामोज्जं जायेथ, एवमेव खो ओळारिकानं कायसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया, ओळारिकानं वचीसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया, ओळारिकानं चित्तसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धिया उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। अयं खो, भो, तेन

तीन अवकाशप्राप्तियाँ– १७. 'भन्ते! ब्रह्मा....ने यह भाषण किया। भन्ते! ब्रह्मा....ने यह भाषण कर उन त्रायस्त्रिंश देवों को पुनः सम्बोधित किया–

'क्या आप त्रायस्त्रिंश देवता यह नहीं मानते कि उन भगवान्....को त्रिविध सुख की प्राप्ति के लिये अवकाश (स्थान) प्राप्त है। वे तीन सुख कौन से हैं? (१) कोई पुरुष कामभोगों में लिप्त रहता हुआ अकुशल धर्मों (पापों) से लिप्त रहकर सुखभोग करता है। वह फिर आगे चलकर आर्य धर्म को सुनता, अच्छी तरह मन में करता हुआ धर्म–साधना में लग जाता है। वह उस आर्यधर्म को सुनकर भलीभाँति धर्मसाधना में लगता है, भलीभाँति मन में लाते हुए कामभोगों एवं अकुशल धर्मों में विना आसक्त हुए साधना करने लगता है। उस साधना से सुख एवं उससे सौमनस्य उत्पन्न होता है। श्रीमन्! जैसे मोद से प्रमोद (अत्यन्त हर्ष) उत्पन्न होता है; उसी तरह कामभोगों एवं अकुशल धर्मों में आसक्त न होकर धर्मसाधना करने से सुख और उस सुख से सौमनस्य उत्पन्न होता है। यह उस भगवान्....सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा, सुख की प्राप्ति के लिये प्रथम अवकाश (स्थान) प्राप्त किया था। (१)

और फिर, श्रीमन्! किसी (प्रथम अवस्था के) साधक के अतिवृद्ध (उदार) कायसंस्कार अशान्त होते हैं, वाक्संस्कार...मनःसंस्कार अशान्त होते हैं। वही साधक आगे चलकर आर्यधर्म को सुनता है, सुनकर उसे अपने मन में भलीभाँति बैठाता है तथा उस धर्म की साधना में लग जाता है। उस आर्यधर्म के सुनने से उस साधक के वे अतिवृद्ध कायसंस्कार....वाक्संस्कार एवं मनःसंस्कार शान्त होने लगते हैं।

भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दुतियो ओकासधिगमो अनुबुद्धो सुखस्साधिगमाय। (२)

पुन च परं, भो, इधेकच्चो 'इदं कुसलं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'इदं अकुसलं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'इदं सावज्जं' 'इदं अनवज्जं' 'इदं, सेवितब्बं' 'इदं न सेवितब्बं' 'इदं हीनं' 'इदं पणीतं' 'इदं कण्हसुक्कसप्पटिभागं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। सो अपरेन समयेन अरियधम्मं सुणाति, योनिसो मनसि करोति, धम्मानुधम्मं पटिपज्जति। सो अरियधम्मस्सवनं आगम्म योनिसोमनसिकारं धम्मानुधम्मप्पटिपत्तिं,'इदं कुसलं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं अकुसलं' ति यथाभूतं पजनाति, 'इदं सावज्जं' 'इदं अनवज्जं' 'इदं सेवितब्बं' 'इदं न सेवितब्बं' 'इदं हीनं' 'इदं पणीतं' 'इदं कण्हसुक्कसप्पटिभागं' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। तस्स अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा [N.162] उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। सेय्यथापि, भो, पमुदा पामोज्जं जायेथ; एवमेव खो, भो, अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा उप्पज्जति सुखं, सुखा भिय्यो सोमनस्सं। अयं खो, भो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ततियो ओकासाधिगमो अनुबुद्धो [R.215] सुखस्साधिगमाय। (३) इमे खो, भो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन तयो ओकासाधिगमा अनुबुद्धा सुखस्साधिगमाया ति।

चत्तारो सतिपट्ठाना

'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

१८. तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, याव सुपञ्ञत्ता चिमे तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासबुद्धेन चत्तारो सतिपट्ठाना पञ्ञत्ता कुसलस्साधिगमाय। कतमे

उन त्रिविध संस्कारों के शान्त होने से उसे सुख एवं उस सुख से सौमनस्य उत्पन्न होता है। जैसे मोद से प्रमोद....पूर्ववत्.... सौमनस्य उत्पन्न होता है। श्रीमन्! यह उस ज्ञानी भगवान्....सम्यक्सम्बुद्ध ने सुख-प्राप्ति हेतु द्वितीय अवकाश प्राप्त किया था। (२)

और फिर, श्रीमन्! कोई (नया) साधक 'यह कुशल है', 'यह अकुशल है', 'यह निन्दय है', 'यह अनिन्दय है', 'यह सेवनीय (करणीय) है', 'यह असेवनीय है', 'यह हीन है, 'यह श्रेष्ठ है', 'इस में अच्छाई एवं बुराई— दोनों हैं'— ऐसा भलीभाँति नहीं जानता। वह आगे चलकर, कभी आर्यधर्म का श्रवण करे, श्रवण कर उसे भलीभाँति मन में बैठा ले, उसके अनुसार आचरण करने लगे। इस तरह वह उस आर्यधर्म को सुनने, मन में बैठाने एवं उस पर आचरण करने पर 'यह कुशल है'....पूर्ववत्....भलीभाँति जान लेता है। उस के ऐसा जान लेने पर उसकी अविद्या प्रहीण हो जाती है, विद्या (ज्ञान) उत्पन्न हो जाती है। उसके इस अविद्याप्रहाण एवं विद्या के उत्पाद से सुख एवं उस सुख से सौमनस्य उत्पन्न होता है। जैसे— मोद से....पूर्ववत्....सुखप्राप्ति हेतु यह तृतीय अवकाश प्राप्त किया था। (३) श्रीमान्! ये तीन सुख है, जो उन भगवान की सुखप्राप्ति के लिये अवकाशप्राप्त है।

चार स्मृतिप्रस्थान— 'भन्ते ब्रह्मा....ने यह भाषण किया। इस भाषण के बाद ब्रह्मा....ने उन त्रायस्त्रिंश देवों को पुनः सम्बोधित किया—

१८. तो आप त्रायस्त्रिंश देवगण क्या यह मानते हैं कि कुशलप्राप्ति के लिये जो चार

[B.175] चत्तारो ? इध, भो, भिक्खु अज्झत्तं काये कायानुपस्सी विरहति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। अज्झत्तं काये कायानुपस्सी विहरन्तो तत्थ सम्मा समाधियति, सम्मा विप्पसीदति। सो तत्थ सम्मा समाहितो सम्मा विप्पसन्नो बहिद्धा परकाये ञाणदस्सनं अभिनिब्बत्तेति। अज्झत्तं वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति....पे०....बहिद्धा परवेदनासु ञाणदस्सनं अभिनिब्बत्तेति। अज्झत्तं चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति....पे०....बहिद्धा परचित्ते ञाणदस्सनं अभिनिब्बत्तेति। अज्झत्तं धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। अज्झत्तं धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरन्तो तत्थ सम्मा समाधियति, सम्मा विप्पसीदति। सो तत्थ सम्मा समाहितो सम्माविप्पसन्नो बहिद्धा परधम्मेसु ञाणदस्सनं अभिनिब्बत्तेति। इमे खो, भो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो सतिपट्ठाना पञ्ञत्ता कुसलस्साधिगमाया ति।

सत्त समाधिपरिक्खारा

'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

१९. तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, याव सुपञ्ञत्ता चिमे तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सत्त समाधिपरिक्खारा सम्मासमाधिस्स परिभावनाय सम्मासमाधिस्स पारिपूरिया। कतमे सत्त ? सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, [R.217] सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति। या खो, भो, इमेहि सत्तहङ्गेहि चित्तस्स [N.163] एकग्गता परिक्खता, अयं वुच्चति, भो, अरियो सम्मासमाधि सउपनिसो इति पि सपरिक्खारो इति पि। सम्मादिट्ठिस्स, भो, सम्मासङ्कप्पो पहोति, सम्मासङ्कप्पस्स सम्मावाचा पहोति, सम्मावाचस्स सम्माकम्मन्तो पहोति, सम्माकम्मन्तस्स सम्माआजीवो पहोति,

---

स्मृतिप्रस्थान (शास्त्र में) बताये गये हैं वे चारों स्मृतिप्रस्थान उस भगवान्....को भली भाँति ज्ञात हैं ! कौन से चार? (१) साधक भिक्षु अपनी काया में कायानुपश्यी होकर साधना करता है। उद्योगरत, सावधान, स्मृतिमान्, अभिध्या (लोभ) और दौर्मनस्य (मानसिक अशान्ति) को दबाते हुए अपनी काया में कायानुपश्यना करते हुए उस साधक के वे धर्म समाधि में आते हैं, विशेषतया निर्मल हो जाते हैं। वह भलीभाँति समाहित एवं प्रसन्न होकर बाहर दूसरों के शरीर को निर्मल करके अपने ज्ञान–दर्शन में प्रवृत्त होता है। (२) ....अपनी आन्तरिक वेदनाओं में वेदनानुपश्यना करता हुआ साधना करता है....। (३)....अपने आन्तरिक चित्त में चित्तानुपश्यना करता हुआ साधना करता है....। (४) ....अपने आन्तरिक मनोधर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ साधना करता है....। ये चार स्मृतिप्रस्थान कुशलप्राप्ति के लिये भगवान्....ने बताये हैं।

सात समाधि–परिष्कार– 'भन्ते! ब्रह्मा....ने यह बात कही। यह कहकर ब्रह्मा....ने उन त्रायस्त्रिंश देवों को पुनः सम्बोधित किया–

१९. क्या आप त्रायस्त्रिंश देव जानते हैं कि सम्यक्समाधि की भावना और परिशुद्धि हेतु सात समाधि–साधन (समाधिपरिष्कार) उन भगवान्....ने भलीभाँति बतलाये हैं! कौन से सात? सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति। जो इन सात अङ्गों के साथ चित्त की एकाग्रता तथा परिष्कृति (पात्रता) है वही उपनिषद् एवं परिष्कारसहित 'सम्यक्समाधि' कहलाती है। सम्यग्दृष्टि पुरुष के ही सम्यक्सङ्कल्प से सम्भव है। सम्यक्सङ्कल्प से सम्यग्वाक्, सम्यग्वाक्

सम्माआजीवस्स सम्मावायामो पहोति, सम्मावायामस्स सम्मासति पहोति, सम्मासतिस्स सम्मासमाधि पहोति, सम्मासमाधिस्स सम्माञाणं पहोति, सम्माञाणस्स सम्माविमुत्ति पहोति। यञ्हि तं, भो, सम्मा वदमानो वदेय्य—स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि, अपारुता अमतस्स द्वारा ति [B.176] इदमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य—स्वाक्खातो हि, भो, भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि, अपारुता अमतस्स द्वारा। ये हि केचि, भो, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागता। ये चिमे ओपपातिका धम्मविनीता [R.218] सातिरेकानि चतुवीसतिसतसहस्सानि मागधका परिचारका अब्भतीता कालङ्कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा। अत्थि चेवेत्थ सकदागामिनो।

अत्थायं इतरा पजा, पुञ्ञभागा ति मे मनो।
सङ्खातुं नो पि सक्कोमि, मुसावादस्स ओत्तप्पं ति॥

२०. ' इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो भासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स भासतो वेस्सवणस्स महाराजस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, एवरूपो पि नाम उळारो सत्था भविस्सति! एवरूपं उळारं धम्मक्खानं, एवरूपा उळारा विसेसाधिगमा पञ्ञायिस्सन्ती ति! अथ, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो वेस्सवणस्स महाराजस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय वेस्सवणं महाराजानं एतदवोच—तं किं मञ्ञति भवं वेस्सवणो महाराजा, अतीतं पि अद्धानं एवरूपो उळारो सत्था अहोसि, एवरूपं उळारं धम्मक्खानं,

---

से सम्यक्कर्मान्त, सम्यक्कर्मान्त से सम्यगाजीव, सम्यक्गाजीव से सम्यग्वायाम एवं सम्यग्व्यायाम से सम्यक्स्मृति तथा सम्यक्समाधि सम्भव होती है। तब उस सम्यक्समाधि के आलम्बन से सम्यग्ज्ञान एवं इस सम्यग्ज्ञान से चित्त की दोषों से सम्यग्विमुक्ति हो पाती है। सम्यग्विमुक्ति से इस साधनसमूह को पाकर विज्ञ जन उस वास्तविक धर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं— भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म ही स्वाख्यात (सुन्दरता से कहा गया), अकालिक (कालान्तर में नहीं अपितु सद्य:फलप्रद), एहिपश्यिक (परीक्षा किया जा सकने वाला), औपनयिक (निर्वाण तक पहुँचाने वाला), विज्ञजनों को पृथक् पृथक् अक्षरश: विदित होने वाला है, जिसके आत्मसात् कर लेने के बाद साधक के लिये अमृतद्वार खुल जाते हैं। जो लोग बुद्ध में, धर्म में, सङ्घ में स्थायी रूप से सतत श्रद्धा एवं प्रेम प्रकट करते हैं, उत्तम शील से युक्त हैं, उनके लिये मानो अमृत का द्वार ही खुल गया समझो। जैसे कि ये चौबीस लाख से भी अधिक धर्मविनीत औपपातिक (अयोनिजदेवता) बने मगधवासी परिचारक अतीत काल में मार के तीन बन्धनों के कट जाने से स्रोतआपन्न हो गये। वे फिर आगे कभी तीन अपायों (नरकों) में नहीं गिर सकते और वे नियत रूप से सम्बोधि–प्राप्ति में लगे हैं। इस समय वे सकृदागामी हैं।

मैं जानता हूँ कि यहाँ दूसरे लोग भी पुण्य के भागी हैं। कहीं मिथ्या भाषण न हो जाय— इसलिये मैं उन्हें गणनापूर्वक नहीं बता रहा हूँ।

२०. 'भन्ते! ब्रह्मा....ने यह धर्म–व्याख्यान किया। भन्ते! ब्रह्मा....के इतना कहने कर (वहाँ उपस्थित) वैश्रवण महाराज के यह विचार (मन में) आया— आश्चर्य है, अद्भुत है; इस प्रकार के उदार **(श्रेष्ठ) शास्ता फिर भी कभी उत्पन्न हों तो ऐसे उदार धर्मोपदेश और ऐसे उच्च कोटि के ज्ञान देखे–सुने**

एवरूपा उळारा विसेसाधिगमा पञ्ञायिंसु; अनागतं पि अद्धानं एवरूपो उळारो सत्था भविस्सति एवरूपं उळारं धम्मक्खानं एवरूपा उळारा विसेसाधिगमा पञ्ञायिस्सन्ती ति।

२१. 'इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं अभासि, इममत्थं वेस्सवणो [N.164, B.177] महाराजा ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स देवानं तावतिंसानं भासतो सम्मुखा सुतं [R.219] सम्मुखा पटिग्गहितं सयं परिसायं आरोचेसि' ''।

इममत्थं जनवसभो यक्खो वेस्सवणस्स महाराजस्स सयं परिसायं भासतो सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं भगवतो आरोचेसि। इममत्थं भगवा जनवसभस्स यक्खस्स सम्मुखा सुत्वा सम्मुखा पटिग्गहेत्वा सामञ्च अभिञ्ञाय आयस्मतो आनन्दस्स आरोचेसि। इममत्थमायस्मा आनन्दो भगवतो सम्मुखा सुत्वा सम्मुखा पटिग्गहेत्वा आरोचेसि भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। तयिदं ब्रह्मचरियं इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं ति॥

जनवसभसुत्तं निट्ठितं पञ्चमं॥

जाँय। भन्ते! ब्रह्मा ने वैश्रवण महाराज के चित्त के उस विचार को स्वचित्त से जान कर यह कहा– वैश्रवण महाराज! क्या आप नहीं जानते कि अतीत काल में भी इस प्रकार श्रेष्ठ शास्ता....देखे गये थे। भविष्य में भी इस प्रकार के उदार शास्ता....होंगे.... देखे जायँगें।

२१.'भन्ते! ब्रह्मा....ने त्रायस्त्रिंश देवों से यह कहा। त्रायस्त्रिंश देवों के सामने ब्रह्मा....ने जो कुछ कहा उसे सामने सुनकर और सामने ग्रहण कर वैश्रवण महाराज ने अपनी सभा में कह सुनाया'।''

यह बात जनवृषभ यक्ष ने वैश्रवण महाराज द्वारा स्वयं अपनी सभा में कही जाते हुए सुनकर भगवान् को सुनायी। भगवान् ने जनवृषभ यक्ष से सुनकर, प्रत्यक्ष जान कर आयुष्मान् आनन्द से कही। और आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से सुनकर भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों एवं उपासिकाओं से कही। वही ब्रह्मचर्य (भगवदुपदिष्ट धर्म) ऋद्धिमय, उन्नत, विस्तारप्राप्त, प्रसिद्धिप्राप्त और विशाल होकर देवताओं तथा मनुष्यों में प्रकाशित हुआ।।

पञ्चम जनवृषभसूत्र समाप्त॥

६. महागोविन्दसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N.165, R.220, B.178] गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो पञ्चसिखो गन्धब्बपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं गिज्झकूटं पब्बतं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो पञ्चसिखो गन्धब्बपुत्तो भगवन्तं एतदवोच— "यं खो मे, भन्ते, देवानं तावतिंसानं सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं आरोचेमि तं भगवतो" ति। "आरोचेहि मे त्वं, पञ्चसिखा" ति भगवा अवोच।

१. सुधम्मा देवसभा

२. "पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि तदहुपोसथे पन्नरसे पवारणाय पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया केवलकप्पा च देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतिता, महती च दिब्बपरिसा समन्ततो निसिन्ना होति, चत्तारो महाराजानो चतुद्दिसा निसिन्ना होन्ति। पुरत्थिमाय दिसाय धतरट्ठो महाराजा पच्छिमाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; दक्खिणाय दिसाय विरूळ्हको महाराजा उत्तराभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; पच्छिमाय [R.221] दिसाय विरूपक्खो महाराजा पुरत्थाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा; उत्तराय दिसाय वेस्सवणो महाराजा दक्खिणाभिमुखो निसिन्नो होति देवे पुरक्खत्वा। यदा पन, भन्ते, केवलकप्पा च देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतिता, महती च दिब्बपरिसा समन्ततो निसिन्ना होति, चत्तारो च महाराजानो चतुद्दिसा निसिन्ना होन्ति, इदं नेसं होति आसनस्मिं; अथ पच्छा अम्हाकं आसनं होति।

---

६. महागोविन्दसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब एक समय देदीप्यमान शरीर वाला गन्धर्वपुत्र पञ्चशिख चाँदनी रात्रि में गृध्रकूट पर्वत को प्रकाशित करता हुआ, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उस पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया– "भन्ते! त्रायस्त्रिंश देवों से जैसा मैंने सुना और समझा, (यदि भगवान् कहें तो) उसे भगवान् को सुनाऊँ?" भगवान् बोले– "हाँ, पञ्चशिख! तुम मुझे वह सब सुनाओ।"

१. सुधर्मा देवसभा

२. "भन्ते! बहुत दिन हुए, एक प्रवारणा (आश्विन मास) की पूर्णिमा के अवसर पर, पूर्ण चाँदनी रात में प्रायः (केवलकल्प) सभी त्रायस्त्रिंशक देवता सुधर्मा देवसभा में एकत्र बैठे थे। उनके चारों तरफ देवपरिषद् भी बैठी हुई थी। चारों दिशाओं में चातुर्महाराजिक देवता भी विराजमान थे। उनमें, पूर्व दिशा में धृतराष्ट्र महाराज पश्चिम की ओर मुँह करके बैठे थे। पश्चिमदिशा में विरूपाक्ष महाराज पूर्व की ओर.... दक्षिण दिशा में विरूढक महाराज उत्तर की ओर.... और उत्तर दिशा में वैश्रवण महाराज दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे थे। जब, भन्ते! सुधर्मा सभा में प्रायः सभी त्रायस्त्रिंश देव.... चारों दिशाओं में बैठे थे तो यही उन देवों की उस सभा में बैठने की पद्धति थी। उनके पीछे हम (गन्धर्व) लोगों के बैठने का अवसर आता था।

"ये ते, भन्ते, देवा, भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा अधुनूपपन्ना तावतिंसकायं ते अञ्ञे देवे अतिरोचन्ति वण्णेन चेव यससा च। तेन सुदं, भन्ते, देवा तावतिंसा अत्तमना होन्ति [B.179] पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता; दिब्बा वत, भो, काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया ति।

[N.166] ३. "अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं सम्पसादं विदित्वा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

'मोदन्ति वत भो देवा, तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं॥
'नवे देवे च पस्सन्ता, वण्णवन्ते यसस्सिनो।
सुगतस्मि ब्रह्मचरियं, चरित्वान इधागते॥
'ते अञ्ञे अतिरोचन्ति, वण्णेन यससायुना।
सावका भूरिपञ्ञस्स, विसेसूपगता इध॥
'इदं दिस्वान नन्दन्ति तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं' ति॥

[R.222] "तेन सुदं, भन्ते, देवा तावतिंसा भिय्योसो मत्ताय अत्तमना होन्ति पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता; दिब्बा वत, भो, काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया ति।

२. भगवतो अट्ठ यथाभुच्चा वण्णा

४. "अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं सम्पसादं विदित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—'इच्छेय्याथ नो तुम्हे, मारिसा, तस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे सोतुं' ति? 'इच्छाम मयं, मारिस, तस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे सोतुं' ति।

"अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे

"भन्ते! जो देवता भगवान् के द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन कर उसके पुण्य प्रभाव से अभी अब इस त्रायस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुए थे। वे अन्य देवों की अपेक्षा वर्ण और यश के आधिक्य में विशेष थे। भन्ते! इसी कारण अन्य देवता प्रसन्न, प्रमुदित एवं प्रीति–सौमनस्ययुक्त हो रहे थे कि देवलोक समृद्ध रहा है तथा असुरलोक क्षीण हो रहा है।

३. "तब, भन्ते! देवेन्द्र शक्र ने देवताओं को प्रसन्न, प्रमुदित एवं प्रीति–सौमनस्ययुक्त देखकर, उनकी प्रसन्नता का इन गाथाओं में अनुमोदन किया—

'अरे! ये सभी इन्द्र सहित त्रायस्त्रिंश वासी देवजन...पूर्ववत्....धर्म की सुधर्मता (अच्छाइयों) को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं।

"भन्ते! इस शक्रकृत अनुमोदन से वे देवता और अधिक प्रसन्न हुए कि देवताओं की शक्ति बढ़ रही है और असुरशक्ति क्षीण हो रही है।

२. भगवान् के आठ यथार्थ गुण

४. "तब देवेन्द्र शक्र ने त्रायस्त्रिंश देवों को प्रसन्न देखकर उन्हें सम्बोधित किया—'मार्ष! क्या आप लोग भगवान् के आठ यथार्थ गुणों को सुनना चाहते हैं?' देवता बोले—'हाँ, मार्ष! हम सुनना चाहते हैं।'

पयिरुदाहासि—'तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, यावं च सो भगवा बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। एवं बहुजनहिताय पटिपन्नं बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (१)

'स्वाक्खातो खो पन तेन भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहि-[B.180] पस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि। एवं ओपनेय्यिकस्स धम्मस्स देसेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता।(२)

'इदं कुसलं ति खो पन तेन भगवता सुपञ्ञत्तं, इदं अकुसलं ति सुपञ्ञत्तं, [N.167] इदं सावज्जं इदं अनवज्जं इदं सेवितब्बं इदं न सेवितब्बं इदं हीनं इदं पणीतं इदं [R.223] कण्हसुक्कसप्पटिभागं ति सुपञ्ञत्तं। एवं कुसलाकुसलसावज्जानवज्ज-सेवितब्बासेवितब्ब-हीनपणीत-कण्हसुक्कसप्पटिभागानं धम्मानं पञ्ञापेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (३)

'सुपञ्ञत्ता खो पन तेन भगवता सावकानं निब्बानगामिनी पटिपदा। संसन्दति निब्बानं च पटिपदा च। सेय्यथापि नाम गङ्गोदकं यमुनोदकेन संसन्दति समेति, एवमेव सुपञ्ञत्ता तेन भगवता सावकानं निब्बानगामिनी पटिपदा। संसन्दति निब्बानं च पटिपदा च। एवं निब्बानगामिनिया पटिपदाय पञ्ञापेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि अञ्ञत्र तेन भगवता। (४)

तब देवेन्द्र शक्र ने उन त्रायस्त्रिंश देवों के सम्मुख भगवान् के आठ गुणों का वर्णन करना यों प्रारम्भ किया— (१) आप त्रायस्त्रिंश देव क्या नहीं जानते कि भगवान् जनहित, जनसुख एवं लोकानुकम्पा को ध्यान में रखकर देव–मनुष्य प्रजा के लिये उपदेश करते हैं। ऐसा उपदेश करने वाले शास्ता न हमने अतीत काल में कोई अन्य देखा, न वर्तमान में किसी को देख रहे हैं, न भविष्य में ही किसी अन्य को देख पायेंगे, भगवान् को छोड़कर।

(२) 'भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, सान्दृष्टिक है, अकालिक है, एहिपश्यिक है, औपनयिक है, विज्ञों द्वारा प्रत्यात्म (पृथक् पृथक्, अक्षरशः) वेदनीय है। इस निर्वाण तक पहुँचाने वाले धर्म का ऐसा अन्य कोई शास्ता न भूतकाल में कोई देखा है, न वर्तमान काल में, न भविष्यत्काल में दिखायी देगा, केवल भगवान् को छोड़कर।

(३) 'यह अच्छा है', 'यह बुरा है', 'यह निन्द्य है', 'यह अनिन्द्य है', 'यह करणीय है', 'यह अकरणीय है', 'यह हीन है', 'यह श्रेष्ठ है', 'यह अच्छाई–बुराई– दोनों से युक्त है'– ऐसा भलीभाँति किसी ने नहीं समझाया। यों, कुशल–अकुशल, निन्द्य–स्तुत्य, कर्तव्य–अकर्तव्य, हीन–श्रेष्ठ, कृष्ण–शुक्ल कर्मों का मिश्रण आदि धर्मों के विषय में सब कुछ भलीभाँति समझाने वाला कोई अन्य शास्ता....भगवान् को छोड़कर।

(४) 'उस भगवान् ने निर्वाण की ओर जाने वाला मार्ग भलीभाँति बतलाया है। उस के उपदेशों में निर्वाण और मार्ग– दोनों अनुकूल हैं। जैसे– गङ्गा और यमुना का जल परस्पर मिलकर एक दूसरे के अनुकूल होकर बहता है, उसी तरह उनके उपदेशों में निर्वाण और मार्ग–दोनों अनुकूल होकर ही परस्पर मेल खाते हैं। ऐसे मार्ग का बोधक कोई अन्य शास्ता न अतीत में....कोई होगा, भगवान् को छोड़कर।

'अभिनिप्फन्नो खो पन तस्स भगवतो लाभो, अभिनिप्फन्नो सिलोको। याव मञ्ञे ख्त्तिया सम्पियायमानरूपा विहरन्ति, विगतमदो खो पन सो भगवा आहारं आहारेति। एवं [R.224] विगतमदं आहारं आहरयमानं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (५)

'लद्धसहायो खो पन सो भगवा सेखानं चेव पटिपन्नानं खीणासवानं च वुसितवतं। ते भगवा अपनुज्ज एकारामतं अनुयुत्तो विहरति। एवं एकारामतं अनुयुत्तं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (६)

'यथावादी खो पन सो भगवा तथाकारी, यथाकारी तथावादी। इति यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी। एवं धम्मानुधम्मप्पटिपन्नं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (७)

[B.181] 'तिण्णविचिकिच्छो खो पन सो भगवा विगतकथङ्कथो परियोसितसङ्कप्पो अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं। एवं तिण्णविचिकिच्छं विगतकथङ्कथं परियोसितसङ्कप्पं अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र [N.168] तेन भगवता' ति। (८)

५. ''इमे खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे पयिरुदाहासि। तेन सुदं, भन्ते, देवा तावतिंसा भिय्योसो मत्ताय अत्तमना होन्ति पमुदिता पीतसोमनस्सजाता भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे सुत्वा। तत्र, भन्ते, एकच्चे देवा एवमाहंसु– 'अहो वत, मारिसा, चत्तारो सम्मासम्बुद्धा लोके उप्पज्जेय्युं धम्मं च देसेय्युं यथरिव भगवा

---

(५) 'उन भगवान् को महान् लाभ हुआ है, उन का यश चारों और अत्यधिक रूप से फैला हुआ है। वे क्षत्रिय आदि सभी जातियों के समान रूप से प्रिय हैं। वे भगवान् जो आहार (भोजन) लेते हैं, वह मद के लिये नहीं होता। इस प्रकार मदरहित आहार का आहर्ता कोई अन्य शास्ता.... नहीं.... भगवान् को छोड़कर।

(६) 'उन भगवान् ने शैक्ष, मार्गारूढ़, क्षीणास्रव (अर्हत्) तथा ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण करने वाले भिक्षुओं का साथ किया है। वे उनको छोड़कर एकान्त में धर्मसाधना करते रहते हैं। एकान्त में साधना करने वाला ऐसा अन्य शास्ता.... नहीं.... भगवान् को छोड़कर।

(७) 'भगवान् जैसा कहते हैं वैसा करते हैं, जैसा करते हैं वैसा ही कहते हैं। इस तरह भगवान् यथावादी तथाकारी एवं यथाकारी तथावादी हैं। यों भगवान् निरन्तर धर्म मार्ग पर आरूढ़ रहते हैं। यह धर्ममार्गारोहण की निरन्तरता न किसी अन्य शास्ता में.... भगवान् को छोड़कर।

(८) 'भगवान् को अपने सिद्धान्तों या दार्शनिक तत्त्वों में कोई सन्देह नहीं रह गया है *(तिण्णविचिकिच्छो)*, उनकी तद्विषयक सभी शङ्काएँ दूर हो गयी है *(विगतकथङ्कथी)*, उनके सभी सङ्कल्प पूर्ण हो चुके हैं *(परियोसितसङ्कप्प)* इस तरह इनकी धर्मसाधना भी उक्त अङ्गों से परिपूर्ण हैं। अतः ऐसा शास्ता हमने अन्यत्र.... नहीं देखा है, भगवान् को छोड़कर।'

५. ''भन्ते! उन त्रायस्त्रिंश देवों ने (शक्र के मुख से) भगवान् के आठ गुणों को सुनकर अपना अत्यन्त सन्तोष, प्रमोद एवं प्रीति, सौमनस्य प्रकट किया। भन्ते! वहाँ उपस्थित कुछ देवताओं ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'यदि इन आठ गुणों से युक्त भगवान् के समान चार और शास्ता लोक में उत्पन्न हो

तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। एकच्चे देवा एवमाहंसु—'तिट्ठन्तु, मारिसा, चत्तारो सम्माम्बुद्धा। अहो वत, मारिसा, तयो सम्मासम्बुद्धा लोके उप्पज्जेय्युं धम्मं च देसेय्युं यथरिव भगवा तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। एकच्चे देवा एवमाहंसु—'तिट्ठन्तु, मारिसा, तयो सम्मासम्बुद्धा। अहो वत, मारिसा, द्वे सम्मासम्बुद्धा लोके उप्पज्जेय्युं धम्मं च देसेय्युं यथरिव भगवा तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति।

६. "एवं वुत्ते, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे एतदवोच—'अट्ठानं [R.225] खो एतं, मारिसा अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युं, नेतं ठानं विज्जति। अहो वत, मारिसा, सो भगवा अप्पाबाधो अप्पातङ्को चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। अथ खो, भन्ते, येनत्थेन देवा तावतिंसा सुधम्मायं सभायं [B.182] सन्निसिन्ना होन्ति सन्निपतितातं अत्थं चिन्तयित्वा, तं अत्थं मन्तयित्वा, वुत्तवचना पि तं चत्तारो महाराजानो तस्मिं अत्थे होन्ति, पच्चानुसिट्ठवचना पि तं चत्तारो महाराजानो तस्मिं अत्थे होन्ति सकेसु सकेसु आसनेसु ठिता अविपक्कन्ता।

ते वुत्तवाक्या राजानो, पटिग्गय्हानुसासनिं।
विप्पसन्नमना सन्ता, अट्ठंसु सम्हि आसने ति॥

३. ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स पातुभावो

७. "अथ खो, भन्ते, उत्तराय दिसाय उळारो आलोको सञ्जायि ओभासो पातुरहोसि अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। अथ खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे [N.169]

जाते तो इस लोक का और भी अधिक कल्याण होता।' (यह सुनकर) दूसरे कुछ देवों ने यह कहा— 'मार्ष! चार तो क्या! तीन भी....दो भी शास्ता भगवान् के समान....अधिक कल्याण होता।'

६. देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवेन्द्र शक्र ने कहा— "मार्षो! ऐसा नहीं होता। एक समय में एक ही लोक धातु में दो सम्यक्सम्बुद्ध नहीं हुआ करते। अतः मार्षो! (इससे तो अच्छा यह रहेगा कि हम यह मनावें—) ये ही भगवान् ये ही भगवान् स्वस्थ, नीरोग एवं दीर्घायु रहते हुए जगत् (लोक) के हित–सुख–कल्याण के लिये ऐसा ही अष्टाङ्गयुक्त धर्मोपदेश करते रहें।

"भन्ते! तदनन्तर वे त्रायस्त्रिंश देवगण उस सुधर्म सभा में जिस विशेष कार्य पर विचारहेतु एकत्र बैठे थे, उस कार्य पर विचार कर निर्णय कर तथा उस निर्णय पर चारों महाराजाओं द्वारा भी अनुमोदन कर दिये जाने पर, बिना वहाँ से अन्यत्र गये अपने आसनों (पर्यङ्कों) पर ही स्थित हो गये।

ये चारों महाराज भी, सभा का अनुशासन स्वीकार करते हुए प्रसन्न मन से अपने अपने आसनों पर स्थित रहे।

३. सनत्कुमार ब्रह्मा का प्राकट्य

७. "भन्ते! तब वहाँ उत्तर दिशा से एक अत्यन्त चमकीला तेज (आलोक) दिखायी देने लगा। वह आलोक उन उपस्थित देवों के दिव्यानुभाव से भी अधिक प्रकाश वाला था। भन्ते! तब देवेन्द्र शक्र ने

आमन्तेसि—'यथा खो, मारिसा, निमित्तानि दिस्सन्ति उळारो आलोको सञ्जायति ओभासो पातु भवति, ब्रह्मा पातु भविस्सति; ब्रह्मुनो हेतं पुब्बनिमित्तं पातुभावाय यदिदं आलोको सञ्जायति ओभासो पातु भवती ति।

'यथा निमित्ता दिस्सन्ति, ब्रह्मा पातु भविस्सति।
ब्रह्मुनो हेतं निमित्तं, ओभासो विपुलो महा' ति॥

[R.226] ८. "अथ खो, भन्ते, देवा तावतिंसा यथासकेसु आसनेसु निसीदिंसु—'ओभासमेतं ञस्साम यंविपाको भविस्सति सच्छिकत्वा व नं गमिस्सामा' ति। चत्तारो पि महाराजानो यथासकेसु आसनेसु निसीदिंसु—'ओभासमेतं ञस्साम यंविपाको भविस्सति, सच्छिकत्वा व नं गमिस्सामा' ति। इदं सुत्वा देवा तावतिंसा एकग्गा समापज्जिंसु—'ओभासमेतं ञस्साम यंविपाको भविस्सति, सच्छिकत्वा व नं गमिस्सामा' ति।

"यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातु भवति, ओळारिकं अत्तभावं अभिनिम्मिनित्वा पातु भवति। यो खो पन, भन्ते, ब्रह्मुनो पकतिवण्णो अनभिसम्भवनीयो सो देवानं तावतिंसानं चक्खुपथस्मिं। यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातु भवति, सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। सेय्यथापि, भन्ते, सो वण्णो विग्गहो मानुसं [B.183] विग्गहं अतिरोचति; एवमेव खो, भन्ते, यदा ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातुभवति, सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। यदा, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो देवानं तावतिंसानं पातु भवति, न तस्सं परिसायं कोचि देवो अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेति। सब्बेव तुण्हीभूता पञ्जलिका पल्लङ्केन निसीदन्ति—'यस्स दानि देवस्स पल्लङ्कं इच्छिस्सति ब्रह्मा सनङ्कुमारो तस्स देवस्स पल्लङ्के निसीदिस्सती' ति। यस्स खो पन, भन्ते, देवस्स ब्रह्मा सनङ्कुमारो पल्लङ्के निसीदति, उळारं सो लभति देवो वेदपटिलाभं, उळारं [R.227] सो लभति देवो सोमनस्सपटिलाभं। सेय्यथापि, भन्ते, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो अधुनाभिसित्तो रज्जेन उळारं सो लभति वेदपटिलाभं, उळारं सो लभति सोमनस्सपटिलाभं;

उन त्रायस्त्रिंश देवों को बताया– "मार्ष! जैसा यह अद्वितीय निमित्त दिखायी दे रहा है, उससे तो यही प्रकट होता है कि यह ब्रह्मा सनत्कुमार के प्रकट होने का पूर्व निमित्त है।

'जैसे पूर्वनिमित्त दिखायी दे रहे हैं उनसे तो यही द्योतित होता है कि ब्रह्मा....प्रकट होने वाले हैं।'

८. "भन्ते! तब वे त्रायस्त्रिंश देव....चातुर्महारजिक देव....प्रत्यक्ष देखकर ही जाँयगें।

"भन्ते! ब्रह्मा....जब त्रायस्त्रिंश देवों के बीच प्रकट होते हैं तो अपना विशाल आकार संवृत करके प्रकट होते हैं; क्योंकि ब्रह्मा का वास्तविक विशाल तेजस्वी रूप देवताओं की आँखों से देखने में चकाचौंध पैदा करता है। उस ब्रह्मा का वास्तविक रूप मनुष्यों की अपेक्षा तो विशाल होता ही है, त्रायस्त्रिंश देवों के शरीर की अपेक्षा भी विशाल होता है। न केवल विशालता में, अपितु वर्ण एवं यक्ष में भी वह ब्रह्मा देवों की अपेक्षा अधिक होता है। ब्रह्मा....जब देवपरिषद् में आते हैं, तब वे देव न उसके अभ्युत्थान में स्वयं खड़े होते हैं, न उन्हें प्रणाम करते हैं अपितु वे चुपचाप हाथ जोड़कर पद्मासन लगाकर अपने पर्यङ्क पर बैठे रहते हैं। उस समय ब्रह्मा जिस देवता के पर्यङ्क पर बैठना चाहते हैं, बैठ जाते हैं। ब्रह्मा जिस देवता के पर्यङ्क पर बैठते हैं, वह देवता अपने में गर्व एवं सौमनस्य का अपेक्षाकृत अधिक अनुभव करता है। भन्ते! जैसे कोई क्षत्रिय युवक, अचानक राजा बना दिये जाने पर, अधिक प्रीति–सौमनस्य

एवमेव खो, भन्ते, यस्स देवस्स ब्रह्मा सनङ्कुमारो पल्लङ्के निसीदति उळारं सो लभति देवो वेदपटिलाभं, उळारं सो लभति देवो सोमनस्सपटिलाभं। अथ, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो [N.170] देवानं तावतिंसानं सम्पसादं विदित्वा अन्तरहितो इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

'मोदन्ति वत भो देवा, तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं॥
'नवे देवे च पस्सन्ता, वण्णवन्ते यसस्सिने।
सुगतस्मि ब्रह्मचरियं, चरित्वान इधागते॥
'ते अञ्ञे अतिरोचन्ति, वण्णेन यससायुना॥
सावका भूरिपञ्ञस्स, विसेसूपगता इध॥
'इदं दिस्वान नन्दन्ति, तावतिंसा सहिन्दका।
तथागतं नमस्सन्ता, धम्मस्स च सुधम्मतं' ति॥

९. "इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो अभासित्थ। इममत्थं, भन्ते, ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स भासतो अट्ठङ्गसमन्नागतो सरो होति—विस्सट्ठो च विञ्ञेय्यो च मञ्जु च सवनीयो च बिन्दु च अविसारी च गम्भीरो च निन्नादी च। यथापरिसं खो पन, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो सरेन विञ्ञापेति। न चस्स बहिद्धा परिसाय घोसो निच्छरति। यस्स खो पन, भन्ते, एवं अट्ठङ्गसमन्नागतो सरो होति सो वुच्चति 'ब्रह्मस्सरो' ति। अथ खो, भन्ते, देवा तावतिंसा ब्रह्मानं [B.184] सनङ्कुमारं एतदवोचुं—'साधु, महाब्रह्मो, एतदेव मयं सङ्खाय मोदाम। अत्थि च सक्केन [R.228] देवानमिन्देन तस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चा वण्णा भासिता; ते च मयं सङ्खाय मोदामा' ति।

१०. "अथ , भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—'साधु, देवानमिन्द, मयं पि तस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे सुणेय्यामा' ति। 'एवं, महाब्रह्मे' ति खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे पयिरुदाहासि—

अनुभव करता है, उसी तरह वह देवता भी.... अनुभव करता है। तब, भन्ते! ब्रह्मा.... ने उन त्रायस्त्रिंश देवों को प्रसन्न अनुभव करते हुए अदृश्य रहते हुए ही ये गाथाएँ कहीं—

'इन्द्र सहित आप सभी देवता....पूर्ववत्.... धर्म की सुधर्मता को स्वीकार करते हुए बुद्ध और धर्म को प्रणाम कर रहे हैं।

९. "भन्ते! ब्रह्मा.... ने ये गाथाएँ कहीं। भन्ते! ये गाथाएँ बोलते हुए ब्रह्मा का स्वर इन आठ अङ्गों से युक्त था। जैसे- विस्पष्ट, विज्ञेय, मञ्जु, श्रवणीय, विन्दुवत्, अविसारी, गम्भीर एवं निन्नादी। परिषद् के अनुसार ही वे तीव्र–मन्द स्वर में ऐसा बोलते थे कि उनका स्वर परिषद् से बाहर नहीं जाता था। ऐसा स्वर 'ब्रह्मस्वर' कहलाता है। भन्ते! तब वे देवता ब्रह्मा.... से यों बोले- 'साधु महाब्रह्मन्! इसीलिये तो हम लोग प्रसन्न हो रहे थे। उसके बाद देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के जिन आठ गुणों का वर्णन किया, उन्हें सुनकर तो हमें और अधिक प्रीति–सौमनस्य पैदा हुआ।'

१०. "भन्ते! तब ब्रह्मा...ने देवेन्द्र शक्र से कहा— 'साधु देवेन्द्र शक्र! हम भी भगवान् के उन आठ गुणों का वर्णन सुनें। 'ठीक है ब्रह्मन्'— कहकर देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के वे आठ गुण सुनाने प्रारम्भ किये—

'तं किं मञ्ञसि, महाब्रह्मा, यावं च सो भगवा बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। एवं बहुजनहिताय पटिपन्नं बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (१)

[N.171] 'स्वाक्खातो खो पन तेन भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि। एवं ओपनेय्यिकस्स धम्मस्स देसेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (२)

'इदं कुसलं ति खो पन तेन भगवता सुपञ्ञत्तं, इदं अकुसलं ति सुपञ्ञत्तं, इदं सावज्जं इदं अनवज्जं इदं सेवितब्बं इदं न सेवितब्बं इदं हीनं इदं पणीतं इदं कण्हसुक्कसप्पटिभागं ति सुपञ्ञत्तं। एवं कुसलाकुसलसावज्जानवज्जसेवितब्बासेवितब्बहीनपणीतकण्हसुक्कसप्पटि-[R.229] भागानं धम्मानं पञ्ञापेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (३)

'सुपञ्ञत्ता खो पन तेन भगवता सावकानं निब्बानगामिनी पटिपदा। संसन्दति निब्बानं [B.185] च पटिपदा च। सेय्यथापि नाम गङ्गोदकं यमुनोदकेन संसन्दति समेति, एवमेव सुपञ्ञत्ता तेन भगवता सावकानं निब्बानगामिनी पटिपदा। संसन्दति निब्बानं च पटिपदा च। एवं निब्बानगामिनिया पटिपदाय पञ्ञापेतारं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (४)

'अभिनिप्फन्नो खो पन तस्स भगवतो लाभो, अभिनिप्फन्नो सिलोको, याव मञ्ञे खत्तिया सम्पियायमानरूपा विहरन्ति। विगतमदो खो पन सो भगवा आहारं आहारेति। एवं विगतमदं आहारं आहरयमानं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (५)

'लद्धसहायो खो पन सो भगवा सेखानं चेव पटिपन्नानं खीणासवानं च वुसितवतं। ते भगवा अपनुज्ज एकारामतं अनुयुत्तो विहरति। एवं एकारामतं अनुयुत्तं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (६)

'यथावादी खो पन सो भगवा, तथाकारी, यथाकारी तथावादी; इति यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी। एवं धम्मानुधम्मप्पटिप्पन्नं इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता। (७)

'तिण्णविचिकिच्छो खो पन सो भगवा विगतकङ्कथो परियोसितसङ्कप्पो अज्झासयं [N.172, R.230] आदिब्रह्मचरियं। एवं तिण्णविचिकिच्छं विगतकथङ्कथं परियोसितसङ्कप्पं अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं। इमिनापङ्गेन समन्नागतं सत्थारं नेव अतीतंसे समनुपस्साम न पनेतरहि, अञ्ञत्र तेन भगवता' ति। (८)

११. ''इमे खो, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो ब्रह्मुनो सनङ्कुमारस्स भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे

'तो क्या मानते हो महाब्रह्मन्! कि भगवान्....पूर्ववत्.... (पृ० ४६३) भगवान् को छोड़कर।

वण्णे पयिरुदाहासि। तेन सुदं, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो अत्तमनो होति पमुदितो पीतिसोमनस्सजातो भगवतो अट्ठ यथाभुच्चे वण्णे सुत्वा। अथ, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो ओळारिकं अत्तभावं अभिनिम्मिनित्वा, कुमारवण्णी हुत्वा, पञ्चसिखो देवानं तावतिंसानं पातुरहोसि। सो [B.186] वेहासं अब्भुग्गन्त्वा आकासे अन्तलिक्खे पल्लङ्केन निसीदि। सेय्यथापि, भन्ते, बलवा पुरिसो सुपच्चत्थते वा पल्लङ्के समे वा भूमिभागे पल्लङ्केन निसीदेय्य; एवमेव खो, भन्ते, ब्रह्मा सनङ्कुमारो वेहासं अब्भुग्गन्त्वा आकासे अन्तलिक्खे पल्लङ्केन निसीदित्वा देवे तावतिंसे आमन्तेसि—

४. गोविन्दब्राह्मणवत्थु

१२. 'तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो देवा तावतिंसा, याव दीघरत्तं महापञ्ञो व सो भगवा अहोसि।

'भूतपुब्बं, भो, राजा दिसम्पति नाम अहोसि। दिसम्पतिस्स रञ्ञो गोविन्दो नाम ब्राह्मणो पुरोहितो अहोसि। दिसम्पतिस्स रञ्ञो रेणु नाम कुमारो पुत्तो अहोसि। गोविन्दस्स ब्राह्मणस्स जोतिपालो नाम माणवो पुत्तो अहोसि। इति रेणु च राजपुत्तो जोतिपालो च [R.231] माणवो अञ्ञे च छ खत्तिया इच्चेते अट्ठ सहाया अहेसुं। अथ खो, भो, अहोरत्तानं अच्चयेन गोविन्दो ब्राह्मणो कालमकासि। गोविन्दे ब्राह्मणे कालङ्कते राजा दिसम्पति परिदेवेसि— यस्मिं वत, भो, मयं समये गोविन्दे ब्राह्मणे सब्बकिच्चानि सम्मा वोस्सज्जित्वा पञ्चहि कामगुणेहि समङ्गीभूता परिचारेम, तस्मिं नो समये गोविन्दो ब्राह्मणो कालङ्कतो ति। एवं वुत्ते, भो, रेणु राजपुत्तो राजानं दिसम्पतिं एतदवोच—मा खो त्वं, देव, गोविन्दे ब्राह्मणे कालङ्कते अतिबाळ्हं परिदेवेसि; अत्थि, देव, गोविन्दस्स ब्राह्मणस्स जोतिपालो नाम माणवो पुत्तो पण्डिततरो चेव

---

११. "भन्ते! इस तरह देवेन्द्र शक्र ने उन ब्रह्मा....के सम्मुख भगवान् के इन आठ यथार्थ गुणों का वर्णन किया। वह सुनकर वे ब्रह्मा....सन्तुष्ट, सौमनस्यसम्पन्न हुए। भन्ते! तब ब्रह्मा....ने अपना विशाल शरीर (रूप) संक्षिप्त कर बालक पञ्चशिख के रूप में उन देवताओं के सामने अपने को प्रकट किया। वे आकाश में जाकर वहीं पद्मासन लगाकर बैठ गये। जैसे कोई बलवान् पुरुष अच्छी तरह बिछे हुए पलंग पर या सम भूमिभाग पर पद्मासन लगाकर बैठता है, उसी तरह वे ब्रह्मा आकाश में पद्मासन से बैठकर त्रायस्त्रिंश देवों से कहने लगे–

४. गोविन्दब्राह्मण की कथा

१२. 'तो क्या आप त्रायस्त्रिंश देव यह नहीं जानते कि वे भगवान् बहुत समय पहले से ही ऐसे प्रज्ञावान् थे।

'पहले किसी समय, दिशाम्पति नाम का एक राजा हुआ था। उस राजा के गोविन्द नाम का ब्राह्मण पुरोहित था और रेणु नाम का पुत्र था। गोविन्द ब्राह्मण को भी ज्योतिःपालमाणव नामक पुत्र था। यों वह रेणु राजपुत्र, ज्योतिःपाल नामक पुरोहित पुत्र एवं अन्य छह क्षत्रिय (पुत्र)– ये आठों परस्पर मित्र थे। बहुत समय बीतने पर एक दिन गोविन्द ब्राह्मण का देहपात हो गया। गोविन्द ब्राह्मण का देहपात हो जाने पर राजा दिशाम्पति यों विलाप करने लगा– अरे! जिस गोविन्द ब्राह्मण पर राज्य के सभी शासन कार्यों का भार डालकर हम दिन रात पाँचों कामभोगों के सेवन में लगे रहते थे, आज वही गोविन्द ब्राह्मण मर गया! ऐसा विलाप करते राजा को उस का पुत्र रेणु समझाने लगा– देव! आप गोविन्द ब्राह्मण के मर जाने पर, इतना विलाप न कीजिये! क्योंकि उसी गोविन्द ब्राह्मण का पुत्र ज्योतिःपाल अपने पिता की

पितरा अलमत्थदस्सतरो चेव पितरा; ये पिस्स पिता अत्थे अनुसासि ते पि जोतिपालस्सेव माणवस्स अनुसासनिया' ति।

[N.173] 'एवं, कुमारा' ति? 'एवं, देवा' ति।

महागोविन्दो

१३. *अथ खो, भो, राजा दिसम्पति अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येन जोतिपालो नाम माणवो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा जोतिपालं माणवं एवं वदेहि— भवमत्थु भवन्तं जोतिपालं माणवं, राजा दिसम्पति भवन्तं जोतिपालं माणवं आमन्तयति, राजा दिसम्पति भोतो जोतिपालस्स दस्सनकामो ति। एवं देवा ति खो, भो, सो पुरिसो दिसम्पतिस्स [B.187] रञ्ञो पटिस्सुत्वा येन जोतिपालो माणवो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा जोतिपालं [R.232] माणवं एतदवोच—भवमत्थु भवन्तं जोतिपालं, राजा दिसम्पति भवन्तं जोतिपालं माणवं आमन्तयति, राजा दिसम्पति भोतो जोतिपालस्स माणवस्स दस्सनकामो ति। एवं, भो, ति खो, भो, जोतिपालो माणवो तस्स पुरिसस्स पटिस्सुत्वा येन राजा दिसम्पति तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा दिसम्पतिना रञ्ञा सद्धिं सम्मोदि; सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि; एकमन्तं निसिन्नं खो, भो, जोतिपालं माणवं राजा दिसम्पति एतदवोच— अनुसासतु नो भवं जोतिपालो, मा नो भवं जोतिपालो अनुसासनिया पच्चब्याहासि, पेत्तिके तं ठाने ठपेस्सामि, गोविन्दिये अभिसिञ्चिस्सामी ति। एवं, भो, ति खो, भो, सो जोतिपालो माणवो दिसम्पतिस्स रञ्ञो पच्चस्सोसि। अथ खो, भो, राजा दिसम्पति जोतिपालं माणवं गोविन्दिये अभिसिञ्चि, तं पेत्तिके ठाने ठपेसि। अभिसित्तो जोतिपालो माणवो गोविन्दिये पेत्तिके ठाने ठपितो येपिस्स पिता अत्थे अनुसासि ते पि अत्थे अनुसासति, येपिस्स पिता

अपेक्षा अधिक पण्डित है, अधिक कार्यकुशल (अर्थदर्शी) है। अतः जिन कार्यों की देख-भाल गोविन्द ब्राह्मण करते थे, उन को ज्योतिःपाल माणव भी कर सकते हैं, उन पर यह भार डाल दीजिये।

'कुमार! ऐसी बात है?'

'हाँ, देव!'

महागोविन्द— १३. 'तब राजा दिशाम्पति ने किसी अनुचर को बुलाकर आज्ञा दी— अरे पुरुष! जहाँ ज्योतिःपाल माणव हैं वहाँ जाओ और जाकर उन ज्योतिःपाल माणव से कहो— राजा दिशाम्पति आप ज्योतिःपाल के दर्शनों को उत्सुक हैं, राजा आप से मिलना चाहते हैं। अच्छा, देव! कहकर वह अनुचर ज्योतिःपाल माणव के पास जाकर उनसे बोला— ज्योतिःपाल माणव का शुभ हो! राजा दिशाम्पति आपसे मिलना चाह रहे हैं, उन्हें आप के दर्शनों की अत्यधिक उत्कण्ठा है। अच्छा भाई! —यों उस अनुचर से कहकर वह ज्योतिःपाल माणव राजा से मिलने चल पड़ा। राजा के पास पहुँचकर उस ज्योतिःपाल ने राजा से स्वस्तिवाचन किया। स्वस्तिवाचन के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे ज्योतिःपाल माणव से राजा ने निवेदन किया— 'आप ज्योतिःपाल मेरे शासन-कार्यों में परामर्श दिया करें। आप इस परामर्शदान का निषेध न करें। आप को मैं आप के पिता के स्थान पर नियुक्त करता हूँ। उनके सभी अधिकार आप को सौंपता हूँ। अच्छा, श्रीमन्! कहकर ज्योतिःपाल माणव ने राजा को स्वीकृति दे दी। तब राजा दिशाम्पति ने ज्योतिःपाल माणव को उसके पिता के स्थान पर नियुक्त कर दिया। शासनाधिकारी पद पर नियुक्ति हो जाने पर ज्योतिःपाल माणव शासन के उस सभी कार्यों की देख-भाल करने लगा

अत्थे नानुसासि ते पि अत्थे नानुसासति; येपिस्स पिता कम्मन्ते अभिसम्भोसि ते पि कम्मन्ते अभिसम्भोति, येपिस्स पिता कम्मन्ते नाभिसम्भोसि ते पि कम्मन्ते नाभिसम्भोति। तमेनं मनुस्सा एवमाहंसु—गोविन्दो वत, भो, ब्राह्मणो; महागोविन्दो वत, भो, ब्राह्मणो ति। इमिना खो एवं, भो, परियायेन जोतिपालस्स माणवस्स गोविन्दो महागोविन्दो त्वेव समञ्ञा उदपादि।

रज्जसंविभजनं

१४. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन ते छ खत्तिया तेनुपसङ्कमि; [N.174] उपसङ्कमित्वा ते छ खत्तिये एतदवोच—दिसम्पति खो, भो, राजा जिण्णो वुद्धो [R.233] महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। को नु खो पन, भो, जानाति जीवितं! ठानं खो पनेतं विज्जति यं दिसम्पतिम्हि रञ्ञे कालङ्कते राजकत्तारो रेणुं राजपुत्तं रज्जे अभिसिञ्चेय्युं। आयन्तु भोन्तो, येन रेणु राजपुत्तो तेनुपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा रेणुं राजपुत्तं एवं वदेथ—मयं [B.188] खो भोतो रेणुस्स सहाया पिया मनापा अप्पटिकूला। यंसुखो भवं तंसुखा मयं, यंदुक्खो भवं तंदुक्खा मयं। दिसम्पति खो, भो, राजा जिण्णो वुद्धो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। को नु खो पन, भो, जानाति जीवितं! ठानं खो पनेतं विज्जति यं दिसम्पतिम्हि रञ्ञे कालङ्कते राजकत्तारो भवन्तं रेणु रञ्ञे अभिसिञ्चेय्युं। सचे भवं रेणु रज्जं लभेथ, संविभजेथ नो रज्जेना ति। एवं, भो, ति खो, भो, ते छ खत्तिया महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन रेणु राजपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा रेणुं राजपुत्तं एतदवोचुं—मयं खो भोतो रेणुस्स सहाया पिया मनापा अप्पटिकूला; यंसुखो भवं तंसुखा मयं, यंदुक्खो भवं तंदुक्खा मयं। दिसम्पति खो, भो, राजा जिण्णो वुद्धो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। को नु खो पन जानाति जीवितं! ठानं खो पनेतं विज्जति यं दिसम्पतिम्हि रञ्ञे कालङ्कते राजकत्तारो भवन्तं रेणुं रज्जे अभिसिञ्चेय्युं। सचे भवं रेणु रज्जं लभेथ, संविभजेथ नो रज्जेना ति।

को नु खो, भो, अञ्ञो मम विजिते सुखो भवेथ, अञ्ञत्र भवन्तेभि! सचाहं, भो, रज्जं लभिस्सामि, संविभजिस्सामि वो रज्जेना ति।

जिन्हें उनका पिता देखता था और उन कार्यों की देखभाल करने लगा जिन्हें उनका पिता नहीं देख पाता था। उसकी यह विशेषता देखकर लोग आश्चर्यचकित होते थे कि यह तो गोविन्द ब्राह्मण की तरह ही, युवक होते हुए भी सब कार्य सम्पन्न कर रहा है। अपितु इसे इसी वैशिष्ट्य के कारण 'महागोविन्द' कहना चाहिये। तब से लोग उस ज्योतिःपाल माणव को 'महागोविन्द' ही कहने लगे।

राज्य-विभाजन का उपक्रम— १४. तब महागोविन्द, जहाँ उसके मित्र छह क्षत्रिय थे, वहाँ गये। जाकर वे उन छह क्षत्रियों से बोले— दिशाम्पति राजा अब जीर्ण, वृद्ध, पुराने एवं वयस्क हो चुके हैं। किसी के जीवन के विषय में कौन जानता है? बात यह है कि हो सकता है— राजा दिशाम्पति के मरणानन्तर राजपुत्र रेणु को लोग नया राजा बना दें। चलिये, आप वहाँ जाइये जहाँ राजपुत्र रेणु हैं और उनसे कहिये—हमलोग आपके सहायक हैं, प्रिय हैं, मनोऽनुकूल हैं और आगे भी सदा आपके अप्रतिकूल (आप के पक्ष में) ही रहने वाले हैं। आपको जिस बात से सुख मिले उसी से हम भी सुख मानते हैं, आप जिस में दुःख मानते हों, उसे हम भी दुःखद ही समझते हैं। दिशाम्पति राजा जीर्ण....पूर्ववत्.... कौन जानता है। ....आपको नया राजा बना दें। यदि आप राज्य पावें तो हम लोगों को भी राज्य का (उचित) भाग दें। बहुत

[R.234] १५. 'अथ खो, भो, अहोरत्तानं अच्चयेन राजा दिसम्पति कालमकासि। दिसम्पतिम्हि रञ्ञे कालङ्कते राजकत्तारो रेणुं राजपुत्तं रज्जे अभिसिञ्चिंसु। अभिसित्तो रेणु रज्जेन पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति। अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन ते छ खत्तिया तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते छ खत्तिये एतदवोच—दिसम्पति खो, भो, राजा कालङ्कतो, अभिसित्तो रेणु रज्जेन पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति। को नु [N.175] खो पन, भो, जानाति! मदनीया कामा। आयन्तु भोन्तो येन रेणु राजा तेनुपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा रेणु राजानं एवं वदेथ—दिसम्पति खो, भो, राजा कालङ्कतो, अभिसित्तो भवं रेणु रज्जेन, सरति भवं तं वचनं ति?

[B.189] १६. 'एवं, भो, ति खो, भो, ते छ खत्तिया महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन रेणु राजा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा रेणुं राजानं एतदवोचुं— दिसम्पति खो, भो, राजा कालङ्कतो। अभिसित्तो भवं रेणु रज्जेन। सरति भवं तं वचनं ति?

सरामहं, भो, तं वचनं। को नु खो, भो, पहोति, इमं महापथविं उत्तरेन आयतं दक्खिणेन सकटमुखं सत्तधा समं सुविभत्तं विभजितुं ति?

को नु खो, भो, अञ्ञो पहोति, अञ्ञत्र महागोविन्देन ब्राह्मणेना ति?

'अथ खो, भो, रेणु राजा अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येन [R.235] महागोविन्दो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा महागोविन्दं ब्राह्मणं एवं वदेहि—राजा तं, भन्ते, रेणु आमन्तेती ति। एवं देवा ति खो, भो, सो पुरिसो रेणुस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा

अच्छा— कहकर वे छहों क्षत्रियपुत्र जहाँ रेणु राजपुत्र थे वहाँ गये। और बोले— हम लोग आपके सहायक .... दुःखद ही समझते हैं । दिशाम्पति राजा अब जीर्ण....पूर्ववत्.... उचित भाग दें।

(राजपुत्र बोले—) हाँ, मेरे राज्य पाने पर आप लोगों को छोड़कर दूसरा कौन प्रमुदित होगा। यदि मैं राज्य पाऊँगा तो आप लोगों को भी उस राज्य में उचित भाग दूँगा।

१५. 'कुछ समय बीतने पर, राजा दिशाम्पति का देहपात हो गया। दिशाम्पति का देहपात हो जाने पर, राज्य के मन्त्रियों ने रेणु राजपुत्र को गद्दी पर बैठा दिया। रेणु भी अपने इस राज्याभिषेक के बाद पाँचों कामभोगों का यथेच्छ उपभोग करने लगा। तब वह महागोविन्द ब्राह्मण उन छह क्षत्रियों के पास गये और बोले— राजा दिशाम्पति का देहपात हो गया और रेणु राज्याभिषिक्त हो गया अब वह पाँचों कामसुख भोग रहा है। मदोन्मादक इन कामभोगों का क्या ठिकाना कि वे कब किस की मति फेर दें! अतः आप लोग जाइये और राजा रेणु से अपना भाग (हिस्सा) माँगिये। उनसे कहिये— राजा तो मर गये, आप राज्याभिषिक्त हो गये क्या आपको अपने वचन का स्मरण है?

१६. बहुत अच्छा—कह कर वे क्षत्रियपुत्र राजा रेणु के पास गये और बाले— राजा दिशाम्पति का देहपात....पूर्ववत्....आप को अपने प्रतिज्ञावचन का स्मरण है?

हाँ, मुझे अपना प्रतिज्ञावचन स्मृत है। परन्तु इस महापृथ्वी को, जो उत्तर दिशा में अतीव विस्तृत है और दक्षिण दिशा के अन्त में जाकर गाड़ी (शकट) के अग्रभाग की तरह सङ्कीर्ण हो गयी है, सात भागों में कौन विभक्त कर सकता है? *(भारत के मानचित्र से तुलना कीजिये—सं०)*

(क्षत्रिय बोले—) महागोविन्द ब्राह्मण के अतिरिक्त कौन इस पृथ्वी का सात भागों में विभाजन कर सकता है!

येन महागोविन्दो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा महागोविन्दं ब्राह्मणं एतदवोच– राजा तं, भन्ते, रेणु आमन्तेती ति। एवं, भो, ति खो, भो, सो महागोविन्दो ब्राह्मणो तस्स पुरिसस्स पटिस्सुत्वा येन रेणु राजा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रेणुना रञ्ञा सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो, भो, महागोविन्दं ब्राह्मणं रेणु राजा एतदवोच—एतु भवं गोविन्दो, इमं महापथविं उत्तरेन आयतं दक्खिणेन सकटमुखं सत्तधा समं सुविभत्तं विभजतू ति। एवं, भो, ति खो सो महागोविन्दो ब्राह्मणो रेणुस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा इमं महापथविं उत्तरेन आयतं दक्खिणेन सकटमुखं सत्तधा समं सुविभत्तं विभजि, सब्बानि सकटमुखानि पट्ठपेसि। तत्र सुदं मज्झे रेणुस्स रञ्ञो जनपदो होति।

१७. दन्तपुरं कलिङ्गानं, अस्सकानं च पोतनं।
माहिस्सति अवन्तीनं, सोवीरानं च रोरुकं॥
मिथिला च विदेहानं, चम्पा अङ्गेसु मापिता।
बाराणसी च कासीनं, एते गोविन्दमापिता ति॥

१८.'अथ खो, भो, ते छ खत्तिया यथासकेन लाभेन [N.176, B.190, R.236] अत्तमना अहेसुं परिपुण्णसङ्कप्पा—यं अभिपत्थितं तं नो लद्धं ति।

सत्तभू ब्रह्मदत्तो च, वेस्सभू भरतो सह।
रेणु द्वे धतरट्ठा च, तदासुं सत्त भारता ति॥

पठमभाणवारो निट्ठितो॥

महापृथ्वी का विभाजन– 'तब राजा रेणु ने एक अनुचर को आदेश दिया– अरे! तुम महागोविन्द ब्राह्मण के पास जाओ और उनसे कहो कि राजा रेणु ने आप को बुलाया है। अच्छा, देव! यों कहकर राजा की आज्ञा स्वीकारते हुए महागोविन्द ब्राह्मण के पास गया और बोला– श्रीमन् आप को राजा रेणु ने स्मरण किया है। अच्छा! कहकर महागोविन्द ब्राह्मण राजा के पास गये, राजा को स्वस्तिवाचन कर एक ओर बैठ गये। राजा ने उनसे कहा– आइये, श्रीमन् महागोविन्द! आप इस महापृथ्वी (हमारे राज्य) को सात भागों में बाँट दें। अच्छा श्रीमन्! कहकर इस महापृथ्वी को, जो कि उत्तर में अतिविस्तीर्ण एवं दक्षिण में शकटमुखवत् सङ्कीर्ण है, ठीक प्रकार से सात भागों में बाँट दिया। सब सङ्कीर्ण स्थानों को व्यवस्थित कर दिया। इस विभाजन में बीच का भाग राजा रेणु का रखा गया।

१७. 'कलिङ्ग (उड़ीसा) में दन्तपुर, अश्वक (आन्ध्र) में पोतन (पैठन, हैदराबाद), अवन्ति देश (मालवा) में माहिष्मती (महेश्वर, इन्दौर), सौवीर (सिन्ध) देश में रोरुक (रोड़ी–सिन्ध, वर्तमान में पाकिस्तान), विदेह (तिरहुत) में मिथिला, अङ्ग (भागलपुर, मुंगेर जिले) में चम्पा और काशी प्रदेश में वाराणसी– यों उस महागोविन्द ने राजा रेणु के राज्य का सात भागों में विभाजन किया।

१८. 'तब वे छहों क्षत्रिय अपने–अपने भाग में आयी पृथ्वी के शासन में लगे रहकर अत्यन्त प्रमुदित हुए। उन्हें लगा कि अब हमारा सङ्कल्प पूर्ण हुआ, हमें यथाभिलषित मिल गया, हमारा अभीष्ट आकांक्षित या अभिप्रेत हमें उपलब्ध हो गया।

सत्तभू, ब्रह्मदत्त, विश्वभू, भरत, रेणु और दो धृतराष्ट्र (समान नाम वाले)– यों ये सात 'भारत' कहलाये। *(जिनके नाम से इस पृथ्वी (खण्ड) का नाम 'भारत' पड़ा।)*

प्रथम भाणवार समाप्त॥

१९. 'अथ खो, भो, ते छ खत्तिया येन महागोविन्दो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा महागोविन्दं ब्राह्मणं एतदवोचुं– यथा खो भवं गोविन्दो रेणुस्स रञ्ञो सहायो पियो मनापो अप्पटिकूलो, एवमेव खो भवं गोविन्दो अम्हाकं पि सहायो पियो मनापो अप्पटिकूलो। अनुसासतु नो भवं गोविन्दो; मा नो भवं गोविन्दो अनुसासनिया पच्चब्याहासी ति। एवं, भो, ति खो सो महागोविन्दो ब्राह्मणो तेसं छन्नं खत्तियानं पच्चस्सोसि। अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो सत्त च राजानो खत्तिये मुद्धावसित्ते रज्जे अनुसासि, सत्त च ब्राह्मणमहासाले सत्त च न्हातकसतानि मन्ते वाचेसि।

५. महागोविन्दस्स पटिसल्लानं

[R.237] २०. 'अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स अपरेन समयेन एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अभुग्गच्छि—सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, सक्खि महागोविन्दो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि— मय्हं खो एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, [B.191] सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं ब्रह्मानं पस्सामि न ब्रह्मुना साकच्छेमि न ब्रह्मुना सल्लपामि न ब्रह्मुना मन्तेमि। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—यो वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयति करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति ब्रह्मुना साकच्छेति ब्रह्मुना सल्लपति ब्रह्मुना मन्तेती ति। यन्नूनाहं वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयेय्यं करुणं झानं झायेय्यं ति।

२१. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन रेणु राजा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [N.177] रेणुं राजानं एतदवोच—मय्हं खो, भो, एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—

---

१९. 'तब वे छहों क्षत्रिय राजा महागोविन्द ब्राह्मण के पास गये और निवेदन किया– भो गोविन्द! जैसे आप राजा रेणु के सहायक प्रिय....अप्रतिकूल हैं, वैसे ही आप हमारे भी....होइये। हमें भी आप गोविन्द राज्य-शासन के कार्यों में सहायता एवं परामर्श दें। आप हमारे निवेदन को ठुकरायें नहीं। बहुत अच्छा– कहकर उन छहों क्षत्रियों का निवेदन स्वीकार कर लिया। और वे महागोविन्द उन छह क्षत्रियों को शासन में परामर्श देने लगे। तथा सात महाधनिक ब्राह्मणों को एवं सात सौ अन्तेवासी स्नातकों को वेदमन्त्रों का वाचन कराने लगे।

५. महागोविन्द का एकान्त साधना

२०. 'तब कुछ समय और बीतने पर, उस महागोविन्द ब्राह्मण की ऐसी ख्याति (=कीर्तिशब्द) फैल गयी– यह महागोविन्द ब्राह्मण तो साक्षात् ब्रह्मा को देखता है, ब्रह्मा से बातें करता है, सँल्लाप करता है, मन्त्रणा करता है। तब महागोविन्द ब्राह्मण को यह विचार हुआ– अरे! मेरी तो लोक में ऐसी ख्याति फैल गयी है कि मैं साक्षात् ब्रह्मा को देखता हूँ....मन्त्रणा करता हूँ। परन्तु सचाई यह है कि न मैं ब्रह्मा को देख ही पाया हूँ....उससे मन्त्रणा की बात तो बहुत दूर है! मैंने पुराने वयःप्राप्त बड़े-बूढ़ों ब्राह्मणों से सुना है कि जो वर्षाकाल के चतुर्मास में एकान्त स्थान में रहकर करुणा की भावना करता है, समाधि लगाता है, वह ब्रह्मा को देख पाता है....उस से मन्त्रणा कर पाता है। अतः मैं वर्षा काल के चतुर्मासपर्यन्त एकान्त में रहकर करुणा भावना करता हुआ समाधि लगाऊँगा।'

२१. 'तब महागोविन्द ब्राह्मण राजा रेणु के पास गये, उसके पास जाकर यों बोले– 'मेरी ऐसी

सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं, भो, ब्रह्मानं पस्सामि, न ब्रह्मुना साकच्छेमि, न ब्रह्मुना सल्लपामि, न ब्रह्मुना मन्तेमि। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—यो वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयति, करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति, ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। इच्छामहं, भो, वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयितुं, करुणं झानं झायितुं; नम्हि केनचि उपसङ्कमितब्बो, अञ्ञत्र एकेन भत्ताभिहारेना ति।

यस्स दानि भवं गोविन्दो कालं मञ्ञती ति।

२२. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन ते छ खत्तिया तेनुपसङ्कमि; [R.238] उपसङ्कमित्वा ते छ खत्तिये एतदवोच—मय्हं खो, भो, एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं, भो, ब्रह्मानं पस्सामि, न ब्रह्मुना साकच्छेमि, न ब्रह्मुना सल्लपामि, न ब्रह्मुना मन्तेमि। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—यो वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयति, करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति, ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। इच्छामहं, भो, वस्सिके चत्तारो मासं पटिसल्लीयतुं, करुणं झानं झायितुं; नम्हि केनचि उपसङ्कमितब्बो, अञ्ञत्र एकेन भत्ताभिहारेना ति।

यस्स दानि भवं गोविन्दो कालं मञ्ञती ति।

२३. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन सत्त च ब्राह्मणमहासाला सत्त [B.192] च न्हातकसतानि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सत्त च ब्राह्मणमहासाले सत्त च न्हातकसतानि एतदवोच—मय्हं खो, भो, एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं, भो, ब्रह्मानं पस्सामि, न ब्रह्मुना साकच्छेमि, न ब्रह्मुना सल्लपामि, न ब्रह्मुना मन्तेमि। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—यो [N.178] वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयति, करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति, ब्रह्मुना साकच्छेति,

---

ख्याति जनता में फैलती जा रही है कि मैं (महागोविन्द) साक्षात् ब्रह्मा से बातें करता हूँ,....मन्त्रणा करता हूँ। परन्तु वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं है, न मैं....मन्त्रणा करता हूँ....पूर्ववत्....समाधि लगाऊँगा। उस समय मुझसे मिलने के लिये, केवल एक भोजन पहुँचाने वाले को छोड़कर, मेरे पास कोई न आवे।

(राजा ने कहा–) जैसा आप उचित समझते हों वही करें।

२२. 'इसके बाद महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ वे छह क्षत्रिय राजा थे, उनके पास पहुँचे। पहुँचकर उनसे यों बोले– 'श्रीमानो! मेरे विषय में जनता में यह ख्याति....पूर्ववत्....कोई न आवे। *(राजा रेणु से हुए संवाद को यहाँ भी विस्तृत करें)।*

(क्षत्रियों ने कहा–) जैसा आप उचित समझते हों, वही करें।

२३. 'इसके बाद, महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ सात धनिक ब्राह्मणप्रमुख एवं सात सौ स्नातक थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन से भी कहा– 'सज्जनो! मेरे विषय में जनता में यह ख्याति....पूर्ववत्...मेरे पास कोई न आवे।

ब्रह्मुना सल्लपति, ब्रह्मुना मन्तेती ति। तेन हि, भो, यथासुते यथापरियत्ते मन्ते वित्थारेन सज्झायं करोथ, अञ्ञमञ्ञं च मन्ते वाचेथ; इच्छामहं, भो, वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयितुं, करुणं झानं झायितुं; नम्हि केनचि उपसङ्कमितब्बो, अञ्ञत्र एकेन भत्ताभिहारेना ति।

यस्स दानि भवं गोविन्दो कालं मञ्ञती ति।

[R.239] २४. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन चत्तारीसा भरिया सादिसियो तेनुपसङ्कमि; उसङ्कमित्वा चत्तारीसा भरिया सादिसियो एतदवोच—मय्हं खो, भोती, एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं पस्सति, सक्खि महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं, भोती, ब्राह्मणानं पस्सामि, न ब्रह्मुना साकच्छेमि, न ब्रह्मुना सल्लपामि, न ब्रह्मुना मन्तेमि। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—यो वसिस्के चत्तारो मासे पटिसल्लीयति, करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति, ब्रह्मुना साकच्छेति, ब्रह्मुना सल्लपति, ब्रह्मुना मन्तेती ति। इच्छामहं, भोती, वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयितुं, करुणं झानं झायितुं; नम्हि केनचि उपसङ्कमितब्बो, अञ्ञत्र एकेन भत्ताभिहारेना ति।

यस्स दानि भवं गोविन्दो कालं मञ्ञती ति।

२५. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो पुरत्थिमेन नगरस्स नवं सन्धागारं कारापेत्वा [B.193] वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयि, करुणं झानं झायि; नास्सुध कोचि उपसङ्कमति, अञ्ञत्र एकेन भत्ताभिहारेन। अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स चतुन्नं मासानं अच्चयेन अहुदेव उक्कण्ठना अहु परितस्सना—सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आयरियपाचरियानं भासमानानं—यो वस्सिके चत्तारो मासे पटिसल्लीयति, करुणं झानं झायति, सो ब्रह्मानं पस्सति, ब्रह्मुना साकच्छेति सल्लपति मन्तेती ति। न खो पनाहं ब्रह्मानं पस्सामि, न ब्रह्मुना साकच्छेमि, न ब्रह्मुना सल्लपामि, न ब्रह्मुना मन्तेमी ति।

६. ब्रह्मुना सनङ्कुमारेन साकच्छा

[N.179, R.240] २६. 'अथ खो, भो, ब्रह्मा सनङ्कुमारो महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स चेतसा

(उन्होंने भी कहा—) जैसा आप उचित समझें, वही करें।

२४. 'इसके बाद महागोविन्द ब्राह्मण, जहाँ उसके परिवार की चालीस स्त्रियाँ थीं वहाँ, पहुँचा। पहुँच कर उनसे भी कहा— श्रीमतियो! मेरे विषय में....पूर्ववत्.....मेरे पास कोई न आवे।

(स्त्रियों ने कहा—) जैसा आप उचित समझें, वही करें।

२५. 'तब महागोविन्द ब्राह्मण ने नगर की पूर्व दिशा में एक नया संस्थागार (ध्यान आदि के लिये अनुकूल स्थान) बनवाकर वर्षाकाल के चार मास तक उस एकान्त स्थान में रहकर समाधि भावना करने लगे, करुणाभ्यास करने लगे। वहाँ उनसे मिलने के लिये एक भोजन ले जाने वाले को छोड़कर कोई नहीं जाता था। तब उनको, चार मास बीतने पर, यह उत्कण्ठा एवं उत्सुकता हुई— मैंने पुराने बड़े-बूढ़ों आचार्य-प्राचार्यों को यह कहते सुना था— जो वर्षाकाल के चार मास तक एकान्त स्थान में रहकर ध्यान-भावना करता है वह ब्रह्मा के साथ....मन्त्रणा करता है। किन्तु मैं तो अभी तक न तो ब्रह्मा को देख ही पाया हूँ.... न मन्त्रणा ही कर पाया हूँ।

चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य; एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स सम्मुखे पातुरहोसि। अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स अहुदेव भयं अहु छम्भितत्तं अहु लोमहंसो यथा तं अदिट्ठपुब्बं रूपं दिस्वा। अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो भीतो संविग्गो लोमहट्ठजातो ब्रह्मानं सनङ्कुमारं गाथाय अज्झभासि—

वण्णवा यसवा सिरिमा, को नु त्वमसि मारिस!
अजानन्ता तं पुच्छाम, कथं जानेमु तं मयं ति?॥
मं वे कुमारं जानन्ति, ब्रह्मलोके सनन्तनं।
सब्बे जानन्ति मं देवा, एवं गोविन्द जानहि॥
आसनं उदकं पज्जं, मधुपाकञ्च ब्रह्मुनो।
अग्घे भवन्तं पुच्छाम, अग्घं कुरुतु नो भवं॥
पटिग्गण्हाम ते अग्घं, यं त्वं गोविन्द भाससि।
दिट्ठधम्महितत्थाय, सम्पराय सुखाय च।
कतावकासो पुच्छस्सु, यं किञ्चि अभिपत्थितं ति॥

२७. 'अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—कतावकासो [B.194] खोम्हि ब्रह्मुना सनङ्कुमारेन; किं नु खो अहं ब्रह्मानं सनङ्कुमारं पुच्छेय्यं दिट्ठधम्मिकं [R.241] वा अत्थं सम्परायिकं वा ति? अथ खो, भो, महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—कुसलो

---

६. ब्रह्मा सनत्कुमार से साक्षात्कार

२६. 'तब ब्रह्मा सनत्कुमार ने महागोविन्द ब्राह्मण के चित्त की बात स्वचित्त से जानकर, जैसे बलवान् पुरुष....ब्रह्मा सनत्कुमार महागोविन्द के सम्मुख प्रकट हुए। उस समय ब्रह्मा का रूप देख कर महागोविन्द ब्राह्मण को स्तब्धता, भय एवं रोमाञ्च होने लगा। तब महागोविन्द ने यों भयभीत, स्तब्ध एवं रोमहृष्ट होकर, ब्रह्मा से, इन गाथाओं के माध्यम से यों कहा—

मार्ष! सुन्दर रूपवाले, यशस्वी एवं श्रीमान् आप कौन हैं? आप के विषय में हम कुछ नहीं जानते, इसीलिये आप से पूछ रहे हैं। भला, हम आप के विषय में अन्यथा जान भी कैसे सकते हैं?

(ब्रह्मा ने उत्तर दिया—) ब्रह्मलोक में मुझे सभी देवगण सनत्कुमार नाम से जानते हैं; गोविन्द! तुम भी मुझे ऐसा ही जानो।

(तब महागोविन्द ने कहा—) आसन, पैर धोने के लिये जल, पाद्य अर्घ्य (तैल) एवं मधुपर्क (दही, घी, मधु, जल और शर्करा का योग) से मैं आप ब्रह्मा की पूजा करता हूँ। कृपया इन वस्तुओं को आप स्वीकार करें।

(ब्रह्मा बोले—) इसी जन्म में तुम्हारे हित–सुख के लिये, तुम्हारी स्वर्गप्राप्ति के लिये, तुम्हारा दिया यह अर्घ्य स्वीकार करता हूँ और तुम्हें मुझसे कुछ भी पूछने का अवसर देता हूँ।

२७. 'तब महागोविन्द ब्राह्मण के मन में यह विचार हुआ— ब्रह्मा ने तो मुझको उनसे कुछ भी पूछने का अवसर दे दिया। अब मैं इनसे क्या पूछूँ? सांसारिक बातें पूछूँ या परलोकसम्बन्धी बातें! तब गोविन्द महाब्राह्मण के यह बात ध्यान में आयी कि सांसारिक बातों के निर्णय में तो मैं स्वयं ही कुशल हूँ,

खो अहं दिट्ठधम्मिकानं अत्थानं, अञ्ञे पि मं दिट्ठधम्मिकं अत्थं पुच्छन्ति; यन्नूनाहं ब्रह्मानं सनङ्कुमारं सम्परायिकञ्ञेव अत्थं पुच्छेय्यं ति। अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो ब्रह्मानं सनङ्कुमारं गाथाय अज्झभासि—

पुच्छामि ब्रह्मानं सनङ्कुमारं, कङ्खी अकङ्खिं परवेदियेसु।
कत्थट्ठितो किम्हि च सिक्खमानो, पप्पोति मच्चो अमतं ब्रह्मलोकं ति?
[N.180] हित्वा ममत्तं मनुजेसु ब्रह्मे, एकोदिभूतो करुणाधिमुत्तो।
निरामगन्धो विरतो मेथुनस्मा, एत्थट्ठितो एत्थ च सिक्खमानो।
पप्पोति मच्चो अमतं ब्रह्मलोकं ति।

२८. *हित्वा ममत्तं* ति अहं भोतो आजानामि। इधेकच्चो अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति—इति [R.242] हित्वा ममत्ततं ति अहं भोतो आजानामि। *एकोदिभूतो* ति अहं भोतो आजानामि। इधेकच्चो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं—इति एकोदिभूतो ति अहं भोतो आजानामि। *करुणाधिमुत्तो* ति अहं भोतो आजानामि। इधेकच्चो करुणासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं करुणासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति—

तो क्यों न मैं इनसे परलोकसम्बन्धी बातें ही पूछ लूँ। तब महागोविन्द ब्राह्मण ने उन ब्रह्मा से इन गाथाओं के माध्यम से यह पूछा—

श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा ज्ञातव्य बातों से मुझे शङ्का सन्देह है, उनके विषय में मैं आप विगतशङ्क ब्रह्मा से मैं पूछना चाहता हूँ कि कहाँ रहकर, कैसे अभ्यास कर मनुष्य अमृतमय ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर सकता है?

ब्रह्मा बोले— ब्राह्मण! मनुष्यों में ममत्व त्याग कर एकान्त में रहते हुए करुणा की भावना करना, पापों की गन्ध (लेशमात्र) से भी दूर रहना एवं मैथुन कर्म से विरत रहना— इन्हीं सत्कर्मों का अभ्यास (साधना) करके ही मनुष्य अमृतमय ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकता है।

२८. (ब्राह्मण ने पूछा)— ऊपर बताये गये अमृतमय ब्रह्मलोकप्राप्ति के साधनों में से मनुष्यों में ममत्व छोड़ने की बात तो मेरी समझ में आ रही है । मैंने यह साधना पूरी कर ली है; क्योंकि ममत्व छोड़ने की यही विधि है कि कोई पुरुष अल्प या अधिक भोग-विलासों को त्याग कर शिर-दाढ़ी के केश मुंडवा कर प्रव्रजित हो जाता है। मैं जानता हूँ कि मैंने उस ममत्व को त्याग दिया है। (१) यह भी मैं जानता हूँ कि मैंने एकान्तवास भी सिद्ध कर लिया है। उस एकान्तवास की विधि यह है— कोई मनुष्य, साधना के लिये अपना आसन एकान्त स्थान में लगाता है; जैसे— अरण्य, किसी वृक्ष के नीचे, पर्वत-कन्दरा, पहाड़ की गुफा, श्मशान, जंगल, खुले मैदान, या तृण और पुआल की राशि में 'एकान्त स्थान' होता है; यह भी मैंने सिद्ध कर लिया है। (२) और यह भी मैं जानता हूँ कि मैं करुणाभ्यास कर चुका हूँ। करुणाभ्यास की विधि यह है— कोई साधक पुरुष करुणासहगतचित्त से एक दिशा की ओर ध्यान करते हुए साधना करता है, दूसरी.... तीसरी.... चौथी.... ऊपर.... नीचे.... आड़े.... तिरछे.... सभी तरंह से सभी ओर, सारे

इति करुणाधिमुत्तो ति अहं भोतो आजानामि। *आमगन्धे* च खो अहं भोतो भासमानस्स न आजानामि।

के आमगन्धा मनुजेसु ब्रह्मे, एते अविद्धा इध ब्रूहि धीर? [B.195]
केनावटा वाति पजा कुरुतु, आपायिका निवुतब्रह्मलोका? ति॥
कोधो मोसवज्जं निकति च दुब्भो, कदरियता अतिमानो उसूया। [R.243]
इच्छा विविच्छा परहेठना च, लोभो च दोसो च मदो च मोहो।
एतेसु युत्ता अनिरामगन्धा, आपायिका निवुतब्रह्मलोका ति॥ [N.181]

यथा खो अहं भोतो आमगन्धे भासमानस्स आजानामि, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

यस्स दानि भवं गोविन्दो कालं मञ्ञती ति।

७. महागोविन्दस्स पब्बज्जा

२९. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन रेणु राजा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रेणुं राजानं एतदवोच—अञ्ञं दानि भवं पुरोहितं परियेसतु यो भोतो रज्जं अनुसासिस्सति। इच्छामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो अगारस्मा अनगारियं ति।

संसार को निर्वैर, द्रोहरहित, विपुल, अत्यधिक शुद्ध चित्त से साधनारत रहता है। मैं जानता हूँ कि ऐसी साधना मैं पूर्ण कर चुका हूँ। (३) परन्तु आप की कही 'निरामगन्ध' वाली बात मेरे समझ में नहीं आयी ? क्योंकि मैं आपके कहने पर भी 'आमगन्ध' के विषय में कुछ नहीं जानता।

ब्रह्मन्! मनुष्यों में वे आमगन्ध कौन से हैं?– कृपया बतायें; क्योंकि मैं इस विषय में अज्ञानी (अविद्वान्) हूँ। ब्रह्मलोक से गिरकर नारकीय जन (प्रजा) किन मलों (दुर्गुणों) से लिप्त होकर दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं?

(ब्रह्मा बोले–) क्रोध, मिथ्याभाषण, वञ्चना (ठगी), मित्रद्रोह, कृपणता (कञ्जूसी=दान करना), अभिमान (अपने में न हुए का वृथा गर्व), ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, दूसरों को कष्ट देना, लोभ, द्वेष, मद और मोह इन्हीं मलों (दुर्गुणों) से युक्त होकर नारकीय जन ब्रह्मलोक से गिरकर दुर्गन्धयुक्त (=अनिरामगन्ध) होते हैं।

(ब्राह्मण बोले–) श्रीमन्! आप के बताने से अब मैं आमगन्धों को जान गया। आपके द्वारा बताये ये दुर्गण, गृहस्थ कर्म में लगे रहते हुए दूर नहीं किये जा सकते। अतः मैं घर छोड़कर प्रव्रजित होऊँगा।

(ब्रह्मा बोले–) आप गोविन्द! जैसा उचित समझें, करें।

७. महागोविन्द द्वारा प्रव्रज्याग्रहण की सूचना

२९. 'तब वे महागोविन्द ब्राह्मण राजा रेणु के पास गये। जाकर वे राजा से यों बोले– अब आप अपना दूसरा पुरोहित खोज लें, जो राज्यसञ्चालन में आपको परामर्श दे सके। मैं अब घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। क्योंकि मैंने ब्रह्मा सनत्कुमार के श्रीमुख से आमगन्धों की बुराइयों के विषय में सबकुछ सुन लिया है। गृहस्थ पुरुष के लिये ये आमगन्ध छोड़ना बहुत कठिन है। अतः मैं अब घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।

आमन्तयामि राजानं, रेणुं भूमिपतिं अहं।
त्वं पजानस्सु रज्जेन, नाहं पोरोहिच्चे रमे॥
सचे ते ऊनं कामेहि, अहं परिपूरयामि ते।
यो तं हिंसति वारेमि, भूमिसेनापती अहं।
तुवं पिता अहं पुत्तो, मा नो गोविन्द पाजहि॥
न मेत्थि ऊनं कामेहि, हिंसिता मे न विज्जति।
अमनुस्सवचो सुत्वा, तस्माहं न गहे रमे॥
[B.196, R.244] अमनुस्सो कथंवण्णो, किं ते अत्थं अभासथ।
यं च सुत्वा जहासि नो, गेहे अम्हे च केवली॥
उपवुत्थस्स मे पुब्बेव, यिट्ठकामस्स मे सतो।
अग्गि पज्जलितो आसि, कुसपत्तपरित्थतो॥
ततो मे ब्रह्मा पातुरहु, ब्रह्मलोका सनन्तनो।
सो मे पञ्हं वियाकासि, तं सुत्वा न गहे रमे॥
[N.182] सद्दहामि अहं भोतो, यं त्वं गोविन्द भाससि।
अमनुस्सवचो सुत्वा, कथं वत्तेथ अञ्ञथा॥
ते तं अनुवत्तिस्साम, सत्था गोविन्द नो भवं।
मणि यथा वेळुरियो, अकाचो विमलो सुभो।
एवं सुद्धा चरिस्साम, गोविन्दस्सानुसासने ति॥

मैं राजा रेणु भूपति को सम्बोधित करता हूँ कि आप अपने राज्य को देखें, मैं अब आपका पौरोहित्य कर्म नहीं कर सकता; क्योंकि इसमें अब मेरा मन नहीं लगता।'

(राजा बोले–) यदि आप को कामभोगों की प्राप्ति में कोई कमी पड़ रही है तो, उसे मैं पूर्ण कर दूँगा। यदि आप को कोई विरोधी कुछ कष्ट दे रहा हो तो मैं उसका भी वारण कर दूँगा, क्योंकि मैं इतनी बड़ी सेना का अधिपति हूँ। आप मेरे पिता हैं, मैं आपका पुत्र हूँ। गोविन्द! आप हम लोगों का त्याग न करें।'

(ब्राह्मण ने कहा–) मेरे कामभोगों में कोई कमी नहीं है, न कोई मेरा शत्रु ही है (कि उससे मुझे कोई कष्ट मिले) देवता (=अमनुष्य) की बात सुनने के बाद अब गृहस्थ में मेरा मन नहीं लगता।

(राजा ने पूछा–) वह अमनुष्य (देवता) कैसा था? उसने आप से क्या कहा कि जिसे सुनकर आप हम सबकों छोड़ना चाह रहे हैं?

(ब्राह्मण ने बताया–) पहले मैंने यज्ञ करने की इच्छा से अग्नि प्रज्वलित की, कुश और पत्ते बिछाये। उसी समय ब्रह्मा सनत्कुमार प्रकट हुए। उन्होंने मेरे प्रश्नों (सन्देहों) का उत्तर दिया। अतः संसार के प्रति सन्देह निवृत्त होने के बात (संसार की निःसारता जानकर) अब मेरा इस गृहस्थ धर्म में मन नहीं लगता।

(राजा ने कहा–) हे गोविन्द! आप जो कह रहे हैं उसे मैं श्रद्धा (विश्वास) पूर्वक मान ले रहा हूँ। देवता की तथ्यतापरक बात सुनने के बाद अब आप कोई अन्य हीन कर्म कैसे कर सकते हैं!

किन्तु हम लोग भी आप के अनुगामी होंगे। गोविन्द! आप हम लोगों के गुरु बनें।

सचे भवं गोविन्दो अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति, मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

छक्खत्तियआमन्तना

३०. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन ते छ खत्तिया तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते छ खत्तिये एतदवोच—अञ्ञं दानि भवन्तो पुरोहितं परियेसन्तु यो भवन्तानं रज्जे अनुसासस्सिति। इच्छामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, [R.245] अगारस्मा अनगारियं ति। अथ खो, भो, ते छ खत्तिया एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं—इमे खो ब्राह्मणा नाम धनलुद्धा; यन्नून मयं महोगोविन्दं ब्राह्मणं धनेन सिक्खेय्यामा ति। ते महागोविन्दं ब्राह्मणं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—संविज्जति खो, भो, इमेसु सत्तसु रज्जेसु पहूतं सापतेय्यं, ततो भोतो यावतकेन अत्थो तावतकं आहरीयतं ति।

अलं, भो! ममपिदं पहूतं सापतेय्यं भन्तानंयेव वाहसा तमहं सब्बं पहाय [B.197] अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामि। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

'अथ खो, भो, ते छ खत्तिया एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं—इमे खो ब्राह्मणा नाम इत्थिलुद्धा; यन्नून मयं महागोविन्दं ब्राह्मणं इत्थीहि सिक्खेय्यामा ति। ते महागोविन्दं ब्राह्मणं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—संविज्जन्ति खो, भो, इमेसु सत्तसु रज्जेसु पहूता [N.183] इत्थियो, ततो भोतो यावतिकाहि अत्थो तावतिका आनीयतं ति।

जैसे वैदूर्यमणि श्लक्ष्ण, निर्मल (बेदाग), और शुभ्र (स्वच्छ) होती है; उसी तरह आप गोविन्द के अनुशासन में हम लोगों का आचरण भी रहेगा। अर्थात् शुद्ध निष्कलङ्क चरित्र होकर आप के अनुशासन में साधनारत रहेंगे।

यदि आप गोविन्द घर से बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो हम भी वैसे ही प्रव्रजित हो जायँगे। तब जो आप की गति (परिणाम) होगी वही हमारी भी हो जायगी।'

छह क्षत्रियों को प्रव्रज्या की सूचना– ३०. 'तब, श्रीमन्! महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ वे छह क्षत्रिय थे, वहाँ गये। जाकर उन छहों क्षत्रियों को भी यों बोले– आप अब अपना दूसरा पुरोहित.....पूर्ववत (पैरा सं॰ २९)....प्रव्रजित होऊँगा।

'तब उन छह क्षत्रियों ने एक तरफ जाकर विचार करने लगे कि ये ब्राह्मण धन के लोभी होते हैं, तो क्यों न इन महागोविन्द ब्राह्मण को धन का लोभ देकर इन्हें प्रव्रज्या से विरत करें। वे पुनः महागोविन्द के पास आकर यों बोले– ब्राह्मण! यदि आप हमारे इन सात राज्यों के प्रभूत धन को देखकर संविग्न हो रहे हों तो इन सात राज्यों में बहुत धन है, आप को जितना चाहिये इसमें से उतना ले लें।

अजी! जाने भी दो! धन तो अब तक आप लोगों ने जितना दिया है, उसे भी छोड़कर मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हो रहा हूँ। मैंने तो जब से ब्रह्मा....के मुख से मानव–दुर्गणों के विषय में सुन लिया है तब से मेरा मन गृहस्थ के काम–धन्धों से सर्वथा उदासीन हो गया है; क्योंकि घर से बेघर हुए विना उन से छुटकारा पाया ही नहीं जा सकता।

तब पुनः वे छहों क्षत्रिय एकान्त में जाकर विमर्श करने लगे कि सम्भवतः इस ब्राह्मण को हमारे

अलं, भो, ममपिमा चत्तारीसा भरिया सादिसियो तापाहं सब्बा पहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामि। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

[R.246] ३१. सचे भवं गोविन्दो अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति, मयं पि अगारस्मा अनागरियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

सचे जहथ कामानि, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो।
आरम्भव्हो दळ्हा होथ, खन्तिबलसमाहिता॥
एस मग्गो उजुमग्गो, एस मग्गो अनुत्तरो।
सद्धम्मो सब्भि रक्खितो, ब्रह्मलोकूपपत्तिया ति॥

तेन हि भवं गोविन्दो सत्त वस्सानि आगमेतु। सत्तन्नं वस्सानं अच्चयेन मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

अतिचिरं खो, भो, सत्त वस्सानि। नाहं सक्कोमि भवन्ते सत्त वस्सानि आगमेतुं। को नु खो पन, भो, जानाति जीवितानं! गमनीयो सम्परायो मन्तायं बोद्धब्बं कत्तब्बं कुसलं चरितब्बं ब्रह्मचरियं, नत्थि जातस्स अमरणं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

तेन हि भवं गोविन्दो छब्बस्सानि आगमेतु....पे०....पञ्च वस्सानि आगमेतु....चत्तारि वस्सानि आगमेतु....तीणि वस्सानि आगमेतु....द्वे वस्सानि आगमेतु....एकं वस्सं आगमेतु, [B.198] एकस्स वस्सस्स अच्चयेन मयं पि अगारस्मा अनागरियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

सात राज्यों की स्त्रियों पर दृष्टि गड़ गयी है तो इसे सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों का प्रलोभन्त देकर इसके लक्ष्य से च्युत किया जाय! यह विचार कर वे छहों क्षत्रिय महागोविन्द के पास आकर यों बोले— आप को जितनी स्त्रियों की कामना हो, उतनी स्त्रियाँ हमारे सातों राज्यों से छांट लें।

(ब्राह्मण ने उनको फटकारा—) अरे जाने भी दो स्त्रियों की बात! मैं तो अपनी स्त्रियों को छोड़कर ही....प्रव्रजित हो रहा हूँ .... छुटकारा नहीं पाया जा सकता।

३१. (तब क्षत्रिय बोले—) यदि आप गोविन्द घर से बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो हम भी....प्रव्रजित हो जायँगें। तब (उसके बाद) आप की जो गति होगी वही गति हमारी भी हो। (हम इसी में सन्तुष्ट हैं।)

(ब्राह्मण बोला—) 'यदि आप लोग भी उन कामभोगों को त्याग रहे हैं, जिनमें पृथग्जन (सांसारिक लोग) आसक्त रहते हैं, तो उन्हें अभी से त्यागने का कार्य क्षान्ति बल से समाहित होकर दृढ़तापूर्वक आरम्भ करें। यही मार्ग सरल और अद्वितीय है। सभी बुद्धों से रक्षित यह धर्म ही ब्रह्मलोक को प्राप्त कराने वाला है।

(क्षत्रिय बोले—) तो आप गोविन्द! सात वर्ष प्रतीक्षा करें। सात वर्ष बाद हम लोग भी आप के साथ घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाँयगें। तब आप की जो गति....हमारी भी वही होगी।

(ब्राह्मण बोला—) श्रीमानो! मेरे लिये सात वर्ष प्रतीक्षा करना तो बहुत दूर की बात है! इस जीवन के विषय में कौन जानता है! परलोक जाना (मरण) ध्रुव है। अतः ज्ञानप्राप्ति तत्काल करनी चाहिये, कुशल कर्म करने चाहियें। धर्माराधना भी करनी चाहिये। कोई पैदा हो, वह मरे नहीं— यह सम्भव ही नहीं। जैसे

अतिचिरं खो, भो, एकं वस्सं। नाहं, सक्कोमि भन्ते एकं वस्सं आगमेतुं। को [R.247] नु खो पन, भो, जानाति जीवितानं! गमनीयो सम्परायो मन्तायं बोद्धब्बं कत्तब्बं [N.184] कुसलं चरितब्बं ब्रह्मचरियं, नत्थि जातस्स अमरणं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

तेन हि भवं गोविन्दो सत्त मासानि आगमेतु। सत्तन्नं मासानं अच्चयेन मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

अतिचिरं खो, भो, सत्त मासानि। नाहं सक्कोमि भवन्ते सत्त मासानि आगमेतुं। को नु खो पन, भो, जानाति जीवितानं! गमनीयो सम्परायो मन्तायं बोद्धब्बं कत्तब्बं कुसलं चरितब्बं ब्रह्मचरियं, नत्थि जातस्स अमरणं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

तेन हि भवं गोविन्दो छ मासानि आगमेतु....पे०....पञ्च मासानि आगमेतु.....चत्तारि मासानि आगमेतु....तीणि मासानि आगमेतु....द्वे मासानि आगमेतु....एकं मासं आगमेतु.... अड्ढमासं आगमेतु, अड्ढमासस्स अच्चयेन मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

अतिचिरं खो, भो, अड्ढमासो। नाहं सक्कोमि भवन्ते अड्ढमासं आगमेतुं। को नु खो पन, भो, पजानाति जीवितानं! गमनीयो सम्परायो मन्तायं बोद्धब्बं कत्तब्बं कुसलं चरितब्बं ब्रह्मचरियं। नत्थि जातस्स अमरणं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

तेन हि भवं गोविन्दो सत्ताहं आगमेतु याव मयं सके पुत्तभातरो रज्जेन [R.248] अनुसासिस्साम। सत्ताहस्स अच्चयेन मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। [B.199] अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

न चिरं, खो, भो, सत्ताहं। आगमेस्सामहं भवन्ते सत्ताहं ति।

मैंने ब्रह्मा के मुख से पापकर्मों की भयङ्करता सुनी है, वे पाप कर्म गृहस्थ धर्म में रहकर किसी भी स्थिति में नहीं त्यागे जा सकते। अतः मैं तो अभी....प्रव्रजित होऊँगा।

(क्षत्रिय बोले–) 'तो आप गोविन्द छह वर्ष ही प्रतीक्षा करें....पाँच वर्ष ही....चार वर्ष ही....तीन वर्ष ही....दो वर्ष ही....एक वर्ष ही प्रतीक्षा करें एक व र्ष के बाद हम भी....हमारी भी होगी।

(ब्राह्मण बोला–) एक वर्ष भी बहुत है। मैं इतने समय तक भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता!....।

(क्षत्रिय बोले–) तो आप....सात मास....छह मास....पाँच मास....चार मास....तीन मास....दो मास....एक मास....आधा मास....सात दिन ही प्रतीक्षा करें; ताकि हम लोग अपनी पुत्रों या भाइयों को अपने अपने राज्य की शासन–व्यवस्था सौंप दे। एक सप्ताह बीतने के बाद हम लोग भी....प्रव्रजित हो जायँगें।

(ब्राह्मण बोला–) हाँ, एक सप्ताह कोई अधिक समय नहीं है। मैं आप लोगों की एक सप्ताह तक प्रतीक्षा करूँगा।

ब्राह्मणमहासालादीनं आमन्तनं

३२. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन ते सत्त च ब्राह्मणमहासाला सत्त च [N.185] न्हातकसतानि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सत्त च ब्राह्मणमहासाले सत्त च न्हातकसतानि एतदवोच—अञ्ञं दानि भवन्तो आचरियं परियेसन्तु यो भवन्तानं मन्ते वाचेस्सति। इच्छामहं, भो, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भो, अगारस्मा अनागरियं ति।

मा भवं गोविन्दो अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। पब्बज्जा, भो, अप्पेसक्खा च अप्पलाभा च; ब्रह्मञ्ञं महेसक्खं च महालाभं चा ति।

मा भवन्तो एवं अवचुत्थ—पब्बज्जा अप्पेसक्खा च अप्पलाभा च, ब्रह्मञ्ञं महेसक्खं च महालाभं चा ति। को नु खो, भो, अञ्ञत्र मया महेसक्खतरो वा महालाभतरो वा! अहं हि, भो, एतरहि राजा व रञ्ञं ब्रह्मा व ब्रह्मानं देवता व गहपतिकानं । तमहं सब्बं पहाय अगारस्मा [R.249] अनगारियं पब्बजिस्सामि। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अगारं अज्झावसता। पब्बजिस्साहं, भो, अगारस्मा अनगारियं ति।

सचे भवं गोविन्दो अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति, मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

भरियानं आमन्तना

३३. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो येन चत्तारीसा भरिया सादिसियो तेनुपसङ्कमि; [B.200] उपसङ्कमित्वा चत्तारीसा भरिया सादिसियो एतदवोच—या भोतीनं इच्छति सकानि

ब्राह्मणमहासालों को प्रव्रज्या की सूचना– ३२. 'तब वे महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ वे सात धनाढ्य ब्राह्मण महासाल और सात सौ स्नातक कार्य करते थे वहाँ गये। और उनसे बोले– आप लोग अब अपना नया आचार्य खोज लें, जो आप को वेदमन्त्र पढ़ा सके। मैं तो....प्रव्रजित होना चाहता हूँ। जैसा कि मैंने ब्रह्मा के मुख से...पूर्ववत्....प्रव्रजित होऊँगा।

(ब्राह्मण महासाल–) आप गोविन्द प्रव्रजित न हों। प्रव्रज्या में क्या रखा है, न वह कोई अच्छी चीज है, न कोई उससे लाभ है। इसके विपरीत, ब्राह्मणत्व काम की चीज है, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है!

(महागोविन्द–) आप लोग ऐसा न कहें कि प्रव्रज्या अकिञ्चन है! उससे कोई लाभ नहीं। मुझे अब हानि–लाभ से कोई प्रयोजन नहीं रह गया। दूसरी बात है है कि आज मुझसे बढ़कर कौन महानुभाव है! इस समय मैं राजाओं का राजा, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ और गृहस्थों में श्रेष्ठ गृहस्थ हूँ, उनमें देवता की तरह पूजा जाता हूँ। इन सब श्रेष्ठताओं को छोड़कर में घर से बेघर हो प्रव्रजित हो रहा हूँ। भयङ्कर आमगन्धों के विषय में जैसा मैंने ब्रह्मा....के मुख से सुना है, उनका, गृहस्थ धर्म में रहते, छूटना अत्यन्त कठिन है। अतः मैं तो....प्रव्रजित होऊँगा।

(ब्राह्मण महासाल–) तब तो यदि आप....प्रव्रजित होंगे तो हम भी आप के साथ ही....प्रव्रजित हो जायँगें।

पत्नियों को प्रव्रज्या की सूचना– ३३. 'तब महागोविन्द ब्राह्मण समान वंश वाली अपनी चालीस पत्नियों के पास गया और बोला– आप लोग अपनी इच्छानुसार अपने माता–पिता या नाते–रिश्तेदारों के यहाँ

वा ञातिकुलानि गच्छतु अञ्ञं वा भत्तारं परियेसतु। इच्छामहं, भोती, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यथा खो पन मे सुतं ब्रह्मुनो आमगन्धे भासमानस्स, ते न सुनिम्मदया अज्झावसता। पब्बजिस्सामहं, भोती, अगारस्मा अनगारियं ति।

त्वञ्ञेव नो ञाति ञातिकामानं, त्वं पन भत्ता भत्तुकामानं। सचे भवं गोविन्दो अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति, मयं पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्साम। अथ या ते गति सा नो गति भविस्सती ति।

महागोविन्दो पब्बजि

३४. 'अथ खो, भो, महागोविन्दो ब्राह्मणो तस्स सत्ताहस्स अच्चयेन केसमस्सुं [N.186] ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। पब्बजितं पन महागोविन्दं ब्राह्मणं सत्त च राजानो खत्तिया मुद्धावसित्ता सत्त च ब्राह्मणमहासाला सत्त च न्हातकसतानि चत्तारीसा च भरिया सादिसियो अनेकानि च खत्तियसहस्सानि अनेकानि च ब्राह्मणसहस्सानि अनेकानि च गहपतिसहस्सानि अनेकेहि च इत्थागारेहि इत्थियो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा महागोविन्दं ब्राह्मणं अगारस्मा अनगारियं पब्बजितं अनुपब्बजिंसु। ताय सुदं, भो, परिसाय परिवुतो महागोविन्दो ब्राह्मणो गामनिगमराजधानीसु चारिकं चरति। यं खो पन, भो, तेन समयेन महागोविन्दो ब्राह्मणो गामं वा निगमं [R.250] वा उपसङ्कमति, तत्थ राजा व होति रञ्ञं, ब्रह्मा व ब्रह्मानं देवता व गहपतिकानं। तेन खो पन समयेन मनुस्सा खिपन्ति वा उपक्खलन्ति वा ते एवमाहंसु—नमत्थु महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स, नमत्थु सत्त पुरोहितस्सा ति।

३५. 'महागोविन्दो, भो, ब्राह्मणो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि;

जा सकती हैं। या आप लोग अपना कोई दूसरा पति खोज सकती हैं; क्योंकि मैं तो अब....प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मैंने ब्रह्मा के मुख से....प्रव्रजित होऊँगा।

(पत्नियाँ बोलीं—) आप ही हमारे सम्बन्धी हैं, आप ही हमारे पति हैं। यदि आप....प्रव्रजित होंगे तो हम लोग भी आप के साथ....प्रव्रजित हो जायँगीं। आप के समान ही हमारा भी जो होना होगा, होगा। (हमें वह सब स्वीकार है।)

महागोविन्द की प्रवज्या— ३४. 'तब वह महागोविन्द, उस सप्ताह के बीतने पर, शिर और दाढ़ी–मूँछ मुँड़ाकर, प्रव्रजित हो गये। महागोविन्द ब्राह्मण के प्रव्रजित हो जाने पर, वे सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, सात ब्राह्मणमहाशाल, सात सौ स्नातक, समान वंश वाली चालीस स्त्रियाँ, अनेक सहस्र क्षत्रिय, अनेक सहस्र ब्राह्मण, अनेक सहस्र गृहपति (वैश्य) और अनेक अन्तःपुरों की अनेक स्त्रियाँ....महागोविन्द के साथ ही घर छोड़कर बेघर हो प्रव्रजित हो गयीं। इन सब लोगों के साथ महागोविन्द...ग्राम–ग्राम, निगम–निगम घूमकर चारिका करने लगे। इस तरह वे महागोविन्द जिस ग्राम या जिस निगम में भी जाते थे, वहाँ वे राजाओं के राजा, ब्राह्मणों के ब्राह्मण और गृहपतियों के लिये देवतास्वरूप हो जाते थे। उस समय उनकी जनता के हृदय में उनके प्रति ऐसी पूज्य भावना बन गयी थी कि कुछ भी अशुभ होने (छींक आदि आने) पर उक्त अशुभ की निवृत्ति हेतु 'नमोऽस्तु महागोविन्दाय ब्राह्मणाय', 'नमोऽस्तु सप्तपुरोहिताय'— यों उनके नाम का मन्त्र उच्चारण करते थे।

३५. 'तब उस महागोविन्द ब्राह्मण ने मैत्रीसहगत चित्त से.... पूर्ववत्.... करुणासहगत चित्त

तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहासि। करुणासहगतेन चेतसा....पे०....मुदितासहगतेन चेतसा....पे०....उपेक्खासहतेन चेतसा....पे०.... अब्यापज्जेन फरित्वा विहासि, सावकानं च ब्रह्मलोकसहब्यताय मग्गं देसेसि।

[B.201] ३६. 'ये खो पन, भो, तेन समयेन महागोविन्दस्स ब्राह्मणस्स सावका सब्बेन सब्बं सासनं आजानिंसु ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं ब्रह्मलोकं उपपज्जिंसु। ये न सब्बेन सब्बं [R.251] सासनं आजानिंसु ते कायस्स भेदा परं मरणा अप्पेकच्चे परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जिंसु, अप्पेकच्चे निम्मानरतीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जिंसु, अप्पेकच्चे तुसितानं [N.187] देवानं सहब्यतं उपपज्जिंसु, अप्पेकच्चे यामानं देवानं सहब्यतं उपपज्जिंसु, अप्पेकच्चे तावतिंसानं देवानं सहब्यतं उपपज्जिंसु, अप्पेकच्चे चातुमहाराजिकानं देवानं उपपज्जिंसु। ये सब्बनिहीनं कायं परिपूरेसुं ते गन्धब्बकायं परिपूरेसुं। इति खो, भो, सब्बेसं येव तेसं कुलपुत्तानं अमोघा पब्बज्जा अहोसि अवञ्झा सफला सउद्रया' ति।

३७. "सरति तं भगवा" ति? "सरामहं, पञ्चसिख। अहं तेन समयेन महागोविन्दो ब्राह्मणो अहोसिं। अहं तेसं सावकानं ब्रह्मलोकसहब्यताय मग्गं देसेसिं। तं खो पन मे, पञ्चसिख, ब्रह्मचरियं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव ब्रह्मलोकूपपत्तिया। इदं खो पन मे, पञ्चसिख, ब्रह्मचरियं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमं च तं, पञ्चसिख, ब्रह्मचरियं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथिदं–

से.... मुदितासहगत चित्त से.... उपेक्षासहगत चित्त से एक दिशा की ओर ध्यान लगाया, वैसी ही दूसरी दिशा....तीसरी दिशा....अपने श्रावकों को ब्रह्मलोक का मार्ग बताया।

३६. 'उस समय उस महागोविन्द ब्राह्मण के जो शिष्य उनकी बतायी धर्म–साधना को भलीभाँति सर्वाङ्गतया अभ्यास कर चुके थे, वे सभी अपनी काया को छोड़, मरणानन्तर, सुगतिमय ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए। और जो उस धर्मसाधना को सर्वाङ्गतया अभ्यस्त कर पाये थे, इसी बीच उन का देहपात हो जाने पर, उनमें से कुछ परनिम्मितवशवर्ती देवों के साथ, कुछ निर्माणरति देवों के साथ, कुछ तुषित देवों के साथ, कुछ याम देवों के साथ, कुछ त्रायस्त्रिंश देवों के साथ और कुछ चातुर्महाराजिक देवों के साथ (उन्हीं के लोकों में) उत्पन्न हुए। उनमें, जिन्होंने सब से हीन (तुच्छ) शरीर पाया वे भी गन्धर्वलोक में उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रों की साधना सफलता के साथ सार्थक एवं उन्नति की तरफ ही बढ़ी।'

बुद्ध–धर्म का माहात्म्य– ३७. "क्या भगवान् को यह सब कुछ स्मरण है?" "हाँ, पञ्चशिख! मुझे स्मरण है। मैं ही उस समय महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकों को ब्रह्मलोक–प्राप्ति के मार्ग का उपदेश किया था। पञ्चशिख! मेरा वह ब्रह्मचर्य (धर्मोपदेश) न निर्वेद, न विराग, न इन्द्रियनिरोध, न चित्तोपशम, न अभिज्ञा, न सम्बोधि और न निर्वाण के लिये ही था। वह तो केवल ब्रह्मलोकप्राप्ति तक का मार्ग था। और पञ्चशिख! आज मेरे द्वारा बताया गया यह धर्म मार्ग ऐकान्तिक निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोधि और निर्वाण की प्राप्ति के लिये है। पञ्चशिख! कौन सा धर्म मार्ग निर्वेद...निर्वाण की प्राप्ति के लिये

सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। इदं खो तं, पञ्चसिख, ब्रह्मचरियं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

३८. "ये खो पन मे, पञ्चसिख, सावका सब्बेन सब्बं सासनं आजानन्ति ते आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा [R.252] उपसम्पज्ज विहरन्ति; ये न सब्बेन सब्बं सासनं आजानन्ति ते पञ्चन्नं ओरम्भागियानं [B.202] संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका होन्ति, तत्थ परिनिब्बायिनो, अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका। ये न सब्बेन सब्बं सासनं आजानन्ति अप्पेकच्चे तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो होन्ति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। ये न सब्बेन सब्बं सासनं आजानन्ति अप्पेकच्चे तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना होन्ति अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा। इति खो, पञ्चसिख, सब्बेसं येव इमेसं [N.188] कुलपुत्तानं अमोघा पब्बज्जा अवञ्झा सफला सउद्रया" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो पञ्चसिखो गन्धब्बपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति।

महागोविन्दसुत्तं निट्ठितं छट्ठं॥

है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; जैसे– सम्यग्दृष्टि....एवं सम्यक्समाधि। पञ्चशिख! यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के उपदेश वाला धर्म-मार्ग ही एकान्तिक निर्वेद....निर्वाण की प्राप्ति के लिये है।

३८. "पञ्चशिख! जो मेरे श्रावक मदुपदिष्ट इस धर्म को सर्वाङ्गतया समाहित (अभ्यस्त) कर चुके हैं, वे आस्रवों (चित्तमलों) का क्षय होने से, आस्रवरहित चित्तविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में जानकर उसका साक्षात्कार कर साधना करते हैं। और जो इस धर्ममार्ग का सर्वाङ्गतया अभ्यास करने में समर्थ नहीं हुए, उनमें से कुछ पाँच संयोजनों का क्षय करके औपपातिक (देवता) होते हैं और उस देवयोनि से उनका पतन नहीं होता। और ऐसे कुछ श्रावक तीन संयोजनों का क्षय करके, राग-द्वेष-मोह की अल्पता के कारण सकृदागामी (एक बार इस लोक में आने वाले) होते हैं। वे एक बार इस लोक में आकर अपने सभी दुःखों का अन्त (क्षय) कर लेंगे। और ऐसे ही कुछ अन्य श्रावक तीन संयोजनों का परितः क्षय कर स्रोतआपन्न होकर इस धर्ममार्ग से कभी न च्युत होकर सम्बोधि के लिये प्रयासरत रहेंगे। यों पञ्चशिख! मेरे द्वारा बतायी गयी साधना में लगे इन सभी कुलपुत्रों की साधना सफलता के साथ सार्थक एवं उन्नति की तरफ ही बढ़ती है।"

भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमना वह गन्धर्वपुत्र पञ्चशिख भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गया।

छठा महागोविन्दसूत्र समाप्त॥

७. महासमयसुत्तं

१. चतुन्नं सुद्धावासकायिकानं देवानं गाथा

[N.189, B.203, R.253] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। अथ खो चतुन्नं सुद्धावासकायिकानं देवानं एतदहोसि—"अयं खो भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मि महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। यन्नून मयं पि येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके पच्चेकं गाथं भासेय्यामा" ति।

२. अथ खो ता देवता—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—सुद्धावासेसु देवेसु अन्तरहिता भगवतो पुरतो पातुरहेसुं। [R.254] अथ खो ता देवता भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"महासमयो पवनस्मिं, देवकाया समागता।
आगतम्ह इमं धम्मसमयं, दक्खिताये अपराजितसङ्घं" ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

"तत्र भिक्खवो समादहंसु चित्तमत्तनो उजुकं अकंसु।
सारथीव नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि—

---

७. महासमयसुत्त

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश की नगरी कपिलवस्तु के महावन में विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ,जिसकी सङ्ख्या पाँच सौ थी और जो सभी अर्हत् थे, साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् एवं भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु दश लोक धातुओं (चक्रवालों) से बहुत से देवता भी एकत्र हो गये। तब चातुर्महाराजिक देवों के मन में यह विचार आया– "ये भगवान् शाक्य प्रदेश की नगरी....में विराजमान हैं.....देवता भी एकत्र हुए हैं। तो क्यों न हम भी भगवान् जहाँ विराजमान हैं वहाँ चलें और वहाँ भगवान् के सम्मुख उनका श्लोकमय गुणगान करें।"

२. तब वे देवता, जैसे कोई बलवान् पुरुष पसारी हुई बाहु को सिकोड़ ले....उसी तरह शुद्धावास देवलोक से अन्तर्हित होकर भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। वहाँ वे देवता भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन देवताओं में से एक ने गाथा में यों कहा–

"इस महावन में देवताओं का यह विशालसमूह एकत्र हुआ है। हम लोग भी (मार द्वारा) अपराजेय सङ्घ के दर्शनहेतु इस धर्म–सम्मेलन में आये हुए हैं।" (१)

तब दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही–

'भिक्षुजन स्वचित्त को सरल (ऋजु) कर वैसे ही समाहित ध्यानमग्न रहते हैं, जैसे कोई कुशल

"छेत्वा खीलं छेत्वा पलिघं, इन्दखीलं ऊहच्च मनेजा।
ते चरन्ति सुद्धा विमला, चक्खुमता सुदन्ता सुसुनागा" ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं [N.190, B.204, R.255] अभासि—

"ये केचि बुद्धं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ती" ति॥

३. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"येभुय्येन, भिक्खवे, दससु लोकधातूसु देवता सन्निपतिता होन्ति तथागतं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। ये पि ते, भिक्खवे, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, तेसं पि भगवन्तानं एतंपरमायेव देवता सन्निपतिता अहेसुं, सेय्यथापि मय्हं एतरहि। ये पि ते, भिक्खवे, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा तेसं पि भगवन्तानं एतंपरमायेव देवता सन्निपतिता भविस्सन्ति सेय्यथापि मय्हं एतरहि। आचिक्खिस्सामि, भिक्खवे, देवकायानं नामानि; कित्तयिस्सामि, भिक्खवे, देवकायानं नामानि; देसेस्सामि, भिक्खवे, देवकायानं नामानि। तं सुणाथं, साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

२. भगवता सन्निपतितानं देवतानं नामकित्तनं

४. भगवा एतदवोच—

"सिलोकमनुकस्सामि, यत्थ भुम्मा तदस्सिता।
ये सिता गिरिगब्भरं, पहितत्ता समाहिता॥

सारथि घोड़ों की लगाम (रस्सी) खींचकर उन्हें अपने वश में रखता है। पण्डितजन इसी तरह अपना इन्द्रियनिग्रह किया करते हैं।" (२)

तब तीसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

"कण्टकसदृश राग, शिलाखण्ड या अर्गला जैसे परिघ को (धर्मसाधना द्वारा) नष्ट कर ज्ञानी जन शुद्ध, विमल, दान्त एवं श्रेष्ठ होकर इस संसार में विचरण करते हैं।।" (३)

तब चौथे देवता ने बुद्ध के यशःकीर्तन में यह गाथा कही—

"जो लोग बुद्ध की शरण में चले गये, वे यह मनुष्य शरीर को छोड़कर देवशरीर (ही) पायेंगे।" (४)

३. तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा— "भिक्षुओ! आज तथागत एवं भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु ये देवतालोग दशों लोकधातुओं से आकर यहाँ एकत्र हुए हैं। भिक्षुओ! अतीतकाल में जो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हो गये हैं, उनके भी दर्शनहेतु इतने ही देवता एकत्र हुए थे, जितने कि आज ये मेरे दर्शनहेतु देवता आये। भिक्षुओ! अनागत काल में जो अर्हत्....होंगे उन्हें भी देखने के लिये इतने ही देवता एकत्र होंगे।.... भिक्षुओ! मैं देवशरीरधारियों के नाम बताऊँगा, उनके नामों का विशद वर्णन करूँगा। उन्हें सुनो और भलीभाँति मन में बैठा लो।"

"अच्छा, भन्ते!"

२. एकत्र हुए देवताओं का बुद्ध द्वारा नामकीर्तन

४. भगवान् बोले—

"पुथूसीहा व सल्लीना, लोमहंसाभिसम्भुनो।
ओदातमनसा सुद्धा विप्पसन्नमनाविला॥

[R.256] "भिय्यो पञ्चसते ञत्वा, वने कापिलवत्थवे।
ततो आमन्तयी सत्था, सावके सासने रते॥

"देवकाया अभिक्कन्ता, ते विजानाथ भिक्खवो।
ते च आतप्पमकरुं, सुत्वा बुद्धस्स सासनं॥

"तेसं पातुरहु ञाणं, अमनुस्सानदस्सनं।
अप्पेके सतमद्दक्खुं, सहस्सं अथ सत्तरिं॥

[N.191, B.205] "सतं एके सहस्सानं, अमनुस्सानमद्दसुं।
अप्पेकेनन्तमद्दक्खुं, दिसा सब्बा फुटा अहुं॥

"तं च सब्बं अभिञ्ञाय, ववत्थित्वान चक्खुमा।
ततो आमन्तयी सत्था, सावके सासने रते॥

"देवकाया अभिक्कन्ता, ते विजानाथ भिक्खवो।
ये वोहं कित्तयिस्सामि, गिराहि अनुपुब्बसो॥

५. "सत्तसहस्सा ते यक्खा, भुम्मा कापिलवत्थवा।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥

"छसहस्सा हेमवता, यक्खा नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥

"पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न स्थानों में, पर्वतों की कन्दराओं में रहने वाले जो संयमी एवं समाहितचित्त देवता हैं, उनके विषय में बताता हूँ, सुनो।

"सिंह के समान दृढ़, निर्भय, रोमाञ्चरहित, पवित्रमना, शुद्ध, प्रसन्न, निर्दोष उन पाँच सौ बुद्धधर्मरत श्रावकों को उस कपिलवस्तु के महावन में बुद्ध ने सम्बोधित किया।।

"जो देवशरीरधारी (यहाँ आये हुए हैं, उन्हें जान लो। उन भिक्षुओं ने, बुद्ध की आज्ञा मानकर उन देवताओं के नाम- श्रवण में उत्साह प्रकट किया।।

देवों के दर्शनहेतु उन (भिक्षुओं) को ज्ञानचक्षु (दिव्य दृष्टि) प्रादुर्भूत हुआ। तब कितने ही भिक्षुओं ने सौ, हजार या सत्तर हजार देवता देखे।।

कितनों ने सौ हजार देवता देखे। कितनों ने सभी दिशाओं को अनन्त देवताओं से परिपूर्ण देखा।।

इस समग्र दृश्य को देखकर और जानकर धर्मरत श्रावकों को भगवान् ने यों सम्बोधित किया-

"जितने ये देवशरीरधारी आये हुए हैं उन्हें जान लो। मैं उनके विषय में क्रमशः बताता हूँ।।

५. कपिलवस्तुवासी ऋद्धिमान्, द्युतिमान्, रूपवान्, यशस्वी, श्रद्धालु भूमिदेवता यक्ष प्रसन्नतापूर्वक इस वन में यह भिक्षुसमवाय देखने के लिये आये हुए हैं।।

"सातागिरा तिसहस्सा, यक्खा नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"इच्चेते सोळससहस्सा, यक्खा नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
[R.257] "वेस्सामित्ता पञ्चसता, यक्खा नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"कुम्भीरो राजगहिको, वेपुल्लस्स निवेसनं।
भिय्यो नं सतसहस्सं, यक्खानं पयिरुपासति।
कुम्भीरो राजगहिको, सोपागा समितिं वनं॥

६. "पुरिमञ्च दिसं राजा, धतरट्ठो पसासति।
गन्धब्बानं अधिपति, महाराजा यसस्सि सो॥
"पुत्ता पि तस्स बहवो, इन्दनामा महब्बला। [N.192, B.206]
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"दक्खिणं च दिसं राजा, विरूळ्हो तं पसासति।
कुम्भण्डानं अधिपति, महाराजा यसस्सि सो॥
"पुत्ता पि तस्स बहवो, इन्दनामा महब्बला।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"पच्छिमं च दिसं राजा, विरूपक्खो पसासति।

"हिमालय पर्वत में रहनेवाले छह सहस्र यक्ष जो कि नाना वर्ण वाले, ऋद्धि, आनुभाव, वर्ण और यश से सम्पन्न थे, प्रसन्नतापूर्वक उस भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु उस वन में आये॥

"सातगिरि पर्वत पर रहनेवाले तीन हजार यक्ष.....॥

"विश्वामित्र पर्वत पर रहनेवाले पाँच सौ यक्ष....॥

"राजगृह के वैपुल्य पर्वत का निवासी कुम्भीर यक्ष, जिसके साथ एक लाख से भी अधिक यक्ष थे, इस वन में भिक्षुओं के दर्शन हेतु आया हुआ है॥

६. "गन्धर्वाधिपति यशस्वी राजा धृतराष्ट्र जो कि पूर्व दिशा का शासन करती हैं, उनके ऋद्धिमान्....इन्द्र नामक अनेक महाबली पुत्र भी भिक्षुसङ्घ के दर्शनार्थ आये हैं॥

"कुम्भाण्डों के अधिपति यशस्वी राजा महाराज विरूढक जो कि दक्षिण दिशा के शासक हैं, उनके ऋद्धिमान्....इन्द्र नामक....॥

नागानं च अधिपति, महाराजा यसस्सिसो॥
"पुत्ता पि तस्स बहवो, इन्दनामा महब्बला।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"उत्तरं च दिसं राजा, कुवेरो तं पसासति।
यक्खानं च अधिपति, महाराजा यसस्सि सो॥
[R.258] "पुत्ता पि तस्स बहवो, इन्दनामा महब्बला।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"पुरिमं दिसं धतरट्ठो, दक्खिणेन विरूळ्हको।
पच्छिमेन विरूपक्खो, कुवेरो उत्तरं दिसं॥
"चत्तारो ते महाराजा, समन्ता चतुरो दिसा।
दद्दल्लमाना अट्ठंसु, वने कापिलवत्थवे॥
७. "तेसं मायाविनो दासा, आगुं वञ्चनिका सठा।
माया कुटेण्डु विटेण्डु, विटुच्च विटुटो सह॥
"चन्दनो कामसेट्ठो च, किन्निघण्डु निघण्डु च।
पनादो ओपमञ्ञो च, देवसूतो च मातलि॥
[N.193, B.207] "चित्तसेनो च गन्धब्बो, नळो राजा जनेसभो।
आगा पञ्चसिखो चेव, तिम्बरू सुरियवच्चसा॥
"एते चञ्ञे च राजानो, गन्धब्बा सह राजुभि।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
८. "अथागुं नागसा नागा, वेसाला सहतच्छका।
कम्बलस्सतरा आगुं, पायागा सह ञातिभि॥

"नागों के अधिपति....विरूपाक्ष जो कि पश्चिम दिशा के शासक हैं....।।

यक्षों के अधिपति....वैश्रवण (कुबेर) जो कि उत्तर दिशा के शासक हैं....।।

"पूर्व में धृतराष्ट्र, दक्षिण में विरूढक, पश्चिम में विरूपाक्ष और उत्तर में वैश्रवण– कपिलवस्तु के वन में ये चारों महाराज चारों दिशाओं में देदीप्यमान हैं।।

७. "उनके मायावी, वञ्चक एवं शठ दासभृत्य भी भिक्षुसङ्घ के दर्शनार्थ आये हुए हैं; जिनमें से कुछ के नाम यह हैं– माया, कूटेण्डु, विटेण्डु, विटुच्च, विटुट, चन्दन, कामश्रेष्ठ, किन्नुघण्डु, निघण्डु, पनाद, औपमन्यु और देवपुत्र मातलि, चित्रसेन तथा जननायक नलराजा, पञ्चशिख, तिम्बरु एवं सूर्यवर्चसा– इसी तरह के दूसरे गन्धर्व-राजा भी अन्य राजाओं के साथ भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु इस वन में आये हुए हैं।।

८. "आकाश और वैशाली के वासी नाग, तक्षक के साथ, तथा प्रयाग के निवासी कम्बलाश्वतर भी अपने अपने नाते-रिश्तेदारों के साथ....।।

"यामुना धतरट्ठा च, आगू नागा यसस्सिनो।
एरावणो महानागो, सोपागा समितिं वनं॥
"ये नागराजे सहसा हरन्ति, दिब्बा दिजा पक्खि विसुद्धचक्खू।
वेहायसा ते वनमज्झपत्ता, चित्रा सुपण्णा इति तेस नामं॥ [R.259]
"अभयं तदा नागराजानमासि, सुपण्णतो खेममकासि बुद्धो।
सण्हाहि वाचाहि उपव्हयन्ता, नागा सुपण्णा सरणं अकंसु बुद्धं॥
९. "जिता वजिरहत्थेन, समुद्दं असुरासिता।
भातरो वासवस्सेते, इद्धिमन्तो यसस्सिनो॥
"कालकञ्चा महाभीस्मा, असुरा दानवेघसा।
वेपचित्ति सुचित्ति च, पहारादो नमुची सह॥
"सतं च बलिपुत्तानं, सब्बे वेरोचनामका।
सन्नय्हित्वा बलिसेनं, राहुभद्दमुपागमुं।
समयो दानि भद्दन्ते, भिक्खूनं समितिं वनं॥
१०. "आपो च देवा पथवी, तेजो वायो तदागमुं।
वरुणा वारणा देवा, सोमो च यससा सह।
मेत्ता करुणा कायिका, आगुं देवा यसस्सिनो॥
"दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो। [N.194]
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो। [B.208]
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"वेण्डुदेवा सहलि च, असमा च दुवे यमा।
चन्दस्सूपनिसा देवा, चन्दमागुं पुरक्खत्वा॥

"यमुना में रहने वाले यशस्वी धार्तराष्ट्र नाग भी यहाँ....। इसी तरह ऐरावण नाग भी....।।

"वे विशुद्ध दिव्यचक्षुष्क पक्षी भी, जो कि इन नागराजाओं को सहसा भोजनहेतु उठा ले जाते हैं, आकाशमार्ग से इस वन में भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु आये हुए हैं। इनके नाम हैं– चित्र और सुपर्ण।

"यहाँ इन नागराजों को उनसे कोई भय नहीं है; क्योंकि भगवान् बुद्ध ने उनको इन पक्षियों से यहाँ अभय रहने का वर देखा है। (अतएव) यहाँ वे दोनों (नाग और पक्षी) बुद्ध की शरण में बैठे परस्पर मीठी–मीठी बातों से सँल्लाप करते हुये दिखायी दे रहे हैं।।

९. "समुद्र में आश्रय लिये हुए ऋद्धिमान् द्युतिमान् असुर, जिनको कभी वज्र हाथ में लेकर इन्द्र ने पराजित किया था, वे आज इन्द्र से सुलह कर उसके भाई बन गये हैं।

"कालक नामक महाभयङ्कर (महाभीष्म) असुर प्रबल वेग से आया। तथा वेपचित्ति, सुवित्ति, प्रह्लाद एवं नमुचि के साथ सौ वैरोचन नामक बलिपुत्र बलिसेवा को सन्नद्ध कर राहुभद्र के पास गये और बोले– 'श्रीमन्! महावन में भिक्षुओं का सम्मेलन हो रहा है। (उसके दर्शनहेतु चला जाय)"।।

१०. "वरुण, वारण एवं सोम नामक जल, पृथ्वी, तेज एवं वायु के अधिष्ठातृ देवता यहाँ आये हुये हैं। ये सभी यशस्वी मैत्री एवं करुणाभावना से युक्त हैं।।

"दशधा शरीर वाले, नाना वर्ण, ऋद्धिमान्....ये दश देवता यहाँ आये हुए हैं।।

"सुरियस्सूपनिसा देवा, सुरियमागुं पुरक्खत्वा।
नक्खत्तानि पुरक्खत्वा, आगुं मन्दवलाहका।
[R.260] वसूनं वासवो सेट्ठो, सक्कोपागा पुरिन्ददो॥
"दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"अथागुं सहभू देवा, जलमग्गिसिखारिव।
अरिट्ठका च रोजा च, उमापुप्फनिभासिनो॥
"वरुणा सहधम्मा च, अच्चुता च अनेजका।
सूलेय्यरुचिरा आगुं, आगुं वासवनेसिनो।
दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो॥
"इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"समाना महासमाना, मानुसा मानुसुत्तमा।
खिड्डापदोसिका आगुं, आगुं मनोपदोसिका॥
"अथागुं हरयो देवा, ये च लोहितवासिनो।
पारगा महापारगा, आगुं देवा यसस्सिनो॥
"दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥

"चन्द्रलोक के अधिष्ठातृ देवता वेण्डुदेव एवं सहलि भी चन्द्रमा के साथ यहाँ आये हुए हैं।।

"सूर्यलोक के अधिष्ठातृ देवता भी सूर्य के नेतृत्व में यहाँ आये हैं।।

"नक्षत्र लोक से छोटे छोटे तारागण (मन्दबलाहक) भी बड़े नक्षत्रों की प्रधानता में यहाँ आये हुए हैं।।

"वसु देवताओं में श्रेष्ठ वासक, शक्र, इन्द्र भी यहाँ आये हुए हैं।।

"ये दश प्रकार के शरीर वाले, नानावर्ण, ऋद्धिमान्.....दश देवता प्रसन्नतापूर्वक इस भिक्षु–सम्मेलन के दर्शनार्थ इस वन में आये हुए हैं।।

"अग्निशिखा की तरह जाज्वल्यमान सहभूदेव एवं उमापुष्प (अलसी के फूल) की तरह आभा वाले अरिष्ट राजा भी यहाँ....आये हैं।।

"वरुण, सहधर्म, अच्युत, अनेजक, शूलेय, रुचिर, और वासवन–निवासी देवता भी यहाँ....आये हुए हैं।।

ये दश प्रकार के शरीर वाले, नानावर्ण दश देवता भी यहाँ भिक्षु–दर्शन के निमित्त आये हुए हैं।।

"समान, महासमान, मानुष, मानुषोत्तम, क्रीड़ाप्रदूषक एवं मनःप्रदूषक देवता भी यहाँ आये हुए हैं।।

"सुक्का करम्भा अरुणा, आगुं वेघनसा सह। [N.195]
ओदातगय्हा पामोक्खा, आगुं देवा विचक्खणा॥
"सदामत्ता हारगजा, मिस्सका च यसस्सिनो। [B.209]
थनयं आग पज्जुन्नो, यो दिसा अभिवस्सति॥
"दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"खेमिया तुसिता यामा, कट्ठका च यसस्सिनो। [R.261]
लम्बीतका लोमसेट्ठा, जोतिनामा च आसवा।
निम्मानरतिनो आगुं, अथागुं परनिम्मिता॥
"दसेते दसधा काया, सब्बे नानत्तवण्णिनो।
इद्धिमन्तो जुतीमन्तो, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
मोदमाना अभिक्कामुं, भिक्खूनं समितिं वनं॥
"सट्ठेते देवनिकाया, सब्बे नानत्तवण्णिनो।
नामन्वयेन आगच्छुं, ये चञ्ञे सदिसा सह॥
"पवुत्थजातिमखिलं, ओघतिण्णमनासवं।
दक्खेमोघतरं नागं, चन्दं व असितातिगं॥
११. "सुब्रह्मा परमत्तो च, पुत्ता इद्धिमतो सह।
सनङ्कुमारो तिस्सो च, सोपाग समितिं वनं॥
"सहस्सं ब्रह्मलोकानं, महाब्रह्माभितिट्ठति।

"लोहित नगरवासी हरिदेव भी यहाँ आये हैं। इसी तरह पारग और महापारग नामक यशस्वी देवता भी यहाँ आये हुए हैं।।

"ये दशविध शरीर वाले, नानावर्ण, ऋद्धिमान्....दश देवता भी....आये हैं।।

"शुक्र, करम्भ, अरुण, वैरवानस, अवदातग्राह्य– ये सभी विचक्षण देवता एक साथ यहाँ .... आये हैं।।

"सदामत्त, हारगज, और यशस्वी मिश्रक देवता....आये हैं।।

पर्जन्य नामक देवता भी अपनी दिशा से यहाँ तक गर्जते, बरसते हुए ही.... आये हैं।।

"ये दश प्रकार के शरीर वाले नानावर्ण .... आये हैं।।

"ये क्षेमीय, तुषित, याम और यशस्वी काष्ठक, लम्बितक, लोमश्रेष्ठ, ज्योति और आसव नामक निर्माणरति एवं परिनिर्मित देवता भी... आये हैं।।

"ये दशविध शरीर वाले नाना वर्ण....आये हैं।।

"और इसी प्रकार के साठ अन्य देवनिकाय भी इसी निमित्त यहाँ आये हुए हैं। जो सभी नानावर्ण एवं नाना जाति वाले ऋद्धिमान्.... हैं।।

"यहाँ, हम जन्म–मरण एवं रागादि मलों से रहित, भव–सागर को पार करने वाले, आस्रवरहित, निष्कलङ्क चन्द्रमा– जैसे नाग (श्रेष्ठ) (देवता) को भी देखेंगे।।

उपपन्नो जुतीमन्तो, भीस्मकायो यसस्सि सो॥
"दसेत्थ इस्सरा आगुं, पच्चेकवसवत्तिनो।
तेसं च मज्झतो आग, हारितो परिवारितो॥
१२. "ते च सब्बे अभिक्कन्ते, सइन्दे देवे सब्रह्मके।
[N.196] मारसेना अभिक्कामि, पस्स कण्हस्स मन्दियं॥
[R.262] "एथ गण्हथ बन्धथ, रागेन बद्धमत्थु वो।
समन्ता परिवारेथ, मा वो मुञ्चित्थ कोचि नं॥
[B.210] "इति तत्थ महासेनो, कण्हो सेनं अपेसयि।
पाणिना तलमाहच्च, सरं कत्वान भेरवं॥
"यथा पावुस्सको मेघो, थनयन्तो सविज्जुको।
तदा सो पच्चुदावत्ति, सङ्कुद्धो असयंवसे॥
१३. "तं च सब्बं अभिञ्ञाय, ववत्थित्वान चक्खुमा।
ततो आमन्तयी सत्था, सावके सासने रते॥
"मारसेना अभिक्कन्ता, ते विजानाथ भिक्खवो।
ते च आतप्पमकरुं, सुत्वा बुद्धस्स सासनं।
वीतरागेहि पक्कामुं, नेसं लोमा पि इञ्जयुं॥

---

११. "सुब्रह्मा, परमात्मा, ऋद्धिमान् के पुत्र सनत्कुमार और तिष्य भी यहाँ भिक्षुदर्शनहेतु साथ-साथ आये हैं।।

"हजारों ब्रह्मलोकों से ऊपर रहने वाले, महाब्रह्मा भी यहाँ आये हुए हैं, जो कि द्युतिमान्, यशस्वी एवं विशाल आकार वाले हैं।।

"यहाँ प्रत्येक वशंवर्ती लोक के दश ईश्वर (स्वामी) और उनसे घिरे हुए हारित भी यहाँ भिक्षुदर्शन निमित्त आये हैं।।

मार-सेना का भी पहुँचना– १२. "ब्रह्मा, इन्द्र आदि नेतृत्व में सभी देवताओं के आ जाने पर उस महावन में मार-सेना भी आ पहुँची। यह (इस सेना का इस समय यहाँ पहुँचना) उस कृष्ण वर्ण (मार) का मन्दभाग्य ही था!

"जैसे वर्षाकाल में, बिजली की कड़क के साथ, काला मेघ गर्जता है, उसी तरह गर्जकर, भयङ्कर शब्द करते हुए, भूमि पर हाथ पटकते हुये, उस मार के क्रोध के वशीभूत होकर– 'जाओ, पकड़ो, बाँधों, राग से सभी को वश में कर लो, चारों ओर से घेर लो, किसी को मत छोड़ो'– यह आदेश देते हुए अपनी विशाल सेना को भेजकर पीछे-पीछे क्रुद्ध मार भी वहाँ आया।

१३. "सेनासहित मार को पहुँचा हुआ देखकर सर्वद्रष्टा भगवान् बुद्ध ने भिक्षुसङ्घ को बताया।।

"भिक्षुओ! मारसेना पहुँच गयी है! सावधान हो जाओ।"

"बुद्ध का आदेश सुनकर समग्र भिक्षुसङ्घ धैर्यपूर्वक सचेत हो गया। इस तरह उस भिक्षुसङ्घ को वीतराग जानकर वह मारसेना विवश होकर वहाँ से भाग चली। उन भिक्षुओं का वह एक रोम भी टेढ़ा न कर सकी।।

''सब्बे विजितसङ्गामा, भयातीता यसस्सिनो।
मोदन्ति सह भूतेहि, सावका ते जनेसुता'' ति॥

महासमयसुत्तं निट्ठितं सत्तमं॥

क्योंकि वे सभी भिक्षु प्रसिद्ध (जनश्रुत) संग्रामविजयी एवं यशस्वी थे और वीतराग प्राणियों (आर्य देवता तथा मनुष्यों) के साथ सर्वथा प्रमुदित थे।।

सप्तम महासमयसूत्र समाप्त॥

८. सक्कपञ्हसुत्तं

१.पञ्चसिखो भगवन्तं वीणं अस्सावेसि

[N.197, B.211, R.263] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति, पाचीनतो राजगहस्स अम्बसण्डा नाम ब्राह्मणगामो तस्सुत्तरतो, वेदियके पब्बते इन्दसालगुहायं। तेन खो पन समयेन सक्कस्स देवानमिन्दस्स उस्सुक्कं उदपादि भगवन्तं दस्सनाय। अथ खो सक्कस्स देवानमिन्दस्स एतदहोसि—"कहं नु खो भगवा एतरहि विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति? अद्दसा खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं मगधेसु विहरन्तं, पाचीनतो राजगहस्स अम्बसण्डा नाम ब्राह्मणगामो तस्सुत्तरतो, वेदियके पब्बते इन्दसालगुहायं। दिस्वान देवे तावतिंसे आमन्तेसि— "अयं, मारिसा, भगवा मगधेसु विहरति, पाचीनतो राजगहस्स अम्बसण्डा ब्राह्मणगामो तस्सुत्तरतो, वेदियके पब्बते इन्दसालगुहायं। यदि पन, मारिसा, मयं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्याम अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति? "एवं भद्दन्तवा" ति खो देवा तावतिंसा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पच्चस्सोसुं।

[R.264] २. अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चसिखं गन्धब्बपुत्तं आमन्तेसि—"अयं, तात पञ्चसिख, भगवा मगधेसु विहरति, पाचीनतो राजगहस्स अम्बसण्डा नाम ब्राह्मणगामो तस्सुत्तरतो, वेदियके पब्बते इन्दसालगुहायं। यदि पन, तात पञ्चसिख, मयं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्याम अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति? "एवं भद्दन्तवा" ति खो पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा बेलुवपण्डुवीणं आदाय सक्कस्स देवानमिन्दस्स अनुचरियं उपागमि।

३. अथ खो सक्को देवानमिन्दो देवेहि तावतिंसेहि परिवुतो पञ्चसिखेन गन्धब्बदेवपुत्तेन पुरक्खतो—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं

---

८. शक्रप्रश्नसूत्र

१. पञ्चशिख गन्धर्व का भगवान् के सम्मुख वीणावादन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश में प्राचीन राजगृह से पूर्व अम्बषण्ड नामक ब्राह्मण ग्राम से उत्तर वेदियक पर्वत की इन्द्रशाल गुफा में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय देवराज इन्द्र के मन में भगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा हुई। उसने मन में सोचा— "भगवान्....इस समय कहाँ विराजमान होंगे?" तब देवेन्द्र शक्र को मगध में प्राचीन राजगृह....इन्द्रशाल गुफा में विराजमान भगवान् दिखायी दिये। उन्हें देखकर उसने त्रायस्त्रिंश देवों से यह कहा— "मार्षों! ये भगवान् इस समय.... इन्द्रशाल गुफा में विराजमान हैं। क्यों न हम उन भगवान्....के दर्शन के लिये वहाँ चलें!" उन देवताओं ने "ठीक है, श्रीमन्!"— यों उत्तर दिया।

२. तब देवेन्द्र शक्र ने पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र को यह आदेश दिया— "तात पञ्चशिख! ये भगवान्....इस समय....इन्द्रशाल गुफा में विराजमान हैं। हम उनके दर्शनहेतु वहाँ चलना चाहते हैं।" "अच्छा, श्रीमन्"— यों कहकर वह पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र वेलुवपण्डु (बांस की बनी पीली) वीणा (तन्दूरा) को लेकर इन्द्र के पीछे चलने के लिये सन्नद्ध हो गया।

३. देवेन्द्र शक्र त्रायस्त्रिंश देवों को साथ कर और पञ्चशिख गन्धर्व को आगे कर, जैसे कोई

समिञ्जेय्य; एवमेव देवेसु तावतिंसेसु अन्तरहितो, मगधेसु पाचीनतो राजगहस्स अम्बसण्डा नाम ब्राह्मणगामो तस्सुत्तरतो, वेदियके पब्बते पच्चुट्ठासि। तेन खो पन समयेन वेदियको पब्बतो अतिरिव ओभासजातो होति अम्बसण्डा च ब्राह्मणगामो—यथा तं देवानं [B.212] देवानुभावेन। अपिस्सुदं परितो गामेसु मनुस्सा एवमाहंसु—"आदित्तस्सु नामज्ज [N.198] वेदियको पब्बतो, झायतिसु नामज्ज वेदियको पब्बतो, जलतिसु नामज्ज वेदियको पब्बतो, किंसु नामज्ज वेदियको पब्बतो अतिरिव ओभासजातो, अम्बसण्डा च ब्राह्मणगामो" ति, संविग्गा लोमहट्ठजाता अहेसुं।

४. अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चसिखं गन्धब्बदेवपुत्तं आमन्तेसि—"दुरुपसङ्कमा खो, तात पञ्चसिख, तथागता मादिसेन झानरता तदन्तरं पटिसल्लीना। यदि पन त्वं, [R.265] तात पञ्चसिख, भगवन्तं पठमं पसादेय्यासि! तया, तात, पठमं पसादितं पच्छा मयं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्याम अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति। "एवं भद्दन्तवा" ति खो पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा बेलुवपण्डुवीणं आदाय येन इन्दसालगुहा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा, "एत्तावता मे भगवा नेव अतिदूरे भविस्सति नाच्चासन्ने, सद्दं च सोस्सती" ति एकमन्तं अट्ठासि।

५. एकमन्तं ठितो खो पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो बेलुवपण्डुवीणं अस्सावेसि इमा च गाथा अभासि बुद्धूपसञ्हिता धम्मूपसञ्हिता सङ्घूपसञ्हिता अरहन्तूपसञ्हिता कामूपसञ्हिता—

"वन्दे ते पितरं भद्दे, तिम्बरुं सुरियवच्छसे।
येन जातासि कल्याणी, आनन्दजननी मम॥
"वातो व सेदतं कन्तो, पानीयं व पिपासतो।
अङ्गीरसि पियामेसि, धम्मो अरहतामिव॥

बलवान् पुरुष पसारी हुई बाँह को.... वैसे ही त्रायस्त्रिंश लोक से अन्तर्हित होकर....वेदियक पर्वत पर प्रकट हुआ। उस समय वह वेदियक पर्वत और वह अम्बषण्ड ब्राह्मणग्राम उन देवताओं की कान्ति से अत्यधिक देदीप्यमान हुआ। आस-पास के ग्रामों के रहने वाले मनुष्यों के मुख से यह बात अचानक निकल पड़ी कि 'अरे! आज यह वेदियक पर्वत और यह अम्बषण्ड ग्राम इतने अधिक क्यों चमक (प्रकाशमान हो) रहे हैं।' वे ग्रामवासी, यह देखकर अत्यधिक उद्विग्न तथा रोमाञ्चपूर्ण हो उठे।

४. तब देवेन्द्र शक्र ने पञ्चशिख गन्धर्व देवपुत्र को कहा— "तात पञ्चशिख! ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागत के पास मेरे जैसा कोई सहसा नहीं जा सकता। अच्छा हो, यदि तुम पहले जाकर प्रसन्न कर लो। तब हम उन तथागत....का दर्शन करने हेतु उनके पास चलें।" "जैसी आज्ञा, श्रीमन्"— कहकर पञ्चशिख अपनी सूखे बाँस की पीली वीणा को लेकर इन्द्रशाल गुफा के न अधिक निकट और न अधिक दूर, जहाँ से भगवान् उसकी वीणा के स्वर सुन सकें, एक तरफ खड़ा हो गया।

५. एक ओर खड़ा वह पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र अपनी वीणा पर ये गाथाएँ सुनाने लगा, जो कि बुद्ध, धर्म, सङ्घ, ज्ञान एवं कामभोगों के वर्णन से सम्पृक्त थीं—

"भद्रे सूर्यवर्चसे! तेरे पिता तिम्बरु की वन्दना करता हूँ, जिससे, हे कल्याणि! मेरे लिये आनन्द-प्रदात्री तूँ उत्पन्न हुई।

[R.266] "आतुरस्सेव भेसज्जं, भोजनं व जिघच्छतो।
परिनिब्बापय मं भद्दे, जलन्तमिव वारिना॥
[N.199, B.213] "सीतोदकं पोक्खरणिं, युत्तं किञ्जक्खरेणुना।
नागो घम्माभितत्तो व, ओगाहे ते थनूदरं॥
"अच्चङ्कुसो व नागो व, जितं मेत्ततोमरं।
कारणं नप्पजानामि, सम्मत्तो लक्खणूरुया॥
"तयि गेधितचित्तोस्मि, चित्तं विपरिणामितं।
पटिगन्तुं न सक्कोमि, वङ्कघस्तोव अम्बुजो॥
"वामूरु सज मं भद्दे, सज मं मन्दलोचने।
पलिस्सज मं कल्याणि, एतं मे अभिपत्थितं॥
"अप्पको वत मे सन्तो, कामो वेल्लितकेसिया।
अनेकभावो समुप्पादि, अरहन्तेव दक्खिणा॥
"यं मे अत्थि कतं पुञ्ञं, अरहन्तेसु तादिसु।
तं मे सब्बङ्गकल्याणि, तया सद्धिं विपच्चतं॥
[R.267] "यं मे अत्थि कतं पुञ्ञं, अस्मिं पथविमण्डले।
तं मे सब्बङ्गकल्याणि, तया सद्धिं विपच्चतं॥
"सक्यपुत्तो व झानेन, एकोदि निपको सतो।
अमतं मुनि जिगिंसानो, तमहं सुरियवच्छसे॥

"जैसे पसीने से भीगे क्लान्त (थके) पुरुष के लिये वायु, प्यासे को जल एवं ज्ञानियों को ज्ञान प्रिय होता है, उसी तरह आङ्गिरसे! तूँ मुझे प्रिय है।

"जैसे रोगी को औषध, भूखे को भोजन, जलते हुए को जल शान्ति प्रदान करता है, वैसे ही तूँ भी मुझे शान्ति प्रदान कर।

"पुष्परेणु (पराग) से परिपूर्ण शीतल जल वाली पुष्करिणी को अवगाहन करनेवाले धूप में सन्तप्त हाथी की तरह मैं तुम्हारे स्तनोदर का अवगाहन करूँ।

"भाले तथा अंकुश द्वारा निरंकुश मत्त गज की भाँति तुमने मुझको जीत लिया। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि सुन्दर (श्लक्ष्ण) जांघों वाली तुम ने मुझ को इतना पागल कैसे बना दिया!

"मेरा मन तुझ में आसक्त है, मैंने अपना हृदय तुझ पर वार दिया है! पंक में फँसे कमल की भाँति मैं अब पीछे लौटने में असमर्थ हूँ।

वामोरु! भद्रे! मेरा आलिङ्गन कर! मन्दलोचने! मुझे आलिङ्गित कर! हे कल्याणि! मुझ से गले मिल! यही मेरी हार्दिक इच्छा (अभिप्रार्थित) है!

"हे घुँघराले बालों वाली! (तुम ने मुझसे इतने समय तक) न मिलकर मेरे उन्माद को (निराशा में बदलकर) कुछ तो शान्त किया है, परन्तु इससे तुम्हारा तो कोई लाभ नहीं हुआ, अपितु इससे मेरा मन अर्हतों के प्रति अधिक आदरभावयुक्त हो गया है।

"हे सर्वाङ्गशोभने! मैंने अर्हत् तथागतों में मन लगाकर जो कुछ भी पुण्य किया है, वह सब तेरे साथ भोगने में लगे।

"यथा पि मुनि नन्देय्य, पत्वा सम्बोधिमुत्तमं।
एवं नन्देय्यं कल्याणि मिस्सीभावं गतो तया॥

"सक्को चे मे वरं दज्जा, तावतिंसानमिस्सरो।
ताहं भद्दे वरेय्याहे, एवं कामो दळ्हो मम॥

"सालं व न चिरं फुल्लं, पितरं ते सुमेधसे।
वन्दमानो नमस्सामि, यस्सा सेतादिसी पजा" ति॥

६. एवं वुत्ते भगवा पञ्चसिखं गन्धब्बदेवपुत्तं एतदवोच—"संसन्दति खो ते, [N.200] पञ्चसिख, तन्तिस्सरो गीतस्सरेन गीतस्सरो च तन्तिस्सरेन; न च पन, पञ्चसिख, तन्तिस्सरो गीतस्सरं अतिवत्तति गीतस्सरो च तन्तिस्सरं। कदा संयूळ्हा पन ते, पञ्चसिख, [B.214] इमा गाथा बुद्धूपसञ्हिता धम्मूपसञ्हिता सङ्घूपसञ्हिता अरहन्तूपसञ्हिता कामूपसञ्हिता" ति?

"एकमिदं, भन्ते, समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पनाहं, भन्ते, समयेन भद्दा नाम सुरियवच्छसा तिम्बरुनो [R.268] गन्धब्बरञ्ञो धीता तमभिकङ्खामि। सा खो पन, भन्ते, भगिनी परकामिनी होति; सिखण्डी नाम मातलिस्स सङ्गाहकस्स पुत्तो तमभिकङ्खति। यतो खो अहं, भन्ते, तं भगिनिं नालत्थं केनचि परियायेन, अथाहं बेलुवपण्डुवीणं आदाय येन तिम्बरुनो गन्धब्बरञ्ञो निवेसनं

"हे सर्वाङ्गसुखदे! मैंने इस पृथ्वीमण्डल पर जो कुछ भी पुण्य किया है, वह सब तेरे साथ भोग करने में व्यय हो जाय।

"हे सूर्यवर्चसे! जैसे शाक्यपुत्र मुनि ध्यान द्वारा एकाग्र, एकान्तसेवी, स्मृतिसंयुक्त हो अमृत पाना चाहते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें पाना चाहता हूँ।

"कल्याणि! जैसे मुनि (बुद्ध) उत्तम सम्बोधि (परम ज्ञान) प्राप्त कर आनन्दित हुए, वैसे ही मैं भी तुम्हें पाकर आनन्दित होना चाहता हूँ।

"यदि त्रायस्त्रिंश लोक के स्वामी देवेन्द्र शक्र (तुम्हारे बदले में) कोई और वर देना चाहें तो मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति इतना दृढ़ है कि मैं उस वर को भी अस्वीकार कर दूँगा।

"भो सुमेधे! कुछ ही समय पहले फूले सालवन की तरह तेरे पिता को मैं स्तुतिपूर्वक, नमस्कार करता हूँ। जिसको तुम्हारे जैसी (सुन्दर) पुत्री मिली है।"

६. (पञ्चशिख द्वारा गायी) इन गाथाओं को सुनने के बाद, भगवान् उस पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र को यों बोले— "पञ्चशिख! तुम्हारी वीणा का स्वर तुम्हारे स्वर से और तुम्हारे स्वर से तुम्हारी वीणा के स्वर सर्वथा मिलते हैं। रे पञ्चशिख! न तो तुम्हारी वीणा का स्वर तुम्हारे स्वर से इधर-उधर जाता है और न ही तुम्हारा स्वर तुम्हारी वीणा के स्वर से इधर-उधर जाता है। तुमने इन बुद्ध-धर्म-सङ्घ-ज्ञान-भोग सम्बन्धी गाथाओं की रचना कब की?"

"भन्ते! जिस समय भगवान् ऊरुवेला में नेरञ्जरा नदी के किनारे अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के प्रथम सम्बोधि प्राप्ति हेतु प्रयासरत थे, उस समय, भन्ते! मैं तिम्बरु गन्धर्वराज की कन्या भद्रा सूर्यवर्चसा पर आसक्त था। किन्तु भन्ते! वह स्त्री किसी दूसरे, मातलि सङ्ग्राहक के पुत्र, शिखण्डी गन्धर्व पर आसक्त थी। भन्ते! जब मैं उस स्त्री को किसी भी उपाय से अपनी ओर नहीं खींच पाया तो मैं अपनी यह सूखे बाँस

तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा बेलुवपण्डुवीणं अस्सावेसिं, इमा च गाथायो अभासिं बुद्धूपसञ्हिता धम्मूपसञ्हिता सङ्घूपसञ्हिता अरहन्तूपसञ्हिता कामूपसञ्हिता—

'वन्दे ते पितरं भद्दे, तिम्बरुं सुरियवच्छसे।
येन जातासि कल्याणी, आनन्दजननी मम॥ .... पे० ....॥
'सालं व न चिरं फुल्लं, पितरं ते सुमेधसे।
वन्दमानो नमस्सामि, यस्सा सेतादिसी पजा' ति।

"एवं वुत्ते, भन्ते, भद्दा सुरियवच्छसा मं एतदवोच—'न खो मे, मारिस, सो भगवा सम्मुखा दिट्ठो, अपि च सुतोयेव मे सो भगवा देवानं तावतिंसानं सुधम्मायं सभायं उपनच्चन्तिया। [R.269] यतो खो त्वं, मारिस, तं भगवन्तं कित्तेसि, होतु नो अज्ज समागमो' ति। सोयेव नो, भन्ते, तस्सा भगिनिया सद्धिं समागमो अहोसि, न च दानि ततो पच्छा" ति।

२. सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं उपसङ्कमि

७. अथ खो सक्कस्स देवानमिन्दस्स एतदहोसि—"पटिसम्मोदति पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो भगवता, भगवा च पञ्चसिखेना" ति। अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चसिखं गन्धब्बदेवपुत्तं आमन्तेसि—"अभिवादेहि मे त्वं, तात पञ्चसिख, भगवन्तं—'सक्को, भन्ते, देवानमिन्दो सामच्चो सपरिजनो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' " ति। "एवं भद्दन्तवा" ति खो [N.201] पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा भगवन्तं अभिवादेसि—[B.215] "सक्को, भन्ते, देवानमिन्दो सामच्चो सपरिजनो भगवतो पादे सिरसा वन्दती" ति।

"एवं सुखी होतु, पञ्चसिख, सक्को देवानमिन्दो सामच्चो सपरिजनो; सुखकामा हि देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा ये चञ्ञे सन्ति पुथुकाया" ति।

८. एवं च पन तथागता एवरूपे महेसक्खे यक्खे अभिवदन्ति। अभिवदितो सक्को

वाली पीली वीणा लेकर तिम्बरु गन्धर्वराज के आवास पर पहुँचा और वहाँ पहुँचकर इस वेणुवीणा पर मैंने ये गाथाएँ, जिनमें कि बुद्ध, धर्म, सङ्घ, ज्ञान एवं काम का मिश्रण है, उसे सुनायीं—

'भद्रे! सूर्यवर्चसे! तुम्हारे पिता तुम्बरु की वन्दना....पूर्ववत्....जिसको तुम्हारे जैसी सुन्दर पुत्री मिली है।'

"भन्ते! ये गाथाएँ गाने के बाद भद्रा सूर्यवर्चसा मुझ से बोली— मार्ष! उन भगवान् के मैंने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किये हैं, किन्तु जब त्रायस्त्रिंश देवसभा (सुधर्मा) में जब मैं नृत्य करने गयी थी तो उन भगवान् के विषय में सुना था। मार्ष! आप उन का कीर्तन करते हैं, इसलिये आज हम लोगों का समागम हो।' उसके साथ वहीं समागम हुआ है, उसके बाद आजतक फिर वह कभी नहीं मिली।"

२. देवेन्द्र शक्र का भगवान् के सम्मुख गमन

७. तब देवेन्द्र शक्र के मन में यह हुआ— 'अब, भगवान् प्रसन्न होकर पञ्चशिख से बात कर रहे हैं।' तब देवेन्द्र शक्र ने पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र से कहा— "पञ्चशिख! मेरी तरफ से भगवान् को प्रणाम करो— 'भन्ते! देवेन्द्र शक्र आप को प्रणाम करते हैं।' " "अच्छा, श्रीमन्"— इस तरह पञ्चशिख ने देवेन्द्र को उत्तर देकर भगवान् से कहा— "भन्ते! देवेन्द्र शक्र आपको शिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।"

"पञ्चशिख! देवेन्द्र शक्र अपने अमात्यों तथा परिजनों के साथ सुखी रहें।"

८. तथागत इन लोगों इसी तरह आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद-प्राप्त देवेन्द्र शक्र भगवान् की

देवानमिन्दो भगवतो इन्दसालगुहं पविसित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। देवा पि तावतिंसा इन्दसालगुहं पविसित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। पञ्चसिखो पि गन्धब्बदेवपुत्तो इन्दसालगुहं पविसित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि।

तेन खो पन समयेन इन्दसालगुहा विसमा सन्ती समा समपादि, सम्बाधा सन्ती [R.270] उरुन्दा समपादि, अन्धकारो गुहायं अन्तरधायि, आलोको उदपादि—यथा तं देवानं देवानुभावेन।

९. अथ खो भगवा सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—"अच्छरियमिदं आयस्मतो कोसियस्स, अब्भुतमिदं आयस्मतो कोसियस्स, ताव बहुकिच्चस्स बहुकरणीयस्स यदिदं इधागमनं" ति।

"चिरपटिकाहं, भन्ते, भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुकामो; अपि च देवानं तावतिंसानं केहिचि किच्चकरणीयेहि ब्यावटो; एवाहं नासक्खिं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। एकमिदं, भन्ते, समयं भगवा सावत्थियं विहरति सलळागारके। अथ ख्वाहं, भन्ते, सावत्थिं अगमासिं भगवन्तं दस्सनाय। तेन खो पन, भन्ते, समयेन भगवा अञ्ञतरेन समाधिना निसिन्नो होति, भूजति च नाम वेस्सवणस्स महाराजस्स परिचारिका भगवन्तं पच्चुपट्ठिता होति पञ्जलिका नमस्समाना तिट्ठति। अथ ख्वाहं, भन्ते, भूजतिं एतदवोचुं—'अभिवादेहि मे त्वं, भगिनि, भगवन्तं—सक्को, भन्ते, देवानमिन्दो सामच्चो सपरिजनो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, सा भूजति मं एतदवोच—'अकालो खो, मारिस, भगवन्तं दस्सनाय; [N.202] पटिसल्लीनो भगवा' ति।

'तेन हि, भगिनि, यदा भगवा तम्हा समाधिम्हा वुट्ठितो होति अथ मम [R.271] वचनेन भगवन्तं अभिवादेहि—सक्को, भन्ते, देवानमिन्दो सामच्चो सपरिजनो भगवतो [B.216] पादे सिरसा वन्दती' ति।

इन्द्रशाल–गुफा में प्रवेश कर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। त्रायस्त्रिंश देव भी....खड़े हो गये। पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र भी.... खड़ा हो गया। उस समय इन्द्रशाल गुफा का जो भाग टेढ़ा–मेढ़ा था, जो सङ्कीर्ण था, वह विस्तृत हो गया और देवों के देवानुभाव से वह गुफा प्रकाश से भर गयी।

९. तब देवेन्द्र शक्र से भगवान् ने कहा– "आश्चर्य है आयुष्मन् कौशिक, अद्भुत है आयुष्मन् कौशिक! आप जैसे कार्यव्यस्त को इधर आने का अवकाश आज कैसे मिल गया!"

"भन्ते! मैं तो बहुत समय से आपके दर्शनहेतु आना चाहता था, परन्तु क्या बताऊँ इन त्रायस्त्रिंश देवों के आगे से आगे ऐसे कार्य आते गये कि उनमें व्यस्त होकर इधर आने का समय ही नहीं निकाल सका। एक समय, भन्ते! भगवान् श्रावस्ती के सललागार (गन्धकुटी) में विराजमान थे। तब मैं आपके दर्शन हेतु श्रावस्ती गया था। भन्ते! उस समय आप किसी समाधिविशेष में मग्न थे। और वैश्रवण महाराज की परिचारिका भूजति भगवान् की परिचर्या में लगी हुई हाथ जोड़े, सिर झुकाये खड़ी थी। तब, भन्ते! मैं उस भूजति परिचारिका से यों बोला– 'भगिनि! मेरी ओर से भगवान् से निवेदन करो– 'शक्र देवेन्द्र अमात्य एवं परिजनों सहित आपको शिर झुका कर प्रणाम करता है।' ऐसा कहने पर वह भूजति मुझसे बोली– 'मार्ष! भगवान् के दर्शन का यह समय नहीं है। भगवान् इस समय समाधिस्थ हैं।'

'भगिनि! तो भगवान् जब समाधि से उठें तो तभी मेरी ओर से उन्हें प्रणाम कर निवेदन करना कि देवेन्द्र शक्र.... आप को प्रणाम करता है।'

"कच्चि मे सा, भन्ते, भगिनी भगवन्तं अभिवादेसि? सरति भगवा तस्सा भगिनिया वचनं" ति?

"अभिवादेसि मं सा, देवानमिन्दो, भगिनी। सरामहं तस्सा भगिनिया वचनं। अपि चाहं आयस्मतो नेमिसद्देन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठितो" ति।

"ये ते, भन्ते, देवा अम्हेहि पठमतरं तावतिंसकायं उपपन्ना तेसं मे सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, दिब्बा काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया' ति। तं मे इदं, भन्ते, सक्खिदिट्ठं—यतो तथागतो लोके उप्पन्नो अरहं सम्मासम्बुद्धो, दिब्बा काया परिपूरेन्ति, हायन्ति असुरकाया ति।

गोपकवत्थु

१०. "इधेव, भन्ते, कपिलवत्थुस्मिं गोपिका नाम सक्यधीता अहोसि बुद्धे पसन्ना धम्मे पसन्ना सङ्घे पसन्ना सीलेसु परिपूरकारिनी। सा इत्थित्तं विराजेत्वा पुरिसत्तं भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना देवानं तावतिंसानं सहब्यतं अम्हाकं पुत्तत्तं अज्झुपगता। तत्र पि नं एवं जानन्ति—'गोपको देवपुत्तो, गोपको देवपुत्तो' ति। अञ्ञे पि, भन्ते, तयो भिक्खू भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा हीनं गन्धब्बकायं उपपन्ना। ते पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारयमाना अम्हाकं उपट्ठानं आगच्छन्ति अम्हाकं पारिचरियं। ते [R.272] अम्हाकं उपट्ठानं आगते अम्हाकं पारिचरियं गोपको देवपुत्तो पटिचोदेसि—'कुतोमुखा नाम तुम्हे मारिसा तस्स भगवतो धम्मं अस्सुत्थ— अहं हि नाम इत्थिका समाना बुद्धे पसन्ना धम्मे पसन्ना सङ्घे पसन्ना सीलेसु परिपूरकारिनी इत्थित्तं विराजेत्वा पुरिसत्तं भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना देवानं तावतिंसानं सहब्यतं सक्कस्स देवानमिन्दस्स

"भन्ते! क्या उसने मेरी ओर से आप को प्रणाम किया था? भगवान् को क्या उसकी कही बात का स्मरण है?"

"हाँ! देवेन्द्र उसने अभिवादन किया था। मुझे उसकी कही बात का स्मरण है। अपितु कहना चाहिये कि आपके रथ की गड़गड़ाहट से ही मेरी समाधि टूटी थी।"

"भन्ते! त्रायस्त्रिंश देवलोक में हम से पहले जो देवता हुए थे, उनको यह कहते हुए मैंने सुना है कि जब तथागत अर्हत्....संसार में पैदा होते हैं तब असुरों की संख्या कम होकर देवताओं की बढ़ती है। भन्ते! उसे मैंने आँखों से देख लिया कि तथागत जब....।

गोपककथा– १०. "भन्ते! इसी कपिलवस्तु में बुद्ध–धर्म–सङ्घ में श्रद्धालु एवं शील से युक्त गोपिका नाम की एक शाक्यपुत्री थी। वह स्त्रीचित्त से विरत रहती एवं पुरुष–चित्त की भावना करती हुई मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हुई और त्रायस्त्रिंश देवलोक में हमारा पुत्र होकर पैदा हुई। वहाँ उसकी ख्याति 'गोपक देवपुत्र' नाम से हुई। इसी के साथ अन्य तीन भिक्षु भी भगवान् के धर्म का पालन करते हुए मरणानन्तर हीन गन्धर्वलोक में उत्पन्न हुए। वे पाँचों कामभोगों से सम्पन्न होकर हमलोगों की परिचर्या में, हमारे आवास में उपस्थित रहते हैं। एक बार, हम लागों की सेवा में आने पर, उनसे गोपक देवपुत्र ने कहा– 'मार्ष! आप लोगों ने भगवान् के उपदेशों को ध्यानपूर्वक क्यों नहीं सुना! और धर्मसाधना भलीभाँति क्यों नहीं की? मैं स्त्री होकर भी बुद्ध....में श्रद्धा....स्वर्गलोक में देवेन्द्र शक्र के पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ हूँ। यहाँ भी लोग मुझे 'गोपक देवपुत्र' ही कहते हैं। मार्ष! एक तरफ आप लोग हैं कि भगवान्

पुत्तत्तं अज्झुपगता। इधा पि मं एवं जानन्ति— गोपको देवपुत्तो गोपको देवपुत्तो ति। [N.203] तुम्हे पन, मारिसा, भगवति ब्रह्मचरियं चरित्वा हीनं गन्धब्बकायं उपपन्ना। दुद्दिट्ठरूपं वत, भो, अद्दसाम, ये मयं अद्दसाम सहधम्मिके हीनं गन्धब्बकायं उपपन्ने' ति। तेसं, भन्ते, [B.217] गोपकेन देवपुत्तेन पटिचोदितानं द्वे देवा दिट्ठेव धम्मे सतिं पटिलभिंसु कायं ब्रह्मपुरोहितं, एको पन देवो कामे अज्झावसि।

११. 'उपासिका चक्खुमतो अहोसिं, नामं पि मय्हं अहु गोपिका ति।
बुद्धे च धम्मे च अभिप्पसन्ना, सङ्घञ्चुपट्ठासिं पसन्नचित्ता॥
'तस्सेव बुद्धस्स सुधम्मताय, सक्कस्स पुत्तोम्हि महानुभावो।
महाजुतीको तिदिवूपपन्नो, जानन्ति मं इधा पि 'गोपको' ति॥
'अथद्दसं भिक्खवो दिट्ठपुब्बे, गन्धब्बकायूपगते वसीने।
इमेहि ते गोतमसावकासे, ये च मयं पुब्बे मनुस्सभूता॥
'अन्नेन पानेन उपट्ठहिम्हा, पादूपसङ्गय्ह सके निवेसने।
कुतोमुखा नाम इमे भवन्तो, बुद्धस्स धम्मानि पटिग्गहेसुं॥ [R.273]
'पच्चत्तं वेदितब्बो हि धम्मो, सुदेसितो चक्खुमतानुबुद्धो।
अहं हि तुम्हेव उपासमानो, सुत्वान अरियान सुभासितानि॥
'सक्कस्स पुत्तोम्हि महानुभावो, महाजुतीको तिदिवूपपन्नो।
तुम्हे पन सेट्ठमुपासमाना, अनुत्तरं ब्रह्मचरियं चरित्वा॥ [N.204]
'हीनं कायं उपपन्ना भवन्तो, अनानुलोमा भवतूपपत्ति।
दुद्दिट्ठरूपं वत अद्दसाम, सहधम्मिके हीनकायूपपन्ने॥ [B.218]

के शासन में धर्म-साधना करके भी यहाँ अपेक्षाकृत हीन गन्धर्वलोक में ही उत्पन्न हो पाये! यह बहुत बुरा लगता है कि एक ही धर्म में साधना करके कोई स्वर्ग में आये और कोई हीन गन्धर्वलोक में उत्पन्न हो!'

"भन्ते! गोपक देवपुत्र के ऐसा कहने पर, उन (तीन देवपुत्रों) में से दो देवपुत्र देखते ही देखते स्मृति-लाभ कर, सावधान हो, ब्रह्मपुरोहित (देवता) के शरीर को प्राप्त हुए और एक (फिर भी) उसी कामलोक में ही रह गया।

११. 'चक्षुष्मान् (तथागत) की मैं उपासिका थी। मेरा नाम गोपिका था। बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति श्रद्धा रखते हुए उनकी सेवा करती थी।

'उसी बुद्ध के धर्मबल से आज मैं स्वर्गलोक में शक्र देवेन्द्र के महातेजस्वी पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। यहाँ भी मुझे लोग गोपक देवपुत्र कहते हैं।

'मैंने अपने पूर्व परिचित (तीन) भिक्षुओं को इस हीन गन्धर्व-काय को प्राप्त हुए देखा। वे भी पहले मनुष्यलोक में भगवान् के धर्म की साधना करते थे।

'उस समय मैंने (गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए) इन लोगों के पैर धोये थे। अच्छे भोज्य, पेय पदार्थों से इनकी सेवा की थी; क्योंकि ये उस समय बुद्ध-धर्म को ग्रहण कर भिक्षु बने हुए थे। इन्होंने किस गलत ढंग से बुद्ध-धर्म का अभ्यास किया!

'बुद्धोपदिष्ट यह धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने योग्य है। मैंने तो आप लोगों की सेवा करते-करते ही इस धर्म के आनुभाव से यह पद प्राप्त किया है।

'गन्धब्बकायूपगता भवन्तो, देवानमागच्छथ पारिचरियं।
अगारे वसतो मय्हं, इमं पस्स विसेसतं॥
'इत्थी हुत्वा स्वज्ज पुमोम्हि देवो, दिब्बेहि कामेहि समङ्गिभूतो'।
ते चोदिता गोतमसावकेन, संवेगमापादु समेच्च गोपकं॥
'हन्द वियायाम ब्यायाम, मा नो मयं परपेस्सा अहुम्हा'।
[R.274] तेसं दुवे विरियमारभिंसु, अनुस्सरं गोतमसासनानि॥
'इधेव चित्तानि विराजयित्वा, कामेसु आदीनवमद्दसंसु।
ते कामसंयोजनबन्धनानि, पापिमयोगानि दुरच्चयानि॥
'नागो व सन्नानि गुणानि छेत्वा, देवे तावतिंसे अतिक्कमिंसु।
सइन्दा देवा सपजापतिका, सब्बे सुधम्माय सभायुपविट्ठा॥
[N.205] 'तेसं निसिन्नानं अभिक्कमिंसु, वीरा विरागा विरजं करोन्ता।
ते दिस्वा संवेगमकासि वासवो, देवाभिभू देवगणस्स मज्झे॥
[B.219] 'इमेहि ते हीनकायूपपन्ना, देवे तावतिंसे अभिक्कमन्ति'।
संवेगजातस्स वचो निसम्म, सो गोपको वासवमज्झभासि॥

'इसी के कारण आज मैं देवेन्द शक्र का अत्यधिक तेजस्वी पुत्र हूँ। स्वर्गलोक में उत्पन्न हुआ हूँ। इधर आप लोग हैं कि श्रेष्ठ बुद्ध की सेवा में रहकर तथा अनुपम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके भी।

'अयोग्य हीन काया को प्राप्त हुए हैं। यह देखने-सुनने में कष्टदायक ही लगता है कि एक ही धर्म का समान रूप से पालन करके भी कोई उत्तम लोक में उत्पन्न हो और कोई हीन लोक में।

'अब यही विशेषता देखिये– आप लोग साक्षात् भगवान् से प्रव्रज्या प्राप्त कर धर्म-साधना करते हुए भी अभी तक गन्धर्वलोक तक पहुँचे हैं; और मैं परम्परया, आप लोगों की सेवा करते हुए भी, उसी बुद्ध-धर्म का सम्यक्तया पालन कर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो गया।

'उस लोक में स्त्री होकर भी (बुद्ध धर्मों का सम्यक्तया पालन कर) आज दिव्य काम-भोगों का सेवन कर रहा हूँ।

'इत तरह वे भिक्षु गन्धर्व गोपक देवपुत्र द्वारा सम्प्रेरित होकर संवेग (उद्वेग=पश्चात्ताप) को प्राप्त हुए।

'उन्होंने सोचा– कितने शोक की बात है हम लोग उस श्रेष्ठ धर्म का ठीक से पालन न करने के कारण ही इस दास-भाव (गन्धर्व-शरीर) को प्राप्त हुए हैं। उनमें से दो ने पुनः वीर्यपूर्वक प्रयत्न कर बुद्धानुशासन का ठीक से पालन किया। और वे लौकिक कामभोगों में आदीनव देखकर उन से अपने चित्त को विरक्त कर पाये। जैसे हाथी बाँधी हुई रस्सियों को तोड़ देता है, वैसे ही कामसंयोजक बन्धनों को, जिनसे कि पापमय अकुशल धर्मों में प्रवृत्ति होती है, तोड़कर वे त्रायस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुए।

'उस समय वे इन्द्र और प्रजापति के साथ देवताओं की सुधर्मा सभा में बैठे। वे वैराग्य के सहारे अत्यन्त निर्मलचित्त होकर उन देवों से भी विशेष शोभा से समन्वित थे। उन्हें देखकर देवगणों में बैठे देवराज (देवाभिभू) इन्द्र को अत्यधिक संवेग हुआ–

'अरे ये कभी हीन काय में उत्पन्न हुए आज ये त्रायस्त्रिंश देवों से भी बढ़कर देदीप्यमान हैं।' देवेन्द्र शक्र के ये संवेगजन्य वचन सुनकर गोपक देवपुत्र ने यह कहा–

'बुद्धो जनिन्दत्थि मनुस्सलोके, कामाभिभू सक्यमुनी ति ञायति।
तस्सेव ते पुत्ता सतिया विहीना, चोदिता मया ते सतिमज्झलत्थुं॥
'तिण्णं तेसं आवसिनेत्थ एको, गन्धब्बकायूपगतो वसीनो। [R.275]
द्वे च सम्बोधिपथानुसारिनो, देवे पि हीळेन्ति समाहितत्ता॥
'एतादिसी धम्मप्पकासनेत्थ, न तत्थ किंकङ्खति कोचि सावको।
नितिण्णओघं विचिकिच्छछिन्नं, बुद्धं नमस्साम जिनं जनिन्दं'॥
''यं ते धम्मं इधञ्ञाय, विसेसं अज्झगंसु ते।
कायं ब्रह्मपुरोहितं, दुवे तेसं विसेसगू॥
''तस्स धम्मस्स पत्तिया, आगतम्हासि मारिस।
कतावकासा भगवता, पञ्हं पुच्छेमु मारिसा'' ति॥ [N.206]

१२. अथ खो भगवतो एतदहोसि—''दीघरत्तं विसुद्धो खो अयं यक्खो। यं किञ्चि मं पञ्हं पुच्छिस्सति सब्बं तं अत्थसञ्हितं येव पुच्छिस्सति नो अनत्थसञ्हितं। यञ्चस्साहं पुट्ठो ब्याकरिस्सामि तं खिप्पमेव आजानिस्सती'' ति।

१३. अथ खो भगवा सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि— [B.200]
''पुच्छ वासव मं पञ्हं, यं किञ्चि मनसिच्छसि।
तस्स तस्सेव पञ्हस्स, अहं अन्तं करोमि ते'' ति॥

पठमभाणवारो निट्ठितो॥

'हे इन्द्र! मनुष्यलोक में कामभोगों पर विजय प्राप्त करने वाले शाक्य मुनि बुद्ध प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के ये पुत्र स्मृतिविहीन हो गये थे, परन्तु मेरे प्रेरित करने पर पुनः स्मृति-प्राप्त हुए हैं।

'ये लोग कामभोगों की परवशता पार कर गये हैं। इन तीनों में से एक गन्धर्वलोक में ही रह गया। तथा दो सम्बोधि के मार्ग पर चल कर एकाग्रचित्त होते हुए त्रायस्त्रिंश देवों से भी आगे बढ़ गये।

'बुद्ध की ऐसी धर्मदेशना सुनकर किसी भिक्षु को कोई सन्देह-शङ्का नहीं रह जाती। अतः भवसागरपारगामी विगतसन्देह होकर जननेतृत्व करने वाले भगवान् बुद्ध को हम प्रणाम करते हैं।

'उन्हीं आपके इस धर्म को समझ कर ये इस वैशिष्ट्य को प्राप्त हुए हैं। इन दोनों ने ब्रह्मपुरोहित देव काय प्राप्त किया है।

''मार्ष! उसी धर्मश्रवण के लिये हम लोग आप की सेवा में उपस्थित हुए हैं। यदि आपका आदेश हो तो हम उस धर्म के विषय में कुछ प्रश्न करें।''

१२. तब भगवान् के मन में यह हुआ– ''यह शक्र बहुत दिनों से विशुद्धचित्त है। अब यह जो कुछ भी पूछेगा वह सार्थक ही होगा, निरर्थक नहीं। और मैं जो कुछ भी इसे बताऊँगा यह उसे तत्काल समझ लेगा।''

१३. तब भगवान् ने इस गाथा के माध्यम से शक्र को कहा–

''देवेन्द्र शक्र! तुम्हारे मन में मुझ से जो कुछ भी पूछने की इच्छा हो, पूछ सकते हो। तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर देकर मैं तुम्हें विगतसन्देह कर दूँगा।''

प्रथम भाणवार समाप्त॥

३. सक्कपञ्हविस्सज्जनं

इस्सामच्छरियसंयोजना सत्ता

[R.276] १४. कतावकासो सक्को देवानमिन्दो भगवता इमं भगवन्तं पठमं पञ्हं अपुच्छि– "किंसंयोजना नु खो, मारिस, देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा ये चञ्ञे सन्ति पुथुकाया ते–'अवेरा अदण्डा असपत्ता अब्यापज्जा विहरेमु अवेरिनो' ति इति च नेसं होति, अथ च पन सवेरा सदण्डा ससपत्ता सब्यापज्जा विहरन्ति सवेरिनो'' ति? इत्थं सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं पञ्हं अपुच्छि। तस्स भगवा पञ्हं पुट्ठो ब्याकासि–

"इस्सामच्छरियसंयोजना खो, देवानमिन्द, देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा ये चञ्ञे सन्ति पुथुकाया ते–'अवेरा अदण्डा असपत्ता अब्यापज्जा विहरेमु अवेरिनो' ति इति च नेसं होति, अथ च पन सवेरा सदण्डा ससपत्ता सब्यापज्जा विहरन्ति सवेरिनो" ति। इत्थं भगवा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पञ्हं पुट्ठो ब्याकासि।

अत्तमनो सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दि अनुमोदि–"एवमेवं, भगवा, एवमेतं, सुगत। तिण्णा मेत्थ कङ्खा विगता कथङ्कथा भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा" ति (१)

इस्सामच्छरियं पियाप्पियपभवं

[N.207, R.277] १५. इतिह सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि–

"इस्सामच्छरियं पन, मारिस, किंनिदानं किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं; किस्मिं सति इस्सामच्छरियं होति; किस्मिं असति इस्सामच्छरियं न होती" ति?

"इस्सामच्छरियं खो, देवानमिन्द, पियाप्पियनिदानं पियाप्पियसमुदयं पियाप्पियजातिकं पियाप्पियपभवं; पियाप्पिये सति इस्सामच्छरियं होति, पियाप्पिये असति इस्सामच्छरियं न होती" ति। (२)

---

३. देवेन्द्र शक्र के प्रश्नों का उत्तर

ईर्ष्या–मात्सर्यबद्ध प्राणी– १४. भगवान् से आज्ञा पाकर देवेन्द्र शक्र ने भगवान् से यह पहला प्रश्न पूछा–

"मार्ष! देव, मनुष्य, नाग, गन्धर्व एवं दूसरे प्राणी किस बन्धन से बन्धे हुए हैं कि वे यह चाहते हुए भी– 'हम वैररहित, दण्डरहित, शत्रुभावरहित एवं अहिंसारत होकर ही सब प्राणियों से व्यवहार करें', वे बैरी बन कर शत्रुता रखते हुए दण्ड–शस्त्र आदि द्वारा किसी भी प्राणी की हत्या करने में तत्पर हो जाते हैं?"– इन्द्र (शक्र) ने भगवान् से यह प्रश्न पूछा। भगवान् ने उसका यों उत्तर दिया–

"देवेन्द्र! ईर्ष्या एवं मात्सर्य के बन्धनों से बन्ध कर वे देव, मनुष्य, नाग, गन्धर्व एवं अन्य साधारण प्राणी यह चाहते हुए भी....पूर्ववत्....हत्या करने में तत्पर हो जाते हैं और परस्पर बैरी बन जाते हैं।" यों भगवान् ने उस देवेन्द्र शक्र के प्रथम प्रश्न का उत्तर दिया।

सन्तुष्ट होकर देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन किया– "ठीक है भगवन्! ठीक है सुगत! आप से प्रश्न का उत्तर सुनकर मेरे सभी सन्देह निवृत्त हो गये। (१)

ईर्ष्या और मात्सर्य का कारण– १५. यों, देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन कर भगवान् से दूसरा प्रश्न पूछा–

पियाप्पियं छन्दपभवं

"पियाप्पियं खो पन, मारिस, किंनिदानं किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं; [B.221] किस्मिं सति पियाप्पियं होति; किस्मिं असति पियाप्पियं न होती" ति?

"पियाप्पियं खो, देवानमिन्द, छन्दनिदानं छन्दसमुदयं छन्दजातिकं छन्दपभवं; छन्दे सति पियाप्पियं होति; छन्दे असति पियाप्पियं न होती" ति। (३)

छन्दो वितक्कपभवो

"छन्दो खो पन, मारिस, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो; किस्मिं सति छन्दो होति; किस्मिं असति छन्दो न होती" ति?

"छन्दो खो, देवानमिन्द, वितक्कनिदानो वितक्कसमुदयो वितक्कजातिको वितक्कपभवो; वितक्के सति छन्दो होति; वितक्के असति छन्दो न होती" ति। (४)

वितक्को पपञ्चसञ्ञासङ्खापभवो

"वितक्को खो पन, मारिस, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो; किस्मिं सति वितक्को होति; किस्मिं असति वितक्को न होती" ति?

"वितक्को खो, देवानमिन्द, पपञ्चसञ्ञासङ्खानिदानो पपञ्चसञ्ञासङ्खासमुदयो पपञ्चसञ्ञासङ्खाजातिको पपञ्चसञ्ञासङ्खापभवो; पपञ्चसञ्ञासङ्खाय सति वितक्को होति; पपञ्चसञ्ञासङ्खाय असति वितक्को न होती" ति। (५)

पपञ्चसञ्ञासङ्खानिरोधगामिनी पटिपदा

"कथंपटिपन्नो पन, मारिस, भिक्खु पपञ्चसञ्ञासङ्खानिरोधसारुप्पगामिनिं [N.208] पटिपदं पटिपन्नो होती" ति?

१६. "सोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि [R.278]

"मार्ष! इन ईर्ष्या और मात्सर्य का क्या कारण, क्या समुदय, क्या जाति और क्या प्रभव है? और किस के न होने पर ये नहीं होते?"

"देवेन्द्र! ये ईर्ष्या और मात्सर्य प्रिय एवं अप्रिय के कारण उत्पन्न होते हैं, समुदित होते हैं, प्रभूत होते हैं। इन प्रिय–अप्रिय के न होने पर ये ईर्ष्या–मात्सर्य नहीं होते।" (२)

प्रिय–अप्रिय का कारण– "इन ईर्ष्या–मात्सर्य के उत्पादक प्रिय–अप्रियों का कारण छन्द (चाह) है। इस छन्द के होने से ये बाते हैं, न होने पर नहीं होते।" (३)

छन्द का कारण– "इस छन्द का उत्पादक कारण है– वितर्क। वितर्क के होने पर ही छन्द होता है। वितर्क के न होने पर छन्द भी नहीं होता।" (४)

वितर्क का कारण– "मार्ष वितर्क का क्या....है? किसके होने पर यह होता है? किसके न होने पर नहीं होता?"

"देवेन्द्र! वितर्क का कारण है– प्रपञ्च संज्ञा संख्या (यहाँ त्रिविध 'प्रपञ्च' यों जानने चाहिये– १. तृष्णाप्रपञ्च, २. मानप्रपञ्च एवं ३. दृष्टिप्रपञ्च)। इस प्रपञ्च के होने पर वितर्क का उद्भव होता है। न होने पर, नहीं होता।" (५)

प्रपञ्चसंज्ञासङ्ख्यानिरोधगामिनी प्रतिपदा– "मार्ष! क्या करने से साधक भिक्षु इस प्रपञ्चसंज्ञासङ्ख्या के निरोध–मार्ग पर आरूढ़ होता है?"

असेवितब्बं पि। दोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। उपेक्खं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि।

१७."सोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा सोमनस्सं' इमं खो मे सोमनस्सं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपं सोमनस्सं न [B.222] सेवितब्बं। तत्थ यं जञ्ञा सोमनस्सं 'इमं खो मे सोमनस्सं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपं सोमनस्सं सेवितब्बं। तत्थ यं चे सवितक्कं सविचारं, यं चे अवितक्कं अविचारं, ये अवितक्के अविचारे, ते पणीततरे। सोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१८."दोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा दोमनस्सं 'इमं खो मे दोमनस्सं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपं दोमनस्सं न सेवितब्बं। तत्थ यं जञ्ञा दोमनस्सं 'इमं खो मे दोमनस्सं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपं दोमनस्सं सेवितब्बं। तत्थ यं चे सवितक्कं सविचारं, यं चे अवितक्कं अविचारं, ये अवितक्के अविचारे, ते पणीततरे। दोमनस्सं पाहं, देवानमिन्द, [R. 279] दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१९."उपेक्खं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा उपेक्खं 'इमं खो मे उपेक्खं सेवतो [N.209] अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपा उपेक्खा न सेवितब्बा। तत्थ यं जञ्ञा उपेक्खं 'इमं खो मे उपेक्खं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपा उपेक्खा सेवितब्बा। तत्थ यं चे सवितक्कं सविचारं,

---

१६."देवेन्द्र! सौमनस्य (=मन की प्रसन्नता) द्विविध होता है– एक सेवनीय दूसरा असेवनीय। देवेन्द्र! दौर्मनस्य (चित्त–खेद) भी द्विविध होता है– एक सेवनीय और दूसरा असेवनीय। उपेक्षा भी द्विविध होती है– एक सेवनीय और दूसरा असेवनीय।

१७."देवेन्द्र! 'सौमनस्य द्विविध होता है....' यह जो कहा है, वह किस कारण कहा है? जिस सौमनस्य को जाने कि उसके सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हों और कुशल धर्म घटते हों वह असेवनीय है। और जिस सौमनस्य को जाने कि उसके सेवन से अकुशल धर्म घटते हैं और कुशल धर्म बढ़ते हैं, वह सौमनस्य सेवनीय है। वैसे ही उस अवस्था में सवितर्क और सविचार तथा अवितर्क और अविचार में जो अवितर्क अविचार है वही श्रेष्ठ है। देवेन्द! 'सौमनस्य द्विविध होता है....' वह इसीलिये कहा है। (क)

१८."देवेन्द्र 'दौर्मनस्य दो प्रकार का है....' यह जो कहा है, वह किस कारण से? साधक भिक्षु जिस दौर्मनस्य के विषय में जाने कि उसके सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हैं....वही श्रेष्ठ है। देवेन्द 'दौर्मनस्य द्विविध....वह इसीलिये कहा है। (ख)

यं चे अवितक्कं अविचारं, ये अवितक्के अविचारे, ते पणीततरे। उपेक्खं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। एवं पटिपन्नो खो, देवानमिन्द, भिक्खु पपञ्चसञ्ञासङ्खानिरोधसारुप्पगामिनिं पटिपदं पटिपन्नो होती'' ति। (६)

२०. इत्थं भगवा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पञ्हं पुट्ठो ब्याकासि। अत्तमनो सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दि अनुमोदि—''एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत। [B.223] तिण्णा मेत्थ कङ्खा विगता कथङ्कथा भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा'' ति।

पातिमोक्खसंवरपटिपदा

२१. इतिह सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

''कथं पटिपन्नो पन, मारिस, भिक्खु पातिमोक्खसंवराय पटिपन्नो होती'' ति?

''कायसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। वचीसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। परियेसनं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि।

''कायसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं [R.280] पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा कायसमाचारं 'इमं खो मे कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपो कायसमाचारो न सेवितब्बो। तत्थ यं जञ्ञा कायसमाचारं 'इमं खो मे कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपो कायसमाचारो सेवितब्बो। कायसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

---

१९. देवेन्द्र! 'उपेक्षा भी द्विविध....पूर्ववत्....। (ग)

''देवेन्द्र! इस तरह साधना करने से भिक्षु प्रपञ्चसंज्ञासङ्ख्या के निरोधमार्ग पर आरूढ़ होता है।

२०. इस प्रकार भगवान् ने देवेन्द्र शक्र द्वारा पूछे गये द्वितीय प्रश्न का उत्तर दिया। उत्तर सुनकर प्रसन्नमना देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन किया– ''ठीक है भगवन्! ठीक है सुगत! आपका उपदेश सुनने से इस विषय में मेरी सभी शङ्काएँ, मेरे सभी सन्देह (ऊहापोह) निवृत्त हो गये हैं।

प्रातिमोक्षसंवर–मार्ग– २१. यों, देवेन्द शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन कर भगवान् से आगे फिर पूछा–

''क्या करने से, भगवन्! साधक भिक्षु प्रातिमोक्षसंवर (भिक्षुसंयम) मार्ग पर आरूढ़ होता है?''

''देवेन्द्र! कायिक आचरण (कायसमाचार) दो प्रकार का होता है– सेवनीय एवं असेवनीय। वाचिक आचरण (वाक्समाचार) दो....। पर्येषण (मानसिक समाचार) द्विविध होता है– सेवनीय एवं असेवनीय।

''देवेन्द! 'कायिक आचरण....सेवनीय एवं असेवनीय'–यह जो कहा, वह किसलिये कहा? जिस कायिक आचरण के विषय में....इसलिये कहा है।

[N.210] ''वचीसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा वचीसमाचारं 'इमं खो मे वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपो वचीसमाचारो न सेवितब्बो। तत्थ यं जञ्ञा वचीसमाचारं 'इमं खो मे वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपो वचीसमाचारो सेविततब्बो। वचीसमाचारं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

[B.224] ''परियेसनं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्थ यं जञ्ञा परियेसनं 'इमं खो मे परियेसनं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवरूपा परियेसना न सेवितब्बा। तत्थ यं जञ्ञा परियेसनं 'इमं खो मे परियेसनं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवरूपा परियेसना सेवितब्बा। परियेसनं पाहं, देवानमिन्द, [R.281] दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। एवं पटिपन्नो खो, देवानमिन्द, भिक्खु पातिमोक्खसंवराय पटिपन्नो होती'' ति। (७)

इत्थं भगवा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पञ्हं पुट्ठो ब्याकासि। अत्तमनो सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दि अनुमोदि—''एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत। तिण्णा मेत्थ कङ्खा विगता कथङ्कथा भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा'' ति।

इन्द्रियसंवरपटिपदा

२२. इतिह सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

''कथं पटिपन्नो पन, मारिस, भिक्खु इन्द्रियसंवराय पटिपन्नो होती'' ति?

''चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। सोतविञ्ञेय्यं सद्दं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। घानविञ्ञेय्यं गन्धं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। जिव्हाविञ्ञेय्यं रसं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पि। काय-[N.211] विञ्ञेय्यं फोट्ठब्बं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि— सेवितब्बं पि असेवितब्बं

'देवेन्द्र! वाचिक आचरण....पर्येषण (मनः समाचार)....इसलिये कहा है।

"देवेन्द्र! इस प्रकार के आचरण से भिक्षु प्रातिमोक्ष संवर मार्ग पर आरूढ़ होता है।"

इस प्रकार भगवान् ने देवेन्द्र शक्र के प्रश्नों का....पूर्ववत्....मेरे सभी सन्देह निवृत्त हो गये हैं।

इन्द्रियसंवर मार्ग– २२. यों देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन कर भगवान् से आगे दूसरा प्रश्न किया– "मार्ष! क्या करने से साधक भिक्षु इन्द्रियसंवरमार्ग पर आरूढ़ होता है?"

"देवेन्द्र! चक्षु से ज्ञेय रूप दो प्रकार के होते हैं– सेवनीय एवं असेवनीय। श्रोत्र से ज्ञेय शब्द....घ्राण से ज्ञेय गन्ध....जिह्वा से ज्ञेय रस....काया से ज्ञेय स्पर्श....मन से ज्ञेयधर्म भी....असेवनीय भी।"

पि। मनोविञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, देवानमिन्द, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी'' ति।

एवं वुत्ते, सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं एतदवोच—''इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि—यथारूपं, भन्ते, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं न सेवितब्बं। यथारूपं च खो, भन्ते, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा [B.225] परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवितब्बं। यथारूपं च खो, भन्ते, सोतविञ्ञेय्यं सद्दं सेवतो ....पे० ....घानविञ्ञेय्यं गन्धं सेवतो .... [R.282] जिव्हाविञ्ञेय्यं रसं सेवतो .... कायविञ्ञेय्यं फोट्ठब्बं सेवतो .... मनोविञ्ञेय्यं धम्मं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो धम्मो न सेवितब्बो। यथारूपं च खो, भन्ते, मनोविञ्ञेय्यं धम्मं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो धम्मो सेवितब्बो। इमस्स खो मे, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानतो तिण्णा मेत्थ कङ्खा, विगता कथङ्कथा, भगवतो पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा'' ति। (८)

नानाधातुलोको

२३. इतिह सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

''सब्बेव नु खो, मारिस, समणब्राह्मणा एकन्तवादा एकन्तसीला एकन्तच्छन्दा एकन्तअज्झोसाना'' ति?

''नो खो, देवानमिन्द, सब्बे समणब्राह्मणा एकन्तवादा एकन्तसीला एकन्तच्छन्दा एकन्तअज्झोसाना'' ति।

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहने पर, देवेन्द्र शक्र ने भगवान् से कहा– ''भन्ते! मैं भगवान् से इस संक्षिप्त उपदेश का अर्थ विस्तार से यों समझता हूँ–

''भन्ते! जिस चक्षुर्ज्ञेय रूप का सेवन करने से अकुशल धर्मों का प्रहाण होता है, कुशल धर्मों की वृद्धि होती हो वह सेवनीय है और....सेवन से अकुशल धर्मों की वृद्धि एवं कुशल धर्मों का ह्रास होता है, वह असेवनीय है। 'जिस श्रोत्रविज्ञेय शब्द से....। 'जिस घ्राणविज्ञेय गन्ध से....। 'जिस जिह्वाविज्ञेय रस से....। 'जिस कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य से....। 'जिस मनोविज्ञेय धर्म से....।

''भन्ते! मैं आपके इस संक्षिप्त उपदेश का अर्थ यों विस्तारपूर्वक समझ पाया हूँ। अब इस विषय में आप का उत्तर सुनकर मेरी सभी शङ्काएँ एवं सन्देह दूर हो गये हैं।

नानाधातुलोक– २३. यों देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन कर भगवान् से आगे प्रश्न किया–

''मार्ष! क्या सभी श्रमण–ब्राह्मण एक ही सिद्धान्त के प्रतिपादक, एक (समान) ही शील का आचरण करने वाले, एक ही विचार के मानने वाले (समान विचारक) होते हैं?''

''देवेन्द्र! सभी श्रमण–ब्राह्मण एक ही सिद्धान्त के....नहीं हैं।''

''मार्ष! सभी श्रमण–ब्राह्मण एक ही सिद्धान्त के....क्यों नहीं है?'

"कस्मा पन, मारिस, न सब्बे समणब्राह्मणा एकन्तवादा एकन्तसीला एकन्तच्छन्दा एकन्तअज्झोसाना" ति?

[N.212] "अनेकधातु नानाधातु खो, देवानमिन्द, लोको। तस्मिं अनेकधातुनानाधातुस्मिं लोके यं यदेव सत्ता धातुं अभिनिविसन्ति तं तदेव थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरन्ति— 'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। तस्मा न सब्बे समणब्राह्मणा एकन्तवादा एकन्तसीला एकन्तच्छन्दा एकन्तअज्झोसाना" ति।

"सब्बेव नु खो, मारिस, समणब्राह्मणा अच्चन्तनिट्ठा अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसाना" ति?

[R.283] "न खो, देवानमिन्द, सब्बे समणब्राह्मणा अच्चन्तनिट्ठा अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसाना" ति।

[B.226] "कस्मा पन, मारिस, न सब्बे समणब्राह्मणा अच्चन्तनिट्ठा अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसाना" ति?

"ये खो, देवानमिन्द, भिक्खू तण्हासङ्खयविमुत्ता ते अच्चन्तनिट्ठा अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसाना। तस्मा न सब्बे समणब्राह्मणा अच्चन्तनिट्ठा अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसाना" ति।

इत्थं भगवा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पञ्हं पुट्ठो ब्याकासि। अत्तमनो सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दि अनुमोदि—"एवमेतं, भगवा, एवमेतं सुगत। तिण्णा मेत्थ कङ्खा विगता कथङ्कथा पञ्हवेय्याकरणं सुत्वा" ति।

२४. इतिह सक्को देवानमिन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं एतदवोच—

"एजा, भन्ते, रोगो, एजा गण्डो, एजा सल्लं, एजा इमं पुरिसं परिकड्ढति तस्स तस्सेव

"देवेन्द्र! संसार के सभी लोगों के अनेक एवं भिन्न-भिन्न शारीरिक धातुओं के बने रहने के कारण, जो जीव जिस धातु का बना (अभिनिविष्ट) रहता है, उसी को हठपूर्वक दृढ़तापूर्वक अभिनिवेश (आग्रह) करके ग्रहण कर लेता है– 'यही सच्चा है, अन्य सब मिथ्या हैं'। इसीलिए सभी श्रमण, ब्राह्मण एक सिद्धान्त के प्रतिपादक नहीं हो पाते।"

"मार्ष! क्या सभी श्रमण-ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान्, अत्यन्त योगक्षेमी, अत्यन्त ब्रह्मचारी, अत्यन्त पर्यवसान (लक्ष्य) वाले हैं?"

"नहीं, देवेन्द्र! सभी....अत्यन्त निष्ठावान्....नहीं हैं।"

"मार्ष! सभी....अत्यन्त निष्ठावान्....क्यों नहीं है?"

"देवेन्द्र! क्योंकि जो तृष्णा के विचार (सङ्ख्या) से विमुक्त हैं, वे ही अत्यन्त निष्ठावान् हैं। अतः सभी श्रमण-ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान्....नहीं हैं।"

यों भगवान् ने देवेन्द्र शक्र के प्रश्न का उत्तर दिया। सन्तुष्ट होकर देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन-अनुमोदन किया।....सन्देह दूर हुए।

२४. देवेन्द्र शक्र ने....भगवान् से यों कहा–

भवस्स अभिनिब्बत्तिया। तस्मा अयं पुरिसो उच्चावचमापज्जति। येसाहं, भन्ते, पञ्हानं इतो बहिद्धा अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु ओकासकम्मं पि नालत्थं ते मे भगवता ब्याकता। दीघरत्तानुसयितं च पन मे विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लं, तं च भगवता अब्बुळ्हं'' ति। (९)

अञ्ञे समणब्राह्मणा

''अभिजानासि नो त्वं, देवानमिन्द, इमे पञ्हे अञ्ञे समणब्राह्मणे पुच्छिता'' ति?

''अभिजानामहं, भन्ते, इमे पञ्हे अञ्ञे समणब्राह्मणे पुच्छिता'' ति। [N.213]

''यथा कथं पन ते, देवानमिन्द, ब्याकंसु? सचे ते अगरु भासस्सू'' ति।

''न खो मे, भन्ते, गरु यत्थस्स भगवा निसिन्नो भगवन्तरूपो वा'' ति।

''तेन हि, देवानमिन्द, भासस्सू'' ति।

''येस्वाहं, भन्ते, मञ्ञामि समणब्राह्मणा आरञ्ञिका पन्तसेनासना ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा इमे पञ्हे पुच्छामि। ते मया पुट्ठा न सम्पायन्ति। असम्पायन्ता ममं येव पटिपुच्छन्ति—'को नामो आयस्मा' ति? तेसाहं पुट्ठो ब्याकरोमि—'अहं खो, मारिस, सक्को देवानमिन्दो' ति। ते ममं येव उत्तरि पटिपुच्छन्ति—'किं पनायस्मा, देवानमिन्द, कम्मं कत्वा इमं ठानं पत्तो' ति? तेसाहं यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं देसेमि। ते तावतकेनेव [B.227] अत्तमना होन्ति—'सक्को च नो देवानमिन्दो दिट्ठो, यं च नो अपुच्छिम्हा तं च नो ब्याकासी' ती। ते अञ्ञदत्थु ममं येव सावका सम्पज्जन्ति न चाहं तेसं। अहं खो पन, भन्ते, भगवतो सावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो'' ति। (१०)

''भन्ते! तृष्णा (एजा) रोग है, व्रण है, शल्य रूप है। यह तृष्णा ही पुरुष को उन योनियों में ले जाने के लिये खींचती है। इसी के कारण ही पुरुष की हानि या वृद्धि होती रहती है।

''भन्ते! जिन प्रश्नों का उत्तर मैं दूसरे श्रमण ब्राह्मणों से नहीं पा सकता था, उन्हें भगवान् ने बहुत ही सरलता से समझा दिया। मेरी सभी शङ्काएँ, सभी ऊहापोह (द्वैविध्य) जो बहुत समय से नष्ट नहीं हो रहे थे, उन्हें आज आपने दूर कर दिया।

दूसरे श्रमण–ब्राह्मण– देवेन्द्र! क्या तुमने कभी पहले भी किसी अन्य श्रमण–ब्राह्मण से ये प्रश्न पूछे थे?''

''हाँ, भन्ते! पूछे तो थे।''

''यदि, देवेन्द्र! तुम्हें कोई भार न हो तो, उनका दिया हुआ उत्तर हमें भी सुनाओ।''

''भन्ते! जहाँ आप जैसे भगवान् (सर्वसमर्थ) बैठे हों वहाँ मुझे भारी क्या होगा!''

''तो, देवेन्द्र! सुनाओ।''

''भन्ते! जो श्रमण–ब्राह्मण निर्जन, एकान्त वन प्रदेश में वास करते थे, जिन्हें मैं समझता कि वे विद्वान् हैं, उन के पास जाकर मैं पूछता था। पूछने पर वे मुझे सन्तुष्ट न कर पाते। अपितु, इनका उत्तर मुझ से ही पूछने लगते थे कि ''आप कौन हैं?'' मैं उत्तर देता था– 'मार्ष! मैं देवेन्द्र शक्र हूँ।' तब वे फिर मुझसे पूछते थे– 'आयुष्मन् देवेन्द्र! आपने क्या पुण्य कर्म या क्या साधना करके यह स्थान पाया है?' तब मैं उनको यथाज्ञान यथाशक्ति आपसे सुने धर्म का उपदेश करता था। वे उतने से ही सन्तुष्ट हो जाते कि हमने देवेन्द्र शक्र से साक्षात्कार किया है और उनसे संवाद किया है। यों वे ही उलटकर मेरे शिष्य (श्रावक) बन जाते थे, मैं उनका श्रावक क्या बनता! भन्ते! मैं तो भगवान् (आप) का स्रोतआपन्न, कभी भी हीनयोनि में न गिरने वाला (अभिनिपातधर्मा) नियत सम्बोधिमार्ग पर आरुढ़ श्रावक हूँ।

सक्कस्स सोमनस्सपटिलाभस्स छ अत्थवसा

२५. ''अभिजानासि नो त्वं, देवानमिन्द, इतो पुब्बे एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं'' ति?

[R.285] ''अभिजानामहं, भन्ते, इतो पुब्बे एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं'' ति।

''यथा कथं पन त्वं, देवानमिन्द, अभिजानासि इतो पुब्बे एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं'' ति?

''भूतपुब्बं, भन्ते, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। तस्मिं खो पन, भन्ते, सङ्गामे देवा जिनिंसु, असुरा पराजिंसु। तस्स मय्हं, भन्ते, तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामस्स [N.214] एतदहोसि—'या चेव दानि दिब्बा ओजा या च असुरा ओजा उभयमेतं देवा परिभुञ्जिस्सन्ती' ति। सो खो पन मे, भन्ते, वेदपटिलाभो सोमनस्सपटिलाभो सदण्डावचरो ससत्थावचरो, न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। यो खो पन मे अयं, भन्ते, भगवतो धम्मं सुत्वा वेदपटिलाभो सोमनस्सपटिलाभो सो अदण्डावचरो असत्थावचरो एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तती'' ति।

२६. ''किं पन त्वं, देवानमिन्द, अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं पवेदेसी'' ति?

''छ खो अहं, भन्ते, अत्थवसे सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं पवेदेमि।

''इधेव तिट्ठमानस्स, देवभूतस्स मे सतो।
पुनरायु च मे लद्धो, एवं जानाहि, मारिस॥

[B.228, R.286] ''इमं खो अहं, भन्ते, पठमं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्सपटिलाभं पवेदेमि। (१)

शक्र की सौमनस्यप्राप्ति के छह कारण— २५. (भगवान् ने पूछा—) "देवेन्द्र! क्या तुम्हें इससे पूर्व भी कभी ऐसा सन्तोष एवं सौमनस्य मिला था। कुछ स्मरण है?"

"हाँ, भन्ते! इससे पूर्व भी मुझे ऐसा सन्तोष तथा सौमनस्य हो चुका है— ऐसा मुझे श्रवण है।"

"यदि....तुम्हें स्मरण है तो हमें भी उस विषय में बताओ?"

"भन्ते! बहुत दिन हुए कि एक देवासुरसंग्राम हुआ था। उस संग्राम में देवों की विजय हुई और असुरों की पराजय। उस संग्राम को जीतकर मेरे मन में यह हुआ कि अब जो दिव्य ओज और असुर ओज है, दोनों का देव लोग ही उपभोग करेंगे। भन्ते! मेरा वह सन्तोष और सौमनस्य युद्ध के विषय में था, निर्वेद के लिये नहीं, न विराग के लिये, न निरोध या शान्ति के लिये, न ज्ञान, सम्बोधि या निर्वाण के लिये। भन्ते! अब जो यह भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर सन्तोष एवं सौमनस्य हुआ है वह युद्धविषयक नहीं, अपितु निर्वेद....निर्वाण के लिये है।"

२६. "देवेन्द्र! क्या देख कर कह रहे हो कि तुमने ऐसा सौमनस्य एवं सन्तोष पाया?"

"भन्ते! छह बातों को देखकर कह रहा हूँ कि मैंने ऐसा सन्तोष एवं सौमनस्य पाया। जैसे—

"मार्ष! देवरूप में रहते-रहते ही मैंने फिर आयु प्राप्त की है, इस प्रकार आप जानें।"

"चुताहं दिविया काया, आयुं हित्वा अमानुसं।
अयूळ्हो गब्भमेस्सामि, यत्थ मे रमती मनो॥

"इमं खो अहं, भन्ते, दुतियं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्स-पटिलाभं पवेदेमि। (२)

"स्वाहं अमूळ्हपञ्ञस्स, विहरं सासने रतो।
ञायेन विहरिस्सामि, सम्पजानो पटिस्सतो॥

"इमं खो अहं, भन्ते, ततियं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्स-पटिलाभं पवेदेमि। (३)

"ञायेन मे चरतो च, सम्बोधि चे भविस्सति।
अञ्ञाता विहरिस्सामि, स्वेव अन्तो भविस्सति॥

"इमं खो अहं, भन्ते, चतुत्थं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्स-पटिलाभं पवेदेमि। (४)

"चुताहं मानुसा काया, आयुं हित्वान मानुसं।
पुन देवो भविस्सामि, देवलोकम्हि उत्तमो॥

"इमं खो अहं, भन्ते, पञ्चमं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं [N.215] सोमनस्सपटिलाभं पवेदेमि। (५)

"ते पणीततरा देवा, अकनिट्ठा यसस्सिनो।
अन्तिमे वत्तमानम्हि, सो निवासो भविस्सति॥

"इमं खो अहं, भन्ते, छट्ठं अत्थवसं सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं [R.287] सोमनस्सपटिलाभं पवेदेमि। (६)

"इमे खो अहं, भन्ते, छ अत्थवसे सम्पस्समानो एवरूपं वेदपटिलाभं सोमनस्स-पटिलाभं पवेदेमि।

"भन्ते! यह पहला कारण है जिसके कारण मैंने ऐसा....। (१)

"दिव्य आयु के क्षीण होने पर इस शरीर से च्युत होकर, मैं अपनी इच्छानुसार जहाँ मन होगा उसी गर्भ में प्रवेश-करूँगा।

"भन्ते! इस दूसरे कारण से मैंने ऐसा सन्तोष....। (२)

"ऐसा मैं तथागत के धर्मानुशासन में रत रहकर स्मृतिमान् तथा सावधान होकर ज्ञानपूर्वक विहार करूँगा।

"भन्ते! यह तीसरा कारण है जिस के सहारे मैंने ऐसा....। (३)

"ज्ञानपूर्वक आचरण करते हुए मुझे सम्बोधि प्राप्त होगी। मैं परमार्थ जानता हुआ साधना करूँगा– यही इसका अन्त होगा।

"भन्ते! यह चौथा प्रयोजन है जिसके कारण मैंने ऐसा....। (४)

"तब उस मानव देह से च्युत होकर मैं पुनः देवलोक में जाकर उत्तम देव बनूँगा।

"भन्ते! यह पाँचवाँ कारण है जिसके कारण मैं ऐसा....। (५)

"अकनिष्ठ नामक देवलोक के वासी यशस्वी देवों में मेरा अन्तिम जन्म होगा।

[B.229] २७. ''अपरियोसितसङ्कप्पो, विचिकिच्छो कथङ्कथी।
विचरिं दीघमद्धानं, अन्वेसन्तो तथागतं॥
''यस्सु मञ्ञामि समणे, पविवित्तविहारिनो।
सम्बुद्धा इति मञ्ञानो, गच्छामि ते उपासितुं॥
''कथं आराधना होति, कथं होति विराधना?
इति पुट्ठा न सम्पायन्ति, मग्गे पटिपदासु च॥
''त्यस्सु यदा मं जानन्ति, सक्को देवानमागतो।
त्यस्सु ममेव पुच्छन्ति, किं कत्वा पापुणी इदं?
''तेसं यथासुतं धम्मं, देसयामि जनेसुतं।
तेन अत्तमना होन्ति, दिट्ठो नो वासवो ति च॥
''यदा च बुद्धमद्दक्खिं, विचिकिच्छावितारणं।
सोम्हि वीतभयो अज्ज, सम्बुद्धं पयिरुपासिय॥
''तण्हासल्लस्स हन्तारं, बुद्धं, अप्पटिपुग्गलं।
अहं वन्दे महावीरं, बुद्धमादिच्चबन्धुनं॥
[R.288] ''यं करोमसि ब्रह्मुनो, समं देवेहि मारिस।
तदज्ज तुय्हं दस्साम, हन्द सामं करोम ते॥
''त्वमेव असि सम्बुद्धो, तुवं सत्था अनुत्तरो।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि ते पटिपुग्गलो'' ति॥

''भन्ते! यह छठा कारण है जिसके कारण मैं ऐसा....। (६)

''भन्ते! इन्हीं छह कारणों को देखकर मैंने ऐसा सन्तोष और सौमनस्य अनुभव किया।

२७. ''तथागत के अन्वेषण में मैं बहुत समय तक अपूर्णसङ्कल्प रहते हुए नाना शङ्काओं और ऊहापोहों में डूबते-उतराते हुए भटक रहा था।

''एकान्त वास करने वाले साधारण श्रमणों को भी मैं सम्बुद्ध समझकर (उनसे ज्ञानप्राप्ति हेतु) उनकी उपासना (सेवा) में जाता था।

''किन्तु- 'मोक्ष-प्राप्ति का क्या उपाय है'- यह पूछने पर न तो वे मुझे कोई सत्य मार्ग बता पाते थे, न कोई सरल सा उपाय ही।

''उलटे- जब उन्हें ज्ञात होता कि मैं शक्र हूँ, तो मुझसे ही पूछने लगते कि मैंने यह दिव्य पद एवं रूप किस तरह प्राप्त किया है?

''भगवान्! जब मैंने यथाशक्ति यथाज्ञान उन लोगों को उपदेश किया तो वे सन्तुष्ट हो गये कि हमने इन्द्र को देख लिया।

''इधर, जब मैंने सभी शङ्का-सन्देहों के विनाशक भगवान् बुद्ध को देखा तो मैं आज उनकी उपासना कर निर्भय हो गया हूँ।

''यह मैं, तृष्णारूपी शल्य के उद्धर्ता, असाधारण, सूर्यवंश में उत्पन्न (तेजस्वी), महावीर बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।

''मार्ष! आज तक जो मैं अपने देवों के साथ ब्रह्मा को प्रणाम करता था, वह मैं अब आप को

२८. अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चसिखं गन्धब्बपुत्तं आमन्तेसि—[N.216] "बहूपकारो खो मेसि त्वं, तात पञ्चसिख, यं त्वं भगवन्तं पठमं पसादेसि। तया, तात, पठमं पसादितं पच्छा मयं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमिम्हा अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। [B.230] पेत्तिके वा ठाने ठपयिस्सामि, गन्धब्बराजा भविस्ससि, भद्दं च ते सुरियवच्छसं दम्मि। सा हि ते अभिपत्थिता" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो पाणिना पथविं परामसित्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि—

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा" ति।

इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सक्कस्स देवानमिन्दस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति। अञ्ञेसं च [R.289] असीतिया देवतासहस्सानं।

इति ये सक्केन देवानमिन्देन अज्झिट्ठपञ्हा पुट्ठा ते भगवता ब्याकता; तस्मा इमस्स वेय्याकरणस्स सक्कपञ्हा त्वेव अधिवचनं ति।

सक्कपञ्हसुत्तं निट्ठितं अट्ठमं॥

ही प्रणाम करूँगा। आप ही सम्यक्सम्बुद्ध हैं, आप ही अनुपम उपदेशक (शास्ता) हैं, देवताओं सहित समग्र लोकों में आपके समान अन्य कोई भी नहीं है।"

२८. तब देवेन्द्र शक्र ने देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व को सम्बोधित किया– "तात पञ्चशिख! आपने मेरा बहुत उपकार किया कि आपने पहले अपने सङ्गीत के प्रभाव से भगवान् को प्रसन्न किया। आपके प्रसन्न कर देने पर ही हम भगवान् के सम्मुख आने का साहस कर सके। आज से मैं आपको अपने पिता के (समान आदरणीय) स्थान पर रखूँगा। आज से मैं आपको 'गन्धर्वराज' पद पर प्रतिष्ठित करता हूँ और भद्रा सूर्यवर्चसा को आपको सौंपता हूँ जो कि आपको अत्यधिक प्रिय है।

तब देवराज शक्र ने हाथ से तीन वार पृथ्वी को छूकर तीन बार यह भगवत्प्रणामरूप हृदयोद्गार प्रकट किया–

"उस भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है"....।

इतना कहते-कहते देवेन्द्र शक्र को यह निर्दोष, निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया कि "जो कुछ समुदय (उत्पन्न होने वाला) धर्म है, वह सब निरोध (नष्ट होने वाला) धर्म है।

इसी तरह साथ आये अस्सी हजार देवताओं को भी यह धर्म चक्षु उत्पन्न हो गया।

इस प्रकार भगवान् ने देवेन्द्र शक्र द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया, अतः इस सूत्र का नाम 'शक्रप्रश्न' (सक्कपञ्ह) पड़ा ॥

आठवाँ शक्रप्रश्नसूत्र समाप्त॥

९. महासतिपट्ठानसुत्तं

१. उद्देसो

[N.217, B.231, R.290] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासधम्मं नाम कुरूनं निगमो। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चसोसुं। भगवा एतदवोच—

२. "एकायनो अयं, भिक्खवे, मग्गो सत्तानं विसुद्धिया, सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय, दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय, ञायस्स अधिगमाय, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय—यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना।

"कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

२. कायानुपस्सना

(क) आनापानस्सति

[R.291] ३. "कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति? इध भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं

---

९. महासतिपट्ठानसुत्त

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरुप्रदेश के कम्मासधम्म नामक कुरुवासियों के एक निगम (कस्बा) में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को 'भिक्षुओ' कहकर अपने पास बुलाया। भिक्षुओं ने भी "भन्ते! आज्ञा करें"– कहकर प्रत्युत्तर दिया।

१. चार स्मृतिप्रस्थान (संक्षिप्त संकेत)

२. उस समय भगवान् ने भिक्षुओं का यह उपदेश किया– "भिक्षुओ! इन चार (नीचे लिखे) स्मृतिप्रस्थानों की भावना ही प्राणियों की चित्त–विशुद्धि के लिये, शोक आदि से छुटकारा दिलाने के लिये, दुःख–दौर्मनस्य के पूर्णतः अतिक्रमण के लिये, सत्यमार्ग की प्राप्ति के लिये एवं निर्वाण की अधिगति के लिये एकमात्र मार्ग (एक अयन) है।

"कौन से चार? (१) यहाँ (मेरे इस सद्धर्म में दीक्षित) कोई भिक्षु इस शरीर के अङ्गों को ही शरीर की वास्तविकता समझते हुए (=काये कायानुपश्यी), उद्योगशील, अनुभव एवं ज्ञान से युक्त, स्मृतिसम्पन्न रहता हुआ लोभ (शरीर) सम्बन्धी लोग और दुःख–दौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है। (२) वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होते हुए....अभ्यास करता है। (३) चित्त में चित्तानुपश्यी होते हुए....अभ्यास करता है। (४) धर्म में धर्मानुपश्यी होते हुए....अभ्यास करता है।

२. कायानुपश्यना

(क) आनापानस्मृति– ३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर अभ्यास करता है? भिक्षुओ! वह भिक्षु वन में जाकर या वृक्षों के नीचे या किसी शून्य आवास में आसन लगाकर, शरीर

कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो सतो व अस्ससति, सतो व पस्ससति। दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति, दीघं वा पस्ससन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति। रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससामी' ति पजानाति। सब्बकायपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी ति सिक्खति, 'सब्बकायपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति। 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, [B.232] 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे दक्खो भमकारो वा भमकारन्तेवासी वा दीघं वा [N.218] अञ्छन्तो 'दीघं अञ्छामी' ति पजानाति, रस्सं वा अञ्छन्तो 'रस्सं अञ्छामी' ति पजानाति; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति; दीघं वा पस्ससन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससामी' ति पजानाति; 'सब्बकायपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'सब्बकायपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति। [R.292] इति अज्झत्तं वा काये कायानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, अत्थि कायो ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

को सीधा कर एवं स्मृति को सामने रखकर अभ्यास करता है। वह स्मृतियुक्त रहते हुए ही श्वास लेता–छोड़ता है। वह लम्बी श्वास लेता हुआ 'लम्बी श्वास ले रहा हूँ'– यह जानता है। लम्बी श्वास छोड़ते समय 'लम्बी श्वास छोड़ता हूँ'– यह जानता है। छोटी श्वास लेता हुआ.... छोटी श्वास छोड़ते समय 'छोटी श्वास छोड़ रहा हूँ'– यह जानता है। 'समग्र काया (शरीर) का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा'– यह अभ्यास करता है। 'समग्र काया को अनुभव करते हुए श्वास छोडूँगा'– यह अभ्यास करता है। 'काया के संस्कार (गति या क्रिया) को शान्त करता हुआ श्वास लूँगा'– यह अभ्यास करता है। 'काया के संस्कार को शान्त करता हुआ श्वास छोडूँगा'– यह अभ्यास करता है।

"भिक्षुओ! जैसे कुशल भ्रमकार (बढ़ई) या उसका कोई शिष्य लकड़ी को अधिक काटता हुआ जानता है कि वह अधिक काट रहा है, कम काटता हुआ भी जानता है कि वह कम काट रहा है; इसी तरह, भिक्षुओ! लम्बा या छोटा श्वास लेता हुआ योगावचर भिक्षु 'लम्बी श्वास लेता हूँ'– यह जानता है,..... छोटी श्वास लेता हुआ भी जानता है....'समग्र काया को अनुभव करते हुए श्वास छोडूँगा'– यह अभ्यास करता है। इस प्रकार काया के आन्तरिक भाग....बाह्य भाग....आन्तरिक और बाह्य भाग में....अभ्यास करता है। काया के समुदय (उत्पत्ति) धर्म को समझता हुआ अभ्यास करता है, काया के व्यय (नाश) धर्म को....। इसकी 'काया है'– यह स्मृति इसके ज्ञान और स्मृति को पाने के लिये उपस्थित रहती है। यह तृष्णा आदि से निरपेक्ष रहकर लोक में विचरण करता है। यह 'मैं' 'मेरा'– ऐसा भाव कहीं नहीं रखता। इस तरह भी, भिक्षुओ! वह योगावचर भिक्षु काया में कायानुपश्यना करता हुआ अभ्यास करता है।

(ख) इरियापथस्सति

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, गच्छन्तो वा 'गच्छामी' ति पजानाति, ठितो वा 'ठितोम्ही' ति पजानाति, निसिन्नो वा 'निसिन्नोम्ही' ति पजानाति, सयानो वा 'सयानोम्ही' ति पजानाति। यथा यथा वा पनस्स कायो पणिहितो होति, तथा तथा नं पजानाति। इति अज्झत्तं वा काये [B.233] कायानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, अत्थि कायो ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

(ग) सम्पजानकारी

[N.219] ५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे [R.293] सम्पजानकारी होति। इति अज्झत्तं वा .... पे०.... एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

(घ) पटिकूलमनसिकारो

६. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं, उद्धं पादतला अधो केसमत्थका, तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा [B.234] नखा दन्ता मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं

(ख) ईर्यापथस्मृति– ४. ''फिर, भिक्षुओ! वह योगाचार भिक्षु जाते हुए 'जाता हूँ'– यह जानता है, बैठे हुए 'बैठा हूँ'– यह जानता है, खड़े हुए 'खड़ा हूँ'– यह जानता है। इसकी जैसे-जैसे अवस्थिति होती है, वैसे-वैसे इसको ज्ञान होता रहता है। यों, वह काया के आन्तरिक भाग में....बाह्य भाग में....आन्तरिक-बाह्य भाग में....काया के उत्पत्ति-विनाश धर्मों को देखता हुआ....। इस तरह के अभ्यास को 'काया में कायानुपश्यना' कहते हैं।

(ग) सम्प्रज्ञानकारी– ५. ''भिक्षुओ! फिर वह योगसाधक भिक्षु अपनी चलन-क्रिया (=गति) के प्रत्येक भाग को सावधानी से जानता रहता है; वस्तुओं के स्थूल सूक्ष्मतया दर्शन को भी जानता रहता है, अङ्गों के पसारने-सिकोड़ने को भी....। सङ्घाटी (=दोहरी चादर), पात्र, चीवर आदि के लिये की गयी धारणक्रिया को भी....खाना-पीना, चखना-चूसना आदि क्रियाओं को भी....। शौच-मूत्रोत्सर्गादि क्रियाओं को भी....। चलना, ठहरना, बैठना, सोना-जागना, बोलना, चुप होना आदि क्रियाओं को भलीभाँति जानता-समझता रहता है। इस तरह, काया के आन्तरिक भाग की क्रियाओं के विषय में कायानुपश्यी होता हुआ अभ्यास करता है।

(घ) प्रतिकूल मनस्कार– ६. ''फिर, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु इस शरीर को पैर के तलवे से ऊपर तक, केश-मस्तक से नीचे तक त्वक्पर्यन्त नानाविध मलों (अशुचि) से भरा हुआ देखते हुए सोचता रहता है कि इस शरीर में ये ही चीजें तो हैं– केश, रोम, नख, दाँत, चर्म, मांस, स्नायु, हड्डी, हड्डियों में रहने वाली

अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घानिका लसिका मुत्तं' ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उभतोमुखा पुतोळि पूरा नानाविहितस्स धञ्ञस्स, सेय्यथिदं— सालीनं, वीहीनं, मुग्गानं, मासानं, तिलानं, तण्डुलानं, तमेनं चक्खुमा पुरिसो मुञ्चित्वा पच्चवेक्खेय्य—'इमे साली, इमे वीही, इमे मुग्गा, इमे मासा, इमे तिला, इमे तण्डुला' ति; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं, उद्धं पादतला अधो केसमत्थका, तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा .... पे०.... [R.294] मुत्तं' ति। इति अज्झत्तं ....पे०....एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

(ङ) धातुमनसिकारो

७. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं यथाठितं यथापणिहितं धातुसो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गाविं वधित्वा चतुमहापथे बिलसो विभजित्वा निसिन्नो अस्स; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव [N.220] कायं यथाठितं यथापणिहितं धातुसो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति। इति अज्झत्तं वा काये कायानुपस्सी विहरति....पे०.... । [R.295] एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

(च) असुभानुस्सति

८. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय [B.235]

मज्जा, वृक्क, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, फुफ्फुस, बड़ी आँतें, उदरस्थ वस्तुएँ, मल (पुरीष), पित्त, कफ, पूय (मवाद), रक्त, स्वेद (पसीना), मेद, आँसू, वसा (चर्बी), थूक, नाक का मैल, लसीका एवं मूत्र आदि।

"भिक्षुओ! जैसे कोई दोनों ओर मुख वाला थैला (पुतोलि) नाना के प्रकार धान्यों–शालि, व्रीहि, मूंग, उड़द, तिल–तण्डुल आदि से भरा हो। उसे कोई खोलकर देखे कि ये शालि हैं, ये व्रीहि हैं, ये मूंग हैं, ये उड़द हैं, ये तिल हैं, ये तण्डुल हैं; इसी तरह, भिक्षुओ! कोई (साधक) भिक्षु इस शरीर को पैरों से ऊपर तक, केश आदि से नीचे चर्म तक नाना प्रकार के मल (गन्दगी) से भरा हुआ देखे– इस शरीर में ये केश है, ये लोम हैं....यह मूत्र है। यों काया के आन्तरिक भागों के विषयों में चिन्तन करता हुआ काया में कायानुपश्यना का अभ्यास करता है।....।

(ङ) धातुमनस्कार– ७. "और फिर, भिक्षुओ! साधक भिक्षु इस शरीर के विषय में, इसकी स्थिति एवं इसकी रचना की धातुओं (महाभूतों) को लेकर विचार करता है– 'इस शरीर का इतना अंश पृथ्वीधातु से, इतना अब्धातु से, इतना तेजोधातु से, इतना वायुधातु से निर्मित है।

"भिक्षुओ! जैसे चतुर कसाई (=गोघातक) या उस कसाई का साथी किसी पशु को मारकर, उसे बोटी–बोटी काटकर, चौराहे पर ले जाकर बैठा हो; इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इस काया में, इसकी स्थित्यनुसार या रचनानुसार धातुओं के विषय में विचार करे कि इस शरीर में इतना पृथ्वी का अंश है, इतना जलीय अंश है, इतना तैजस अंश है और इतना अंश वायवीय है। यों, इस शरीर के आन्तरिक भागों का प्रत्यवेक्षण करता हुआ कायानुपश्यना का अभ्यास करता है। ...इस तरह भी, भिक्षुओ! यह साधक भिक्षु काया में कायानुपश्यना का अभ्यास करता है।

छड्डितं—एकाहमतं वा द्वीहमतं वा तीहमतं वा उद्धुमातकं विनीलकं विपुब्बकजातं। सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति। इति अज्झत्तं वा....पे०....। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं—काकेहि वा खज्जमानं, कुललेहि वा खज्जमानं, गिज्झेहि वा खज्जमानं, कङ्केहि वा खज्जमानं, सुनखेहि वा खज्जमानं, ब्यग्घेहि वा खज्जमानं, दीपीहि वा खज्जमानं, सिङ्गालेहि वा खज्जमानं, विविधेहि वा पाणकजातेहि खज्जमानं। सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो [R.296] एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति। इति अज्झत्तं वा....पे०....। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं—अट्ठिकसङ्खलिकं समंसलोहितं न्हारुसम्बन्धं....पे०....अट्ठिकसङ्खलिकं निम्मंसलोहितमक्खितं न्हारुसम्बन्धं....पे०.... अट्ठिकसङ्खलिकं अपगतमंसलोहितं न्हारुसम्बन्धं....पे०.... अट्ठिकानि अपगतसम्बन्धानि दिसा विदिसा विक्खित्तानि, अञ्ञेन हत्थट्ठिकं, अञ्ञेन पादट्ठिकं, अञ्ञेन गोप्फकट्ठिकं, अञ्ञेन जङ्घट्ठिकं, अञ्ञेन ऊरुट्ठिकं, अञ्ञेन कटिट्ठिकं, अञ्ञेन फासुकट्ठिकं [R.297] अञ्ञेन पिट्ठिट्ठिकं, अञ्ञेन खन्धट्ठिकं, अञ्ञेन गीवट्ठिकं, अञ्ञेन हनुकट्ठिकं, अञ्ञेन दन्तट्ठिकं, अञ्ञेन सीसकटाहं। सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवमनतीतो' ति। इति अज्झत्तं वा....पे०....विहरति।

[B.236] ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं—

(च) अशुभानुस्मृति– ८. ''फिर भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु श्मशान (बीवथिका) में पड़े किसी मृत शरीर (शव) को देखे, जो कि एक, दो या तीन दिन पूर्व मरा हो, जो फूल गया हो, नीला पड़ गया हो, जिसमें मवाद पड़ गयी हो। उसे देखकर वह भिक्षु अपने शरीर के विषय में ही सोचने–विचारने लगे कि मेरा यह शरीर भी एक दिन इसी स्थिति में, ऐसा ही हो जायगा। इसका भी नाश होना है, फिर उत्पत्ति भी होनी है। तब उसको 'यह शरीर भी ऐसा ही है'– ऐसी स्मृति होती है। यों, विचारता हुआ वह इस शरीर के प्रति.... चिन्तन करता है।

''और, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कौओं से खाये जाते, चील्हों से खाये जाते, गिद्धों से खाये जाते, कुत्तों से नोचे जाते या चीता, व्याघ्र, शृगालों से खाये–जाते, या नानाविध जीवों से खाये जाते किसी शव को श्मशान में पड़ा हुआ देखे और उस की स्थिति को अपने शरीर पर घटाता (उससे समानता लाता) हुआ विचार करे कि एक दिन मेरे इस शरीर की भी यही स्थिति होनी है।....पूर्ववत्....।

''और फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु मांस, रक्त एवं स्नायु से बंधे किसी अस्थिकङ्कालमात्र शव को.....मांसरहित, रक्तरञ्जित, स्नायुबद्ध, ...मांसरक्तरहित स्नायुओं से बद्ध....स्नायु–बन्धन से रहित अस्थियों को इधर–उधर बिखरा हुआ देखे कि कहीं हाथ की अस्थि है....कहीं पैर की अस्थि है....कहीं घुटने की....कहीं जाँघ की....कहीं पीठ की....कहीं रीढ़ की...कहीं गले की....कहीं कन्धों की...कहीं ठोडी की...कहीं दाँतों की....कहीं शिर की अस्थि है। वह इस बिखरे हुए अस्थिपञ्जर से अपने शरीर की तुलना करे कि मेरा यह शरीर भी एक दिन इसी तरह हो जायगा। यों भी, भिक्षु काया में कायानुपश्यना की साधना करता है।

अट्ठिकानि सेतानि सङ्खवण्णपटिभागानि ....पे०....अट्ठिकानि पुञ्जकितानि तेरो-[N.221] वस्सिकानि ....पे०....अट्ठिकानि पूतीनि चुण्णकजातानि। सो इममेव कायं उपसंहरति— 'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति। इति अज्झत्तं वा काये [R.298] कायानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा काये कायानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा कायस्मिं विहरति, 'अत्थि कायो' ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय। अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति।

कायानुपस्सना निट्ठिता॥

३. वेदनानुपस्सना

९. "कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुखं वा वेदनं वेदयमानो सुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, दुक्खं वा वेदनं वेदयमानो दुक्खं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, अदुक्खमसुखं वा वेदनं वेदयमानो अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, सामिसं वा सुखं वेदनं वेदयमानो सामिसं सुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, निरामिसं वा सुखं वेदनं वेदयमानो निरामिसं सुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति; सामिसं वा दुक्खं वेदनं वेदयमानो सामिसं दुक्खं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, निरामिसं वा दुक्खं वेदनं वेदयमानो निरामिसं दुक्खं वेदनं वेदयामी ति पजानाति; सामिसं वा अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयमानो सामिसं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, निरामिसं वा अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयमानो निरामिसं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयामी ति पजानाति। इति अज्झत्तं [B.237] वा वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा

"और, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु श्मशान में शङ्ख के समान श्वेतवर्ण अस्थिकङ्काल को फेंका हुआ देखे, वर्षों पुराने अस्थिपञ्जर को देखे। यह देखकर उसकी स्व शरीर से तुलना करे कि मेरे शरीर की भी एक दिन यही गति होने वाली है।....भिक्षुओ! यह भी कायानुपश्यना–साधना का एक प्रकार है।।

कायानुपश्यना समाप्त।।

३. वेदनानुपश्यना

९. "और भिक्षुओ! कोई (साधक) भिक्षु वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर कैसे साधना करता है? भिक्षुओ! वहाँ वह (साधक) भिक्षु सुखमय (सुखा) वेदना का अनुभव करता हुआ 'सुखमय वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'– यह जानता है। दुःखमय (दुःखा) वेदना का अनुभव करते हुए....। अदुःख–असुखमय (अदुक्खा असुखा) वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगमय (सामिष) सुखा वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगरहित (निरामिष) सुखा वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगमय दुःखा वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगरहित दुःखा वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगरहित अदुःख–असुखमय वेदना का अनुभव करते हुए....। भोगरहित अदुःख–असुखमय वेदना का अनुभव करते हुए 'भोगरहित अदुःख–असुखमय वेदना का अनुभव करता हूँ'– ऐसा जानता है। इस तरह वह साधक आन्तरिक वेदनाओं में....बाह्य वेदनाओं में....आन्तरिक–बाह्य वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर साधना करता है। उनके उत्पत्ति और नाश को जान कर साधना करता है। इस तरह इसकी 'यह वेदना है'– ऐसी स्मृति

[R.299] वा वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा वेदनासु विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा वेदनासु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा वेदनासु विहरति, अत्थि [N.222] वेदना ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति।

वेदनानुपस्सना निट्ठिता॥

४. चित्तानुपस्सना

१०. "कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानाति, सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानाति, वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानाति, समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानाति, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानाति, सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानाति, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानाति, महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानाति, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानाति, सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानाति, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानाति, समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानाति, असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानाति, विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानाति, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानति। इति अज्झत्तं वा चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा चित्तस्मिं विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा चित्तस्मिं विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा चित्तस्मिं विहरति, [R.300] अत्थि चित्तं ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति।

चित्तानुपस्सना निट्ठिता॥

निरन्तर उपस्थित रहती है, जितनी कि ज्ञान के लिये आवश्यक होती हो। इस तरह वह भिक्षु साधना करता हुआ लोक में जो कुछ भी दिखायी देता है, उसके प्रति उपेक्षाभाव से विचरण करता हुआ (अनिस्सितो) वेदनानुपश्यना का साधना करता है।

वेदनानुपश्यना समाप्त।।

४. चित्तानुपश्यना

१०. "भिक्षुओ! चित्त में चित्तानुपश्यना की साधना कैसे करता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु सराग चित्त को 'यह सरागचित्त है'– ऐसा जानता है; वीतराग चित्त को 'यह वीतराग चित्त है'– ऐसा जानता है। सद्वेष चित्त को....वीतद्वेषचित्त को....समोह चित्त को....वीतमोह चित्त को....संक्षिप्त चित्त को... विक्षिप्त चित्त को....महद्गत (महापरिमाण) चित्त को....अमहद्गत (अल्पपरिमाण) चित्त को....सउत्तर चित्त को....अनुत्तर (उत्तम) चित्त को.... समाहित (एकाग्र) चित्त को....असमाहित चित्त को....विमुक्तचित्त को....अविमुक्त चित्त को 'यह अविमुक्त चित्त है'– ऐसा जानता है। यों, आन्तरिक चित्त को....बाह्य चित्त को....आन्तरिक बाह्य चित्त को चित्तानुपश्यना से भावित करता है। उसके उत्पाद को...विनाश को....उत्पाद–

५. धम्मानुपस्सना

(क) नीवरणपब्बं

११. "कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति? इध, [B.238] भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—पञ्चसु नीवरणेसु। कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति पञ्चसु नीवरणेसु?

"इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तं वा अज्झत्तं कामच्छन्दं अत्थि मे अज्झत्तं [N.223] कामच्छन्दो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं कामच्छन्दं नत्थि मे अज्झत्तं कामच्छन्दो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स कामच्छन्दस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स कामच्छन्दस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स कामच्छन्दस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं ब्यापादं अत्थि मे अज्झत्तं ब्यापादो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं ब्यापादं नत्थि मे अज्झत्तं ब्यापादो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स ब्यापादस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स ब्यापादस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स ब्यापादस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं थिनमिद्धं अत्थि मे अज्झत्तं थिनमिद्धं ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स थिनमिद्धस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स थिनमिद्धस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स थिनमिद्धस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

विनाश को चित्त में समझता है। यों, उस साधक भिक्षु को 'चित्त है'– यह स्मृति बनी रहती है, जितनी सी कि स्मृति ज्ञान के लिये आवश्यक हो। यों वह भिक्षु लोक में चित्त–धर्मों के प्रति उपेक्षापूर्वक (वीतमोह) व्यवहार करता हुआ चित्त में चित्तानुपश्यना की साधना (अभ्यास) करता है।

चित्तानुपश्यना समाप्त॥

५. धम्मानुपश्यना

(क) पाँच नीवरणों में– ११. "और, भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु साधक धर्मों में धर्मानुपश्यना की साधना करता है? वहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच नीवरणों (विघ्न, बाधा) को आधार मानकर धर्मों में धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता है। भिक्षुओ! साधक भिक्षु इन पाँच नीवरण–धर्मों में धर्मानुपश्यना कैसे करता है?

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपने में अन्तर्विद्यमान कामच्छन्द (कामुकता) जानकर 'मुझमें कामच्छन्द है'– यह जान लेता है या अविद्यमान कामच्छन्द के विषय में जान लेता है कि 'मुझमें कामच्छन्द नहीं है'। इस तरह अनुत्पन्न कामच्छन्द के उत्पाद तथा उत्पन्न कामच्छन्द के प्रहाण को जान लेता है। और प्रहीण कामच्छन्द का पुनः उत्पाद न हो– यह भी जान लेता है। (१)

"इसी तरह अपने में अन्तीर्वद्यमान व्यापाद (परहिंसाभाव) को जानकर 'मुझमें व्यापाद है'– ऐसा अनुभव करता है तथा अविद्यमान व्यापाद के विषय में भी 'मुझमें व्यापाद नहीं है'– यह भी अनुभव करता है। यों, वह अनुत्पन्न व्यापाद की उत्पत्ति, उत्पन्न व्यापाद की प्रहीण और प्रहीण व्यापाद का भविष्य में अनुत्पाद को भी जान लेता है। (२)

"वह भिक्षु अपने में अन्तर्विद्यमान स्त्यान (आलस्य) एवं मृद्ध (जड़ता) को 'मुझमें स्त्यानमृद्ध है'– ऐसा जानता है, इसी तरह अविद्यमान स्त्यान–मृद्ध कोभी जानता है; इसी प्रकार अनुत्पन्न स्त्यानमृद्ध

[R.301] "सन्तं वा अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं अत्थि मे अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं नत्थि मे अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स उद्धच्चकुक्कच्चस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स उद्धच्चकुक्कुच्चस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स उद्धच्चकुक्कुच्चस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं विचिकिच्छं अत्थि मे अज्झत्तं विचिकिच्छा ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं विचिकिच्छं नत्थि मे अज्झत्तं विचिकिच्छा ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नाय विचिकिच्छाय उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नाय विचिकिच्छाय पहानं होति तं [B.239] च पजानाति, यथा च पहीनाय विचिकिच्छाय आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

"इति अज्झत्तं वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु [N.224] विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, अत्थि धम्मा ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—पञ्चसु नीवरणेसु।

(ख) खन्धपब्बं

१२. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु। कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु? इध, भिक्खवे, भिक्खु—'इति रूपं इति रूपस्स समुदयो इति रूपस्स अत्थङ्गमो, इति वेदना इति वेदनाय समुदयो इति वेदनाय अत्थङ्गमो, इति सञ्ञा इति सञ्ञाय

का उत्पाद जानता है और उत्पन्न स्त्यानमृद्ध के विनाश को भी जानता है तथा विनष्ट (प्रहीण) स्त्यानमृद्ध के पुनरनुत्पाद को भी जानता है। (३)

"....अन्तर्विद्यमान, बाह्य औद्धत्य–कौकृत्य के विषय में 'मुझ में औद्धत्य–कौकृत्य है'— ऐसा जानता है।....(४)

"....अन्तर्विद्यमान विचिकित्सा (सन्देह) को 'मुझ में विचिकित्सा है'—....प्रहीण विचिकित्सा का पुनः अनुत्पाद को भी जानता है। (५)

"यों, वह आन्तरिक धर्मों के विषय में धर्मानुपश्यना करता हुआ साधना करता है, बाह्य धर्मों के विषय में....आन्तरिक–बाह्य धर्मों के विषय में....साधना करता है। उन धर्मों के उत्पाद, विनाश एवं उत्पाद–विनाशविषयक धर्मानुपश्यना करता है। इसकी 'धर्म हैं'— यह स्मृति निरन्तर इतनी उपस्थित रहती है जितनी कि स्मृति ज्ञान के लिये आवश्यक हो। यों, वह साधक भिक्षु साधना करता हुआ लोक में जो कुछ भी दृश्यमान है उनके प्रति उपेक्षाभावपूर्वक विचरण करता हुआ इन पाँच नीवरण धर्मों में धर्मानुपश्यना करता है।

(ख) पाँच उपादान स्कन्धों में— १२. "भिक्षुओ! फिर वह साधक भिक्षु पाँच उपादानस्कन्धों में धर्मानुपश्यना करता है। कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु इन पाँच उपादान–स्कन्ध धर्मों में धर्मानुपश्यना करता है? वह भिक्षु 'यह रूप है', 'यह रूप का उत्पाद है', 'यह रूप का विनाश है'— ऐसी; 'यह वेदना है', 'यह वेदना की

समुदयो इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो, इति सङ्खारा इति सङ्खारानं समुदयो इति सङ्खारानं [R.302] अत्थङ्गमो, इति विञ्ञाणं इति विञ्ञाणस्स समुदयो इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति—इति अज्झत्तं वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, अत्थि धम्मा ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु।

(ग) आयतनपब्बं

१३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—छसु [B.240] अज्झत्तिकबाहिरेसु आयतनेसु। कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति छसु अज्झत्तिकबाहिरेसु आयतनेसु?

''इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुं च पजानाति, रूपे च पजानाति, यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

''सोतं च पजानाति, सद्दे च पजानाति. यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च [N.225] उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

उत्पत्ति है', 'यह वेदना का विनाश है'— ऐसी; 'यह संज्ञा है', 'यह संज्ञा का उत्पाद है', यह संज्ञा का विनाश है'— ऐसी; 'यह विज्ञान है', 'यह संस्कार है', 'यह संस्कार का उत्पाद है', 'यह संस्कार का विनाश है'— ऐसी; 'यह विज्ञान का उत्पाद है', एवं 'यह विज्ञान का विनाश है' यों आन्तरिक धर्मों के विषय में धर्मानुपश्यना करता है, बाह्य धर्मों के विषय में एवं आन्तरिक बाह्य धर्मों के विषयों में धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता है। उसकी 'ये धर्म हैं'— ऐसी स्मृति सदा बनी रहती है। जब तक कि वह ज्ञान प्राप्त न कर ले तब तक वह इस स्मृति का आश्रय लेकर सभी धर्मों के प्रति उपेक्षा–व्यवहार करता हुआ किसी वस्तु का परिग्रह (उपादान) नहीं करता। यों, भिक्षुओ! वह भिक्षु पाँच उपादान–स्कन्धों में धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता है।

(ग) छह आन्तरिक एवं बाह्य आयतनों में—१३. ''फिर, भिक्षुओ! वह भिक्षु छह आन्तरिक आयतनों (इन्द्रियों) के विषय में धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता हुआ साधना करता है। वह कैसे भिक्षुओ!....करता है?

''यहाँ भिक्षुओ! वह भिक्षु चक्षुरिन्द्रिय को अनुभव करता है, रूप को....और उन दोनों के आश्रय से उत्पन्न हुए संयोजनों (बन्धन) का भी अनुभव करता है। इसी तरह का वह अनुत्पन्न संयोजन का उत्पाद....उत्पन्न का प्रहाण....एवं प्रहीण संयोजन का पुनः (भविष्य में) अनुत्पाद भी जानता (अनुभव) करता है।

'' ....श्रोत्रेन्द्रिय को....शब्द को....उन दोनों के आश्रय से उत्पन्न संयोजन....अनुत्पन्न संयोजन का उत्पाद....उत्पन्न का प्रहाण....तथा प्रहीण संयोजन का पुनः अनुत्पाद....।

''घानं च पजानाति, गन्धे च पजानाति, यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

''जिव्हं च पजानाति, रसे च पजानाति, यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

''कायं च पजानाति, फोट्ठब्बे च पजानाति, यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

[B.241, R.303] ''मनं च पजानाति, धम्मे च पजानाति, यं च तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति संयोजनं तं च पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स संयोजनस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स संयोजनस्स पहानं होति तं च पजानाति, यथा च पहीनस्स संयोजनस्स आयतिं अनुप्पादो होति तं च पजानाति।

''इति अज्झत्तं वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति; अत्थि धम्मा ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मे धम्मानुपस्सी विहरति—छसु अज्झत्तिकबाहिरेसु आयतनेसु।

(घ) बोज्झङ्गपब्बं

[N.226] १४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—सत्तसु

''घ्राणेन्द्रिय को....गन्ध को....उन दोनों के आश्रय से उत्पन्न संयोजन....प्रहीण संयोजन का पुनः अनुत्पाद....।

''जिह्वेन्द्रिय को...रस को....तथा प्रहीण संयोजन का पुनः अनुत्पाद....।

''कायेन्द्रिय को....स्प्रष्टव्य को....उन दोनों के आश्रय से उत्पन्न....तथा प्रहीण संयोजन के पुनः अनुत्पाद.....।

''मन इन्द्रिय को....मनोधर्मों को....उन दोनों के आश्रय से उत्पन्न....तथा प्रहीण संयोजन के पुनः अनुत्पाद....।

''इस तरह वह भिक्षु आन्तरिक धर्मों के....बाह्य धर्मों के....अन्तर्बाह्य धर्मों के विषय में धर्मानुपश्यना करता है। उनके उत्पाद–विनाश के विषय में धर्मानुपश्यना करता है। यों उसकी 'धर्म हैं'– ऐसी स्मृति....पूर्ववत्....आन्तरिक बाह्य आयतनों में धर्मानुपश्यना करता है।

बोज्झङ्गेसु। कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—सत्तसु बोज्झङ्गेसु? इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तं वा अज्झत्तं सतिसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं सतिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं सतिसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं सतिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स सतिसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स सतिसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स धम्मविचयसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च [B.242] पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स धम्मविचयसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं विरियसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं विरियसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं विरियसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं विरियसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स विरियसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स विरियसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं पीतिसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं पीतिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं पीतिसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं पीतिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स पीतिसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स पीतिसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो [R.304]

(घ) सात बोध्यङ्गों में— १४. "फिर, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु सात बोध्यङ्ग धर्मों की धर्मानुपश्यना साधना करता है। कैसे भिक्षुओ! वह सात बोध्यङ्ग धर्मों की धर्मानुपश्यना करता है? भिक्षुओ! यहाँ पर भिक्षु सर्वप्रथम अपने में विद्यमान स्मृतिसम्बोध्यङ्ग के विषय में 'मुझमें स्मृति–सम्बोध्यङ्ग है'— ऐसा जानता है; अविद्यमान स्मृतिसम्बोध्यङ्ग के विषय में 'वह नहीं है'— ऐसा जानता है; फिर वह जिस तरह अनुत्पन्न स्मृति सम्बोध्यङ्ग की उत्पत्ति होती है— उसे जानता है; अनुत्पन्न स्मृति–सम्बोध्यङ्ग अनुत्पत्ति को जानता है, फिर जिस तरह अनुत्पन्न स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की उत्पत्ति होती है, उसे जानता है; और अन्त में वह जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति–सम्बोध्यङ्ग साधना से पूर्ण होता चलता है, उसे भी जानता है। (१)

"....अपने में विद्यमान धर्मविषय–सम्बोध्यङ्ग के विषय को 'मुझमें धर्मविचय (धर्मान्वेषण)–सम्बोध्यङ्ग विद्यमान है'— ऐसा जानता है; अविद्यमान आन्तरिक धर्मविचय सम्बोध्यङ्ग को 'विद्यमान नहीं है'— ऐसा जानता है; अनुत्पन्न धर्मविचय.....और जैसे उत्पन्न धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग भावना से परिपूर्ण होता है— उसे भी जानता है। (२)

"....अपने में विद्यमान वीर्यसम्बोध्यङ्ग के विषय में....पूर्ववत्....परिपूर्ण होती है— उसे भी जानता है। (३)

"...अपने में विद्यमान प्रीतिसम्बोध्यङ्ग के विषय में....पूर्ववत्....परिपूर्ण होती है— उसे भी जानता है। (४)

"....अपने में विद्यमान प्रश्रब्धि (शान्ति) सम्बोध्यङ्ग के विषय में....पूर्ववत्....परिपूर्ण होता है— उसे भी जानता है। (५)

ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

[N.227] "सन्तं वा अज्झत्तं समाधिसम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं समाधिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं समाधिसम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं समाधिसम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स समाधिसम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स समाधिसम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"सन्तं वा अज्झत्तं उपेक्खासम्बोज्झङ्गं अत्थि मे अज्झत्तं उपेक्खासम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, असन्तं वा अज्झत्तं उपेक्खासम्बोज्झङ्गं नत्थि मे अज्झत्तं उपेक्खासम्बोज्झङ्गो ति पजानाति, यथा च अनुप्पन्नस्स उपेक्खासम्बोज्झङ्गस्स उप्पादो होति तं च पजानाति, यथा च उप्पन्नस्स उपेक्खासम्बोज्झङ्गस्स भावनाय पारिपूरी होति तं च पजानाति।

"इति अज्झत्तं वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी [B.243] विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, अत्थि धम्मा ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—सत्तसु बोज्झङ्गेसु।

(ङ) चतुसच्चपब्बं

१५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—चतूसु अरियसच्चेसु। कथं च पन, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति—चतूसु अरियसच्चेसु? इध, भिक्खवे, भिक्खु इदं दुक्खं ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खसमुदयो ति

"....अपने में विद्यमान समाधिसम्बोध्यङ्ग के विषय में....पूर्ववत्....परिपूर्ण होता है— उसे भी जानता है। (६)

"....अपने में विद्यमान उपेक्षासम्बोध्यङ्ग के विषय में....पूर्ववत्....परिपूर्ण होता है— उसे भी जानता है। (७)

"यों, वह आन्तरिक धर्मों में, बाह्य धर्मों में, आन्तरिक–बाह्य धर्मों में....धर्मों का उत्पाद....धर्मों का नाश....धर्मों के उत्पादनाश की अनुपश्यना करता है। उस समय उसकी 'ये धर्म हैं'— ऐसी स्मृति उपस्थित रहती है....लोक में किसी भी वस्तु का उपादान न करते हुए उपेक्षापूर्वक सर्वत्र विचरण करता है। यों भिक्षुओ! सात बोध्यङ्गों की अनुपश्यना करता हुआ धर्मों में धर्मानुपश्यना का ही अभ्यास करता है।

(ङ) चार आर्यसत्य– १५. "और फिर, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु चार आर्यसत्य दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग धर्मों के विषय में अनुपश्यना (चिन्तन) करता है। कैसे भिक्षुओ! वह इन चार आर्य सत्यों की अनुपश्यना करता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु चिन्तन (अनुपश्यना) करते–करते अन्त में वह जान लेता है कि— 'यह समस्त जगत् दुःख है'। यहाँ दुःख की उत्पति जिस तरह होती है— उसे भी यथार्थ (यथाभूत) रूप से जान लेता है। इसी तरह इस दुःख का निरोध भी हो सकता है— यह

यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधो ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति।

पठमभाणवारो निट्ठितो॥

(१) दुक्खसच्चं

१६. ''कतमं च, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं? जाति पि दुक्खा, जरा पि [R.305] दुक्खा, मरणं पि दुक्खं, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पि दुक्खा, अप्पियेहि सम्पयोगो पि दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो पि दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा।

१७. ''कतमा च, भिक्खवे, जाति? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्त-[N.228] निकाये जाति सञ्जाति ओक्कन्ति अभिनिब्बत्ति खन्धानं पातुभावो आयतनानं पटिलाभो; अयं वुच्चति, भिक्खवे, जाति।

१८. ''कतमा च, भिक्खवे, जरा? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्त-[B.244] निकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको; अयं वुच्चति, भिक्खवे, जरा।

१९. ''कतमं च, भिक्खवे, मरणं? यं तेसं तेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अन्तरधानं मच्चु मरणं कालकिरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रियस्सुपच्छेदो; इदं वुच्चति, भिक्खवे, मरणं।

भी यथार्थतः जान लेता है। और अन्त में चिन्तन करते-करते इस दुःखनिरोध का यह उपाय (मार्ग) है- यह भी वह भलीभाँति जान लेता है।

प्रथम भाणवार समाप्त॥

(१) दुःखसत्य-१६. ''भिक्षुओ! यह दुःख आर्यसत्य क्या है? (संसार में) जन्म (जाति) भी दुःख है, जरा (बुढ़ापा) भी दुःख है, मरण (मृत्यु=देहपात) भी दुःख है, शोक, परिदेव (रोना, कलपना), दुःख-दौर्मनस्य-उपायास (दुःख के कारण होने वाली हैरानी या परेशानी) भी दुःख है, अप्रिय विषयों से सम्पर्क, एवं प्रिय विषयों से वियोग, जिसको न चाहा जाय (अनभीष्ट) ऐसी वस्तु का मिलना भी दुःख है, और जिसको चाहा जाय उसका न मिलना तो दुःख है ही। यों संक्षेप में ये सभी पाँच उपादान-स्कन्ध 'दुःख' हैं।

१७. ''भिक्षुओ! इनमें 'जाति' किसे कहते हैं? उन-उन प्राणियों का उन-उन योनियों (=सत्त्वनिकायों) में, जो जन्म, सञाति, अवक्रमण (अवक्रान्ति) अभिनिर्वृत्ति (भौतिक-अभौतिक स्कन्धों का प्रादुर्भाव), आयतनों (इन्द्रिय-विषयों) का प्रतिलाभ है, भिक्षुओ! यही 'जन्म' कहा जाता है।

१८. ''भिक्षुओ! जरा (बुढ़ापा) क्या है? उन उन योनियों में (अधिक समय तक रहते-रहते) बूढ़े होना। उसे जीर्णता (पुरानापन) भी कह सकते हैं। खाण्डित्य (दाँतों का टूटना), पालित्य (शिर के बाल सफेद हो जाना), त्वचाओं में झुर्रियाँ पड़ जाना (चमड़ी का सिकुड़ना), आयु की हानि (क्षीणता), इन्द्रियों का परिपाक (प्रौढ़) हो जाना- भिक्षुओ! यह सब 'जरा' में गिना जाता है।

१९. ''भिक्षुओ! मरण किसे कहते हैं? उन-उन प्राणियों का उन-उन योनियों से च्युत होना (च्यवनता, पात), भेद (अलग होना), अन्तर्धान होना, मृत्यु, मरण, काल-क्रिया (देह छूटने का समय आ जाना), स्कन्धों का पृथक् हो जाना (भेद), शरीर का छूटना (निक्षेप)-भिक्षुओ! इसी को कहते हैं 'मरण'।

२०. "कतमो च, भिक्खवे, सोको? यो खो, भिक्खवे, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन [R.306] समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स सोको सोचना सोचितत्तं अन्तोसोको अन्तोपरिसोको; अयं वुच्चति, भिक्खवे, सोको।

२१. "कतमो च, भिक्खवे, परिदेवो? यो खो, भिक्खवे, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स आदेवो परिदेवो आदेवना परिदेवना आदेवितत्तं परिदेवितत्तं; अयं वुच्चति, भिक्खवे परिदेवो।

२२. "कतमं च, भिक्खवे, दुक्खं? यं खो, भिक्खवे, कायिकं दुक्खं कायिकं असातं कायसम्फस्सजं दुक्खं असातं वेदयितं; इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खं।

२३. "कतमं च, भिक्खवे, दोमनस्सं? यं खो, भिक्खवे, चेतसिकं दुक्खं चेतसिकं असातं मनोसम्फस्सजं दुक्खं असातं वेदयितं; इदं वुच्चति, भिक्खवे, दोमनस्सं।

२४. "कतमो च, भिक्खवे, उपायासो? यो खो, भिक्खवे, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स आयासो उपायासो आयासितत्तं उपायासितत्तं; अयं वुच्चति, भिक्खवे, उपायासो।

[B.245] २५. "कतमो च, भिक्खवे, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो? इध यस्स ते होन्ति [N.229] अनिट्ठा अकन्ता अमनापा रूपा सद्दा गन्धा रसा फोट्ठब्बा धम्मा, ये वा पनस्स ते होन्ति अनत्थकामा अहितकामा अफासुककामा अयोगक्खेमकामा, या तेहि सद्धिं सङ्गति समागमो समोधानं मिस्सीभावो; अयं वुच्चति, भिक्खवे, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो।

---

२०. "भिक्षुओ! 'शोक' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! उन–उन व्यसनों से युक्त, उन–उन दुःखों से पीड़ित पुद्गल का जो शोक, शोचन, शोचितत्व, आन्तरिक (मानसिक) शोक, परिशोक ही, भिक्षुओ! 'शोक' कहलाता है।

२१. "भिक्षुओ! 'परिदेव' किसे कहते हैं? उन–उन व्यसनों से युक्त, उन–उन दुःखधर्मों से युक्त, पुद्गल का जो आदेवन–परिदेवन (रोना–कलपना), आदेव–परिदेव (विलाप) या आदेवितत्व–परिदेवितत्व है, भिक्षुओ! 'वह परिदेव' कहलाता है।

२२. "भिक्षुओ! 'दुःख' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! यह जो शारीरिक दुःख है, शारीरिक प्रतिकूल (=असात) अनुभव है और इसी तरह कायसंस्पर्शजन्य प्रतिकूल दुःखानुभव है यही, भिक्षुओ! 'दुःख' कहलता है।

२३. "और भिक्षुओ! यहाँ 'दौर्मनस्य' क्या है? भिक्षुओ! यह जो मानसिक दुःख है, मानसिक प्रतिकूलता है, या मनःसंस्पर्शजन्य प्रतिकूल अनुभव है, यही भिक्षुओ! 'दौर्मनस्य' है।

२४. "और, भिक्षुओ! 'उपायास' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! यह जो उन–उन व्यसनों से युक्त, उन–उन दुःख–धर्मों से संस्पृष्ट पुद्गल का आयास (श्रमजन्य थकावट), उपायास (श्रम से होने वाली हैरानी–परेशानी) या आयासितत्व, उपायासितत्व है, यही भिक्षुओ! 'उपायास' कहलाता है।

२५. "और, भिक्षुओ! 'अप्रिय वस्तुओं (धर्मों) से संयोग (सम्पर्क) हो जाना भी दुख' क्या कहलाता है? किसी पुद्गल के अनभीष्ट, अनभिलषित, अप्रिय (अमनाप) जो रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्प्रष्टव्य वस्तुएँ हैं या जो उसके अनर्थ व अहित चाहने वाले, उसके लिये कठिनाइयाँ पैदा करने वाले एवं उसके योग–क्षेम में बाधा डालने वाले (शत्रु) हों उनके साथ मिलना–जुड़ना, सङ्गति, समागम समवधान या मिश्रण है, भिक्षुओ! यही कहलाता है– 'अप्रिय वस्तुओं से सम्पर्क होना भी दुःख है'।

२६. ''कतमो च, भिक्खवे, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो? इध यस्स ते होन्ति इट्ठा कन्ता मनापा रूपा सद्दा गन्धा रसा फोट्ठब्बा धम्मा, ये वा पनस्स ते होन्ति अत्थकामा हितकामा फासुककामा योगक्खेमकामा—माता वा पिता वा भाता वा भगिनी वा मित्ता वा अमच्चा वा ञातिसालोहिता वा, या तेहि सद्धिं असङ्गति असमागमो असमोधानं अमिस्सीभावो; अयं वुच्चति, भिक्खवे, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो।

२७.''कतमं च, भिक्खवे, यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं? जातिधम्मानं, [R.307] भिक्खवे, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत मयं न जातिधम्मा अस्साम न च वत नो जाति आगच्छेय्या' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। जराधम्मानं, भिक्खवे, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत मयं न जराधम्मा अस्साम, न च वत नो जरा आगच्छेय्या' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। ब्याधिधम्मानं, भिक्खवे, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत मयं न ब्याधिधम्मा अस्साम, न च वत नो ब्याधि आगच्छेय्या' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। मरणधम्मानं, भिक्खवे, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत मयं न मरणधम्मा अस्साम, न च वत नो मरणं आगच्छेय्या' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मानं, भिक्खवे, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत मयं न सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मा अस्साम, न च वत नो सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मा आगच्छेय्युं' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं।

---

२६. ''और, भिक्षुओ! 'प्रिय (वस्तुओं) से सम्पर्क टूटना दुःख' क्या है? किसी पुद्गल के अभीष्ट....अभिलषित, प्रिय, रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्प्रष्टव्य वस्तुओं से, उसका शुभ चाहने वालों से, हित चाहने वालों से, उसके लिये सुविधाएँ पैदा करने वालों से एवं उसके योगक्षेम में बाधा न डालने वालों (मित्रों) से— जैसे— माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, सहायक (अमात्य) एक ही रक्त के ज्ञाति (परिजन)— इनसे मिलना-जुड़ना, सङ्गति, समागम, समवधान या मिश्रण टूट जाय, भिक्षुओ! यह 'प्रिय वस्तुओं से सम्पर्क टूटना दुःख' है।

२७. ''भिक्षुओ! यह कौन सा दुःख है, जो 'अभीष्ट वस्तु का मिलना भी दुःख' कहलाता है? यहाँ जन्मने वाले प्रत्येक पुद्गल की यही इच्छा होती है— 'कितना अच्छा होता कि हम जन्म स्वभाव वाले न होते अर्थात् हमारा यहाँ जन्म न होता'। परन्तु यह इच्छा करने मात्र से तो पूर्ण होने वाली बात है नहीं। इसी तरह यहाँ जन्म लेकर कुछ समय जरा-जीर्ण (बुढ़ापा पाये) पुद्गलों की यह इच्छा होती है— 'क्या ही अच्छा होता कि हम कभी जराजीर्ण (बुड्ढे) न होते'। किन्तु कोई बात इच्छा करने मात्र से ही पूर्ण नहीं हुआ करती। भिक्षुओ! व्याधिग्रस्त पुद्गलों के मन में यह इच्छा होती रहती है कि क्या ही अच्छा होता कि हम कभी रोगग्रस्त न होते। परन्तु केवल इच्छा करने से ही तो कोई बात पूरी हुआ नहीं करती। भिक्षुओ! यहाँ दूसरों का मरण देखकर अपने लिये घबराने वाले लोगों की यह इच्छा देखी जाती है कि क्या ही अच्छा होता कि हमारा कभी मरण (=मृत्यु, देहपात) न होता। परन्तु केवल इच्छा....। भिक्षुओ! शौक स्वभाववाले....। भिक्षुओ! परिदेवस्वभाव वाले....। भिक्षुओ! दुःखस्वभाव वाले....। भिक्षुओ! दौर्मनस्यस्वभाव वाले...। ....उपायासस्वभाव वाले....पूर्ण हुआ नहीं करती।

[B.246] २८. ''कतमे च, भिक्खवे, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा, सेय्यथिदं– रूपुपादानक्खन्धो वेदनुपादानक्खन्धो सञ्ञुपादानक्खन्धो सङ्खारुपादानक्खन्धो विञ्ञाणुपादा- [N.230] नक्खन्धो? इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं।

(२) समुदयसच्चं

[R.308] २९. '' कतमं च, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं? यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथिदं—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

''सा खो पनेसा, भिक्खवे, तण्हा कत्थ उप्पज्जमाना उप्पज्जति, कत्थ निविसमाना निविसति? यं लोके पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

''किञ्च लोके पियरूपं सातरूपं? चक्खुं लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति। सोतं लोके ....पे०.... घानं लोके ....जिव्हा लोके ....कायो लोके ....मनो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

''रूपा लोके.... सद्दा लोके....गन्धा लोके.... रसा लोके ....फोट्ठब्बा लोके....धम्मा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

''चक्खुविञ्ञाणं लोके ....सोतविञ्ञाणं लोके ....घानविञ्ञाणं लोके .... जिव्हाविञ्ञाणं लोके ....कायविञ्ञाणं लोके ....मनोविञ्ञाणं लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

---

२८. भिक्षुओ! यह दुःख क्या है, जिसे हम संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध कहते हैं? भिक्षुओ! संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध ये हैं– १. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! ये संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध ही दुःख कहलाते हैं। भिक्षुओ! ऊपर कहे दुःख ही 'दुःख आर्यसत्य' कहलाते हैं।

(२) दुःखसमुदय आर्यसत्य– २९. ''भिक्षुओ! यह 'दुःख–समुदय आर्यसत्य' क्या है? वह जो रागयुक्त नन्दी (मनोविनोद), उन–उन वस्तुओं में अभिनन्दन करने वाली, पुनर्जन्म लेने की इच्छा जो कि तृष्णा कहलाती है। यह तृष्णा त्रिविध होती है; जैसे– १. कामतृष्णा (कामभोगों की इच्छा), २. भवतृष्णा (जन्म लेने की इच्छा), एवं ३. विभवतृष्णा (ऐश्वर्य–प्राप्ति की इच्छा)।

''भिक्षुओ! यह तृष्णा उत्पन्न होना चाहती हुई कहाँ उत्पन्न होती है, स्थित होना चाहती हुई कहाँ स्थित होती हैं? भिक्षुओ! लोक में मनुष्य का जो प्रिय एवं अनुकूल (सात) विषय है, वहीं यह तृष्णा उत्पन्न होना चाहने पर उत्पन्न होती है, स्थित होना चाहते हुए स्थित (अभिनिविष्ट) होती हैं।

''और लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय क्या है? चक्षु लोक में प्रिय एवं अनुकूल है, यहाँ यह तृष्णा उत्पन्न होना चाहती हुई उत्पन्न होती है....। श्रोत्र लोक में....घ्राण....जिह्वा....काय....मन लोक में प्रिय एवं अनुकूल। यहाँ यह तृष्णा....होती है।

''लोक में चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप प्रिय और अनुकूल है, शब्द.... गन्ध.... रस.... स्प्रष्टव्य... धर्म....होती है।

"चक्खुसम्फस्सो लोके ....सोतम्फस्सो लोके ....घानसम्फस्सो लोके [R.309] ....जिव्हासम्फस्सो लोके ....कायसम्फस्सो लोके ....मनोसम्फस्सो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"चक्खुसम्फस्सजा वेदना लोके....सोतम्फस्सजा वेदना लोके ....घान-[B.247] सम्फस्सजा वेदना लोके ....जिव्हासम्फस्सजा वेदना लोके ....कायसम्फस्सजा वेदना लोके .... मनोसम्फस्सजा वेदना लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"रूपसञ्ञा लोके ....सद्दसञ्ञा लोके ....गन्धसञ्ञा लोके ....रससञ्ञा [N.231] लोके ....फोट्ठब्बसञ्ञा लोके ....धम्मसञ्ञा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"रूपसञ्चेतना लोके ....सद्दसञ्चेतना लोके ....गन्धसञ्चेतना लोके ....रससञ्चेतना लोके ....फोट्ठब्बसञ्चेतना लोके ....धम्मसञ्चेतना लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"रूपतण्हा लोके ....सद्दतण्हा लोके ....गन्धतण्हा लोके ....रसतण्हा लोके ....फोट्ठब्बतण्हा लोके .... धम्मतण्हा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"रूपवितक्को लोके ....सद्दवितक्को लोके ....गन्धवितक्को लोके ....रसवितक्को लोके .... फोट्ठब्बवितक्को लोके .....धम्मवितक्को लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति।

"रूपविचारो लोके ....सद्दविचारो लोके .... गन्धविचारो लोके ....रसविचारो [R.310]

"चक्षुर्विज्ञान लोक में....श्रोत्रविज्ञान लोक में....घ्राणविज्ञान....जिह्वाविज्ञान....कायविज्ञान.... मनोविज्ञान प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा....होती है।

"लोक में चक्षुसंस्पर्श....श्रोत्रसंस्पर्श....घ्राणसंस्पर्श....जिह्वासंस्पर्श....कायसंस्पर्श....मनःसंस्पर्श लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा उत्पन्न होना चाहती हुई....स्थित होती है।

"लोक में चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदना (अनुभव)....श्रोत्रसंस्पर्शजन्य वेदना....घ्राणसंस्पर्शजन्य वेदना....जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदना....कायसंस्पर्शजन्य वेदना....मनःसंस्पर्शजन्य वेदना प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा....स्थित होती है।

"लोक में रूपसंज्ञा....शब्दसंज्ञा....गन्धसंज्ञा....रससंज्ञा....स्प्रष्टव्यसंज्ञा....धर्मसंज्ञा प्रिय एवं अनुकूल विषय हैं। यहाँ यह तृष्णा....स्थित होती है।

"लोक में रूप सञ्चेतना....शब्दसञ्चेतना....गन्धसञ्चेतना....रससञ्चेतना....स्प्रष्टव्यसञेतना.... धर्मसञ्चेतना प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा.... स्थित होती है।

"लोक में रूपतृष्णा....शब्दतृष्णा....गन्धतृष्णा....रसतृष्णा....स्प्रष्टव्यसञ्चेतना....धर्मसञ्चेतना प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा....स्थित होती है।

"लोक में रूपवितर्क....शब्दवितर्क....गन्धवितर्क....रसवितर्क....स्प्रष्टव्यवितर्क....धर्मवितर्क प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा....स्थित होती है।

लोके ....फोट्ठब्बविचारो लोके ....धम्मविचारो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं।

(३) निरोधसच्चं

[B.248] ३०. "कतमं च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं? यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो। सा खो पनेसा, भिक्खवे, तण्हा कत्थ पहीयमाना पहीयति, कत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति? यं लोके पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"किञ्च लोके पियरूपं सातरूपं? चक्खु लोके पियरूपं सातरुपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति। सोतं लोके....पे०....घानं लोके ....जिव्हा लोके ....कायो लोके ....मनो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपा लोके ....सद्दा लोके ....गन्धा लोके ....रसा लोके .... फोट्ठब्बा लोके [N.232] ....धम्मा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"चक्खुविञ्ञाणं लोके ....सोतविञ्ञाणं लोके ....घानविञ्ञाणं लोके .... जिव्हाविञ्ञाणं लोके ....कायविञ्ञाणं लोके ....मनोविञ्ञाणं लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

[R.311] "चक्खुम्फस्सो लोके ....सोतसम्फस्सो लोके ....घानसम्फस्सो लोके ....जिव्हासम्फस्सो लोके ....कायसम्फस्सो लोके ....मनोसम्फस्सो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"लोक में रूपविचार....शब्दविचार....गन्धविचार....रसविचार....स्प्रष्टव्यविचार....धर्मविचार प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ उत्पन्न होना चाहती हुई यह तृष्णा उत्पन्न होती है और स्थित (अभिनिविष्ट) होना चाहती हुई अभिनिविष्ट होती है। भिक्षुओ! यह कहलाता है– दुःखसमुदय आर्यसत्य।

(३) दुःख निरोध आर्यसत्य– ३० "और, भिक्षुओ! यह 'दुःखनिरोध आर्यसत्य' क्या है? यह जो (उपरिकथित) तृष्णा का सर्वथा (पूर्णतः), विराग (अनासक्ति), निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग, मुक्ति एवं अनालय है, वही 'दुःखनिरोध आर्यसत्य' कहलाता है। तो, भिक्षुओ! यह तृष्णा कहाँ प्रहीण होना चाहती हुई प्रहीण होती है? और कहाँ निरुद्ध होना चाहती हुई निरुद्ध होती है? लोक में पुद्गल का जो प्रिय एवं अनुकूल विषय (भोग्य) है वहाँ प्रहीण होना चाहती हुई प्रहीण होती है, निरुद्ध होना चाहती हुई निरुद्ध होती है।

"तो लोक में (उस पुद्गल का) प्रिय एवं अनुकूल विषय क्या है? चक्षुरिन्द्रिय लोक में....श्रोत्र....घ्राण.... जिह्वा....काय....मन इन्द्रिय लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूप (चक्षुरिन्द्रिय के विषय) लोक में....शब्द....गन्ध....रस....स्प्रष्टव्य....धर्म लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"चक्षुर्विज्ञान लोक में....पूर्ववत्....मनोविज्ञान लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती हैं।

"चक्खुसम्फस्सजा वेदना लोके ....सोतसम्फस्सजा वेदना लोके ....घानसम्फस्सजा वेदना लोके ....जिव्हासम्फस्सजा वेदना लोके ....कायसम्फस्सजा वेदना लोके ....मनो-सम्फस्सजा वेदना लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपसञ्ञा लोके ....सद्दसञ्ञा लोके ....गन्धसञ्ञा लोके.... रससञ्ञा लोके ....फोट्ठब्बसञ्ञा लोके....धम्मसञ्ञा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपसञ्चेतना लोके ....सद्दसञ्चेतना लोके ....गन्धसञ्चेतना लोके ....रस-[B.249] सञ्चेतना लोके ....फोट्ठब्बसञ्चेतना लोके ....धम्मसञ्चेतना लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपतण्हा लोके ....सद्दतण्हा लोके ....गन्धतण्हा लोके ....रसतण्हा लोके.... फोट्ठब्बतण्हा लोके ....धम्मतण्हा लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपवितक्को लोके ....सद्दवितक्को लोके ....गन्धवितक्को लोके ....रसवितक्को लोके ....फोट्ठब्बवितक्को लोके ....धम्मवितक्को लोके पिररूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति।

"रूपविचारो लोके....सद्दविचारो लोके ....गन्धविचारो लोके ....रसविचारो लोके .... फोट्ठब्बविचारो लोके ....धम्मविचारो लोके पियरूपं सातरूपं। एत्थेसा तण्हा [N.233] पहीयमाना पहीयति, एत्थ निरुज्झमाना निरुज्झति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खनिरोधो अरियसच्चं।

"चक्षुःसंस्पर्श लोक में...पूर्ववत्.... मनः संस्पर्श लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदना लोक में....पूर्ववत्.... मनःसंस्पर्शजन्य वेदना लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय हैं। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूपसंज्ञा लोक में....पूर्ववत्.... धर्मसंज्ञा लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूपसञ्चेतना लोक में....पूर्ववत्.... धर्मसञ्चेतना लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूपतृष्णा लोक में....पूर्ववत्.... धर्मतृष्णा लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूपवितर्क लोक में....पूर्ववत्.... धर्मवितर्क लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह तृष्णा प्रहीण....निरुद्ध होती है।

"रूपविचार लोक में.... शब्दविचार लोक में.... गन्धविचारलोक में.... रसविचार लोक में.... स्प्रष्टव्य विचार लोक में.... धर्मविचार लोक में प्रिय एवं अनुकूल विषय है। यहाँ यह प्रहीण होना चाहती हुई प्रहीण हो जाती है या निरुद्ध होना चाहती हुई निरुद्ध हो जाती है। भिक्षुओ! यह कहलाता है– 'दुःखनिरोध आर्यसत्य'।

(४) मग्गसच्चं

३१. "कतमं च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथिदं—सम्मादिट्ठि सम्मासङ्कप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि।

[R.312] "कतमा च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि? यं खो, भिक्खवे, दुक्खे ञाणं, दुक्खसमुदये ञाणं, दुक्खनिरोधे ञाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो? नेक्खम्मसङ्कप्पो, अब्यापादसङ्कप्पो, अविहिंसासङ्कप्पो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो।

[B.250] "कतमा च, भिक्खवे, सम्मावाचा? मुसावादा वेरमणी, पिसुणाय वाचाय वेरमणी, फरुसाय वाचा, वेरमणी, सम्फप्पलापा वेरमणी— अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मावाचा।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो? पाणातिपाता वेरमणी अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी— अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्माआजीवो? इध, भिक्खवे, अरियसावको मिच्छाआजीवं पहाय सम्माआजीवेन जीवितं कप्पेति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्माआजीवो।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्मावायामो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं

---

(४) दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य– ३१. "और भिक्षुओ! दुःखनिरोध की तरफ पहुँचाने वाली प्रतिपद् (मार्ग) आर्यसत्य कौन सी है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। जैसे– १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि।

"भिक्षुओ! इनमें 'सम्यक्दृष्टि' क्या है? भिक्षुओ! यह जो दुःखविषयक, दुःखसमुदयविषयक, दुःखनिरोधविषयक, दुःखनिरोधमार्गविषयक ज्ञान है– यही 'सम्यक्दृष्टि' कहलाता है।

"भिक्षुओ! यह 'सम्यक्सङ्कल्प' क्या है? निष्कामता (=अनासक्ति, नैष्काम्य) का सङ्कल्प, अव्यापाद (अद्रोह) सङ्कल्प एवं अहिंसासङ्कल्प– ये तीनों कहलाते हैं– 'सम्यक्सङ्कल्प'।

"और भिक्षुओ! 'सम्यग्वाक्' क्या है? असत्य भाषण का, चुगली का, कटुवचन का, मिथ्या प्रलाप का त्याग ही, भिक्षुओ! 'सम्यग्वाक्' है।

"और, भिक्षुओ! 'सम्यक्कर्मान्त' क्या कहलाता है? प्राणातिपात (हिंसा), अदत्तादान (चौरी से वस्तुओं का ग्रहण करना) और कामभोगों का मिथ्याचार (व्यभिचार)– यही कर्म 'सम्यक्कर्मान्त' कहे जाते हैं।

"और क्या है, भिक्षुओ! 'सम्यगाजीव'? भिक्षुओ! पापमय साधनों से आजीविका का त्यागकर उचित (कुशल) साधनों से अपना जीवन–यापन करना ही, भिक्षुओ! 'सम्यगाजीव' कहलाता है।

"और भिक्षुओ! 'सम्यग्व्यायाम' क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद (न उत्पन्न होने देने) के लिये अपने में छन्द (इच्छा) उत्पन्न करता है, उद्योग करता है,

आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय [R.313] भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति [N.234] चित्तं पग्गण्हाति पदहति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मावायामो।

"कतमा च, भिक्खवे, सम्मासति? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मासति।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्मासमाधि? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं [B.251] उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खो सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मासमाधि। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं।

वीर्य आरम्भ करता है, उनके न होने देने के लिये चित्त का निग्रह करता है, उसको वश में करता है; उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये....अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इच्छा करता है, उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिरता के लिये, पुनः पुनः करने के लिये, उनकी वृद्धि के लिये, भावना के लिये.....वश में करता है– भिक्षुओ! यह कहलता है– सम्यग्व्यायाम।

"और, भिक्षुओ! सम्यक्स्मृति किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु काया में कायानुपश्यना करता हुआ उद्योगरत होकर स्मृति–सम्प्रजन्य से युक्त होकर लोभ द्वेष को छोड़ता हुआ साधना करता है। वेदनाओं से उद्योगरत....चित्त में उद्योगरत....धर्मों में उद्योगरत रहते हुए....धर्मानुपश्यना करता हुआ साधनारत रहता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं– 'सम्यक्स्मृति'।

"और, भिक्षुओ! 'सम्यक्समाधि' कौन सी है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु सभी कामभोगों का परित्याग कर, सभी अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए वितर्क–विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। फिर उन वितर्क विचारों के भी शान्त होने पर समाधिजन्य प्रीतिसुखमय द्वितीय ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। आगे चलकर, उस प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर उपेक्षा एवं स्मृति–सम्प्रजन्य से युक्त होकर काया में सुख का अनुभव करता है, जिसको कि श्रेष्ठ धर्मविद् 'उपेक्षक', 'स्मृतिमान्', 'सुखविहारी' कहते हैं, इस स्थिति में प्राप्त हुए तृतीय ध्यान से युक्त होकर साधना करता है। इस अवस्था में उसके सुख–दुःखों का प्रहाण हो चुका होता है, सौमनस्य–दौर्मनस्य का भी अभाव हो चुका होता है। और वह निरन्तर सुख–दुःखरहित, उपेक्षा एवं स्मृति परिशुद्धि की स्थिति चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है– 'दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा' आर्यसत्य।

[R.314] ३२. "इति अज्झत्तं वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, बहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, अज्झत्तबहिद्धा वा धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति, समुदयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, वयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, समुदयवयधम्मानुपस्सी वा धम्मेसु विहरति, अत्थि धम्मा ति वा पनस्स सति पच्चुपट्ठिता होति। यावदेव ञाणमत्ताय पटिस्सतिमत्ताय अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। एवं पि खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति— चतूसु अरियसच्चेसु।

धम्मानुपस्सना निट्ठिता॥

६. सतिपट्ठानभावनानिसंसो

३३. "यो हि कोचि, भिक्खवे, इमे चत्तारो सतिपट्ठाने एवं भावेय्य सत्तवस्सानि, [N.235] तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा; सति वा उपादिसेसे अनागामिता।

"तिट्ठन्तु, भिक्खवे, सत्तवस्सानि। यो हि कोचि, भिक्खवे, इमे चत्तारो सतिपट्ठाने एवं भावेय्य छ वस्सानि....पे०....पञ्च वस्सानि ....चत्तारि वस्सानि ....तीणि वस्सानि ....द्वे वस्सानि ....एकं वस्सं....तिट्ठतु, भिक्खवे, एकं वस्सं। यो हि कोचि, भिक्खवे, इमे चत्तारो सतिपट्ठाने एवं भावेय्य सत्त मासानि, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा; सति वा उपादिसेसे अनागामिता।

[B.252] "तिट्ठन्तु, भिक्खवे, सत्त मासानि। यो हि कोचि, भिक्खवे, इमे चत्तारो सतिपट्ठाने [R.315] एवं भावेय्य छ मासानि ....पे०....पञ्च मासानि.... चत्तारि मासानि ....तीणि मासानि

---

३२. "यों, वह साधक भिक्षु धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता है, बाह्य धर्मों में....आन्तरिक बाह्य धर्मों में धर्मानुपश्यना का अभ्यास करता है। इसी तरह वह उत्पद्यमान, हीयमान एवं उत्पद्यमान–हीयमान धर्मों के विषय में धर्मानुपश्यना करता है। उसकी 'धर्म हैं'— ऐसी स्मृति निरन्तर उपस्थित रहती है, जितनी कि ज्ञान के लिए आवश्यक होती हो। इस तरह यह भिक्षु साधना करता हुआ लोक में जो कुछ भी दिखायी देता है उसके प्रति उपेक्षा भाव से (उसका किसी भी प्रकार से उपादान न करता हुआ) चार आर्यसत्य धर्मों में धर्मानुपश्यना की साधना करता है।

धर्मानुपश्यना का वर्णन समाप्त।।

६. स्मृतिप्रस्थान-भावना का माहात्म्य

३३. "भिक्षुओ! जो काई भी साधक भिक्षु इन चार स्मृतिप्रस्थानों की सात वर्ष तक निरन्तर साधना करता है, उसकी मरणानन्तर दो ही गतियाँ होंगी— १. या तो इसी जन्म में आज्ञा (=ज्ञान, अर्हत्त्व) का साक्षात्कार, २. या फिर यदि कोई ऐसा प्रारब्ध–भोग अवशिष्ट रह गया हो कि उसको एक जन्म और लेने की विवशता ही हो तो भी अनागामिभाव तो उसे अवश्य ही प्राप्त हो जायगा।

"और, भिक्षुओ ! सात वर्ष की बात भी छोड़ों; यदि कोई इन चार स्मृतिप्रस्थानों की छह वर्ष तक.... पूर्ववत्....पाँच वर्ष तक....चार वर्ष तक....तीन वर्ष तक....दो वर्ष तक....एक वर्ष तक....सात मास तक....अवश्य ही प्राप्त हो जायगा।

"और, भिक्षुओ! सात मास की बात भी छोड़ो, यदि कोई भिक्षु इन चार स्मृतिप्रस्थानों की छह मास तक....पाँच मास तक....चार मास तक...तीन मास तक....दो मास तक...., एक मास तक....अर्ध मास

....द्वे मासानि ....एकं, मासं ....अड्ढमासं ....तिट्ठतु, भिक्खवे, अड्ढमासो। यो हि कोचि, भिक्खवे, इमे चत्तारो सतिपट्ठाने एवं भावेय्य सत्ताहं, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा; सति वा उपादिसेसे अनागामिता ति।

३४. ''एकायनो अयं, भिक्खवे, मग्गो सत्तानं विसुद्धिया, सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय, दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय, ञायस्स अधिगमाय, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना ति। इति यं तं वुत्तं, इदमेतं पटिच्च वुत्तं'' ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दु ति॥

महासतिपट्ठानसुत्तं निट्ठितं नवमं॥

(एक पक्ष) तक....। यहाँ तक कि कोई भिक्षु एक सप्ताहमात्र भी इन चार स्मृतिप्रस्थानों का साधनाभ्यास करे तो भी उसकी दो ही गति होती है– ....पूर्ववत्.... अनागामिभाव तो अवश्य मिल जायगा।

३४. ''भिक्षुओ! इन चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना ही प्राणियों की चित्तविशुद्धि के लिये....पूर्ववत्....निर्वाण की अधिगति के लिये एकमात्र मार्ग है।''

भगवान् ने यह कहा। आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया।।

नवम महासतिपट्ठानसुत्त समाप्त॥

१०. पायासिराजञ्ञसुत्तं

१. पायासि आयस्मन्तं कुमारकस्सपं उपसङ्कमि

[N.236, B.253, R.316] १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा कुमारकस्सपो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन सेतब्या नाम कोसलानं नगरं तदवसरि। तत्र सुदं आयस्मा कुमारकस्सपो सेतब्यायं विहरति उत्तरेन सेतब्यं सिंसपावने। तेन खो पन समयेन पायासि राजञ्ञो सेतब्यं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं।

२. तेन खो पन समयेन पायासिस्स राजञ्ञस्स एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं [R.317] होति—"इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति। अस्सोसुं खो सेतब्यका ब्राह्मणगहपतिका-"समणो खलु भो कुमारकस्सपो, समणस्स गोतमस्स सावको, कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सेतब्यं अनुप्पत्तो; सेतब्यायं विहरति उत्तरेन सेतब्यं सिंसपावने। तं खो पन भवन्तं कुमारकस्सपं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'पण्डितो ब्यत्तो मेधावी बहुस्सुतो चित्तकथी कल्याणपटिभानो वुद्धो चेव अरहा च। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होति' " ति। अथ खो सेतब्यका ब्राह्मणगहपतिका सेतब्याय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता उत्तरेनमुखा गच्छन्ति येन सिंसपावनं।

३. तेन खो पन समयेन पायासि राजञ्ञो उपरिपासादे दिवासेय्यं उपगतो होति। अद्दसा खो पायासि राजञ्ञो सेतब्यके ब्राह्मणगहपतिके सेतब्याय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी

---

१०. पायासिराजन्यसूत्र

१. पायासि राजन्य आयुष्मान् कुमारकाश्यप के पास गया

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् कुमारकाश्यप कोसल देश में पाँच सौ भिक्षुओं के बृहत् सङ्घ के साथ चारिका करते हुए जहाँ सेतव्या (श्वेताम्बी) नामक कोसलों का नगर था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप सेतव्या में, उसके उत्तर दिशा की तरफ शिंशपावन में साधनाहेतु ठहरे। उस समय पायासि नामक राजन्य (माण्डलिक राजा) जनबहुल, तृण–काष्ठ, उदक धान्यसम्पन्न राजभोग्य कोसलराज प्रसेनजित् द्वारा प्रदत्त राजदाय ब्रह्मदेय सेतव्या का स्वामी था।

२. उस समय पायासि राजन्य को यह अशुभ धारणा उत्पन्न हुई– "न यह लोक है, न परलोक, कोई औपपातिक (अयोनिज) सत्त्व नहीं है और सुकृत–दुष्कृत कर्मों का भी न कोई फल है, न परिणाम।" सेतव्या के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना– "श्रमण गौतम के शिष्य कुमार काश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के बृहत् सङ्घ के साथ सेतव्या के शिंशपावन में साधनारत हैं। उन कुमार काश्यप के विषय में ऐसा मङ्गलमय शब्द सुना है– 'वह पण्डित, कुशल, मेधावी, बहुश्रुत, दूसरे के मन की बात को जानने वाले, प्रतिभासम्पन्न, ज्ञानी एवं अर्हत् हैं।' इस प्रकार के अर्हतों का दर्शन शुभ होता है।" तब वे सेतव्यावासी ब्राह्मण गृहस्थ सेतव्या से निकलकर समूहरूप में एकत्र होकर, उत्तर की ओर मुँह किये हुए, शिंशपावन की तरफ चल पड़े।

३. उस समय पायासि राजन्य दिन में प्रासाद की ऊपरी मंजिल में विश्राम कर रहा था। उस

गणीभूते उत्तरेनमुखे गच्छन्ते येन सिंसपावनं। दिस्वा खत्तं आमन्तेसि—"किं नु [B.254] खो, भो खत्ते, सेतब्यका ब्राह्मणगहपतिका सेतब्याय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता उत्तरेनमुखा गच्छन्ति येन सिंसपावनं" ति?

"अत्थि खो, भो, समणो कुमारकस्सपो, समणस्स गोतमस्स [N.237, R.318] सावको, कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सेतब्यं अनुप्पत्तो; सेतब्यायं विहरति उत्तरेन सेतब्यं सिंसपावने। तं खो पन भवन्तं कुमारकस्सपं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'पण्डितो ब्यत्तो मेधावी बहुस्सुतो चित्तकथी कल्याणपटिभानो वुद्धो चेव अरहा चा' ति। तमेते भवन्तं कुमारकस्सपं दस्सनाय उपसङ्कमन्ती" ति। "तेन हि, भो खत्ते, येन सेतब्यका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा सेतब्यके ब्राह्मणगहपतिके एवं वदेहि—'पायासि, भो, राजञ्ञो एवमाह—आगमेन्तु किर भवन्तो, पायासि पि राजञ्ञो समणं कुमारकस्सपं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' ति। पुरा समणो कुमारकस्सपो सेतब्यके ब्राह्मणगहपतिके बाले अब्यत्ते सञ्ञापेति—'इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' ति। नत्थि हि, भो खत्ते, परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति। "एवं भो" ति खो सो खत्ता पायासिस्स राजञ्ञस्स पटिस्सुत्वा येन सेतब्यका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सेतब्यके ब्राह्मणगहपतिके एतदवोच—"पायासि, भो, राजञ्ञो एवमाह—आगमेन्तु किर भवन्तो, पायासि पि राजञ्ञो समणं कुमारकस्सपं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति।

४. अथ खो पायासि राजञ्ञो सेतब्यकेहि ब्राह्मणगहपतिकेहि परिवुतो येन सिंसपावनं येनायस्मा कुमारकस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता कुमारकस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। सेतब्यका पि [B.255, R.319]

पायासि राजन्य ने उन ब्राह्मण गृहस्थों को उत्तर की तरफ शिंशपावन की ओर जाते देखा। देखकर अपने व्यक्तिगत सहायक से पूछा– "क्यों क्षत्ता! यै सेतव्या के ब्राह्मण शिंशपावन की तरफ क्यों जा रहे हैं?"

"श्रीमन्! श्रमण गौतम के शिष्य कुमारकाश्यप सेतव्या के शिंशपावन में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं।....उन्हीं के दर्शन के लिये ये लोग जा रहे हैं।" "तो, भो क्षत्ता! इन सेतव्यावासी ब्राह्मण गृहपतियों के पास जाओ, जाँकर इनसे कहो– 'श्रीमानो! पायासि राजन्य यों कह रहे हैं– आप लोग कुछ क्षण प्रतीक्षा करें, पायासि राजन्य भी आप लोगों के साथ कुमारकाश्यप के दर्शनहेतु चलेंगे'। श्रमण कुमारकाश्यप सेतव्या के ब्राह्मण गृहस्थों को बालक, मूर्ख, नासमझ जानकर यह उपदेश करता है– 'यह लोक भी है, परलोक भी है, औपपातिक सत्त्व भी हैं एवं सुकृत–दुष्कृत कर्मों का फल एवं परिणाम भी होता है।' भो क्षत्ते! (वास्तविक बात यह है कि) न यह लोक है .... न सुकृत और दुष्कृतों का ही कोई फल या परिणाम है।" तब वह क्षत्ता "ठीक है, श्रीमन्"– यह पायासि राजन्य को उत्तर देकर उन सेतव्या के ब्राह्मण–गृहपतियों के पास जा कर बोला– "आप लोग कुछ क्षण प्रतीक्षा करें, पायासि राजन्य भी आप लोगों के साथ श्रमण कुमारकाश्यप के दर्शनहेतु चलेंगे।"

४. तब यह पायासि राजन्य उन सेतव्या के ब्राह्मण–गृहस्थों के साथ शिंशपावन की तरफ, जहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप थे, चल दिया। वहाँ जाकर कुमारकाश्यप से कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम

खो ब्राह्मगहपतिका अप्पेकच्चे आयस्मन्तं कुमारकस्सपं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे आयस्मता कुमारकस्सपेन सद्धिं सम्मोदिंसु; सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे येनायस्मा कुमारकस्सपो तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु।

२. कुमारकस्सपो उपमाहि नत्थिकवादं पटिभिन्दि

५. एकमन्तं निसिन्नो खो पायासि राजञ्ञो आयस्मन्तं कुमारकस्सपं एतदवोच— [N.238] "अहञ्हि, भो कस्सप, एवंवादी एवंदिट्ठि—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' " ति।

"नाहं, राजञ्ञ, एवंवादिं एवंदिट्ठिं अद्दसं वा अस्सोसिं वा। कथञ्हि नाम एवं वदेय्य—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' ति?

(१) चन्दिमसुरियउपमा

६. "तेन हि, राजञ्ञ, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, राजञ्ञ, इमे चन्दिमसुरिया इमस्मिं वा लोके परस्मिं वा, देवा वा ते मनुस्सा वा" ति?

"इमे, भो कस्सप, चन्दिमसुरिया परस्मिं लोके, न इमस्मिं; देवा ते, न मनुस्सा" ति।

"इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

७. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो एवं मे एत्थ होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

"अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो येन ते परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो

पूछकर एक तरफ बैठ गया। सेतव्या के उन ब्राह्मण–गृहपतियों में से कुछ ने उन कुमारकाश्यप से कुशलक्षेम पूछा, कुछ ने उनको प्रणाम किया, तब वे एक तरफ बैठे। कुछ ने अपना नाम–गोत्र उनको सुनाया और कुछ चुप रहकर ही वहाँ एक ओर बैठ गये।

२. पायासि राजन्य द्वारा नास्तिकवाद का समर्थन

५. एक ओर बैठे पायासि राजन्य ने आयुष्मान् कुमारकाश्यप से कहना प्रारम्भ किया– "भो काश्यप! मैं ऐसी दृष्टि या ऐसे सिद्धान्त का मानने वाला हूँ– 'न यह लोक है .... न कर्मों का फल या परिणाम है'। "

"राजन्य! ऐसी दृष्टि या ऐसा सिद्धान्त मानने वाले को तो पहले मैंने कभी न देखा था, न सुना ही था। तुम कैसे कहते हो– 'यह लोक भी नहीं है....न कर्मों का फल या विपाक ही है।'

(१) चन्द्र–सूर्योपमा– ६. "तो राजन्य! मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, तुम्हें जैसा उचित लगे उत्तर दो। राजन्य! तो क्या समझते हो– ये चन्द्रमा और सूर्य इसी लोक में हैं? या परलोक में? देव हैं? या मनुष्य?"

"भो काश्यप! वे चन्द्रमा और सूर्य परलोक में हैं, इस लोक में नहीं। दैव हैं, मनुष्य नहीं।"

"तब तो राजन्य! इसी दृष्टान्त से तुम्हें समझ में आ जाना चाहिये था– 'यह लोक भी है और परलोक भी, औपपातिक सत्त्व भी हैं और सुकृत–दुष्कृत कर्मों का फल या परिणाम भी।"

लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' [R.320] ति?

''अत्थि, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि [B.256] परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

''यथा कथं विय, राजञ्ञा'' ति?

''इध मे, भो कस्सप, मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचा फरुसवाचा सम्फप्पलापी अभिज्झालू ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठी। ते अपरेन समयेन आबाधिका होन्ति दुक्खिता बाळ्हगिलाना। यदाहं जानामि—'न दानिमे इमम्हा आबाधा वुट्ठहिस्सन्ती' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—[N.239] 'सन्ति खो, भो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—ये ते पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचा फरुसवाचा सम्फप्पलापी अभिज्झालू ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठी, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती ति। भवन्तो खो पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचा फरुसवाचा सम्फप्पलापी अभिज्झालू ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठी। सचे तेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं, भवन्तो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सन्ति। सचे, भो, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्याथ, येन मे आगन्त्वा आरोचेय्याथ—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति। भवन्तो खो पन मे सद्धायिका पच्चयिका। यं भवन्तेहि दिट्ठं यथा सामं दिट्ठं एवमेतं भविस्सती' ति। ते मे 'साधू' ति पटिस्सुत्वा नेव आगन्त्वा [R.321]

---

७. ''भो काश्यप! आप जो भी कहें, परन्तु मेरा विचार तो यही है कि न यह लोक है....न सुकृत–दुष्कृत कर्मों का फल या परिणाम ही।''

''राजन्य! परन्तु तुम्हारे इस कथन में कोइ तर्क भी है कि जिससे तुम ऐसा मान रहे हों– न यह लोक है ....?''

''हाँ! मेरे ऐसा मानने में तर्क है....।

''राजन्य! वह कैसे?''

मृत का पुनरावर्तन नहीं– ''हे काश्यप! मेरे कितने ही मित्र अमात्य एवं समान रक्त वाले भाई–बन्धु हैं, जो जीवहिंसा करते हैं, चौरी करते हैं, दुराचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, परस्पर चुगली करते हैं, कठोर वाणी बोलते हैं, निरर्थक प्रलाप करते हैं, दूसरों के प्रति द्रोह करते हैं, द्वेषचित्त एवं गलत सिद्धान्तों के मानने वाले हैं। वे कुछ दिनों बाद, रोगग्रस्त होकर अस्वस्थ हो जाते हैं। जब मैं समझता हूँ कि वे इस रोग से मुक्त न होंगे तो मैं उनके पास जाकर कहता हूँ– 'कई श्रमण–ब्राह्मण ऐसे सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं कि जो जीव हिंसा करते हैं....पूर्ववत्....वे नरक में गिरकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। आप लोग भी जीवहिंसा करते थे....यदि उन श्रमण–ब्राह्मणों का कथन सत्य है तो आप लोग भी मरणानन्तर नरक में गिरकर दुर्गति को प्राप्त होंगे। यदि आप लोग मरणानन्तर नरक में गिरकर दुर्गति को प्राप्त हों तो मुझको आकर बतावें– यह लोक भी है, परलोक भी है....। आप लोगों के प्रति मेरी श्रद्धा एवं विश्वास है। आप लोग स्वयं देखकर मुझसे जो आकर कहेंगे, मैं उसे वैसा ही मान लूँगा।' 'बहुत अच्छा'– कहकर भी वे न तो आकर

आरोचेन्ति न पन दूतं पहिणन्ति। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति। (१)

(२) चोरउपमा

८. ''तेन हि, राजञ्ञ, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, राजञ्ञ, इध ते पुरिसा चोरं आगुचारिं गहेत्वा दस्सेय्युं—'अयं ते, भन्ते, चोरो आगुचारी; इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। ते त्वं एवं वदेय्यासि—[B.257] 'तेन हि, भो, इमं पुरिसं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खमित्वा दक्खिणतो नगरस्स आघातने सीसं छिन्दथा' ति। ते साधू ति पटिस्सुत्वा तं पुरिसं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खमित्वा दक्खिणतो नगरस्स आघातने निसीदापेय्युं। लभेय्य नु खो सो चोरो चोरघातेसु—'आगमेन्तु ताव भवन्तो [N.240, R.322] चोरघाता, अमुकस्मिं मे गामे वा निगमे वा मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, यावाहं तेसं उद्दिसित्वा आगच्छामी' ति, उदाहु विप्पलपन्तस्सेव चोरघाता सीसं छिन्देय्युं'' ति?

''न हि सो, भो कस्सप, चोरो लभेय्य चोरघातेसु—'आगमेन्तु ताव भवन्तो चोरघाता, अमुकस्मिं मे गामे वा निगमे वा मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, यावाहं तेसं उद्दिसित्वा आगच्छामी' ति। अथ खो नं विप्पलपन्तस्सेव चोरघाता सीसं छिन्देय्युं'' ति।

''सो हि नाम, राजञ्ञ, चोरो मनुस्सो मनुस्सभूतेसु चोरघातेसु न लभिस्सति—'आगमेन्तु ताव भवन्तो चोरघाता, अमुकस्मिं मे गामे वा निगमे वा मित्तामच्चा ञातिसालोहिता,

---

स्वयं बताते हैं, न कोई दूत ही भेजते हैं। हे काश्यप! यह एक कारण है, जिससे मैं ऐसा समझता हूँ कि यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है....। (१)

(२) चौर का दृष्टान्त– ८. ''राजन्य! मैं तुम्हीं से पूछता हूँ.....। तो क्या समझते हो, राजन्य! यदि तुम्हारे नौकर एक चोर या अपराधी को पकड़ कर उसको तुम्हारे सामने लावें और कहें—यह आपका चौर या अपराधी है, आप जैसा उचित समझें इसे दण्ड दें।' तब तुम उन लोगों से ऐसा कहो– 'इस पुरुष को एक दृढ़ रज्जु से हाथ पीछे बाँध कर, शिर मुँड़वाकर, घोषणा करते हुए एक सड़क से दूसरी सड़क या एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक ले जाकर दक्षिण द्वार से निकालकर, नगर से दक्षिण वध्य स्थान पर ले जाकर इसका शिर काट दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुष को दृढ़ रज्जु से....वध्य स्थान पर ले जावें। तब चोर उन जल्लादों से कहें– 'हे जल्लादो! इस ग्राम या निगम में मेरे अमात्य, मित्र, साथी, समान रक्त वाले भाई-बन्धु रहते हैं आप लोग कुछ देर ठहरें, मैं तब तक उन लोगों से भेंट कर आऊँ।' तो क्या उसके ऐसा कहते रहने पर भी उसका शिर काट नहीं देंगे?''

'हाँ, काश्यप! चौर के ऐसा कहते रहने पर भी वधक उसका शिर काट ही देंगे।''

''राजन्य! जब वह चौर मनुष्य वधकों से छूट नहीं ले पाता है तो तुम्हारे वे मित्र अमात्य....नरक में गिरकर दुर्गति को प्राप्त हो यमराज से कैसे छुट्टी पा लेंगे कि आप लोग तब तक ठहरें, जब तक हम

यावाहं तेसं उद्दिसित्वा आगच्छामी' ति; किं पन ते मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचा फरुसवाचा सम्फप्पलापी अभिज्झालू ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठी, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना लभिस्सन्ति निरयपालेसु—'आगमेन्तु ताव भवन्तो निरयपाला, याव मयं पायासिस्स राजञ्ञस्स गन्त्वा आरोचेम—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' ति? इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

९. ''किं चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो एवं मे एत्थ होति—इति [B.258] पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

''अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो येन ते परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति?

''अत्थि, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

''यथा कथं विय, राजञ्ञा'' ति?

''इध मे, भो कस्सप, मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाता पटिविरता [R.323] अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता पिसुणाय [N.241] वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरता अनभिज्झालू अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठी, ते अपरेन समयेन आबाधिका होन्ति दुक्खिता बाळ्हगिलाना। यदाहं जानामि—'न दानिमे इमम्हा आबाधा वुट्ठहिस्सन्ती' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सन्ति खो, भो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—ये ते पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता पिसुणाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरता अनभिज्झालू

पायासि राजन्य को जाकर यह सूचना न दे आवें कि यह लोक भी है....? इसलिये भी राजन्य! तुम्हें यह समझना चाहिये– यह लोक भी है, परलोक भी....।''

९. ''आप काश्यप कुछ भी कहें, मेरा तो अब भी वही मानना है कि यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है....।

''राजन्य! आप के इस कथन में कुछ तर्क भी है या अपने मन से ही ऐसा मान रहे हैं कि यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है....।''

''हाँ, काश्यप! ऐसा तर्क है जिसके बल पर मैं ऐसा समझता हूँ कि यह लोक भी नहीं है....।''

''राजन्य! वह क्या तर्क है जिसके सहारे तुम ऐसा मान बैठे हो कि यह लोक भी नहीं है....?

''भो काश्यप! मेरे कितने ही मित्र....जीवहिंसा से विरत, दुराचार से विरत....। वे मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक....।' आप लोग भी जीवहिंसा....से विरत रहते थे, आप लोगों को निश्चय ही स्वर्गलोक मिलेगा। यदि आप लोगों को स्वर्गलोक मिले तो मुझे आकर बताना कि यह लोक भी है....। आप लोगों

अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठी, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती ति। भवन्तो खो पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता पिसुणाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरता अनभिज्झालू अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठी। सचे तेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं, भवन्तो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सन्ति। सचे, भो, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्याथ, येन मे आगन्त्वा आरोचेय्याथ—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति। भवन्तो खो पन मे सद्धायिका पच्चयिका। यं भवन्तेहि दिट्ठं यथा सामं दिट्ठं एवमेतं भविस्सती' ति। ते मे साधू ति पटिस्सुत्वा नेव आगन्त्वा आरोचेन्ति न पन दूतं पहिणन्ति। अयं पि खो, भो [R.324] कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति। (२)

(३) गूथकूपपुरिसउपमा

[B.259] १०. ''तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति। सेय्यथापि, राजञ्ञ, पुरिसो गूथकूपे ससीसकं निमुग्गो अस्स। अथ त्वं पुरिसे आणापेय्यासि—'तेन हि, भो, तं पुरिसं तम्हा गूथकूपा उद्धरथा' ति। ते 'साधू' ति पटिस्सुत्वा तं पुरिसं तम्हा गूथकूपा उद्धरेय्युं। ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन हि, भो, तस्स पुरिसस्स काया वेळुपेसिकाहि गूथं सुनिम्मज्जितं निम्मज्जथा' ति। ते साधू ति पटिस्सुत्वा तस्स पुरिसस्स काया वेळुपेसिकाहि गूथं सुनिम्मज्जितं निम्मज्जेय्युं। ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन [N.242] हि, भो, तस्स पुरिसस्स कायं पण्डुमत्तिकाय तिक्खत्तुं सुब्बट्टितं उब्बट्टेथा' ति। ते तस्स पुरिसस्स कायं पण्डुमत्तिकाय तिक्खत्तुं सुब्बट्टितं उब्बट्टेय्युं। ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन हि भो, तं पुरिसं तेलेन अब्भञ्जित्वा सुखुमेन चुण्णेन तिक्खत्तुं सुप्पधोतं करोथा' ति। ते तं पुरिसं तेलेन अब्भञ्जित्वा सुखुमेन चुण्णेन तिक्खत्तुं सुप्पधोतं करेय्युं। ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन हि, भो, तस्स पुरिसस्स केसमस्सुं कप्पेथा' ति। ते तस्स पुरिसस्स केसमस्सुं कप्पेय्युं।

पर मेरा विश्वास है। आप लोग जो कहेंगे उस पर मैं विश्वास कर लूँगा और मान लूँगा कि यह लोक भी है....।' 'बहुत अच्छा' कहकर भी न तो वे स्वयं आकर इस विषय में कुछ बताते हैं, न वे अपना कोई दूत ही भेजते हैं। अतः मैं विश्वास करता हूँ कि न यह लोक है, न परलोक है....न कोई कर्मफल है। (२)

(३) गूथकूप की उपमा— १०. ''राजन्य! तो मैं तुम्हें यहाँ उपमा (दृष्टान्त) देता हूँ; क्योंकि उपमा के सहारे भी कभी-कभी बात शीघ्र समझ में आ जाती है। राजन्य! मान लो कि कोई मनुष्य सिर तक मलकूप में डूबा हो। तुम अपने अनुचरों को आज्ञा दो— 'उस पुरुष को मलकूप से निकाल दो'। 'बहुत अच्छा' कहकर वे उसे मलकूप से निकाल दें। उन अनुचरों को फिर तुम कहो— 'उस पुरुष के शरीर का मल बांस के टुकड़ों से अच्छी तरह छुड़ाओ।'.... वे उसका मल छुड़ा दें। उनको तुम फिर कहो— 'उस पुरुष के शरीर में पीली मिट्टी से तीन बार अच्छी तरह उबटन लगाकर साफ करो।'.....वे उसे साफ कर दें। उनको तुम फिर कहो— 'उस पुरुष के शरीर में तैल लगाकर पतला स्नानचूर्ण तीन बार लगा-लगाकर नहलाओ।'....वे नहला दें। उनसे फिर तुम कहो— 'इस पुरुष के शिर व दाढ़ी के बाल काट

ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन हि, भो, तस्स पुरिसस्स महग्घं च मालं महग्घं च विलेपनं महग्घानि च वत्थानि उपहरथा' ति। ते तस्स पुरिसस्स महग्घं च मालं महग्घं च [R.325] विलेपनं महग्घानि च वत्थानि उपहरेय्युं। ते त्वं एवं वदेय्यासि—'तेन हि, भो, तं पुरिसं पासादं आरोपेत्वा पञ्चकामगुणानि उपट्ठापेथा' ति। ते तं पुरिसं पासादं आरोपेत्वा पञ्चकामगुणानि उपट्ठापेय्युं।

"तं किं मञ्ञसि, राजञ्ञ, अपि नु तस्स पुरिसस्स सुन्हातस्स सुविलित्तस्स सुकप्पितकेसमस्सुस्स आमुक्कमालाभरणस्स ओदातवत्थवसनस्स उपरिपासादवरगतस्स पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितस्स समङ्गीभूतस्स परिचारयमानस्स पुनदेव तस्मिं गूथकूपे निमुज्जितुकामता अस्सा" ति?

"नो हितं, भो कस्सप"।

"तं किस्स हेतु"?

"असुचि, भो कस्सप, गूथकूपो। असुचि चेव असुचिसङ्खातो च दुग्गन्धो [B.260] च दुग्गन्धसङ्खातो च जेगुच्छो च जेगुच्छसङ्खातो च पटिकूलो च पटिकूलसङ्खातो चा" ति।

"एवमेव खो, राजञ्ञ, मनुस्सा देवानं असुची चेव असुचिसङ्खाता च, दुग्गन्धा च दुग्गन्धसङ्खाता च, जेगुच्छा च जेगुच्छसङ्खाता च, पटिकूला च पटिकूलसङ्खाता च। योजनसतं खो, राजञ्ञ, मनुस्सगन्धो देवे उब्बाधति। किं पन ते मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता [N.243] पिसुणाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरता अनभिज्झालू अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठी कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना ते [R.326] आगन्त्वा आरोचेस्सन्ति—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति? इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

दो।'....वे काट दें। उनको तुम फिर कहो— 'इस पुरुष को अच्छी अच्छी सुगन्धित मालाएँ, अच्छा उबटन अच्छे-अच्छे स्वच्छ वस्त्र लाकर पहलाओ'।.... वे लाकर पहना दें। उनको तुम फिर कहो— 'प्रासाद पर ले जाकर इसे पञ्चविध कामभोग समर्पित करो।' ....वे समर्पित कर दें।

"तो राजन्य! तुम क्या समझते हो— अच्छी तरह स्नान किये, अच्छी तरह उबटन लगाये, अच्छी तरह क्षौरकर्म किये, साफ स्वच्छ वस्त्र पहने, सुगन्धित माला धारण किये तथा प्रासाद पर पञ्चविध कामभोगों से सेवित वह पुरुष उसी मलकूप में फिर से डूबने की इच्छा करेगा?"

"नहीं, भो काश्यप! नहीं।" "वह क्यों?"

"हे काश्यप! वह इसलिये कि उक्त मलकूप अपवित्र है, गन्दा है, दुर्गन्धयुक्त है, घृणित है और मन के लिये प्रतिकूलवेदनीय है।"

"इसी तरह, राजन्य! मनुष्य योनि देवों के लिये अपवित्र....मन के लिये प्रतिकूलवेदनीय है। राजन्य! एक सौ योजन दूसरे से भी देवों को मनुष्य की दुर्गन्ध आती है। तब भला तुम्हारे मित्र अमात्य....स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हुए सुगति प्राप्त कर, पुनः लौट कर तुमसे यह कहने के लिये कैसे

११. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो एवं मे एत्थ होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

"अत्थि पन, भो राजञ्ञ, परियायो.... पे०....अत्थि, भो कस्सप, परियायो ...पे०.... यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

"इध मे, भो कस्सप, मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता, ते अपरेन समयेन आबाधिका होन्ति दुक्खिता बाळ्हगिलाना। यदाहं जानामि—'न दानिमे इमम्हा आबाधा वुट्ठहिस्सन्ती' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सन्ति खो, भो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—ये ते पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति देवानं तावतिंसानं सहब्यतं ति। भवन्तो खो पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता। सचे तेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं, भवन्तो [B.261] कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सन्ति देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सचे, भो, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्याथ देवानं तावतिंसानं सहब्यतं, येन मे आगन्त्वा आरोचेय्याथ—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति। भवन्तो खो पन मे सद्धायिका पच्चयिका। यं [R.327] भवन्तेहि दिट्ठं यथा सामं दिट्ठं एवमेतं भविस्सती' ति। ते मे 'साधू' ति पटिस्सुत्वा [N.244] नेव आगन्त्वा आरोचेन्ति न पन दूतं पहिणन्ति। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति। (३)

आवेंगे कि यह लोक भी है, परलोक भी है...? राजन्य! इस कारण से भी तुम्हें समझना चाहिये कि यह लोक भी है, परलोक भी है....।"

११. "काश्यप! आप चाहें जिस तरह से कह लें, परन्तु मेरी तो यही दृढ़ धारणा है– 'न यह लोक है न परलोक....न सुकृत–दुष्कृत कर्मों का कोई विपाक ही है।"

"राजन्य! इस पर तुम्हारा कोई तर्क भी है कि या यह केवल तुम्हारी कपोलकल्पना ही है?"

"तर्क भी है, भो काश्यप!....।" "वह कैसे?"

"भो काश्यप! यहाँ मेरे कितने ही मित्र, अमात्य....जीवहिंसा से विरत रहनेवाले ....हैं, जब मैं समझता हूँ कि वे इस रोग से मुक्त नहीं होंगे तो उनके पास जाकर कहता हूँ– 'कितने श्रमण–ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि जो जीवहिंसा से विरत....वे सुगति पाते हैं। आप लोग भी जीवहिंसा से विरत रहने वाले....हैं। यदि उनका कथन सत्य होगा तो आप लोग भी....सुगति को ही प्राप्त करेंगे। यदि मरणानन्तर आप सुगति स्वर्ग प्राप्त करें तो मुझे भी आकर बतावें कि यह लोक है....। तब वे मुझे ऐसी सूचना देने की बात कहकर भी न वे स्वयं आते हैं, न कोई दूत ही भेजते है, जो मुझे यह बताये कि यह लोक है....। अतः इन कारणों से मेरा यह विचार और दृढ़ हो गया है कि यह लोक नहीं है....न सुकृत–दुष्कृत कर्मों का ही कोई फल है।

(४) तावतिंसदेवउपमा

१२. "तेन हि, राजञ्ञ, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि; यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। यं खो पन, राजञ्ञ, मानुस्सकं वस्ससतं, देवानं तावतिंसानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो, तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो, तेन संवच्छरेन दिब्बं वस्ससहस्सं देवानं तावतिंसानं आयुप्पमाणं। ये ते मित्तामच्चा ञातिसालोहिता पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सचे पन तेसं एवं भविस्सति—'याव मयं द्वे वा तीणि वा रत्तिन्दिवा दिब्बेहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेम, अथ मयं पायासिस्स राजञ्ञस्स गन्त्वा आरोचेय्याम—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति; अपि नु ते आगन्त्वा आरोचेय्युं—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति?

"नो हिदं, भो कस्सप। अपि हि मयं, भो कस्सप, चिरं कालङ्कता पि [B.262] भवेय्याम। को पनेतं भोतो कस्सपस्स आरोचेति—'अत्थि देवा तावतिंसा ति वा [R.328] एवंदीघायुका देवा तावतिंसा ति वा। न मयं भोतो कस्सपस्स सद्दहाम—अत्थि देवा तावतिंसा ति वा एवंदीघायुका देवा तावतिंसा ति वा" ति। (४)

(५) जच्चन्धउपमा

१३. "सेय्यथापि, राजञ्ञ, जच्चन्धो पुरिसो न पस्सेय्य कण्हसुक्कानि रूपानि, न पस्सेय्य नीलकानि रूपानि, न पस्सेय्य पीतकानि रूपानि, न पस्सेय्य लोहितकानि रूपानि, न पस्सेय्य मञ्जिट्ठकानि रूपानि, न पस्सेय्य समविसमं, न पस्सेय्य तारकानि रूपानि, न पस्सेय्य चन्दिमसुरिये। सो एवं वदेय्य—'नत्थि कण्हसुक्कानि रूपानि, नत्थि कण्हसुक्कानं रूपानं [N.245] दस्सावी, नत्थि नीलकानि रूपानि, नत्थि नीलकानं रूपानं दस्सावी, नत्थि पीतकानि रूपानि,

---

(४) त्रायस्त्रिंशदेवोपमा– १२. "तो राजन्य! मैं तुम्हीं से पूछता हूँ– राजन्य! जो मनुष्यों का सौ वर्ष का काल है वह त्रायस्त्रिश देवों का एक दिन–रात है, वैसे तीस दिन–रात का (उनका) एक मास होता है। वैसे बारह मास का एक संवत्सर (वर्ष) होता है। वैसे देव–सहस्र वर्ष त्रायस्त्रिंश देवों का आयु:परिमाण है। जो तुम्हारे मित्र, अमात्य....मरने के बाद त्रायस्त्रिश देवों के साथ सुगतिमय स्वर्गलोक में पहुँचे हैं, उन लोगों के मन में यह बात आ जाय कि एक दो या तीन दिन इन दिव्य कामभोगों का सुखानुभव कर लें तब हम पायासि राजन्य के पास जाकर बता देंगे कि यह लोक भी है....। तब वे आकर तुम्हें बतावें कि यह लोक भी है, पर लोक भी है....।

"भो काश्यप! ऐसा नहीं, तब तक तो हम लोगों का बहुत पहले ही यह देहपात हो चुका होगा! और फिर आप काश्यप से यह कौन कहता है कि वे त्रायस्त्रिश देव इतने अधिक दीर्घायु हैं। मैं आप काश्यप की इस बात पर विश्वास नहीं करता कि ये त्रायस्त्रिश देव होते भी हैं?"

(५) जन्मान्धपुरुषोपमा– १३. "राजन्य! जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष न काला, न श्वेत, न नीला, न पीला, न लाल, न मञ्जीठ वर्ण, न ऊँचा, न नीचा, न यहाँ चन्द्र, न सूर्य ही देखे। (और) वह यह कहे– 'ये काले, श्वेत....मञ्जीठ वर्ण होते ही नहीं, न यह भूमि ऊँची है न नीची, न यहाँ चन्द्रमा है न सूर्य। न उन्हें देखने

नत्थि पीतकानं रूपानं दस्सावी, नत्थि लोहितकानि रूपानि, नत्थि लोहितकानं रूपानं दस्सावी, नत्थि मञ्जिट्ठकानि रूपानि, नत्थि मञ्जिट्ठकानं रूपानं दस्सावी, नत्थि समविसमं, नत्थि समविसमस्स दस्सावी, नत्थि तारकानि रूपानि, नत्थि तारकानं रूपानं दस्सावी, नत्थि चन्दिमसुरिया, नत्थि चन्दिमसुरियानं दस्सावी। अहमेतं न जानामि अहमेतं न पस्सामि तस्मा तं नत्थी' ति। सम्मा नु खो सो, राजञ्ञ, वदमानो वदेय्या'' ति?

''नो हिदं, भो कस्सप। अत्थि कण्हसुक्कानि रूपानि, अत्थि कण्हसुक्कानं रूपानं दस्सावी, अत्थि नीलकानि रूपानि, अत्थि नीलकानं रूपानं दस्सावी.... पे०....अत्थि समविसमं, [R.329] अत्थि समविसमस्स दस्सावी, अत्थि तारकानि रूपानि, अत्थि तारकानं रूपानं दस्सावी, अत्थि चन्दिमसुरिया, अत्थि चन्दिमसुरियानं दस्सावी। 'अहमेतं न जानामि अहमेतं न पस्सामि तस्मा तं नत्थी' ति न हि सो, भो कस्सप, सम्मा वदमानो वदेय्या'' ति।

''एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, जच्चन्धूपमो मञ्ञे पटिभासि यं मं त्वं एवं वदेसि—'को पनेतं भोतो कस्सपस्स आरोचेति—अत्थि देवा तावतिंसा ति वा, एवंदीघायुका देवा तावतिंसा ति वा? न मयं भोतो कस्सपस्स सद्दहाम—अत्थि देवा तावतिंसा ति वा एवंदीघायुका देवा तावतिंसा ति वा' ति।

''न खो, राजञ्ञ, एवं परो लोको दट्ठब्बो यथा त्वं मञ्ञसि इमिना मंसचक्खुना। [B.263] ये खो ते, राजञ्ञ, समणब्राह्मणा अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति ते तत्थ अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ता दिब्बचक्खुं विसोधेन्ति। ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन इमं चेव लोकं पस्सन्ति परं च सत्ते च ओपपातिके। एवं च खो, राजञ्ञ, परो लोको दट्ठब्बो; नत्वेव यथा त्वं मञ्ञसि इमिना मंसचक्खुना। इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति। (५)

वाला ही कोई है। 'मैं उसे नहीं जानता, मैं उसे नहीं देखता, अतः वह नहीं है'– क्या राजन्य! उसका यह कहना ठीक है?''

''नहीं, भो काश्यप! ये काले, श्वेत....मजीठ वर्ण तो प्रत्यक्ष हैं, इनके देखने वाले भी हैं, यह पृथ्वी भी सम–विषम है ही, चन्द्रमा और सूर्य भी दीख ही रहे हैं। अतः 'मैं उसे नहीं जानता हूँ, मैं उसे नहीं देखता हूँ, अतः वह नहीं है'– ऐसा उसका कहना उचित नहीं है।''

''इस तरह से तो, राजन्य! तुम भी उसी जन्मान्ध की तरह लग रहे हो! तुम्हारा भी कहना है कि 'वे त्रायस्त्रिंश देव हैं भी कि नहीं, यदि हों भी तो उनकी इतनी लम्बी आयु है कि नहीं। अतः काश्यप आप की इस बात पर विश्वास नहीं होता कि वे त्रायस्त्रिंश देव हैं, और हैं तो उनकी इतनी लम्बी आयु है।'

''राजन्य! जैसा तुम मानते हो, वह परलोक इस मांसचक्षुओं से देखा ही नहीं जा सकता। राजन्य! जो श्रमण–ब्राह्मण निर्जन एकान्त वनों में रहते हैं, वे वहाँ प्रसन्नचित्त रहते हुए संयत मन से दिव्य चक्षु (ज्ञान) पाते हैं। वे उस अलौकिक दिव्य चक्षु से इस लोक को, परलोक को....देखते हैं। इस तरह, राजन्य! परलोक के विषय में जाना जाता है, देखा जाता है। न कि इन मांसचक्षुओं से, जैसा कि तुम मान बैठे हो। राजन्य! इस कारण से भी तुम्हें मान लेना चाहिये– 'यह लोक है, परलोक भी है....।'

१४. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो एवं मे एत्थ [N.246, R.330] होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो....पे०....अत्थि, भो कस्सप, परियायो ....पे०....यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

"इदाहं, भो कस्सप, पस्सामि समणब्राह्मणे सीलवन्ते कल्याणधम्मे जीवितुकामे अमरितुकामे सुखकामे दुक्खपटिकूले। तस्स मय्हं, भो कस्सप, एवं होति—'सचे खो इमे भोन्तो समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा एवं जानेय्युं—इतो नो मतानं सेय्यो भविस्सती' ति, इदानिमे भोन्तो समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा विसं वा खादेय्युं सत्थं वा आहरेय्युं उब्बन्धित्वा वा कालङ्करेय्युं पपाते वा पपतेय्युं। यस्मा च खो इमे भोन्तो समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा न एवं जानन्ति—'इतो नो मतानं सेय्यो भविस्सती' ति, तस्मा इमे भोन्तो समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा जीवितुकामा अमरितुकामा सुखकामा दुक्खपटिकूला अत्तानं न मारेन्ति। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

(६) गब्भिनीउपमा

१५. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स द्वे पजापतियो अहेसुं। एकिस्सा [B.264] पुत्तो अहोसि दसवस्सुद्देसिको वा द्वादसवस्सुद्देसिको वा, एका गब्भिनी उपविजञ्ञा। अथ

---

१४. "भो काश्यप! आप जो चाहे कहते रहें; मेरी तो अब भी यह दृढ़ धारणा बनी हुई है कि यह लोक नहीं है, परलोक भी नहीं है।

"राजन्य! तुम्हारी इस धारणा को सिद्ध करने में तुम्हारे पास कोई अन्य तर्क है?"

"हाँ है, भो काश्यप!...."

"वह क्या, राजन्य?...."

धर्मात्मा आस्तिकों में मुमूर्षा का अभाव— "भो काश्यप! मैं ऐसे सदाचारी तथा पुण्यात्मा श्रमण-ब्राह्मणों को देखता हूँ जो जीने की इच्छा रखते हैं, मरना नहीं चाहते; दुःख से दूर रहकर सदा सुख चाहते हैं। भो काश्यप! तब मेरे मन में यह होता है— 'यदि ये शीलवान् पुण्यकर्ता श्रमण-ब्राह्मण यह जानते कि 'यहाँ से हमारा देहपात होने के बाद हमें सुख (श्रेयस्) अवश्य मिलेगा' तो ये इसी समय विष खाकर, छुरा भोंककर, या किसी गड्ढे में गिरकर अथवा फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेते। क्योंकि ये....ऐसा नहीं जानते कि मरने पर सुख ही मिलेगा, इसीलिये ये विष खाकर....आत्महत्या नहीं करते। भो काश्यप! इससे भी प्रमाणित होता है कि न यह लोक है....न कर्मफल विपाक।"

(६) गर्भिणी की उपमा— १५. "राजन्य! तो मैं तुम्हें (यहाँ भी) एक उपमा सुनाता हूँ; क्योंकि उपमा से कोई बात सरलता से समझ में आ जाती है।

'राजन्य! पहले कभी किसी ब्राह्मण को दो पत्नियाँ थीं। पहली को दस-बारह वर्ष का एक पुत्र

खो सो ब्राह्मणो कालमकासि। अथ खो सो माणवको मातुसपत्तिं एतदवोच—यमिदं, भोति, [R.331] धनं वा धञ्ञं वा रजतं वा जातरूपं वा सब्बं तं मय्हं; नत्थि तुय्हेत्थ किञ्चि; पितु मे भोति, दायज्जं निय्यादेही ति। एवं वुत्ते, सा ब्राह्मणी तं माणवकं एतदवोच—आगमेहि ताव, तात याव विजायामि; सचे कुमारको भविस्सति तस्स पि एकदेसो भविस्सति; सचे कुमारिका [N.247] भविस्सति सा पि ते ओपभोग्गा भविस्सती ति। दुतियं पि खो सो माणवको मातुसपत्तिं एतदवोच—यमिदं, भोति, धनं वा धञ्ञं वा रजतं वा जातरूपं वा सब्बं तं मय्हं; नत्थि तुय्हेत्थ किञ्चि; पितु मे, भोति, दायज्जं निय्यादेही ति। दुतियं पि खो सा ब्राह्मणी तं माणवकं एतदवोच—आगमेहि ताव, तात, याव विजायामि; सचे कुमारको भविस्सति तस्स पि एकदेसो भविस्सति; सचे कुमारिका भविस्सति सा पि ते ओपभोग्गा भविस्सती ति। ततियं पि खो सो माणवको मातुसपत्तिं एतदवोच—यमिदं, भोति, धनं वा धञ्ञं वा रजतं वा जातरूपं वा सब्बं मय्हं; नत्थि तुय्हेत्थ किञ्चि; पितु मे, भोति, दायज्जं निय्यादेही ति। अथ खो सा ब्राह्मणी सत्थं गहेत्वा ओवरकं पविसित्वा उदरं ओपादेसि—याव विजायामि, यदि वा कुमारको यदि वा कुमारिका ति। सा अत्तानं चेव जीवितं च गब्भं च सापतेय्यं च विनासेसि'।

"यथा तं बाला अब्यत्ता अनयब्यसनं आपन्ना अयोनिसो दायज्जं गवेसन्ती; एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, बालो अब्यत्तो अनयब्यसनं आपज्जिस्ससि अयोनिसो परलोकं गवेसन्तो; [R.332] सेय्यथापि सा ब्राह्मणी बाला अब्यत्ता अनयब्यसनं आपन्ना अयोनिसो दायज्जं गवेसन्ती। न खो, राजञ्ञ, समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा अपक्कं परिपाचेन्ति; अपि च, परिपाकं आगमेन्ति। पण्डितानं अत्थो हि, राजञ्ञ, समणब्राह्मणानं सीलवन्तानं कल्याणधम्मानं जीवितेन। यथा यथा खो, राजञ्ञ, समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा [B.265] चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति, तथा तथा बहुं पुञ्ञं पसवन्ति, बहुजनहिताय च पटिपज्जन्ति, बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। इमिना पिं खो ते, राजञ्ञ,

---

था और दूसरी गर्भिणी थी उसे निकट भविष्य में सन्तानोत्पत्ति होने वाली थी। इसी बीच ब्राह्मण का देहपात हो गया। तब उस लड़के ने अपनी माँ की सौत (पत्नी) से कहा– 'यह जो धन–धान्य और सोना–चाँदी (पिता जी छोड़कर गये) हैं, सब मेरा है, तुम्हारा कुछ नहीं है। य़ह सब मेरे पिता जी का कमाया हुआ है।' लड़के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह दूसरी ब्राह्मणपत्नी बोली– 'तात! कुछ समय और प्रतीक्षा कर लो। मुझे प्रसव होने वाला है। यदि लड़का होगा तो उसका भी सम्पत्ति में आधा भाग होगा; यदि लड़की होगी तो उसका भी तुम्हें पालन–पोषण करना पड़ेगा।' दूसरी बार भी....पूर्ववत्....तीसरी बार भी उस लड़के ने कहा.... यह सब मेरे पिताजी ने कमाया है।' यह सुनकर उस ब्राह्मणी ने कोई शस्त्र लेकर एकान्त कोठरी में जा, यह सोचकर अपना पेट फाड़ डाला कि 'अभी प्रसव करना चाहिये, चाहे लड़का हो या लड़की।' इस तरह उस मूर्ख ब्राह्मणी ने अपना तथा अपने गर्भस्थ शिशु– दोनों का जीवन नष्ट कर लिया।

"जिस प्रकार मिथ्या ढंग से दाय भाग की इच्छा करती हुई वह मूर्ख स्त्री स्वयं मर गयी और अपना गर्भ भी नष्ट कर लिया; तुम भी परलोक की इच्छा रखते हुए अपनी मूर्खता एवं अविवेक से उसी तरह नाश को प्राप्त होगे, जैसे वह मूर्ख स्त्री....। राजन्य! इसीलिये वे शीलवान् पुण्यात्मा श्रमण–ब्राह्मण अपने अपरिपक्व का पाक नहीं करते, अपितु परिपक्व का प्रकृतितः पाक की प्रतीक्षा करते हैं। राजन्य! उन शीलवान्....के अधिक काल तक जीवित रहने का यही हेतु है। जितनी अधिक उनकी आयु होती हैं,

परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति। (६)

१६. ''किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो एवं मे एत्थ होति—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो....पे०....अत्थि , भो कस्सप, परियायो ....पे०....यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

''इध मे, भो कस्सप, पुरिसा चोरं आगुचारिं गहेत्वा दस्सेन्ति—'अयं ते, [N.248] भन्ते, चोरो, आगुचारी; इमस्स यं इच्छति तं दण्डं पणेही' ति। त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो, इमं पुरिसं जीवन्तं येव कुम्भिया पक्खिपित्वा मुखं पिदहित्वा अल्लेन चम्मेन [R.333] ओनन्धित्वा अल्लाय मत्तिकाय बहलावलेपनं करित्वा उद्धनं आरोपेत्वा अग्गिं देथा' ति। ते मे 'साधू' ति पटिस्सुत्वा तं पुरिसं जीवन्तमेव कुम्भिया पक्खिपित्वा मुखं पिदहित्वा अल्लेन चम्मेन ओनन्धित्वा अल्लाय मत्तिकाय बहलावलेपनं करित्वा उद्धनं आरोपेत्वा अग्गिं देन्ति। यदा मयं जानाम-कालङ्कतो सो पुरिसो ति, अथ नं कुम्भिं आरोपेत्वा उब्भिन्दित्वा मुखं विवरित्वा सणिकं निल्लोकेम—'अप्पेव नामस्स जीवं निक्खमन्तं पस्सेय्यामा' ति। नेवस्स मयं जीवं निक्खमन्तं पस्साम। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' '' ति।

(७) सुपिनकउपमा

१७. ''तेन हि, राजञ्ञ, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं

उतना ही वे दूसरों की सेवा या सहायता एवं हित करके अपना अधिक पुण्य बढ़ाते रहते हैं। यही उनके अधिक जीने की इच्छा का हेतु है, प्रयोजन है। राजन्य! इस तर्क से भी तुम्हें मानना चाहिये कि यह लोक भी है, परलोक भी है....।''

१६. ''भो काश्यप! आप जो भी कहें, परन्तु मेरी तो अभी भी वही दृढ़ धारणा है— न यह लोक है....।

''राजन्य! आप की इस धारणा में कोई और तर्क है....?''

''हाँ है, भो काश्यप!''

''राजन्य! वह क्या है?''

मृत शरीर से जीव के जाने का चिह्न— ''भो काश्यप! मेरे कर्मचारी किसी अपराधी चौर को पकड़कर मेरे पास लावें— 'स्वामिन्! यह आपका अपराधी है, इसे जो उचित समझें, दण्ड दें।' उन्हें मैं कहता हूँ— 'इस पुरुष को, जीवित ही, किसी बड़े भाण्ड (घड़े) में डाल, मुँह बन्दकर, गीले चमड़े से लपेट कर, उस पर चिकनी मिट्टी का लेप कर, चूल्हे पर रखकर अग्नि लगा दो।' वे कर्मचारी 'ठीक है श्रीमन्' कहकर उस अपराधी को, जीते ही,....अग्नि लगा दें। जब हम जान लें कि 'अब पुरुष मर गया होगा'— हम उस भाण्ड को चूल्हे से उतार लें, और उसे खोलकर देखें कि 'उस पुरुष में से निकला जीव कितना बड़ा है!' किन्तु उस जीव को निकलते हुए नहीं देखते। हे काश्यप! इस कारण भी हम मानते हैं कि न यह लोक है, न परलोक.... न सुकृत दुष्कृत कर्मों का कोई फल।''

ब्याकरेय्यासि। अभिजानासि नो त्वं, राजञ्ञ, दिवा सेय्यं उपगतो सुपिनकं पस्सित्वा आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं'' ति?

''अभिजानामहं, भो कस्सप, दिवासेय्यं उपगतो सुपिनकं पस्सिता आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं'' ति।

[B.266] ''रक्खन्ति तं तम्हि समये खुज्जा पि वामनका पि वेलासिका पि कोमारिका पी'' ति?

''एवं, भो कस्सप, रक्खन्ति तम्हि समये खुज्जा पि वामनका पि वेलासिका पि कोमारिका पी'' ति।

''अपि नु ता तुय्हं जीवं पस्सन्ति पविसन्तं वा निक्खमन्तं वा'' ति?

[B.266] ''नो हिदं, भो कस्सप''।

''ता हि नाम, राजञ्ञ, तुय्हं जीवन्तस्स जीवन्तियो जीवं न पस्सिस्सन्ति पविसन्तं वा निक्खमन्तं वा; किं पन त्वं कालङ्कतस्स जीवं पस्सिस्ससि पविसन्तं वा निक्खमन्तं वा! इमिना [N.249] पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

१८. ''किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह; अथ खो एवं मे एत्थ होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो.... अत्थि, भो कस्सप, परियायो ....पे०.... यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

''इध मे, भो कस्सप, पुरिसा चोरं आगुचारिं गहेत्वा दस्सेन्ति—'अयं ते, भन्ते, चोरो आगुचारी; इमस्स यं इच्छसि यं इच्छति तं दण्डं पणेही' ति। त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो,

---

(७) **स्वाप्निकोपमा**– १७. ''राजन्य! तो मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, जैसा उचित समझो उत्तर दो। राजन्य! तुमने कभी दिन में सोते समय, रमणीय आराम, रमणीय वन, रमणीय भूमि या रमणीय पुष्करिणी देखी है?''

''हाँ, काश्यप! देखी है।''

''क्या उस समय कुबड़े (कुब्ज), बौने, स्त्रियाँ, कुमारियाँ तुम्हारे पहरे पर नहीं रहतीं?''

''हाँ, काश्यप!....रहती तो हैं।''

''वे क्या तुम्हारे जीव को (उद्यान के लिये) निकलते या अन्दर आते देखते हैं?

''नहीं, भो काश्यप!''

''राजन्य! जब तुम्हारे जीवित के जीव को निकलते और भीतर आते हुए कोई नहीं देख सकता तो तुम मरे हुए जीव को निकलते–भीतर आते कैसे देख सकते हो? राजन्य! इस कारण से तुम अपनी यह धारणा बदल सकते हो– यह जीव नहीं है, परलोक भी नहीं है....।''

१८. ''भो काश्यप! आप जो भी कहें, मेरी धारणा तो अब भी वही है कि यह लोक, न परलोक....।''

''राजन्य! इसमें अब भी कोई तर्क है? या यह केवल तुम्हारी कपोलकल्पना है?''

''इसमें तर्क भी है, भो काश्यप!'' ''राजन्य! वह तर्क क्या है?''

''भो काश्यप! ये मेरे कर्मचारी किसी अपराधी चौर को पकड़कर....जो उचित समझें दण्ड दें।

इमं पुरिसं जीवन्तं येव तुलाय तुलेत्वा जियाय अनस्सासकं मारेत्वा पुनदेव तुलाय तुलेथा' ति। ते मे 'साधू' ति पटिस्सुत्वा तं पुरिसं जीवन्तं येव तुलाय तुलेत्वा जियाय अनस्सासकं मारेत्वा पुनदेव तुलाय तुलेन्ति। यदा सो जीवति तदा लहुतरो च होति मुदुतरो च कम्मञ्ञतरो च; यदा पन सो कालङ्कतो होति तदा गरुतरो च होति पत्थिन्नतरो च अकम्मञ्ञतरो च। अयं पि खो, भो, कस्सप, परियायो, येन मे परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

(८) सन्तत्तअयोगुळउपमा

१९. ''तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू [R.335] पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति। सेय्यथापि, राजञ्ञ, पुरिसो दिवसं सन्तत्तं अयोगुळं आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं तुलाय तुलेय्य, तमेनं अपरेन समयेन सीतं निब्बुतं [B.267] तुलाय तुलेय्य, कदा नु खो सो अयोगुळो लहुतरो वा होति मुदुतरो वा कम्मञ्ञतरो वा—यदा वा आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो यदा वा सीतो निब्बुतो'' ति?

''यदा सो, भो कस्सप, अयोगुळो तेजोसहगतो च होति वायोसहगतो च आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो तदा लहुतरो च होति मुदुतरो च कम्मञ्ञतरो च। यदा पन सो अयोगुळो नेव तेजोसहगतो होति न वायोसहगतो सीतो निब्बुतो तदा गरुतरो च होति पत्थिन्नतरो च अकम्मञ्ञतरो चा'' ति।

''एवमेव खो, राजञ्ञ, यदायं कायो आयुसहगतो च होति उस्मासहगतो [N.250] च विञ्ञाणसहगतो च तदा लहुतरो च होति मुदुतरो च कम्मञ्ञतरो च। यदा पनायं कायो नेव आयुसहगतो होति न उस्मासहगतो न विञ्ञाणसहगतो, तदा गरुतरो च होति पत्थिन्नतरो च अकम्मञ्ञतरो च। इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—इति पि अत्थि परो लोको, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको'' ति।

मैं उनसे कहता हूँ– 'इसे जीते हुए को पहले तराजू पर तौल लो, फिर रस्सी (ज्या) से गला घोटकर मार डालो। और फिर तराजू पर तौलो।' जब वे कर्मचारी मुझे ''जैसी आप की आज्ञा'' कहकर उसे पहले तराजू पर तौलकर, फिर रस्सी से गला कसते हुए मार कर फिर तराजू पर तौलते हैं। तब ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि जब वह जीवित तौला जाता है तो वह अल्प भार वाला (हलका) और मृदु होता है और मरने पर उसका शव भारी और कठोर हो जाता है। काश्यप! यह भी एक कारण है जिससे मैं मानता हूँ कि यह लोक नहीं है, न परलोक ही है....न कर्मफल है।''

(८) **तप्तलौहपिण्डोपमा**– १९. ''तो, राजन्य! मैं तुम्हें इस पर एक दृष्टान्त सुनाता हूँ, क्योंकि....शीघ्र समझ में आ जाता है। राजन्य! जैसे कोई पुरुष दिन भर अग्नि में सन्तप्त, आदीप्त, सम्प्रज्वलित (दहकते हुए) लौह पिण्ड को तराजू पर तौले। फिर उसे ठण्डा होने पर, पुनः तौले। तो वह लौहपिण्ड कब अल्पभार होगा? जब आदीप्त है तब? या फिर जब वह ठण्ढा हो गया है तब?''

''भो काश्यप! जब लौहपिण्ड अग्निसहगत (तप्त) रहता है तो अल्पभार रहता है और ठण्ढा (वायु सहगत) होने पर उसका भार बढ़ जाता है।''

''इसी तरह, राजन्य! जब यह शरीर आयु, श्वास-प्रश्वास एवं विज्ञान के साथ रहता है तो अल्पभार होता है और जब यह उक्त तीनों पदार्थों से रहित रहता है तो भारी हो जाता है। राजन्य! इस

२०. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह; अथ खो एवं मे एत्थ होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति।

अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो ....पे०....अत्थि, भो कस्सप, परियायो ....पे०....यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

"इध मे, भो कस्सप, पुरिसा चोरं आगुचारिं गहेत्वा दस्सेन्ति—'अयं ते, भन्ते, [R.336] चोरो आगुचारी; इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो, इमं पुरिसं अनुपहच्च छविं च चम्मं च मंसं च न्हारुं च अट्ठिं च अट्ठिमिञ्जं च जीविता वोरोपेथ—अप्पेव नामस्स जीवं निक्खमन्तं पस्सेय्यामा' ति। ते मे 'साधू' ति पटिस्सुत्वा तं पुरिसं अनुपहच्च छविं च ....पे०....जीविता वोरोपेन्ति। यदा सो आमतो होति त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो, इमं पुरिसं उत्तानं निपातेथ—अप्पेव नामस्स जीवं निक्खमन्तं पस्सेय्यामा' ति। ते तं पुरिसं उत्तानं निपातेन्ति। नेवस्स मयं जीवं निक्खमन्तं पस्साम। त्याहं एवं वदामि—[B.268] 'तेन हि, भो, इमं पुरिसं अवकुज्जं निपातेथ....पस्सेन निपातेथ....दुतियेन पस्सेन निपातेथ....उद्धं ठपेथ ....ओमुद्धकं ठपेथ ....पाणिना आकोटेथ....लेड्डुना आकोटेथ.... दण्डेन आकोटेथ .... सत्थेन आकोटेथ ....ओधुनाथ, सन्धुनाथ, निद्धुनाथ—अप्पेव नामस्स जीवं निक्खमन्तं पस्सेयामा' ति। ते तं पुरिसं ओधुनन्ति, सन्धुनन्ति, निद्धुनन्ति। नेवस्स मयं जीवं निक्खमन्तं पस्साम। तस्स तदेव चक्खु होति, ते रूपा, तञ्चायतनं, नप्पटिसंवेदेति। तदेव सोतं होति, ते सद्दा, तञ्चायतनं, नप्पटिसंवेदेति। तदेव घानं होति, ते गन्धा, तञ्चायतनं, नप्पटिसंवेदेति। [R.337] साव जिव्हा होति, ते रसा, तञ्चायतनं, नप्पटिसंवेदेति। स्वेव कायो होति, ते [N.251] फोट्ठब्बा, तञ्चायतनं, नप्पटिसंवेदेति। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे

कारण भी तुम्हें मान लेना चाहिये कि यह लोक भी है, पर-लोक भी है ....और सुकृत-दुष्कृत कर्मफल भी हैं।

२०. "भो काश्यप! आप जो भी कहें, मेरी धारणा तो अब भी वही बनी हुई है कि न यह लोक है, न परलोक ....।"

"राजन्य! आप की इस धारणा में अब भी कोई तर्क है ....?" "हाँ है, काश्यप!" "वह कैसे ?

"भो काश्यप! यहाँ मेरे कोई अनुचर किसी अपराधी चौर को ....पूर्ववत् ....। तब मैं उन्हें आज्ञा दूँ— 'इस पुरुष को विना मारे, चर्म, मांस, हड्डी और मज्जा पृथक्-पृथक् कर दो।' तब वे 'बहुत अच्छा'— कहकर उसे ....कर देते हैं। वह जब मरणासन्न होता है तो मैं उनको यह आज्ञा देता हूँ— 'इस पुरुष को सीधा सुला दो, जिससे मैं इसमें से निकलते जीव को देख सकूँ।' वे उसको सीधा सुला देते हैं, किन्तु हम उसके जीव को निकलते नहीं देखते। पुनः मैं उन नौकरों को आज्ञा देता हूँ— 'इसे उलटा ....करवट, दूसरी करवट ....ऊपर ....सीधा खड़ा करो ....हाथ से पीटो ....ढेलों से मारो ....लाठी से मारो ....शस्त्र से ....हिलाओ ....डुलाओ, जिससे मैं इसमें से निकलते जीव को देख सकूँ।' वे उस पुरुष को ....किन्तु हम उसमें से जीव निकलता नहीं देखते। उसकी वही आँखें होती हैं, वही रूप, वही आयतन; परन्तु वह देख नहीं सकता। वह श्रोत्र, वही शब्द ....परन्तु सुन नहीं सकता। वही नासिका, वही गन्ध ....परन्तु वह सूँघ नहीं सकता। वही जिह्वा, वही रस ....किन्तु स्वाद नहीं ले सकता। वही शरीर, वही स्प्रष्टव्य ....किन्तु स्पर्श नहीं कर सकता। हे काश्यप! इस कारण भी मेरी यह धारणा दृढ़ होती है कि न यह लोक है, न परलोक है ....।

परियायेन एवं होति—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति। (८)

(९) सङ्खधमउपमा

२१. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, अञ्ञतरो सङ्खधमो सङ्खं आदाय पच्चन्तिमं जनपदं अगमासि। सो येन अञ्ञतरो गामो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मज्झे गामस्स ठितो तिक्खुत्तं सङ्खं उपलापेत्वा सङ्खं भूमियं निक्खिपित्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो, राजञ्ञ, तेसं पच्चन्तजनपदमनुस्सानं एतदहोसि—अम्भो, कस्स नु खो एसो सद्दो एवंरजनीयो एवंकमनीयो एवंमदनीयो एवंबन्धनीयो एवंमुच्छनीयो ति! सन्निपतित्वा तं सङ्खधमं एतदवोचुं—'अम्भो, कस्स नु खो एसो सद्दो एवंरजनीयो एवंकमनीयो एवंमदनीयो एवंबन्धनीयो एवंमुच्छनीयो' ति!

'एसो खो, भो, सङ्खो नाम, यस्सेसो सद्दो एवंरजनीयो एवंकमनीयो एवंमदनीयो एवंबन्धनीयो एवंमुच्छनीयो' ति।

"ते तं सङ्खं उत्तानं निपातेसुं—'वदेहि, भो सङ्ख, वदेहि, भो सङ्खा' ति। नेव सो सङ्खो सद्दमकासि। ते तं सङ्खं अवकुज्जं निपातेसुं....पस्सेन निपातेसुं ....दुतियेन पस्सेन निपातेसुं ....उद्धं ठपेसुं ....ओमुद्धकं ठपेसुं ....पाणिना आकोटेसुं ....लेड्डुना आकोटेसुं .... [R.338] दण्डेन आकोटेसुं .... सत्थेन आकोटेसुं .... ओधुनिंसु, सन्धुनिंसु, निद्धुनिंसु—'वदेहि, भो सङ्ख, वदेहि, भो सङ्खा' ति। नेव सङ्खो सद्दमकासि। अथ खो, राजञ्ञ, तस्स सङ्ख-[B.269] धमस्स एतदहोसि—'याव बाला इमे पच्चन्तजनपदमनुस्सा। कथं हि नाम अयोनिसो सङ्खसद्दं गवेसिस्सन्ती' ति! तेसं पेक्खमानानं सङ्खं गहेत्वा तिक्खत्तुं सङ्खं उपलापेत्वा सङ्खं आदाय पक्कामि। अथ खो, राजञ्ञ, तेसं पच्चन्तजनपदानं मनुस्सानं एतदहोसि—'यदा किर भो, अयं सङ्खो नाम पुरिससहगतो च होति वायामसहगतो च वायुसहगतो च तदायं सङ्खो सद्दं [N.252]

---

(९) शङ्खवादकोपमा— २१. तो, राजन्य! मैं एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। कभी कभी दृष्टान्त के सहारे से भी बात शीघ्र समझ में आ जाती है। राजन्य! पहले कभी कोई शङ्ख बजाने वाला एक शङ्ख लेकर नगर के बाहर किसी ग्राम में गया। वहाँ जाकर बीच ग्राम में खड़े होकर तीन बार, शङ्ख बजाकर, उसे भूमि पर पटक कर एक ओर बैठ गया। तब, राजन्य! उस ग्राम के वासियों को यह हुआ— 'अरे! ऐसा कर्णमधुर, सुन्दर, लुभावना, चित्ताकर्षक और मोहक शब्द किसका है?' वे सभी एकत्र होकर उस शङ्ख बजाने वाले के पास आये और उससे पूछा— 'अरे! ऐसा कर्णप्रिय....शब्द किसका है?'

उस आदमी ने कहा— 'ऐसा कर्णप्रिय....शब्द इस शङ्ख का है।'

तब वे ग्रामवासी उस शङ्ख को सीधा रखकर कहा— 'अरे शङ्ख बजो, बजो।' परन्तु वह शङ्ख नहीं बजा। उसको उलटा....एक करवट....दूसरी करवट....पूर्ववत्....शस्त्र से ठोका, बजाया, हिलाया....पर उस शङ्ख ने इस दशा में कोई शब्द नहीं किया। तब उस शङ्ख बजाने वाले को विचार हुआ— 'ये ग्रामवासी मुझे मूर्ख ज्ञात होते हैं। इन्हें सही ढंग से शङ्ख बजाना नहीं आता।' उसने उन लोगों के सामने ही शङ्ख को उठाया, बजाया और वहाँ से चल दिया। राजन्य! तब उन गाँव वालों के मन में हुआ— 'यह शङ्ख जब पुरुष, उसका प्रयत्न और वायु के साथ होता है, तभी बजता है। जब यह समवाय नहीं होता तो यह नहीं

करोति; यदा पनायं सङ्खो नेव पुरिससहगतो होति न वायामसहगतो न वायुसहगतो, नायं सङ्खो सद्दं करोती' ति। एवमेव खो, राजञ्ञ, यदायं कायो आयुसहगतो च होति उस्मासहगतो च विञ्ञाणसहगतो च तदा अभिक्कमति पि पटिक्कमति पि तिट्ठति पि निसीदति पि सेय्यं पि कप्पेति, चक्खुना पि रूपं पस्सति सोतेन पि सद्दं सुणाति घानेन पि गन्धं घायति जिव्हाय पि रसं सायति कायेन पि फोट्ठब्बं फुसति मनसा पि धम्मं विजानाति। यदा पनायं कायो नेव आयुसहगतो होति न उस्मासहगतो न विञ्ञाणसहगतो तदा नेव अभिक्कमति न पटिक्कमति न तिट्ठति निसीदति न सेय्यं कप्पेति, चक्खुना पि रूपं न पस्सति सोतेन पि सद्दं न सुणाति घानेन पि गन्धं न घायति जिव्हाय पि रसं न सायति कायेन पि फोट्ठब्बं न फुसति मनसा पि धम्मं न विजानाति। इमिना पि खो ते, राजञ्ञ, परियायेन एवं होतु—'इति पि अत्थि परो लोको अत्थि सत्ता ओपपातिका अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' '' ति।

२२. ''किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ ख़ो एवं मे एत्थ होति—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' '' ति। [R.339] अत्थि पन, राजञ्ञ, परियायो .... पे०.... अत्थि, भो कस्सप, परियायो ....पे०....यथा कथं विय, राजञ्ञा ति?

''इध मे, भो कस्सप, पुरिसा चोरं आगुचारिं गहेत्वा दस्सेन्ति—'अयं ते, भन्ते, चोरो [B.270] आगुचारी। यं इच्छति तं दण्डं पणेही' ति। त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो, इमस्स पुरिसस्स छविं छिन्दथ—अप्पेव नामस्स जीवं पस्सेय्यामा' ति। ते तस्स पुरिसस्स छविं छिन्दन्ति। नेवस्स मयं जीवं पस्साम। त्याहं एवं वदामि—'तेन हि, भो, इमस्स पुरिसस्स चम्मं छिन्दथ ....मंसं छिन्दथ ....न्हारुं छिन्दथ .... अट्ठिं छिन्दथ ....अट्ठिमिञ्जं छिन्दथ—अप्पेव नामस्स जीवं पस्सेयामा' ति। ते तस्स पुरिसस्स अट्ठिमिञ्जं छिन्दन्ति। नेवस्स मयं जीवं पस्साम। अयं पि खो, भो कस्सप, परियायो येन मे परियायेन एवं होति—'इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' '' ति। (९)

बजता'। राजन्य! उसी तरह जब यह शरीर आयु, श्वास-प्रश्वास (ऊष्मा) एवं विज्ञान के साथ होता है तभी यह हिलता है, डोलता है, खड़ा रहता है, बैठता है, सोता है, जागता है। चक्षु से रूप देखता है, श्रोत्र से शब्द सुनता है, नासिका से सूँघता है, जिह्वा से स्वाद लेता है, काया से स्पर्श करता है, मन से धर्मों का ज्ञान करता है। जब यह शरीर न आयु के साथ....होता है तब न हिलता है....न मन से धर्मों को जान पाता है। राजन्य! इस कारण भी तुम्हें मानना चाहिये कि यह लोक भी है परलोक भी है....।''

२२. ''आप काश्यप! जो भी कहें, परन्तु मेरी धारणा तो अभी भी वही है, जो पहले थी कि यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है....।

''राजन्य! इसमें कोई तर्क....पूर्ववत्....वह कैसे?''

''भो काश्यप! मेरे नौकर किसी चौर को....। उन्हें मैं ऐसी आज्ञा देता हूँ– 'इस पुरुष का चर्म उतारो, ताकि मैं इसके जीव को देख सकूँ।' वे उस का चर्म उतार देते हैं, परन्तु उसका जीव नहीं दिखायी देता। फिर उन्हें कहता हूँ– 'इसका मांस....स्नायु....अस्थि....मज्जा काट डालो, इसका जीव देखूँगा' वे उसका.... काट डालते हैं, परन्तु उसमें हमें कोई नहीं दिखायी देता। भो काश्यप! इस कारण से भी हम मानते हैं कि यह लोक नहीं है, परलोक भी नहीं है....।''

(१०) अग्गिकजटिलउपमा

२३. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि, उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू [N.253] पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, अञ्ञतरो अग्गिको जटिलो अरञ्ञायतने पण्णकुटिया वसति। अथ खो, राजञ्ञ, अञ्ञतरो जनपदे सत्थो वुट्ठासि। अथ खो सो सत्थो तस्स अग्गिकस्स जटिलस्स अस्समस्स सामन्ता एकरत्तिं वसित्वा पक्कामि। अथ खो, राजञ्ञ, तस्स [R.340] अग्गिकस्स जटिलस्स एतदहोसि—यन्नूनाहं येन सो सत्थवासो तेनुपसङ्कमेय्यं—अप्पेव नामेत्थ किञ्चि उपकरणं अधिगच्छेय्यं ति! अथ खो सो अग्गिको जटिलो कालस्सेव वुट्ठाय येन सो सत्थवासो तेनपुसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अद्दस तस्मिं सत्थवासे दहरं कुमारं मन्दं उत्तानसेय्यकं छड्डितं। दिस्वानस्स एतदहोसि—न खो मेतं पतिरूपं यं मे पेक्खमानस्स मनुस्सभूतो कालङ्करेय्य; यन्नूनाहं इमं दारकं अस्समं नेत्वा आपादेय्यं पोसेय्यं वड्ढेय्यं ति। अथ खो सो अग्गिको जटिलो तं दारकं अस्समं नेत्वा आपादेसि पोसेसि वड्ढेसि।

"यदा सो दारको दसवस्सुद्देसिको वा होति द्वादसवस्सुद्देसिको वा, अथ खो तस्स अग्गिकस्स जटिलस्स जनपदे किञ्चिदेव करणीयं उप्पज्जि। अथ खो सो अग्गिको जटिलो तं दारकं एतदवोच—इच्छामहं, तात, जनपदं गन्तुं; अग्गिं, तात, परिचरेय्यासि; मा च ते अग्गि निब्बायि; सचे च ते अग्गि निब्बायेय्य, अयं वासी इमानि कट्ठानि इदं अरणिसहितं, [B.271] अग्गिं निब्बत्तेत्वा परिचरेय्यासी ति। अथ खो सो अग्गिको जटिलो तं दारकं एवं अनुसासित्वा जनपदं अगमासि। तस्स खिड्डापसुतस्स अग्गि निब्बायि। अथ खो तस्स दारकस्स एतदहोसि—पिता खो मं एवं अवच—अग्गिं, तात, परिचरेय्यासि; मा च ते अग्गि निब्बायि; सचे च ते

---

(१०) आग्निक जटिल की उपमा– २३. "तो, राजन्य! इस पर भी मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।

'पहले कभी कोई अग्नि–उपासक जटाधारी साधु जंगल में कुटी बनाकर रहता था। राजन्य! कभी उस जंगल में व्यापारियों का एक साथ (समूह) आया। वे व्यापारी उस अग्नि–उपासक जटिल के आश्रम के पास एक रात रह कर चले गये। राजन्य! तब उस जटिल के मन में यह आया– "क्यों न मैं व्यापारियों के ठहरने के उस स्थान पर चलूँ; हो सकता है, मेरे काम में आने योग्य उनका कुछ सामान छूटा हो, वह मुझे मिल जाय।' तब वह अग्नि–उपासक जटिल प्रातः,समय से ही उठकर,उस स्थान पर गया, जहाँ वे व्यापारी ठहरे थे। उस स्थान पर जाने पर उस जटिल को एक छोटा सा शिशु उतान लेटा हुआ दिखायी दिया। उसे देखकर जटिल के मन में यह हुआ– 'यह मेरे लिये उचित नहीं है कि कोई मानव शिशु मेरे देखते हुए काल का ग्रास हो जाय। अतः इस शिशु को मैं अपनी कुटिया पर ले चलूँ और पाल–पोष कर बड़ा कर लूँ।' तब उस जटिल ने उस शिशु को कुटिया में ले जाकर पाल–पोष कर बड़ा कर लिया।

"जब वह लड़का दश या बारह वर्ष का हुआ, तब वह जटिल किसी दिन कोई कार्यविशेष से पास के गाँव में जाने लगा। जाने से पूर्व उसने उस लड़के को समझाया– 'मैं किसी कार्यविशेष से दूसरे गाँव जा रहा हूँ। मेरे पीछे से तुम इस अग्नि का ध्यान रखना, यह बुझने न पावे। यदि अग्नि बुझने लगे तो यह कुल्हाड़ी पड़ी है, ये लकड़ियाँ भी हैं, ये दोनों अरणि हैं, इनके सहारे से अग्नि को प्रज्वलित रखना।' वह जटिल लड़के को इस तरह समझा कर पास के गाँव चला गया। पीछे से, बालक के खेल में लगे रहने

अग्गि निब्बायेय्य, अयं वासी इमानि कट्ठानि इदं अरणिसहितं, अग्गिं निब्बत्तेत्वा अग्गिं परिचरेय्यासी ति। यन्नूनाहं अग्गिं निब्बत्तेत्वा अग्गिं परिचरेय्यं ति।

[R.341] अथ खो सो दारको अरणिसहितं वासिया तच्छि—अप्पेव नाम अग्गिं अधिगच्छेय्यं ति। नेव सो अग्गिं अधिगच्छि। अरणिसहितं द्विधा फालेसि, तिधा फालेसि, चतुधा फालेसि, पञ्चधा फालेसि, दसधा फालेसि, सतधा फालेसि, सकलिकं सकलिकं अकासि, सकलिकं सकलिकं करित्वा उदुक्खले कोट्टेसि, उदुक्खले कोट्टेत्वा महावाते ओपुनि— अप्पेव नाम [N.254] अग्गिं अधिगच्छेय्यं ति। नेव सो अग्गिं अधिगच्छि।

"अथ खो सो अग्गिको जटिलो जनपदे तं करणीयं तीरेत्वा येन सको अस्समो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं दारकं एतदवोच—कच्चि ते, तात, अग्गि न निब्बुतो ति? इध मे, तात, खिड्डापसुतस्स अग्गि निब्बायि। तस्स मे एतदहोसि—पिता खो मे एवं अवच—अग्गिं, तात, परिचरेय्यासि; मा च ते, तात, अग्गि निब्बायि; सचे च ते अग्गि निब्बायेय्य, अयं वासी इमानि कट्ठानि इदं अरणिसहितं, अग्गिं निब्बत्तेत्वा अग्गिं परिचरेय्यासी ति। यन्नूनाहं अग्गिं निब्बत्तेत्वा अग्गिं परिचरेय्यं ति। अथ ख्वाहं, तात, अरणिसहितं वासिया तच्छिं—अप्पेव नाम अग्गिं अधिगच्छेय्यं ति। नेवाहं अग्गिं अधिगच्छिं। अरणिसहितं द्विधा फालेसिं, तिधा फालेसिं, चतुधा फालेसिं, पञ्चधा फालेसिं, दसधा फालेसिं, सतधा फालेसिं, सकलिकं सकलिकं अकासिं, सकलिकं सकलिकं करित्वा उदुक्खले कोट्टेसिं, उदुक्खले कोट्टेत्वा महावाते ओपुनिं—अप्पेव नाम अग्गिं अधिगच्छेय्यं ति। नेवाहं अग्गिं अधिगच्छिं ति।

"अथ खो तस्स अग्गिकस्स जटिलस्स एतदहोसि—याव बालो अयं द्वारको अब्यत्तो। कथं हि नाम अयोनिसो अग्गिं गवेसिस्सती ति! तस्स पेक्खमानस्स अरणिसहितं गहेत्वा [B.272, R.342] अग्गिं निब्बत्तेत्वा तं दारकं एतदवोच—एवं खो, तात, अग्गि निब्बत्तेतब्बो न त्वेव यथा त्वं बालो अब्यत्तो अयोनिसो अग्गिं गवेसी' ति।

के कारण, अग्नि बुझ गयी। जब लड़के को उसका ध्यान आया तो उसने सोचा– 'पिताजी कह कर गये थे कि अग्नि बुझने न पावे। यदि किसी कारण से बुझ ही जाय तो यह कुल्हाड़ी, ये लकड़ियाँ, ये अरणियाँ– इनके सहारे से अग्नि जला लेना। क्यों न मैं अग्नि बनाकर पुनः प्रज्वलित कर लूँ।' तब उसने उस अरणि-युग्म के कुल्हाड़ी की सहायता से दो...तीन...चार....कई टुकड़े कर डाले, परन्तु अग्नि नहीं जल पायी। फिर उसने उन टुकड़ों की और छोटा बनाकर ऊखल में डाल कर कूटा, कूटकर हवा में उड़ा दिया कि किसी तरह अग्नि जल जाय। परन्तु अग्नि को नहीं जलना था, नहीं जली।

"तब वह जटिल अपना कार्य समाप्त कर ग्राम से अपनी कुटिया पर वापस लौटा तो उसने अग्नि को बुझा पाया। तब उसने आते ही लड़के से पूछा– 'तात! अग्नि बुझी तो नहीं?' लड़के ने बताया– 'हाँ, पिताजी! आप के जाने के बाद, मेरे खेल में लगे रहने के कारण, अग्नि बुझ गयी। तब मैंने सोचा कि पिताजी कहकर गये थे...पूर्ववत्....अग्नि को नहीं जलना था नहीं जली।'

"तब उस जटिल साधु के समझ में आया कि यह बालक नादान एवं मूर्ख है। इसको अग्नि जलाने की विधि का ज्ञान नहीं है। फिर उस जटिल साधु ने उस लड़के को दिखाते हुए अरणियों से अग्नि उत्पन्न कर उस लड़के से कहा– 'तात! अग्नि इस विधि से उत्पन्न की जाती है, उस अनुचित विधि से नहीं, जिससे तुम उत्पन्न कर रहे थे।

"एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, बालो अब्यत्तो अयोनिसो परलोकं गवेसिस्ससि। पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं! पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं! मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति।

२४. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो नेवाहं सक्कोमि इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जितुं। राजा पि मं पसेनदि कोसलो जानाति तिरोराजानो पि—'पायासि राजञ्ञो एवंवादी एवंदिट्ठी—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको' ति। सचाहं, भो कस्सप, इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जिस्सामि, भविस्सन्ति मे वत्तारो—'याव बालो पायासि राजञ्ञो अब्यत्तो दुग्गहितगाहा' ति। [N.255] कोपेन पि नं हरिस्सामि मक्खेन पि नं हरिस्सामि पलासेन पि नं हरिस्सामी" ति। (१०)

(११) द्वेसत्थवाहउपमा

२५. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि, उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, महासकटसत्थो सकटसहस्सं पुरत्थिमा जनपदा पच्छिमं जनपदं अगमासि। सो येन येन गच्छति खिप्पंयेव परियादियति तिणकट्ठोदकं हरितकपण्णं। तस्मिं खो पन सत्थे द्वे सत्थवाहा अहेसुं—एको पञ्चन्नं सकटसतानं, एको पञ्चन्नं सकटसतानं। अथ खो तेसं सत्थवाहानं एतदहोसि—अयं खो महासकटसत्थो सकटसहस्सं; ते मयं [R.343] येन येन गच्छाम खिप्पमेव परियादियति, तिणकट्ठोदकं हरितकपण्णं; यन्नून मयं इमं सत्थं द्विधा विभजेय्याम—एकतो पञ्च सकटसतानि, एकतो पञ्चसकटसतानी ति। ते तं सत्थं द्विधा विभजिंसु—एकतो पञ्च सकटसतानि, एकतो पञ्च सकटसतानि। एको ताव सत्थवाहो बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च आरोपेत्वा सत्थं पयापेसि। द्वीहतीहपयातो खो पन सत्थो अद्दस

"राजन्य! तुम भी उसी तरह बाल (मूर्ख) एवं अनाड़ी बनकर अनुचित विधि से परलोक की मार्गणा कर रहे हो। राजन्य! इस मिथ्यादृष्टि को छोड़ो, जिससे तुम्हारा भविष्य तुम्हारे लिये अहितकर एवं दुःखप्रद न बन जाय।"

मत–त्याग में लोक लज्जा का भय– २४. "आप काश्यप! जो भी कहें, किन्तु अब मैं इस मिथ्या धारणा को नहीं छोड़ सकता। कोसलराज प्रसेनजित् एवं अन्य सभी राजा यह जानते हैं कि पायासि राजन्य इस दृष्टि या इस धारणा (सिद्धान्त) का प्रतिपादक है कि यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है। यदि भो, काश्यप! अब मैं इस मत को छोड़ दूँ तो साधारण जनता भी मुझे व्यङ्ग्य कसेगी कि पायासि राजन्य मूर्ख और अज्ञानी था, वह भ्रम में पड़ा हुआ था। अतः मैं तो अब क्रोध कर के भी, आग्रह करके भी, ईर्ष्या करके भी इस धारणा को पकड़े ही रहूँगा।"

(११) दो सार्थवाहों का दृष्टान्त– २५. "तो राजन्य! इस पर भी मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाऊँगा। सम्भवतः इसके सुनने से तुम अपनी इस मिथ्या धारणा को त्याग दो।

"राजन्य! पहले कभी बहुत से व्यापारी (बनजारे) एक हजार गाड़ियों के साथ पूर्वदेश से पश्चिम देश जा रहे थे। वे जिस–जिस मार्ग से जाते उधर शीघ्र ही तृण–काष्ठ और हरे पत्ते को (उनके पशु) खा–पीकर समाप्त कर देते थे। उस शकटसमूह में पाँच–पाँच सौ गाड़ियों के दो स्वामी थे। तब उन दोनों को ध्यान में आया– 'हम व्यापारियों का एक हजार गाड़ियों का यह बहुत बड़ा समूह है। हम लोक जिस मार्ग

पुरिसं काळं लोहितक्खं सन्नद्धकलापं कुमुदमालिं अल्लवत्थं अल्लकेसं कद्दममक्खितेहि चक्केहि [B.273] भद्रेन रथेन पटिपथं आगच्छन्तं। दिस्वा एतदवोच—'कुतो, भो, आगच्छसी' ति? 'अमुकम्हा जनपदा' ति।

'कुहिं गमिस्ससी' ति? 'अमुकं नाम जनपदं' ति।

'कच्चि, भो, पुरतो कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो' ति?

[R.344] 'एवं, भो, पुरतो कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो। आसित्तोदकानि वटुमानि। बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च। छड्डेथ, भो, पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि। लहुभारेहि सकटेहि सीघं सीघं गच्छथ। मा योग्गानि किलमित्था' ति।

"अथ खो सो सत्थवाहो सत्थिके आमन्तेसि—'अयं, भो, पुरिसो एवमाह—पुरतो [N.256] कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो, आसित्तोदकानि वटुमानि, बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च; छड्डेथ, भो, पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि, लहुभारेहि सकटेहि सीघं सीघं गच्छथ, मा योग्गानि किलमित्था ति। छड्डेथ, भो, पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि, लहुभारेहि सकटेहि सत्थं पयापेथा' ति। 'एवं, भो' ति खो ते सत्थिका तस्स सत्थवाहस्स पटिस्सुत्वा छड्डेत्वा पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि लहुभारेहि सकटेहि सत्थं पयापेसुं। ते पठमे पि सत्थवासे न अद्दसंसु तिणं वा कट्ठं वा उदकं वा; दुतिये पि सत्थवासे, ततिये पि सत्थवासे, चतुत्थे पि सत्थवासे, पञ्चमे पि सत्थवासे, छट्ठे पि सत्थवासे, सत्तमे पि सत्थवासे न अद्दसंसु तिणं वा कट्ठं वा उदकं वा। सब्बेव अनयब्यसनं आपज्जिंसु। ये च तस्मिं सत्थे अहेसुं मनुस्सा वा पसू वा सब्बे सो यक्खो अमनुस्सो भक्खेसि। अट्ठिकानेव सेसानि।

"यदा अञ्ञासि दुतियो सत्थवाहो—'बहुनिक्खन्तो खो, भो, दानि सो सत्थो' ति,

---

से जाते हैं....। तो क्यों न हम इस समूह को दो भागों में बाँट दें। एक भाग में पाँच सौ और दूसरे भाग में भी पाँच सौ ही गाड़िया रहें।' उन लोगों ने उस शकट-समूह को दो भागों में बाँट दिया। तब उन में से पाँच सौ गाड़ियों के समूह का एक अधिपति बहुत सा तृण काष्ठ और जल साथ में लेकर एक ओर चल पड़ा। दो तीन दिन चलने के बाद, उसने एक कृष्णवर्ण, लाल आँखों वाले, तीर-धनुष लिये, कुमुद की माला पहने, भीगे वस्त्र वाले, भीगे केशों से युक्त एक पुरुष (यक्ष) को कीचड़ लगे पहियों वाले एक सुन्दर रथ पर बैठकर आते हुए देखा। देखकर वह (रथारूढ़ से) यह बोला– 'आप लोग कहाँ से आ रहे हैं?' 'अमुक जनपद से'।

'आप लोग कहाँ जायँगे?' 'अमुक जनपद को'।

'क्या आगे वाले कान्तार में बहुत वृष्टि हुई है?'

'हाँ!....मार्ग जल से भरे पड़े हैं। वहाँ बहुत तृण काष्ठ है। आप लोग अपने इस लदे हुए तृण-काष्ठ उदक को यहीं फेंक दें। गाड़ियों का भार कम करके आगे बढ़े। यों आप का मार्ग सुगम हो जायगा। बैलों को व्यर्थ कष्ट न दें।'

"तब वे व्यापारी 'बहुत अच्छा' कहकर गाड़ियों पर लदे हुए तृण-काष्ठ को उतार कर, आगे बढ़े। आगे बढ़ने पर वे न तो पहले पड़ाव पर ही तृण-काष्ठ पा सके, न दूसरे पर.... न सातवें पर.... । यों वे बहुत सङ्कट में पड़े। अन्त में, उस समूह में जितने भी पुरुष थे, सभी को वह यक्ष खा गया। वहाँ उन की केवल अस्थि ही अवशिष्ट रह गयीं।

बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च आरोपेत्वा सत्थं पयापेसि। द्वीहतीहपयातो खो पन सो [R.345] सत्थो अद्दस पुरिसं काळं लोहितक्खं सन्नद्धकलापं कुमुदमालिं अल्लवत्थं अल्लकेसं कद्दममक्खितेहि चक्केहि भद्रेन रथेन पटिपथं आगच्छन्तं। दिस्वा एतदवोच—

'कुतो, भो, आगच्छसी' ति? 'अमुकम्हा जनपदा' ति।

'कुहिं गमिस्ससी' ति? 'अमुकं नाम जनपदं' ति।

'कच्चि, भो, पुरतो कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो' ति?

'एवं, भो, पुरतो कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो। आसित्तोदकानि वटुमानि। [B.274] बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च। छड्डेथ, भो, पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि। लहुभारेहि सकटेहि सीघं सीघं गच्छथ। मा योग्गानि किलमित्था' ति।

"अथ खो सो सत्थवाहो सत्थिके आमन्तेसि—'अयं, भो, पुरिसो एवमाह—पुरतो कन्तारे महामेघो अभिप्पवुट्ठो आसित्तोदकानि वटुमानि, बहुं तिणं च कट्ठं च उदकं च, छड्डेथ, भो, पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि, लहुभारेहि सकटेहि सीघं सीघं गच्छथ; मा योग्गानि किलमित्था ति। अयं भो पुरिसो नेव अम्हाकं मित्तो न ञातिसालोहितो। कथं मयं [N.257] इमस्स सद्धाय गमिस्साम! न वो छड्डेतब्बानि पुराणानि तिणानि कट्ठानि उदकानि। यथाकतेन भण्डेन सत्थं पयापेथ। न नो पुराणं छड्डेस्सामा' ति। 'एवं, भो' ति खो ते सत्थिका तस्स सत्थवाहस्स पटिस्सुत्वा यथाकतेन भण्डेन सत्थं पयापेसुं। ते पठमे पि सत्थवासे न [R.346] अद्दसंसु तिणं वा कट्ठं वा उदकं वा; दुतिये पि सत्थवासे, ततिये पि सत्थवासे, चतुत्थे पि सत्थवासे, पञ्चमे पि सत्थवासे, छट्ठे पि सत्थवासे, सत्तमे पि सत्थवासे न अद्दसंसु तिणं वा कट्ठं वा उदकं वा। तं च सत्थं अद्दसंसु अनयब्यसनं आपन्नं। ये च तस्मिं सत्थे पि अहेसुं मनुस्सा वा पसू वा तेसं च अट्ठिकानेव अद्दसंसु, तेन यक्खेन अमनुस्सेन भक्खितानं।

"अथ खो सो सत्थवाहो सत्थिके आमन्तेसि—'अयं खो, भो, सत्थो अनयब्यसनं आपन्नो यथा तं तेन बालेन सत्थवाहेन परिणायकेन। तेन हि, भो, यानम्हाकं सत्थे अप्पसारानि पणियानि तानि छड्डेत्वा, यानि इमस्मिं सत्थे महासारानि पणियानि तानि आदियथा' ति। 'एवं,

---

"जब पाँच सौ गाड़ियों के दूसरे अधिपति ने सोचा कि आगे वाले गाड़ियों के समूह को आगे गये एक सप्ताह से अधिक समय बीत चुका है तो वह भी आगे के लिये चल पड़ा। आगे चलने पर उसको भी वही कृष्णवर्ण, लाल आँखों वाला....। उसने कहा....बैलों को व्यर्थ कष्ट न दें।'

"यह सुनकर उसके मन में यह हुआ— '....यह पुरुष न तो हमारा मित्र है, न हमारा कोई नाते–रिश्तेदार (रक्तसम्बन्धी) ही। इस पर हम लोग कैसे विश्वास करें! ये पुराने (संगृहीत) तृण–काष्ठ छोड़ने योग्य नहीं हैं। अतः इनके साथ ही आगे बढ़ना चाहिये।....। 'बहुत अच्छा' कहकर वे गाड़ियों के स्वामी आगे बढ़े। उन लोगों को न तो पहले पड़ाव पर....न तो सातवें पड़ाव पर ही कोई तृण–काष्ठ जल मिला। अपितु उन्होंने देखा कि पहले शकटसमूह में जितने मनुष्य और पशु थे, सबको वह राक्षस खा गया। उनकी केवल हड्डियाँ बाकी हैं।

"तब उस शकटाधिपति ने कहा— 'उस समूह का अधिपति, मूर्ख होने के कारण, अपना तथा अपने साथियों का नाश कर बैठा। अच्छा, हम लोगों के पास जो अल्प मूल्य वाले समान हैं, उनके बदले

भो' ति खो ते सत्थिका तस्स सत्थवाहस्स पटिस्सुत्वा यानि सकस्मिं सत्थे अप्पसारानि पणियानि तानि छड्डेत्वा, यानि तस्मिं सत्थे महासारानि पणियानि तानि आदियित्वा सोत्थिना तं कन्तारं नित्थरिंसु, यथा तं पण्डितेन सत्थवाहेन परिणायकेन।

''एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, बालो अब्यत्तो अनयब्यसनं आपज्जिस्ससि अयोनिसो परलोकं गवेसन्तो, सेय्यथापि सो पुरिमो सत्थवाहो। ये पि तव सोतब्बं सद्धातब्बं मञ्ञिस्सन्ति [B.275] ते पि अनयब्यसनं आपज्जिस्सन्ति, सेय्यथापि ते सत्थिका। पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं; पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं। मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति।

२६. ''किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो नेवाहं सक्कोमि इदं पापकं दिट्ठिगतं [R.347] पटिनिस्सज्जितुं। राजा पि मं पसेनदि कोसलो जानाति तिरोराजानो पि—'पायासि राजञ्ञो एवंवादी एवंदिट्ठि—इति पि नत्थि परो लोको ....पे०....विपाको' ति। सचाहं, भो कस्सप, इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जिस्सामि, भविस्सन्ति मे वत्तारो—'याव बालो पायासि [N.258] राजञ्ञो अब्यत्तो दुग्गहितगाही' ति। कोपेन पि नं हरिस्सामि मक्खेन पि नं हरिस्सामि पलासेन पि नं हरिस्सामी'' ति। (११)

(१२) गूथभारिकउपमा

२७. ''तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, अञ्ञतरो सूकरपोसको पुरिसो सकम्हा गामा अञ्ञं गामं अगमासि। तत्थ अद्दस पहूतं सुक्खं गूथं छड्डितं। दिस्वानस्स एतदहोसि—अयं खो बहुको सुक्खगूथो छड्डितो मम च सूकरभत्तं; यन्नूनाहं इतो सुक्खगूथं हरेय्यं ति। सो उत्तरासङ्गं पत्थरित्वा पहूतं सुक्खगूथं आकिरित्वा भण्डिकं बन्धित्वा सीसे उच्चारोपेत्वा अगमासि। तस्स अन्तरामग्गे महाअकालमेघो पावस्सि। सो उग्घरन्तं पग्घरन्तं याव अग्गनखा गूथेन मक्खितो गूथभारं

में इस समूह का बहुमूल्य सामान ले लें और अपना अल्प मूल्य सामान यही छोड़ दें। 'बहुत अच्छा' कहकर...बहुमूल्य सामान अपनी गाड़ियों में भर लिया और उस कान्तार को स्वस्तिपूर्वक पार कर लिया।

"राजन्य! इसी प्रकार तुम भी मुझे बाल, अव्यक्त जान पड़ते हो, तुम भी अनुचित रीति का प्रयोग करते हुए परलोक की मार्गणा करते नष्ट हो जाओगे, जैसे वह पहला सार्थी जो तुम्हारी बातों को श्रद्धापूर्वक मानते हैं वे भी उसी तरह नष्ट हो जायँगें जैसे उस पहले सार्थवाह के अन्य साथी। अतः राजन्य! इस मिथ्या धारणा को छोड़ दो, जिससे तुम्हारा चिरकाल तक हित, सुख, कल्याण होता रहे।"

२६. "आप काश्यप! कुछ भी कहें....पूर्ववत्....मैं तो दृढ़तापूर्वक इस मत का ही आग्रही रहूँगा।"

(१२) मैला ढोने वाले का दृष्टान्त– २७. "तो राजन्य! सुनो मैं तुम्हें एक अन्य दृष्टान्त सुनाता हूँ, सम्भवतः उस के सुनने से तुम्हारा यह मिथ्याग्रह नष्ट हो जाय।

"राजन्य! बहुत पहले एक सूअर पालने वाला अपने गाँव से दूसरे गाँव गया। वहाँ उसने सूखे मल का एक ढेर (राशि) देखा। उसे देखकर उसके मन में हुआ– 'यह मल तो मेरे सूअरों का भक्ष्य है, अतः मैं इसे अपने घर ले चलूँगा।' तब वह अपनी चादर बिछाकर वहाँ से बहुत से सूखे मल को उठा कर

आदाय अगमासि। तमेनं मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु—कच्चि नो त्वं, भणे, उम्मत्तो, कच्चि विचेतो? कथं हि नाम उग्घरन्तं पग्घरन्तं याव अग्गनखा गूथेन मक्खितो गूथभारं हरिस्ससी ति!

तुम्हे ख्वेत्थ, भणे, उम्मत्ता, तुम्हे विचेता। तथा हि पन मे सूकरभत्तं ति। [R.348]

"एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, गूथभारिकूपमो मञ्ञे पटिभासि। पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं; पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं। मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति।

२८. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो नेवाहं सक्कोमि इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जितुं। राजा पि मं पसेनदि कोसलो जानाति तिरोराजानो पि—'पायासि [B.276] राजञ्ञो एवंवादी एवंदिट्ठि—इति पि नत्थि परोलोको.... पे०....विपाको' ति। सचाहं, भो कस्सप, इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जिस्सामि, भविस्सन्ति मे वत्तारो—याव बालो पायासि राजञ्ञो अब्यत्तो दुग्गहितगाही ति। कोपेन पि नं हरिस्सामि मक्खेन पि नं हरिस्सामि पलासेन पि नं हरिस्सामी" ति। (१२)

(१३) अक्खधुत्तकउपमा

२९. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, द्वे अक्खधुत्ता अक्खेहि दिब्बिंसु। एको अक्खधुत्तो [N.259] आगतागतं कलिं गिलति। अद्दसा खो दुतियो अक्खधुत्तो तं अक्खधुत्तं आगतागतं कलिं गिलन्तं। दिस्वा तं अक्खधुत्तं एतदवोच—त्वं खो, सम्म, एकन्तिकेन जिनासि। देहि मे, सम्म, पजोहिस्सामी ति। एवं सम्मा ति खो सो अक्खधुत्तो तस्स अक्खधुत्तस्स अक्खे पादासि। अथ

गठरी में बाँध कर, शिर पर रख चल दिया। उसके, रास्ते में चलते समय बहुत भारी वृष्टि होने लगी। वह जल से भीगने के कारण चूती हुई टपकती हुई गठरी को लिये शिर से पैर तक मैले से लथपथ हुआ जा रहा था। उसे देखकर लोग कहने लगे– 'क्या आप पागल (उन्मत्त) हैं या सनकी (विक्षिप्त) हैं कि इस चूते-टपकते मल की गठरी को लिये शिर से पैर तक मल से लथ-पथ हुए जा रहे हैं?'

(सूअर पालने वाले ने कहा–) 'आप ही लोग पागल हैं। यह तो मेरे सूअरों का खाद्य है।'

"राजन्य! उसी तरह तुम भी इस मल की गठरी ढोने वाले की तरह मूर्ख एवं अविवेकी ज्ञात होते हो। राजन्य! इस मिथ्या धारणा को छोड़ दो, इसी में तुम्हारा दीर्घकालिक हित है।"

२८. "आप काश्यप! मेरे विषय में कुछ भी कहते रहें, मैं इस पापमय मिथ्याधारणा को नहीं छोड़ पाऊँगा। राजा प्रसेनजित्....पूर्ववत्.....। भो काश्यप! यदि मैं इस पापमय मिथ्या धारणा को छोड़ दूँगा तो मेरे विषय में लोग कहने लगेंगे कि पायासि राजन्य तो मूर्ख अव्यक्त दुराग्रही होते हुए भ्रम में पड़ा था। अतः मैं इस मिथ्या धारणा को अपनी लोकलज्जा के भय से आग्रहपूर्वक पकड़े रहूँगा।"

(१३) अक्षधूर्तकोपमा– २९. "तो राजन्य! मैं तुम्हें एक अन्य दृष्टान्त सुनाता हूँ, उसे सुनकर सम्भवतः तुम अपनी मिथ्या धारणा का त्याग कर दो।

'पुराने समय की बात है दो जुआरी जुआ खेला करते थे। उनमें से एक जुआरी हार या जीत के पासे को निगल जाता था जिससे दूसरा जुआरी हार जाता था। तब एक बार दूसरे जुआरी ने कहा–

खो सो अक्खधुत्तो अक्खे विसेन परिभावेत्वा तं अक्खधुत्तं एतदवोच—एहि खो, सम्म, अक्खेहि दिब्बिस्सामा ति। एवं सम्मा ति खो सो अक्खधुत्तो तस्स अक्खधुत्तस्स पच्चस्सोसि। दुतियं पि खो ते अक्खधुत्ता अक्खेहि दिब्बिंसु। दुतियं पि खो सो अक्खधुत्तो आगतागतं [R.349] कलिं गिलति। अद्दसा खो दुतियो अक्खधुत्तो तं अक्खधुत्तं दुतियं पि आगतागतं कलिं गिलन्तं। दिस्वा तं अक्खधुत्तं एतदवोच—

'लित्तं परमेन तेजसा, गिलमक्खं पुरिसो न बुज्झति।
गिल रे गिल पापधुत्तक, पच्छा ते कटुकं भविस्सती' ति॥

"एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, अक्खधुत्तकूपमो मञ्ञे पटिभासि। पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं; पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं। मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति।

३०. "किञ्चा पि भवं कस्सपो एवमाह, अथ खो नेवाहं सक्कोमि इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जितुं। राजा पि मं पसेनदि कोसलो जानाति तिरोराजानो पि—'पायासि राजञ्ञो एवंवादी एवंदिट्ठि—इति पि नत्थि परो लोको....पे०....विपाको' ति। सचाहं, भो [B.277] कस्सप, इदं पापकं दिट्ठिगतं पटिनिस्सज्जिस्सामि, भविस्सन्ति मे वत्तारो—'याव बालो पायासि राजञ्ञो अब्यत्तो दुग्गहितगाही' ति। कोपेन पि नं हरिस्सामि मक्खेन पि नं हरिस्सामि पलासेन पि नं हरिस्सामी" ति। (१३)

(१४) साणभारिकउपमा

३१. "तेन हि, राजञ्ञ, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय मिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति—

'भूतपुब्बं, राजञ्ञ, अञ्ञतरो जनपदो वुट्ठासि। अथ खो सहायको सहायकं

'अरे भाई! क्या बात है! तुम बराबर जीतते ही हो। लाओ, कुछ क्षण के लिये ये पासे मुझे दो। मैं इनकी पूजा कर लूँ। तब सम्भवतः मैं भी जीतने लगूँ।' यह सुनकर पासे पहले जुआरी ने दूसरे जुआरी को दे दिये। जुआरी ने (आँख बचाकर एकान्त में जाकर) उन पासों को विषसम्पृक्त कर दिया। और पासे लाकर उसे दे दिये। और कहा— 'अब जूआ पुनः प्रारम्भ करें'। 'बहुत अच्छा' कहकर जूआ पुनः प्रारम्भ किया। जुआरियों ने पासे फेंकने प्रारम्भ किये। दूसरे जुआरी ने पहले जुआरी को पासा निगलते देख लिया। देखकर दूसरे जुआरी ने कहा—

'तेज विष में बुझे हुए पासे को यह जुआरी समझ नहीं पा रहा है। रे पापी जुआरी! निगल जा, निगल जा! कुछ ही क्षण में तुझे इस (निगलने) का परिणाम पता लगेगा!'

"राजन्य! तुम उस पहले जुआरी की तरह ही लग रहे हो! अब भी समय है, राजन्य! तुम अपनी दृष्टिगत धारणा को त्याग दो। अन्यथा यह मिथ्या धारणा तुम्हारे लिये चिरकाल पर्यन्त अहितकर एवं दुःखप्रद ही होगी।"

३०. "भो काश्यप! आप जो भी कहें, मैं तो लोकलज्जावश इस मिथ्यादृष्टि को छोड़ नहीं पाऊँगा। कारण कि राजा प्रसेनजित् कौसल ....पूर्ववत्....। मैं तो इसे.....आग्रहपूर्वक पकड़े ही रहूँगा।"

(१४) साणभारिक का दृष्टान्त— ३१. "तो राजन्य! मैं यहाँ तुम्हें एक दृष्टान्त फिर सुनाता हूँ। हो सकता है, इसके सुनने से तुम्हारी यह मिथ्यादृष्टि छूट ही जाय।

आमन्तेसि—आयाम, सम्म, येन सो जनपदो तेनुपसङ्कमिस्साम—अप्पेव नामेत्थ किञ्चि धनं अधिगच्छेय्यामा ति। एवं सम्मा ति खो सहायको सहायकस्स पच्चस्सोसि। [N.260, R.350] ते येन सो जनपदो येन अञ्ञतरं गामपट्टं तेनुपसङ्कमिंसु। तत्थ अद्दसंसु पहूतं साणं छड्डितं। दिस्वा सहायको सहायकं आमन्तेसि—इदं खो, सम्म, पहूतं साणं छड्डितं।

तेन हि, सम्म, त्वं च साणभारं बन्ध, अहं च साणभारं बन्धिस्सामि। उभो साणभारं आदाय गमिस्सामा ति।

एवं सम्मा ति खो सहायको सहायकस्स पटिस्सुत्वा साणभारं बन्धित्वा ते उभो साणभारं आदाय येन अञ्ञतरं गामपट्टं तेनुपसङ्कमिंसु। तत्थ अद्दसंसु पहूतं साणसुत्तं छड्डितं। दिस्वा सहायको सहायकं आमन्तेसि—यस्स खो, सम्म, इच्छेय्याम साणं, इदं पहूतं साणसुत्तं छड्डितं।

तेन हि, सम्म, त्वं साणभारं छड्डेहि, अहं च साणभारं छड्डेस्सामि। उभो साणसुत्तभारं आदाय गमिस्सामा ति।

अयं खो मे, सम्म साणभारो दूराभतो च सुसन्नद्धो च। अलं मे, त्वं पजानाही ति।

अथ खो सो सहायको साणभारं छड्डेत्वा साणसुत्तभारं आदियि। ते येन अञ्ञतरं गामपट्टं तेनुपसङ्कमिंसु। तत्थ अद्दसंसु पहूता साणियो छड्डिता। दिस्वा सहायको सहायकं आमन्तेसि—यस्स खो, सम्म, अत्थाय इच्छेय्याम साणं वा साणसुत्तं वा, इमा पहूता साणियो छड्डिता।

तेन हि, सम्म, त्वं च साणभारं छड्डेहि, अहं च साणसुत्तभारं छड्डेस्सामि। [B.278] उभो साणिभारं आदाय गमिस्सामा ति।

'राजन्य! पुराने समय में कोई एक समृद्ध जनपद था। तब एक साथी ने अपने दूसरे साथी से कहा– 'आओ, सौम्य! उस जनपद में चलें। और वहाँ व्यापार करके कुछ धन ही कमावें।' दूसरे साथी ने 'बहुत अच्छा' कहकर अपनी स्वीकृति दे दी। और वे दोनों उस जनपद में पहुँचे। यहाँ उन दोनों एक स्थान पर बहुत सा सन पड़ा देखा। देख कर एक ने दूसरे से कहा– 'यहाँ यह बहुत अधिक सन पड़ा है। तुम भी इस सन की एक गठरी बाँध लो, मैं भी एक गठरी बाँध लूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर दोनों सन की गठरियाँ लेकर आगे चले।

दोनों सन की गठरियाँ आगे बढ़े ही थे कि कुछ दूर जाने पर उन्हें सन से कते हुए सूत का ढेर दिखायी दिया। उसे देखकर पहले साथी ने कहा– 'देखो! जिसके लिये सन होता है वह सन से कता सूत अत्यधिक मात्रा में यहाँ पड़ा है, तो आओ, इस सन को फेंक कर इस सूत की गठरी बाँध लें। इसे अधिक धन मिलेगा।

परन्तु दूसरे साथी ने कहा– 'मित्र! देखो, मैं यह सन का भार बहुत दूर से ला रहा हूँ। यह बहुत अच्छी तरह बंधा है। मेरे लिये यही पर्याप्त है। यह कहकर उसने सूत नहीं लिया। पहले ने वह सूत बांध लिया और सन वहीं छोड़ दिया। और दोनों आगे चल दिये।

''कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें सन के सूत से बना टाट का ढेर दिखायी दिया। वहाँ भी पहले ने दूसरे से उस सूत के बदले टाट का गट्ठर बाँधने के लिये कहा, परन्तु दूसरा अपना सन का भार ही रखने का हठ करता रहा। तब पहले ने वह सूत फेंककर टाट का गट्ठर बांध लिया।

अयं खो मे, सम्म, साणभारो दूराभतो च सुसन्नद्धो च। अलं मे, त्वं पजानाही ति।

अथ खो सो सहायको साणसुत्तभारं छड्डेत्वा साणिभारं आदियि। ते येन अञ्ञतरं [R.351] गामपट्टं तेनुपसङ्कमिंसु। तत्थ अद्दसंसु पहूतं खोमं छड्डितं, दिस्वा ....पे०....पहूतं खोमसुत्तं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं खोमदुस्सं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं कप्पासं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं कप्पासिकसुत्तं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं कप्पासिकदुस्सं छड्डितं, दिस्वा .... पहूतं अयं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं लोहं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं तिपुं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं सीसं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं सज्झं छड्डितं, दिस्वा ....पहूतं सुवण्णं छड्डितं, दिस्वा ....सहायको सहायकं आमन्तेसि—यस्स खो सम्म अत्थाय इच्छेय्याम साणं वा साणसुत्तं वा साणियो वा [N.261] खोमं वा खोमसुत्तं वा खोमदुस्सं वा कप्पासं वा कप्पासिकसुत्तं वा कप्पासिकदुस्सं वा अयं वा लोहं वा तिपुं वा सीसं वा सज्झुं वा, इदं पहूतं सुवण्णं छड्डितं।

तेन हि, सम्म, त्वं च साणभारं छड्डेहि, अहं च सज्झुभारं छड्डेस्सामि। उभो सुवण्णभारं आदाय गमिस्सामा ति।

अयं खो मे, सम्म, साणभारो दूराभतो च सुसन्नद्धो च। अलं मे, त्वं पजानाही ति।

अथ खो सो सहायको सज्झुभारं छड्डेत्वा सुवण्णभारं आदियि। ते येन सको गामो तेनुपसङ्कमिंसु। तत्थ यो सो सहायको साणभारं आदाय अगमासि तस्स नेव माता पितरो [R.352] अभिनन्दिसु, न पुत्तदारा अभिनन्दिंसु, न मित्तामच्चा अभिनन्दिसु, न च ततोनिदानं सुखं सोमनस्सं अधिगच्छि। यो पन सो सहायको सुवण्णभारं आदाय अगमासि तस्स माता पि पितरो पि अभिनन्दिंसु, पुत्तदारा पि अभिनन्दिंसु, मित्तामच्चा पि अभिनन्दिसु, ततोनिदानं च सुखं सोमनस्सं अधिगच्छि।

''एवमेव खो त्वं, राजञ्ञ, साणभारिकूपमो मञ्ञे पटिभासि। पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं; पटिनिस्सज्जेतं, राजञ्ञ, पापकं दिट्ठिगतं। मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति। (१४)

३. पायासि उपासकत्तं पटिवेदेसि

[B.279] ३२. ''पुरिमेनेव अहं ओपम्मेन भोतो कस्सपस्स अत्तमनो अभिरद्धो। अपि चाहं, इमानि विचित्रानि पञ्हापटिभानानि सोतुकामो एवाहं भवन्तं कस्सपं पच्चनीकं कातब्बं

वे आगे बढ़े। आगे बढ़ने पर उनको बहुत सा क्षौम (अलसी का सन)....क्षौम से बने वस्त्र....कपास....ताँबा....राँगा....सीसा....चान्दी....सुवर्ण दिखायी दिया। वहाँ भी पहले ने दूसरे से सुवर्ण उठाने की बात कही, परन्तु दूसरा अपने सन के भार के हठ से ही चिपका रहा। पहले ने चांदी का भार वहीं छोड़कर उस सुवर्ण का गट्ठर बाँध लिया। और दोनों अपने घर लौट आये।

तब उनमें से जो सन का भार लेकर घर लौटा उसके न माता-पिता प्रसन्न हुए, न पुत्र, न स्त्री, न मित्र, न अमात्य। न उस सन से उसी को कोई सुख मिला। परन्तु सुवर्ण का भार लेकर लौटने वाले से उसके माता-पिता, पुत्र-स्त्री, भाई-बन्धु, मित्र, साथी-सभी प्रसन्न हुए। और वह भी उस सुवर्ण के सहारे से सुखपूर्वक जीवन-बिताने लगा।

"इसी तरह राजन्य! ऐसा लगता है कि तुम भी उस साणभारिक की तरह अपने आग्रह के वश

अमञ्ञिस्सं। अभिक्कन्तं, भो कस्सप, अभिक्कन्तं, भो कस्सप। सेय्यथापि, भो कस्सप, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भोता कस्सपेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो कस्सप, तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं कस्सपो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। इच्छामि चाहं, भो कस्सप, महायञ्ञं यजितुं। अनुसासतु मं भवं कस्सपो, यं ममस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

४. महप्फलो महानिसंसो यञ्ञो

३३. "यथारूपे खो, राजञ्ञ, यञ्ञे गावो वा हञ्ञन्ति अजेळका वा हञ्ञन्ति[N.262] कुक्कुटसूकरा वा हञ्ञन्ति विविधा वा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति, पटिग्गाहका च होन्ति [R.353] मिच्छादिट्ठी मिच्छासङ्कप्पा मिच्छावाचा मिच्छाकम्मन्ता मिच्छाआजीवा मिच्छावायामा मिच्छासती मिच्छासमाधी, एवरूपो, राजञ्ञ, यञ्ञो न महप्फलो होति न महानिसंसो न महाजुतिको न महाविप्फारो। सेय्यथापि, राजञ्ञ, कस्सको बीजनङ्गलं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ दुक्खेत्ते दुब्भूमे अविहतखाणुकण्टके बीजानि पतिट्ठापेय्य खण्डानि पूतीनि वातातपहतानि असारदानि असुखसयितानि। देवो च न कालेन कालं सम्माधारं अनुप्पवेच्छेय्य। अपि नु तानि बीजानि वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्युं, कस्सको वा विपुलं फलं अधिगच्छेय्या" ति?

"नो हिदं भो कस्सप"।

में होकर ही बहुत कष्ट पा रहे हो। राजन्य! अब भी समय है, तुम अपनी इस मिथ्यादृष्टि को छोड़ दो, अन्यथा यह तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक दुःखप्रद एवं अहितकर ही होगी।

३. पायासि राजन्य द्वारा उपासकत्व स्वीकार करना

३२. "भो काश्यप! मैं तो आपके श्रीमुख से पहला दृष्टान्त सुनकर ही आपके प्रति श्रद्धालु हो गया था। परन्तु ये विचित्र एवं अपूर्वभाषित दृष्टान्त सुनने के लिये ही मैं इतनी देर से विरुद्ध (प्रत्यनीक) बातें बोल रहा था। आश्चर्य है, भो काश्यप! अद्भुत है भो काश्यप! जैसे कोई उलटे को सीधा कर दे.... पूर्ववत् आपने अनेक प्रकार से धर्म का प्रकाश किया। हे काश्यप! आज से मैं उन भगवान् गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की.... सङ्घ की शरण में जाता हूँ। भो काश्यप! आज से आप मुझे अपना जीवनभर उपासक समझें। भो काश्यप! मैं एक विशाल यज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे उसके लिये ऐसी विधि का उपदेश करें जो मेरे लिये चिरकाल तक सुखप्रद एवं हितकर हो?"

४. अधिक फलदायी यज्ञ

३३. "राजन्य! जिस ऐसे यज्ञ में, जहाँ गौएँ काटी जाती हैं, भेड़ बकरियों का वध किया जाता है, मुर्गे या सूअर मारे जाते हैं; तथा दान भी ऐसे लागों को दिया जाता है जो मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्याकर्म वाले, मिथ्या आजीविका वाले, मिथ्या व्यायाम (प्रयत्न) वाले, मिथ्यास्मृतियुक्त एवं मिथ्यासमाधिसम्पन्न हों। राजन्य! ऐसा यज्ञ न अधिक शुभ फलदायी होता है, न अधिक लाभदायी और न अधिक माहात्म्य वाला होता है। राजन्य! जैसे कोई किसान बीज और हल लेकर वन में प्रवेश करे। वहाँ वह ठीक तरह से हलाइ न चलायी हुई, जिस विपरीत भूमि में काँटे, कंकर–पत्थर, या जंगली पेड़–पौधे न उखाड़े गये हों, ऐसे बीज डाल दे जो खण्डित हों, सड़े–गले हों, हवा–पानी से खराब हो चुके हों, जो निस्तत्त्व हो चुके हों या न जमने योग्य हों; समय पर वर्षा भी न बरसे; क्या ऐसे बीज उस खेत में घने रूप में उग सकेंगे या उगकर बढ़ सकेंगे? क्या वह किसान उस खेत से अच्छा लाभ पा सकेगा?"

"एवमेव खो, राजञ्ञ, यथारूपे यञ्ञे गावो वा हञ्ञन्ति अजेळका वा हञ्ञन्ति कुक्कुटसूकरा वा हञ्ञन्ति विविधा वा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति, पटिग्गाहका च होन्ति मिच्छादिट्ठी [B.280] मिच्छासङ्कप्पा मिच्छावाचा मिच्छाकम्मन्ता मिच्छाआजीवा मिच्छावायामा मिच्छासती मिच्छासमाधी, एवरूपो खो, राजञ्ञ, यञ्ञो न महप्फलो होति न महानिसंसो न महाजुतिको न महाविप्फारो।

"यथारूपे च खो, राजञ्ञ, यञ्ञे नेव गावो हञ्ञन्ति न अजेळका हञ्ञन्ति न कुक्कुटसूकरा हञ्ञन्ति, न विविधा वा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति, पटिग्गाहका च होन्ति सम्मादिट्ठी सम्मावाचा सम्माकम्मन्ता सम्माआजीवा सम्मावायामा सम्मासती सम्मासमाधी, एवरूपो खो, राजञ्ञ, यञ्ञो महप्फलो होति महानिसंसो महाजुतिको महाविप्फारो। सेय्यथापि, राजञ्ञ, कस्सको बीजनङ्गलं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ सुखेत्ते सुभूमे सुनिहितखाणुकण्टके [R.354] बीजानि पतिट्ठापेय्य अखण्डानि अपूतीनि अवातातपहतानि सारदानि सुखसयितानि। देवो च कालेन कालं सम्माधारं अनुप्पवेच्छेय्य। अपि नु तानि बीजानि वुद्धिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्युं, कस्सको वा विपुलं फलं अधिगच्छेय्या" ति?

"एवं, भो कस्सप"।

"एवमेव खो, राजञ्ञ, यथारूपे यञ्ञे नेव गावो हञ्ञन्ति न अजेळका हञ्ञन्ति [N.263] न कुक्कुटसूकरा हञ्ञन्ति न विविधा वा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति, पटिग्गाहका च होन्ति सम्मादिट्ठी सम्मासङ्कप्पा सम्मावाचा सम्माकम्मन्ता सम्माआजीवा सम्मावायामा सम्मासती सम्मासमाधी, एवरूपो खो, राजञ्ञ, यञ्ञो महप्फलो होति महानिसंसो महाजुतिको महाविप्फारो" ति।

५. सक्कच्चासक्कच्चदानफलानि

३४. अथ खो पायासि राजञ्ञो दानं पट्ठपेसि समणब्राह्मणकपणद्धिकवणिब्बक-

---

"नहीं, भो काश्यप!"

"राजन्य! उसी तरह जिस यज्ञ में गौएँ काटी जाती हैं...पूर्ववत्....ऐसा यज्ञ न अधिक फलप्रद, न लाभप्रद और न अधिक गौरव देने वाला होता है।

"और राजन्य! जैसे यज्ञ में न गौएँ काटी जाँय....पूर्ववत्...वही....अधिक गौरव वाला होता है। राजन्य! जैसे कोई अनुभवी किसान बीज और हल लेकर किसी जंगली वन में जाय। वह वहाँ काँटे या कंकर-पत्थर एवं जंगली पेड़-पौधों से रहित अच्छी तरह जोती हुई भूमि में ऐसे बीज डाले जो खण्डित न हों, सड़े-गले न हों, हवा-पानी से खराब न हुए हों, तत्त्व वाले एवं जमने की क्षमता रखते हों; समय से वे वर्षा का जल भी पाते रहें, क्या ऐसे बीज उस खेत में सघन रूप से नहीं उगेंगे या उग कर वृद्धि को प्राप्त नहीं होंगे? क्या वह अनुभवी किसान उस खेत से अच्छा लाभ नहीं पा सकेगा?"

"भो काश्यप! अवश्य पा सकेगा।"

"उसी तरह राजन्य! वह यज्ञ जिस में गौएँ या भेड़-बकरी न काटी जाँय....पूर्ववत्....वही यज्ञ...अधिक गौरवाधायक होता है।

५. सत्काररहित यज्ञ

३४. तब पायासि राजन्य सभी श्रमण-ब्राह्मण, दरिद्र-निर्धन, साधु और भिक्षुओं को दान

याचकानं। तस्मिं खो पन दाने एवरूपं भोजनं दीयति—कणाजकं बिलङ्गदुतियं, धोरकानि च वत्थानि गुळवालकानि। तस्मिं खो पन दाने उत्तरो नाम माणवो वावटो अहोसि। सो दानं दत्वा एवं अनुद्दिसति—"इमिनाहं दानेन पायासिं राजञ्ञमेव इमस्मिं लोके समागच्छिं, मा परस्मिं" ति। अस्सोसि खो पायासि राजञ्ञो—"उत्तरो किर माणवो दानं दत्वा [R.355] एवं अनुद्दिसति—इमिनाहं दानेन पायासिं राजञ्ञमेव इमस्मिं लोके समागच्छिं, मा परस्मिं" ति। अथ खो पायासि राजञ्ञो उत्तरं माणवं आमन्तापेत्वा एतदवोच—"सच्चं किर [B.281] त्वं, तात, उत्तर, दानं दत्वा एवं अनुद्दिससि—'इमिनाहं दानेन पायासिं राजञ्ञमेव इमस्मिं लोके समागच्छिं, मा परस्मिं' " ति?

"एवं, भो"।

"किस्स पन त्वं, तात उत्तर, दानं दत्वा एवं अनुद्दिससि—'इमिनाहं दानेन पायासिं राजञ्ञमेव इमस्मिं लोके समागच्छिं, मा परस्मिं' ति। ननु, मयं, तात उत्तर, पुञ्ञत्थिका दानस्सेव फलं पाटिकङ्खिनो" ति?

"भोतो खो दाने एवरूपे भोजनं दीयति—कणाजकं बिलङ्गदुतियं, यं भवं पादा पि न इच्छेय्य सम्फुसितुं; कुतो भुञ्जितुं; धोरकानि च वत्थानि गुळवालकानि, यानि भवं पादा पि न इच्छेय्य सम्फुसितुं, कुतो परिदहितुं। भवं खो पनम्हाकं पियो मनापो। कथं मयं मनापं अमनापेन संयोजेमा" ति?

"तेन हि त्वं, तात उत्तर, यादिसाहं भोजनं भुञ्जामि तादिसं भोजनं पट्ठपेहि, [N.264] यादिसानि चाहं वत्थानि परिदहामि तादिसानि च वत्थानि पट्ठपेही" ति।

"एवं, भो" ति खो उत्तरो माणवो पायासिस्स राजञ्ञस्स पटिस्सुत्वा यादिसं भोजनं पायासि राजञ्ञो भुञ्जति तादिसं भोजनं पट्ठपेसि, यादिसानि च वत्थानि पायासि राजञ्ञो परिदहति तादिसानि च वत्थानि पट्ठपेसि।

३५. अथ खो पायासि राजञ्ञो असक्कच्चं दानं दत्वा, असहत्था दानं दत्वा, [R.356]

करवाने लगा। उस दान में खुद्दी चावल एवं काँजी का भोजन दिया जाने लगा एवं मोटे–पुराने वस्त्र दिये जाने लगे। इस दान की व्यवस्था में उत्तर नामक माणवक को लगाया गया। वह माणवक दान देकर ऐसे कहा करता था– 'इस दान द्वारा मेरा पायासि राजन्य के साथ इसी लोक में सम्पर्क रहे, परलोक में नहीं।' जब पायासि राजन्य ने सुना कि उत्तर माणवक ऐसा कह रहा है तो उसने उत्तर माणवक को बुलाकर कर पूछा– 'तात उत्तर! क्या तुम सचमुच यह कह रहे हो कि 'इस दान द्वारा मेरा....परलोक में नहीं।'' "जी, हाँ!" "तात उत्तर! तुम ऐसा क्यों कहते हो– 'इस दान द्वारा मेरा....परलोक में नहीं?"

"आपके दान में खुद्दी चावल और काँजी का भोजन एवं मोटे पुराने वस्त्र दान में दिये जाते हैं, जिन्हें कि आप पैर से भी न छूएँ, खाना और पहनना तो बहुत दूर की बात है। आप हमारे प्रिय और अपने हैं। हम अपने प्रिय एवं आत्मीय को अप्रिय (अपयश) के साथ कैसे देख सकते हैं?" "तात उत्तर! तो जैसे भोजन मैं करता हूँ, वैसा ही भोजन और जैसे मैं वस्त्र पहनता हूँ, वैसे वस्त्रों का दान में वितरण करो।"

"बहुत अच्छा"– कहकर उत्तर माणवक ने जिस प्रकार का भोजन पायासि राजन्य करते थे, वैसा भोजन एवं जिस प्रकार के वस्त्र पहनते थे, वैसे वस्त्र दान में देना प्रारम्भ किया।

अचित्तीकतं दानं दत्वा, अपविद्धं दानं दत्वा कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जि सुञ्ञं सेरीसकं विमानं। यो पन तस्स दाने वावटो अहोसि उत्तरो नाम माणवो सो सक्कच्चं दानं दत्वा, सहत्था दानं दत्वा, चित्तीकतं दानं दत्वा, अनपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जि देवानं तावतिंसानं सहब्यतं।

३६. तेन खो पन समयेन आयस्मा गवम्पति अभिक्खणं सुञ्ञं सेरीसकं विमानं दिवाविहारं गच्छति। अथ खो पायासि देवपुत्तो येनायस्मा गवम्पति तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [B.282] आयस्मन्तं गवम्पतिं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो पायासिं देवपुत्तं आयस्मा गवम्पति एतदवोच—

"कोसि त्वं, आवुसो" ति?

"अहं, भन्ते, पायासि राजञ्ञो" ति।

"ननु त्वं, आवुसो, एवंदिट्ठिको अहोसि—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको" ति?

"सच्चाहं, भन्ते, एवंदिट्ठिको अहोसिं—इति पि नत्थि परो लोको, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको ति। अपि याहं अय्येन कुमारकस्सपेन [R.357] एतस्मा पापका दिट्ठिगता विवेचितो" ति।

"यो पन ते, आवुसो, दाने वावटो अहोसि उत्तरो नाम माणवो सो कुहिं उपपन्नो " ति?

"यो मे, भन्ते, दाने वावटो अहोसि उत्तरो नाम माणवो सो सक्कच्चं दानं दत्वा,

---

ससत्कार दानयज्ञ— ३५. तब पायासि राजन्य सत्काररहित दान देकर, दूसरे के हाथ से दिलवाकर, उपेक्षापूर्वक दानकर, दूर से फेंककर कर दान देकर, मरणानन्तर चातुर्महाराजिक देवों के बीच उत्पन्न हुआ। उसे स्वैरिस्सक (स्वैरिस्वक) नामक छोटा सा विमान मिला। तथा जो उत्तर माणवक उस दान पर (व्यवस्थापक रूप में) बैठाया गया था, वह सत्कारपूर्वक दान देकर, अपने हाथों से दान देकर, श्रद्धापूर्वक दान देकर, यथाविधि दान देकर, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक में त्रायस्त्रिंश देवों के बीच (गवाम्पति नाम से) उत्पन्न हुआ।

३६. उस समय (कभी) आयुष्मान् गवाम्पति अपने छोटे स्वैरिस्वक विमान पर दिवाविहार के लिये निकले। तब पायासि देवपुत्र गवाम्पति के पास पहुँचा। पहुँचकर उन्हें अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े पायासि देवपुत्र से आयुष्मान् गवाम्पति ने पूछा—

"आयुष्मन्! आप कौन हैं?"

"भन्ते मैं पायासि राजन्य हूँ।

"आयुष्मन्! क्या तुम इस धारणा या इस मत को मानते थे— 'यह लोक नहीं है, परलोक भी नहीं है...सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल–विपाक भी नहीं है।

"भन्ते! मैं सत्य ही इस धारणा....वाला था कि— यह लोक नहीं है....फलविपाक भी नहीं है। किन्तु आयुष्मान् कुमारकाश्यप से उपदेश सुनने के बाद इस मिथ्याधारणा से छुटकारा पा सका।"

"आयुष्मन्! जो उत्तर नामक माणवक आपके यज्ञ के अवसर पर दान-व्यवस्था पर बैठाया गया था वह कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

सहत्था दानं दत्वा, चित्तीकतं दानं दत्वा, अनपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं [N.265] मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। अहं पन, भन्ते, असक्कच्चं दानं दत्वा, असहत्था दानं दत्वा, अचित्तीकतं दानं दत्वा, अपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपन्नो सुञ्ञं सेरीसकं विमानं। तेन हि, भन्ते गवम्पति, मनुस्सलोकं गन्त्वा एवमारोचेहि—

'सक्कच्चं दानं देथ, सहत्था दानं देथ, चित्तीकतं दानं देथ, अनपविद्धं दानं देथ। पायासि राजञ्ञो असक्कच्चं दानं दत्वा, असहत्था दानं दत्वा, अचित्तीकतं दानं दत्वा, अपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपन्नो सुञ्ञं सेरीसकं विमानं। यो पन तस्स दाने वावटो अहोसि उत्तरो नाम माणवो सो सक्कच्चं दानं दत्वा, सहत्था दानं दत्वा, चित्तीकतं दानं दत्वा, अनपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं'' ति।

अथ खो आयस्मा गवम्पति मनुस्सलोकं आगन्त्वा एवमारोचेसि—''सक्कच्चं दानं देथ, सहत्था दानं देथ, चित्तीकतं दानं देथ, अनपविद्ध दानं देथ। पायासि राजञ्ञो असक्कच्चं दानं दत्वा, असहत्था दानं दत्वा, अचित्तीकतं दानं दत्वा, अपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपन्नो सुञ्ञं सेरीसकं विमानं। यो पन [B.283] तस्स दाने वावटो अहोसि उत्तरो नाम माणवो सो सक्कच्चं दानं दत्वा, सहत्था दानं [R.358] दत्वा, चित्तीकतं दानं दत्वा, अनपविद्धं दानं दत्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं'' ति॥

पायासिसुत्तं निट्ठितं दसमं॥

महावग्गो दुतियो॥

''भन्ते! उत्तर नामक, जिसे मैंने दानव्यवस्था पर बैठाया था, वह सत्कारपूर्वक दान देकर.... मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में त्रायस्त्रिश देवों के बीच उत्पन्न हुआ। और मैं, भन्ते! असत्कारपूर्वक.... दान देकर, मरणानन्तर, चातुर्महाराजिक देवताओं में उत्पन्न हुआ हूँ। भन्ते गवाम्पति!तो आप मनुष्यलोक में जाकर वहाँ लोगों को दानहेतु प्रोत्साहित करते हुए, उनसे कहें—

'सत्कारपूर्वक दान दो; अपने हाथ से दान दो....। क्योंकि मैं.... चातुर्महाराजिक देवों में एवं उत्तर माणवक सत्पूर्वक दान करता हुआ....त्रायस्त्रिश देवों के बीच में उत्पन्न हुआ है।''

तब आयुष्मान् गवाम्पति मनुष्य लोक में आकर मनुष्यों को उपदेश करने लगे— ''सत्कारपूर्वक दान करो, अपने हाथ से दान करो, मन लगाकर (श्रद्धापूर्वक) दान करो यथाविधि दान करो। क्योंकि पायासि राजन्य (पूर्वकाल में) असत्कारपूर्वक दान कर, अपने हाथ से दान न कर, अश्रद्धापूर्वक दानकर, यथाविधि दान न कर चातुर्महाराजिक देवों में उत्पन्न हुआ है और वह उत्तर माणवक जो पायासिराजन्य के यज्ञकाल में दानव्यवस्थापक बनाया गया, इस दान के प्रभाव से मरणानन्तर आज त्रायस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुए हैं''।।

दशम पायासिसूत्र समाप्त॥

द्वितीय महावर्ग भी समाप्त॥

तस्सुद्दानं

महापदानं निदानं, निब्बानं च सुदस्सनं।
जनवसभं च गोविन्दं, समयं सक्कपञ्हकं।
महासतिपट्ठानं च, पायासि दसमं भवे।

महावग्गो निट्ठितो॥

उसका उदान

इस महावर्ग में ये दश सूत्र हैं– १. महापदान, २. महानिदान, ३. महानिर्वाण, ४. महासुदर्शन, ५. जनवृषभ, ६. महागोविन्द, ७. महासमय, ८. महाशक्रप्रश्न, ९. महास्मृतिप्रस्थान।

महावर्ग समाप्त॥

बौद्धभारती

पो॰ बॉ॰ नं॰ 1049, वाराणसी-1